

मखादेव जातक (६)

जातक

[प्रथम खण्ड]

भदन्त आनन्द कौसल्यायन

प्रकाशक

हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

प्रकाशक
हिन्दी साहित्य सम्मेलन
प्रयाग

मूल्य ५)

मुद्रक—जे० के० शर्मा
इलाहाबाद लॉ जर्नल प्रेस
इलाहाबाद

प्रथम परिचय के दिन से ही

मेरे

परम श्रद्धाभाजन

वर्तमान

सरकार द्वारा नजरबन्द

राहुल सांकृत्यायन

को

वस्तु कथा

पालि वाङ्मय में तिपिटक (त्रिपिटक) का विस्तार इस प्रकार हैं[1]—

१. **सुत्तपिटक,** निम्नलिखित पाँच निकायों में विभक्त है—

(१) दीघनिकाय, (२) मज्झिमनिकाय, (३) संयुत्तनिकाय, (४) अंगुत्तरनिकाय, (५) खुद्दकनिकाय।

खुद्दकनिकाय के १५ ग्रन्थ हैं—

(१) खुद्दकपाठ, (२) धम्मपद, (३) उदान, (४) इतिवुत्तक, (५) सुत्तनिपात, (६) विमानवत्थु, (७) पेतवत्थु, (८) थेरगाथा, (९) थेरी गाथा, (१०) **जातक,** (११) निद्देस, (१२) पटिसम्भिदामग्ग, (१३) अपदान, (१४) बुद्धवंस, (१५) चारियापिटक।

२. **विनयपिटक** निम्नलिखित भागों में विभक्त है—

(१) महावग्ग, (२) चुल्लवग्ग, (३) पाराजिका, (४) पाचित्तियादि, (५) परिवार पाठ।

३. **अभिधम्मपिटक** में सात ग्रन्थ हैं—

(१) धम्मसंगणि, (२) विभंग, (३) धातुकथा, (४) पुग्गल पञ्ञत्ति, (५) कथावत्थु, (६) यमक, (७) पट्ठान।

आचार्य्य बुद्धघोष के समय तक अर्थात् चौथी पाँचवीं शताब्दी ई० में इन सब ग्रन्थों अथवा इन ग्रन्थों में से लिए गए उद्धरणों के लिए 'पालि' शब्द व्यवहृत होता था। आचार्य्य बुद्धघोष ने इन ग्रन्थों में से जहाँ कहीं कोई उद्धरण लिया है वहाँ 'अयमेत्थ पालि' (यहाँ यह पालि है) वा 'पालियं वुत्तं' (पालि में कहा गया है) का प्रयोग किया है। जिस प्रकार पाणिनि ने 'छन्दसि' शब्द

[1] **सुमङ्गल विलासिनी (दीघनिकाय अट्ठकथा) की निदान कथा।**

से वेदों का तथा 'भाषायाम्' से तत्कालीन प्रचलित संस्कृत का उल्लेख किया है, उसी प्रकार आचार्य्य बुद्धघोष ने 'पालियं' से तिपिटक वा मूलवचन को तथा 'अट्ठकथायं' से उनके समय में सिंहल द्वीप में विद्यमान सिंहल अट्ठकथाओं को याद किया है।

अट्ठकथा वा अर्थकथा का मतलब है अर्थ सहित कथा। तिपिटक को समझने के लिए भाष्य की आवश्यकता पड़ती थी। कहा जाता है कि महेन्द्र स्थविर जब बुद्ध शासन की स्थापना करने के लिए सिंहल गए, तब वे तिपिटक के साथ उसकी अर्थकथाएँ भी ले गए थे।[1] हो सकता है कि अट्ठकथाओं की रचना तो सिंहल में ही हुई हो; लेकिन उनको अधिक प्राचीन बनाने के लिए महेन्द्र से उनका सम्बन्ध जोड़ दिया गया हो। आरम्भ में तिपिटक के सूत्रों को समझाने के लिए उनके अर्थों को अधिक स्पष्ट करने के लिए उनके साथ कथाएँ कहने की भी परिपाटी रही होगी; जिन्हें पीछे लेख-बद्ध कर लिया गया।

सिंहल अर्थकथाओं का पीछे आचार्य्य बुद्धघोष द्वारा पालि रूपान्तर हुआ। सिंहल में वे केवल सिंहल वासियों के काम की थीं; पालि में होने से वह अन्य देशवासियों के लिए भी उपयोगी हुईं। वे रूपान्तर इतने सुन्दर बने कि उनका आदर तिपिटक के समान होने लगा।[2]

'पालि' असल में किसी भाषा का नाम नहीं रहा है। भाषा का नाम तो रहा है मागधी। पालि तो केवल मूल-वचन का पर्य्यायवाची शब्द रहा है।

जो अर्थकथाएँ इस समय उपलब्ध हैं, वे इस प्रकार हैं—

१. समन्त पासादिका	विनय अट्ठकथा।
२. सुमङ्गलविलासिनी	दीघनिकाय अट्ठकथा

[1] बुद्ध घोष कृत चारों निकायों की अट्ठकथाओं में आरम्भ में ही इस प्रकार आता है—

सीहलदीपं पन आभता वसिना महामहिन्देन,
ठपिता सीहलभासाय दीपवासीनमत्थाय।

[2] पालिं विय तम्मगहुं (महावंस)।

३. पपंच सूदिनी — मज्झिम निकाय अट्ठकथा
४. सारत्थ पकासिनी — संयुत्त निकाय अट्ठकथा
५. मनोरथ पूरिणी — अंगुत्तर निकाय अट्ठकथा
६. खुद्दकनिकाय के ग्रन्थों पर भिन्न भिन्न नामों से अट्ठकथाएँ
७. अट्ठ सालिनी — धम्मसंगणि पर अट्ठकथा
८. सम्मोह विनोदनी — विभंग अट्ठकथा
९. पञ्चप्पकरण अट्ठकथा जिसमें निम्नलिखित पाँच अट्ठकथाएँ हैं—

(१) धातुकथाप्पकरण अट्ठकथा
(२) पुग्गल पञ्ञत्तिप्पकरण अट्ठकथा
(३) कथावत्थु अट्ठकथा
(४) यमकप्पकरण अट्ठकथा
(५) पट्ठानप्पकरण अट्ठकथा।

ऊपर जो तिपिटक का वर्गीकरण दिया है, अट्ठकथाचार्य्यों का मत है कि वह राजगृह में हुई प्रथम संगीति के अनुसार है। उनका कहना है कि भगवान् बुद्ध के परिनिर्वाण के बाद सुभद्र भिक्षु ने भिक्षुओं को सान्त्वना देते हुए कहा कि "आवुसो! मत शोक करो। मत रोओ! हम मुक्त हो गए। उस महाश्रमण से पीड़ित रहा करते थे कि यह करो और यह न करो। अब हम जो चाहेंगे करेंगे, जो नहीं चाहेंगे उसे नहीं करेंगे।"[1] तब महाकश्यप स्थविर को भय हुआ कि कहीं सद्धर्म का अन्तर्धान न हो जाय। उसके रक्षार्थ उन्होंने पाँच सौ अर्हत भिक्षुओं की एक संगीति बुलाई। उस संगीति में पहले उपालि महास्थविर से पूछकर **विनय** का संगायन हुआ और बाद में आनन्द महास्थविर से सुत्त और अभिधम्म पिटक पूछा गया। एक मत है कि जातक, महानिद्देस, चुल्ल निद्देस, पटिसम्भिदामग्ग, सुत्तनिपात, धम्मपद, उदान, इतिवुत्तक, विमानवत्थु, पेतवत्थु, थेरगाथा तथा थेरीगाथा अभिधम्मपिटक के अन्तर्गत संगृहीत हुए। दूसरा मत है ये ग्रन्थ तथा चरिया-पिटक, अपदान और बुद्धवंस मिलकर खुद्दक-

[1] देखो चुल्लवग्ग वंशशतिका स्कन्धक (राहुल सांकृत्यायन द्वारा हिन्दी में अनूदित)।

निकाय के नाम से सुत्तन्त पिटक के अन्तर्गत गिने गए।[१]

लेकिन प्रथम संगीति का जो वर्णन चुल्लवग्ग में आया है, उस वर्णन में कहीं **तिपिटक** का ज़िकर नहीं। और तो क्या **पिटक** शब्द ही नहीं। उस समय 'धम्म और विनय' का संगायन हुआ था। 'धम्म और विनय' के अन्तर्गत ठीक कितना वाङ्मय रहा, कहना कठिन है। तो भी जब चुल्लवग्ग में द्वितीय संगीति का विस्तृत वर्णन मिलता है तो इतना तो कह ही सकते हैं कि प्रथम संगीति में सारे चुल्लवग्ग का संगायन (=पाठ) नहीं हुआ।

ऐसा प्रतीत होता है कि अशोक काल पर्य्यन्त बुद्धवचन के दो ही विभाग रहे—धम्म और विनय तथा उस समय तक तिपिटक के ग्रन्थों की रचना होती रही। अभिधम्मपिटक के एक ग्रन्थ—कथावत्थु—के रचयिता स्पष्ट ही अशोकगुरु मोग्गलिपुत्त तिस्स स्थविर थे।[२]

बुद्धवचन का एक प्राचीन वर्गीकरण स्वयं तिपिटक में है। उसके अनुसार बुद्धवचन इन नौ भागों में विभक्त है—

(१) **सुत्त**, यह शब्द सूत्र तथा सूक्त दोनों संस्कृत शब्दों का रूपान्तर समझा जाता है। कुछ लोगों ने पालि सुत्त को सूत्र कहा है। दूसरों ने आपत्ति की है—क्योंकि यह पाणिनि के व्याकरण सूत्रों की तरह छोटे आकार के नहीं हैं, इसलिए इन्हें सूत्र न कह कर सूक्त कहना चाहिए, जैसे वेद के सूक्त।

संस्कृत बौद्ध साहित्य में सुत्तों को सूत्र ही कहा गया है। इतर संस्कृत साहित्य में भी आश्वलायन सूत्र आदि गृह्य सूत्रों से अपेक्षाकृत समान होने के कारण सुत्तों को सूत्र कहना ही ठीक होगा। अंगुत्तर निकाय के एकक निपात आदि में जो छोटे छोटे बुद्ध-वचन हैं, वे ही वास्तव में प्राचीन सूत्र हैं। और जिन सूत्रों को सूक्त कहने की अधिक प्रवृत्ति होती है, वह इन सूत्रों पर लिखे गए वेय्याकरण (=व्याख्याएँ) हैं।

यहाँ तो इतना ही अभिप्रेत है कि अशोक के समय से बुद्ध वचन के एक अंश के लिए सुत्त शब्द व्यवहृत होता था।

[१] सुमङ्गल विलासिनी तथा समन्त पासादिका की निदान कथा।

[२] अट्ठसालिनि, कथावत्थु अट्ठकथा।

(२) **गेय्य**—अलगद्दूपम सुत्त (मज्झिम निकाय २२वाँ सूत्र) की अट्ठकथा में लिखा है कि सुत्तों में जो गाथाओं का हिस्सा है वह गेय्य है, उदाहरण के लिए संयुत्त निकाय का आरम्भिक हिस्सा। सभी प्रकार की गाथाओं को यदि गेय्य माना गया होता तो, उन गाथाओं का कोई पृथक वर्गीकरण रहा होता। प्रतीत होता है कि किसी खास तरह की गाथाओं की ही संज्ञा गेय्य रही होगी।

(३) **वेय्याकरण**—अर्थ है व्याख्या। किसी सूत्र का विस्तारपूर्वक अर्थ करने को वेय्याकरण कहते हैं। भविष्यद्वाणी के अर्थ में जातक में व्याकरण शब्द आया है। किन्तु इस शब्द का न तो उस व्याकरण से कुछ सम्बन्ध है और न संस्कृत वा पालि के व्याकरण साहित्य से।

(४) **गाथा**—बुद्धघोषाचार्य्य ने धम्मपद, थेरगाथा और थेरीगाथा की गिनती गाथा में की है। इनमें से थेरगाथा में अशोक के भाई **वीतसोक** की गाथाएँ उपलब्ध हैं।[1] इस से तथा इसकी रचना शैली से सिद्ध है कि इस ग्रन्थ का वर्तमान रूप भगवान के परिनिर्वाण के तीन चार सौ वर्ष बाद का है।

(५) **उदान**—मूल अर्थ है उल्लास-वाक्य। **खुद्दकनिकाय** में जो **उदान** नामक ग्रन्थ है उसके अतिरिक्त **सुत्तपिटक** में जहाँ तहाँ और भी अनेक उदान आए हैं। यह कहना कठिन है कि इनमें से कितने उदान अशोक से पूर्व के हैं।

(६) **इतिवुत्तक**—खुद्दक निकाय का इतिवुत्तक १२४ इतिवुत्तकों का संग्रह है। इनमें से कुछ अशोक के समय के और पहले के भी हो सकते हैं।

(७) **जातक**—यह कथा-साहित्य सर्व प्रसिद्ध है। अनेक दृश्य साँची[2], भरहुत[3] आदि के स्तूपों की वेष्ठनी (रेलिंग) पर खुदे मिलते हैं जो कि १५० ई० पू० के आसपास के हैं। इस पर विस्तृत विचार आगे किया ही गया है।

[1] इमस्मिं बुद्धुप्पादे अट्ठारस वस्साधिकानं द्विन्नं वस्स सतानं मत्थके धम्मासोक रञ्ञो कणिट्ठभाता हुत्वा निब्बत्ति। तस्स वीतसोकोति नामं अहोसि (वीतसोक थेरस्स गाथा वण्णना)।

[2] सांची—भेलसा (प्राचीन विदिशा) के पड़ोस में।

[3] भरहुत—इलाहाबाद से १२० मील दक्षिण-पश्चिम एक गाँव।

(८) **अब्भुतधम्म**—अर्थ है असाधारण-धर्म। हो सकता है कि भगवान् बुद्ध और उनके शिष्यों में जो असाधारण बातें रहीं उनका वर्णन करने वाला कोई ग्रन्थ रहा हो; किन्तु इस प्रकार का कोई ग्रन्थ न अब प्राप्य है न आचार्य्य बुद्धघोष के ही समय में रहा है। उन्होंने लिखा है "भिक्षुओ, ये चार आश्चर्य्य अद्भुतधर्म आनन्द में हैं' इस क्रम से (अर्थात् बुद्ध के इस वाक्य के अनुसार) जितने भी आश्चर्य्य अद्भुतधर्मों से युक्त सूत्र हैं, वे सभी अब्भुत धम्म जानने चाहिए।"[१]

(९) **वेदल्ल**—महावेदल्ल और चुल्लवेदल्ल दो सुत्त हैं।[२] इन दोनों सूत्रों में (१) महाकोट्ठित तथा सारिपुत्र के, (२) भिक्षुणी धम्मदिन्ना तथा उसके पूर्व आश्रम के पति के प्रश्नोत्तर हैं। इनसे वेदल्ल नाम के संग्रह में किस प्रकार के सूत्र रहे होंगे, इसका कुछ अनुमान लग सकता है। प्रतीत होता है कि भगवान् बुद्ध के साथ श्रमण-ब्राह्मणों के जो प्रश्नोत्तर होते थे, वे वेदल्ल कहलाते थे।

सारे तिपिटक में वा नौ अंगों वाले बुद्ध वचन में, कितना वास्तव में बुद्ध तथा उनके शिष्यों का उपदेश है और कितना पीछे की भर्ती, कहना कठिन है।

अशोक के भाब्रू शिलालेख[३] में सात बुद्धोपदेशों का नाम आया है, जिनको-अशोक चाहता था कि भिक्षु भिक्षुणियाँ, उपासक उपासिकाएँ सुनें तथा धारण करें। वे बुद्धोपदेश यह हैं—

[१] **चत्तारो मे भिक्खवे, अच्छरिया अब्भुता धम्मा आनन्देति आदिनय-पवत्ता सब्बेपि अच्छरियब्भुतधम्मपटि-संयुत्ता सुत्तन्ता अब्भुतधम्मंति वेदि-तब्बा।**

[२] **मज्झिम निकाय, (४३, ४४)।**

[३] **. . . . भगवता बुधेन भासिते सवे से सुभासिते वा ए चु खो भंते हमियाये दिसेया हेवं स धंमे चिलठितिके होसतीति अलहामि हकं तं वतवे [.] इमानि भन्ते धंम पालियायानि विनयसमुकसे अलियवसानि अनागत भयानि मुनिगाथा मोनेयसूते उपतिसपसिने ए चा लाघुलोवादे मुसावादं अधिगिच्य भगवता बुधेन भासिते एतान भंते धंमपलियायानि इच्छामि किं ति (?) बहुके भिखु-**

(१) विनयसमुकसे, (२) अलियवसानि, (३) अनागतभयानि, (४) मुनिगाथा, (५) मोनेयसूते, (६) उपतिसपसिने, (७) लाघुलोवादे मुसावादं अधिगिच्च भगवता बुद्धेन भासिते।

वे बुद्धोपदेश वर्तमान त्रिपिटक में कौन कौन से हैं, इनका अनेक विद्वानों ने विचार किया है। श्री धम्मानन्द जी कोसम्बी को वे इस क्रम से स्वीकृत हैं[1]—

(१) विनयसमुकसे=धम्मचक्कपवत्तन सुत्त
(२) अलियवसानि=अरियवंसा (अंगुत्तर, चतुक्क निपात)
(३) अनागत भयानि=अनागतभयानि (अंगुत्तर, पञ्चक निपात)
(४) मुनिगाथा=मुनि सुत्त (सुत्तनिपात)
(५) मोनेयसूते=नाळकसुत्त (सुत्तनिपात)
(६) उपतिस पसिने=सारिपुत्तसुत्त (सुत्तनिपात)
(७) लाघुलोवाद=राहुलोवाद (मज्झिम नि० सुत्त ६१)

इन सात सुत्तों में से चार सुत्त सुत्तनिपात से लिए गए हैं। इससे सुत्त-निपात का महत्त्व तथा प्राचीनता स्वयं-सिद्ध है। सुत्तनिपात खुद्दक निकाय का एक ग्रन्थ है; और निद्देस, नाम से सुत्तनिपात के ही कुछ सुत्तों की एक टीका भी

पाये च भिखुनिये चा अभिखिनं सुनयु चा उपधालेयेयु चा हेवं हेवा उपासका चा उपासिका चा [.] एतेनि भंते इमं लिखापयामि अभिहेतं म जानंतति (अशोक के धर्म लेख—जनार्दन भट्ट, एम० ए०)।

हिन्दी—...जो कुछ भगवान् बुद्ध ने कहा है सब सुभाषित है। पर जैसे मुझे दिखाई देता है कि इस प्रकार सद्धर्म चिरकाल तक स्थित रहेगा, वह कहना उचित समझता हूँ। मैं इन धर्मपर्यायों को—विनय समुकसे... ...और मृषावाद के बारे में भगवान् द्वारा उपदिष्ट राहुलोवाद को चाहता हूँ। क्या चाहता हूँ? यही कि बहुत से भिक्षु और भिक्षुणियाँ सुनें तथा धारण करें। इसी प्रकार उपासक उपासिकायें भी। भन्ते, मैं यह लेख लिखवाता हूँ कि लोग मेरा अभिप्राय जानें।

[1] भगवान बुद्ध (मराठी); इण्डियन आण्टीक्वेरी १९१२, फर्वरी।

खुद्दकनिकाय के अन्तर्गत है। इससे अनुमान होता है कि सुत्तनिपात खुद्दक निकाय के निद्देस सदृश ग्रन्थों की अपेक्षा एक या दो शताब्दी प्राचीन है।

बुद्धवचन का नौ अंगों के रूप में जो प्राचीनतर वर्गीकरण है, उसमें भी जातक का समावेश होने से उसकी प्राचीनता तथा महत्त्व स्पष्ट ही है। जब हम देखते हैं कि साँची, भरहुत आदि स्थानों में अनेक जातक कथाओं के चित्र उत्कीर्ण हैं,[1] तब उनकी प्राचीनता तथा महत्त्व और भी बढ़ जाता है।

जातक शब्द का अर्थ है जन्म सम्बन्धी। विकासवाद के अनुसार एक फूल को विकसित होने के लिए, उस पुष्प की जाति विशेष के अस्तित्व में आने में लाखों वर्ष लग जाते हैं। तब क्या कोई भी प्राणी साठ या सत्तर, अधिक से अधिक सौ वर्ष के जीवन में बुद्ध बन सकता है? उसे इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए अनेक जन्म धारण करने ही होंगे। गौतम बुद्ध को भी धारण करने पड़े। बुद्ध होने से पूर्व अपने सब पिछले जन्मों तथा अन्तिम जन्म में उनकी संज्ञा बोधि-सत्त्व रही। बोधि का अर्थ बुद्धत्व और सत्त्व का अर्थ प्राणी—बुद्धत्व के लिए प्रयत्नशील प्राणी। जातक में बोधिसत्त्व के पाँच सौ सैंतालिस जन्मों का उल्लेख है।

लेकिन बौद्ध तो आत्मा को ही नहीं मानते। फिर यह जन्मान्तरवाद कैसा? जब आत्मा ही नहीं, तो पुनर्जन्म कैसे हो सकता है? प्रश्न समुचित है। सामान्यतया सभी अबौद्ध दर्शन आत्मवाद के बिना जन्मान्तरवाद की कल्पना कर ही नहीं सकते। भगवद्गीता ने जिस जन्मान्तरवाद को स्वीकृत किया है, वह आत्मवाद की ही भित्ति पर है।

बुद्धधर्म किसी आत्मा को जो शाश्वत तथा नित्य समझा जाता है नहीं स्वीकार करता। आचार्य्य वसुवन्धु[2] कृत अभिधर्मकोष की एक कारिका है—

नात्मास्ति; स्कन्धमात्रं तु कर्मक्लेशाभिसंस्कृतम्।
अन्तराभव-सन्तत्या कुक्षिमेति प्रदीपवत्॥३–१८॥

[1] भरहुत शिलालेख—श्री बरुआ तथा सिनहा—कलकत्ता यूनिवर्सिटी १९२६)।

[2] आचार्य्य वसुवन्धु का समय चौथी-पाँचवीं शताब्दी है।

आत्मा नाम का कोई नित्य ध्रुव, अविपरिणाम स्वभाव वाला पदार्थ नहीं है। कर्म से तथा (अविद्या आदि) क्लेशों से अभिसंस्कृत **पञ्चस्कन्ध**[१] मात्र ही पूर्व-भव संतति क्रम से एक प्रदीप से दूसरे प्रदीप के जलने की तरह गर्भ में प्रवेश पाता है।

इसी प्रकार राजा **मिलिन्द**[२] ने महास्थविर नागसेन से प्रश्न किया—यदि **संक्रमण**[३] नहीं होता तो पुनर्जन्म कैसे होता है ?

हाँ महाराज, बिना संक्रमण हुए पुनर्जन्म होता है।

१. भन्ते, सो कैसे होता है ? कृपया उपमा देकर समझावें।

महाराज ! यदि कोई एक बत्ती से दूसरी बत्ती जला ले तो क्या यहाँ एक बत्ती दूसरी में संक्रमण करती है ?

नहीं भन्ते !

महाराज ! इसी तरह बिना संक्रमण हुए पुनर्जन्म होता है।

२. कृपया फिर भी उपमा दे कर समझावें ?

महाराज ! क्या आपको कोई श्लोक याद है जो आपने अपने गुरु के मुख से सीखा था ?

हाँ, याद है।

महाराज ! क्या वह श्लोक आचार्य्य के मुख से निकल कर आपके मुख में घुस गया ?

नहीं भन्ते !

महाराज ! इसी तरह बिना संक्रमण हुए पुनर्जन्म होता है।

भन्ते ! आपने अच्छा समझाया।

फिर राजा बोला—भन्ते ! ऐसा कोई जीव है जो इस शरीर से निकल कर दूसरे में प्रवेश करता है ?

नहीं, महाराज।

[१] **रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार, तथा विज्ञान।**

[२] **राजा मिलिन्द का समय ई० पू० १५० है।**

[३] **आत्मा का एक शरीर को छोड़ कर दूसरे को धारण करना**

भन्ते ! यदि इस शरीर से निकल कर दूसरे शरीर में जाने वाला नहीं है, तब तो वह अपने पाप कर्मों से मुक्त हो गया।

हाँ, महाराज ! यदि उसका फिर जन्म नहीं हो तो अलबत्ता वह अपने पापकर्मों से मुक्त हो गया और यदि वह फिर जन्म ग्रहण करे तो मुक्त नहीं हुआ।

कृपया उपमा देकर समझावें।

महाराज ! यदि कोई आदमी किसी दूसरे का आम चुरा ले तो दण्ड का भागी होगा या नहीं ?

हाँ भन्ते ! होगा।

महाराज ! उस आम को तो उसने रोपा नहीं था जिसे इसने लिया, फिर दण्ड का भागी कैसे होगा ?

भन्ते ! उसके रोपे हुए आम से ही यह भी पैदा हुआ, इसलिए वह दण्ड का भागी होगा।

महाराज ! इसी तरह, एक पुरुष इस नामरूप से अच्छे बुरे कर्म करता है। उन कर्मों के प्रभाव से दूसरा नामरूप जन्म लेता है। इसलिए वह अपने पाप कर्मों से मुक्त नहीं हुआ।

भन्ते ! आपने ठीक समझाया।[1]

जब तक मनुष्य की अविद्या-तृष्णा का नाश नहीं होता, तब तक उसका अच्छा बुरा कर्म ही उसका सब कुछ है। भगवान् का उपदेश है—"भिक्षुओ, सभी को इस बात पर सदा मनन करना चाहिए कि मेरा जो कुछ भी है कर्म ही है, कर्म ही दायाद है, कर्म ही से उत्पत्ति है, कर्म ही बन्धु है, कर्म ही शरण-स्थान है, जो मैं अच्छा बुरा कर्म करूँगा उसका मैं उत्तराधिकारी होऊँगा।"[2]

[1] भिक्षु जगदीश काश्यप कृत मिलिन्द-प्रश्न का हिन्दी अनुवाद (३-२-१३, ३-२-१६)।

[2] कम्मस्सकोम्हि, कम्मदायादो, कम्मयोनि, कम्मबन्धु, कम्मपटिसरणो यं कम्मं करिस्सामि कल्याणं वा पापकं वा तस्स दायादो भविस्सामीति अभिण्हं पच्चवेक्खितब्बं गहट्ठेन वा पब्बजितेन वा (अंगुत्तर निकाय, पंचक निपात, द्वितीय पण्णासक, प्रथम वर्ग, सातवाँ सूत्र)।

तृष्णा के क्षय हो जाने पर कर्म का भी क्षय हो जाता है और पुनर्जन्म का भी; लेकिन जब तक तृष्णा का क्षय नहीं होता तब तक तो प्राणी को जन्म जन्मान्तर तक जन्मों के चक्कर में रहना ही पड़ता है। बुद्ध ने जब बुद्धगया में बोधि-वृक्ष के नीचे ज्ञान प्राप्त किया, उस समय उन्होंने सर्वप्रथम यही कहा—

"दुःखदायी जन्म बार बार लेना पड़ा। मैं संसार में (शरीर रूपी गृह को बनाने वाले) गृहकारक को पाने की खोज में निष्फल भटकता रहा। लेकिन गृहकारक! अब मैंने तुझे देख लिया। (अब) तू फिर गृह निर्माण न कर सकेगा। तेरी सब कड़ियाँ टूट गईं। गृह-शिखर बिखर गया। चित्त निर्वाण प्राप्त हो गया; तृष्णा का क्षय हो गया।"[1]

बुद्ध की शिक्षा के अनुसार रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार तथा विज्ञान इन पाँच स्कन्धों का ही यह व्यक्ति वा संसार बना है; इन पाँच स्कन्धों की धारा अच्छे बुरे कर्मानुसार बहती रहती है, बहती रही है और तब तक बहती रहेगी जब तक कोई व्यक्ति तृष्णा का सम्पूर्ण क्षय नहीं कर लेता।

पुनर्जन्म प्रायः सभी भारतीत दर्शन सम्मत है। बुद्ध की शिक्षा की विशेषता यही है कि अनात्मवाद के साथ पुनर्जन्म को स्वीकार किया गया है। जन्म मरण के बन्धन से मुक्त होना तो आज दिन भारतीय दार्शनिकों का सामान्य आदर्श है।

तिपिटक में जिस **जातक** (ग्रन्थ) का समावेश है वह केवल गाथाओं का संग्रह है। जिस प्रकार **धम्मपद** एक चीज़ है और धम्मपद अट्ठकथा दूसरी, उसी प्रकार **जातक** एक चीज़ है और जातक अट्ठकथा दूसरी। अन्तर यह है

[1] धम्मपद (जरावग्ग १५३, १५४) की यह दो गाथाएँ प्रथम संबुद्ध गाथाएँ कही जाती हैं—

अनेक जाति संसारं सन्धाविस्सं अनिब्बिसं
गहकारकं गवेसन्तो दुक्खा जाति पुनप्पुनं,
गहकारक! दिट्ठोसि पुन गेहं न काहसि,
सब्बा ते फासुका भग्गा गहकूटं विसंखितं,
विसंखारगतं चित्तं तण्हानं खयमज्झगा॥

कि धम्मपद का अर्थ बिना धम्मपद अट्ठकथा के समझ में आ सकता है। जातक यद्यपि धम्मपद ही की तरह गाथाएँ मात्र हैं तो भी उन गाथाओं से, यदि पहले से कथा मालूम हो तो, पाठक को वह कथा याद आ सकती है। यदि कथा मालूम न हो तो अकेली गाथाओं से उद्देश्य पूरा नहीं होता। बिना जातकट्ठ कथा के जातक अधूरा है।

फिर जातक में केवल भगवान् बुद्ध के पूर्व जन्मों से सम्बन्ध रखने वाली गाथाएँ भर हैं। जातकट्ठकथा में अट्ठकथा सहित असल जातक कथाएँ आरम्भ होने से पहले **निदान कथा** नाम का एक लम्बा उपोद्घात है। इस निदान-कथा में सिद्धार्थ गौतम बुद्ध के जीवन चरित्र के साथ उनके पूर्व के २७ बुद्धों का भी जीवन चरित्र है। यह सारा का सारा **बुद्धवंस**[१] से लिया प्रतीत होता है।

जातकट्ठकथा के बंगला अनुवादक श्री० ईशान् चन्द्र घोष ने अपने अनुवाद में केवल जातक कथाओं वाले अंश का अनुवाद दिया है। प्रस्तुत हिन्दी अनुवाद निदान-कथा सहित सारी जातकट्ठकथा का अविकल अनुवाद है।

जातक की अट्ठकथा तीन भागों में विभक्त है—(१) दूरे निदान, (२) अविदूरे निदान, (३) सन्तिके निदान।

बोधिसत्त्व ने जब सुमेध तपस्वी का जन्म ग्रहण कर भगवान् दीपङ्कर के चरणों में जीवन समर्पित किया, उस समय से लेकर **वेस्सन्तर**[२] का शरीर छोड़ तुषित स्वर्ग लोक में उत्पन्न होने तक की कथा **दूरे-निदान** कही जाती

[१] बुद्धवंस के २७ बुद्ध इस प्रकार हैं—(१) तण्हङ्करो, (२) मेधङ्करो, (३) सरणङ्करो, (४) दीपङ्करो, (५) कोण्डञ्ञ, (६) मङ्गलो, (७) सुमनो, (८) रेवतो, (९) सोभितो, (१०) अनोमदस्सी, (११) पदुमो, (१२) नारदो, (१३) पदुमुत्तरो, (१४) सुमेधो, (१५) सुजातो, (१६) पियदस्सी, (१७) अत्थदस्सी, (१८) धम्मदस्सी, (१९) सिद्धत्थ, (२०) तिस्स, (२१) फुस्स, (२२) विपस्सी, (२३) सिखी, (२४) वेस्सभू, (२५) ककुसन्ध, (२६) कोणागमनो, (२७) कस्सप। अन्तिम छ या सात बुद्धों के नाम भरहुत में अंकित हैं—भरहुत शिलालेख (पृ० ४३)।

[२] देखो वेस्सन्तर जातक (५४७)।

है। तुषित-लोक से च्युत होकर **महामाया** देवी के गर्भ से उत्पन्न हो .... बोधगया में बुद्धत्व प्राप्त करने तक की कथा **अविदूरे-निदान** कही जाती है। जहाँ जहाँ भगवान् बुद्ध ने विहार करते समय कोई जातक कही, उन स्थानों का जो उल्लेख है, वह **सन्तिके-निदान** है।

जितनी जातक कथाएँ हैं, वे दूरे-निदान के ही अन्तर्गत आती हैं। हर जातक कथा चार विभागों में विभक्त हैं—(१) **पच्चुपन्नवत्थु**, (२) **अतीत वत्थु**, (३) **अत्थवण्णना**, (४) **समोधान**। पच्चुपन्नवत्थु से मतलब है **वर्तमान-कथा** अर्थात् भगवान् बुद्ध के समय की कोई घटना; उदाहरण के लिए पहली अपण्णक जातक में ही अनाथपिण्डिक के साथ पाँच सौ तैर्थिकों (बुद्ध-मत से भिन्न मतों के अनुयाइयों) के बुद्ध की शरण में आने जाने की कथा। अतीत-वत्थु का मतलब है किसी भी ऐसे अवसर पर भगवान् द्वारा कही गई पूर्व जन्म की कथा; जैसे पहली जातक में ही कान्तार में जाने वाले बंजारों की कथा। प्रत्येक कथा में एक या अनेक गाथाएँ हैं। अत्थवण्णना का मतलब है इन गाथाओं की व्याख्या; जिसमें गाथाओं का शब्दार्थ और विस्तृतार्थ रहता है। **समोधान** सदैव अन्त में आता है जिसमें बुद्ध बताते हैं कि उन्होंने जो अतीत-वत्थु सुनाई उस अतीत-वत्थु के प्रधान पात्रों मे कौन कौन था? वे स्वयं उस समय किस योनि में उत्पन्न हुए थे।

इस अनुवाद में हम ने **पच्चुपन्नवत्थु** को वर्तमान कथा कहा है; **अतीत-वत्थु** को अतीत कथा। ऐसे पाठकों के लिए जिनका अधिक ध्यान कथामात्र की ओर हो प्रत्येक गाथा के नीचे अपना स्वतन्त्र अनुवाद दे दिया है। उसके आगे की अत्थवण्णना (व्याख्या) के आरम्भ और अन्त में दो लकीरें खींच दी हैं।

आखिर में जो समोधान आए हैं उन्हें हमने गलती से कथाओं का सारांश कह दिया है। वह ठीक नहीं। समोधान का अर्थ केवल पूर्वपात्रों का मेल बैठाना मात्र है।

कुल जातक कितने हैं? अर्थात् बोधिसत्त्व ने बुद्ध होने से पूर्व ठीक ठीक कितनी बार जन्म ग्रहण किया है? कहना कठिन ही नहीं असम्भव है। खुद्दक निकाय के चरिया-पिटक में ३५ चर्य्या वा चरित्र हैं। वे ३५ चरियाएँ जातकट्ठ कथा में इस प्रकार हैं—

चरियापिटक	जातक
१. अकित्ति चरियं	१. अकित्ति जातक (४८०)
२. सङ्ख चरियं	२. सङ्खपाल जातक (५२४)
३. कुरुधम्म चरियं	३. कुरुधम्म जातक
४. महासुदस्सन चरियं	४. महासुदस्सन जातक
५. महागोविन्द चरियं	५. (देखें महागोविन्द सूत्र दीर्घ निकाय)
६. निमि राज चरियं	६. निमि जातक (५४१)
७. चन्दकुमार चरियं	७. खण्डहाल जातक (५४२)
८. सिविराज चरियं	८. सिवि जातक (४९९)
९. वेस्सन्तर चरियं	९. वेस्सन्तर जातक (५४७)
१०. ससपण्डित चरियं	१०. सस जातक (३१६)
११. सीलवनाग चरियं	११. सीलवनाग जातक (७२)
१२. भूरिदत्त चरियं	१२. भूरिदत्त जातक (५४३)
१३. चम्पेय्यनाग चरियं	१३. चम्पेय्य जातक (५०६)
१४. चूलबोधि चरियं	१४. चुल्लबोधि जातक (४४३)
१५. महिंसराज चरियं	१५. महिस जातक (२७८)
१६. रुरुराज चरियं	१६. रुरु जातक (४८२)
१७. मातङ्ग चरियं	१७. मातङ्ग जातक (४९७)
१८. धम्माधम्मदेवपुत्त चरियं	१८. धम्म जातक (४५७)
१९. जयदिस्स चरियं	१९. जयदिस जातक (५१३)
२०. सङ्खपाल चरियं	२०. सङ्खपाल जातक (५२४)
२१. युधञ्जय चरियं	२१. युवञ्जय जातक (४६०)
२२. सोमनस्स चरियं	२२. सोमनस्स जातक (५०५)
२३. अयोघर चरियं	२३. अयोघर जातक (५१०)
२४. भीस चरियं	२४. भिस जातक (४८८)
२५. सोणपण्डित चरियं	२५. सोण नन्द जातक (५३२)
२६. तेमिय चरियं	२६. तेमिय जातक (५३८)
२७. कपिराज चरियं	२७. कपि जातक (२५०)

२८. सच्चसव्ह्य पण्डित चरियं	२८. सच्चंकिर जातक (७३)
२६. वट्टपोतक चरियं	२६. वट्ट जातक (३५)
३०. मच्छराज चरियं	३०. मच्छ जातक (३४)
३१. कण्हदीपायन चरियं	३१. कण्हदीपायन जातक (४४४)
३२. सुतसोम चरियं	३२. .. ..
३३. सुवण्णमास चरियं	३३. साम जातक (५४०)
३४. एकराज चरियं	३४. एकराज जातक (३०३)
३५. महालोमहंस चरियं	३५. लोमहंस जातक (६४)

संस्कृत बौद्ध साहित्य में **जातक माला** नाम का एक ग्रन्थ है; जिसके रचयिता आर्यशूर हैं। तारानाथ ने आर्यशूर और प्रसिद्ध महाकवि अश्वघोष को एक ही कहा है। लेकिन यह ठीक नहीं। आर्यशूर की जातकमाला में कुल ३४ जातक हैं।

इसी प्रकार श्री० ईशानचन्द्र के अनुसार महावस्तु नामक ग्रन्थ में लगभग ८० कथाएँ हैं।

थेरवादियों वा सिंहल, स्याम, बर्मा, हिन्दचीन आदि देशों के बौद्धों की परम्परा है कि जातकों की संख्या ५५० है। यह ५५० संख्या याद रखने की सुविधा के लिए प्रचलित हो गई प्रतीत होती है; नहीं तो जातकट्ठकथा में जातकों की ठीक संख्या ५४७ है।[१] ये कथाएँ २२ निपातों या परिच्छेदों में बँटी हैं। पहले परिच्छेद में १५० ऐसी कथाएँ हैं जिनमें एक ही एक गाथा या श्लोक पाया जाता है; दूसरे में भी १५० ही कथाएँ हैं; लेकिन उनमें प्रत्येक में दो दो गाथाएँ हैं। तीसरे और चौथे में पचास पचास कथा। गाथाओं की संख्या क्रमशः तीन तीन और चार चार। पाँचवें निपात से तेरस निपात तक यह क्रम मोटे रूप से जारी रहता है। इन नौ निपातों में जातक-कथाओं की कुल संख्या केवल १३३ है। प्रत्येक निपात में कहीं कहीं जातकों की गाथाओं की संख्या उस निपात की संख्या से अधिक है; लेकिन सामान्यतः ऊपर का

[१] चूल निद्देस में एक जगह 'पञ्च जातक सतानि' अर्थात् पाँच सौ जातक आया है।

ही क्रम है। चौदहवें निपात का नाम पकिण्णक निपात है; शायद इसलिए कि इसके जातकों में गाथाओं की संख्या बहुत ही अस्थिर है। निपात क्रम से प्रत्येक कथा में १४ गाथाएँ होनी चाहिए। लेकिन इस निपात के जातकों में गाथाओं की संख्या साधारणतः १० के आसपास है और एक में तो ४७ है। इसके आगे के सात निपातों के नाम (१) वीसति निपात, (२) तिंस, निपात, (३) चत्तालिस निपात, (४) पण्णास निपात, (५) छट्ठी निपात, (६) सत्तति निपात, (७) असीति निपात हैं। इन सभी निपातों के जातकों की गाथाओं में की संख्या अधिकांश की ओर ही झुकी हुई है। अन्त के दो निपातों में तो ९० और १०० से भी ऊपर हैं। बाइसवें निपात का नाम महा-निपात उसके आकार को देखते ठीक ही है। उसमें केवल दस जातक कथाएँ हैं; लेकिन प्रत्येक जातक में सैकड़ों गाथाएँ हैं और अन्तिम जातक—वेस्सन्तर जातक—में तो गाथाओं की संख्या सात सौ से भी ऊपर है।

इस प्रकार स्थूल दृष्टि से देखा जाए तो जातकों की संख्या ५४७ है और कम से कम थेरवादियों के लिए निश्चित है। लेकिन जातकट्ठ वण्णना की ही निदान-कथा में ही एक महागोविन्द जातक का उल्लेख है; जो इन ५४७ जातकों में कहीं नहीं है। सूत्र-पिटक में भी महागोविन्द की जन्म-कथा है; जो इस संग्रह से बाहर ही है, इससे अनुमान होता है कि जातकों की संख्या ५४७ से अधिक रही है।

मगर इन ५४७ जातकों में कई ऐसे हैं जिनकी स्वतन्त्र रूप से पृथक गिनती भी हुई है; लेकिन वे केवल किसी दूसरे बड़े जातक के अन्तर्गत हैं। उदाहरण के लिए पञ्चपण्डित जातक (५०८) और दकरक्खस जातक (५१७) दोनों महाउम्मग जातक (५४६) में हैं। एक ही जातक एक से अधिक जगह दो भिन्न भिन्न नामों से भी गिने गये हैं जैसे प्रथम खण्ड का मुनिक जातक (३०) और दूसरे खण्ड का सालूक जातक (२८६) एक ही जातक दो जगह एक ही नाम से भी आए हैं; प्रथम खण्ड में भी मत्स्य-जातक है और द्वितीय खण्ड में भी मत्स्य-जातक है; किन्तु कथा भिन्न भिन्न है। एक ही खण्ड में जातकों की पुनरुक्ति है; कहीं कहीं सारे जातक एक हैं केवल बहुत ही थोड़ा नाम मात्र का भेद है। इससे मानना होगा कि जातकों की ठीक संख्या ५४७ न होकर, काफी कम है। हम "जातकों" की बात कह रहे हैं; साधारण कथाओं

की नहीं। यदि "जातकों" की गिनती न करके उन कथाओं तथा उपाख्यानों का हिसाब लगाया जाए तो जातकट्ठकथा के अन्तर्गत कुछ हजार कथाएँ होंगी।[1]

जातक-कथा संसार के कथा-साहित्य में प्राचीन संग्रह ही नहीं, सर्वापेक्षा वड़ा भी है।

५० जातकों के अन्त में "पठमपण्णासको" और फिर १०० के अन्त में जो "मज्झिम पण्णासको" आया है, उससे श्री ईशानचन्द्र घोष ने अनुमान लगाया है कि जातक संग्रहकार के भन में ५०, ५० के परिच्छेदों का ध्यान रहा होगा। लेकिन त्रिपिटक के अन्य निकायों में भी तो पचास, पचास के क्रम से ही गिनती है। इस पचास पचास के क्रम मात्र से जातकों की अन्तिम संख्या के सम्वन्ध में किसी अनुमान की गुन्जाइश नहीं।

मूल "जातक" में केवल गाथाएँ होने के कारण स्वभावतः जातकट्ठकथा में भी जातक-कथाओं का वर्गीकरण गाथाओं के अनुसार हुआ है। यह गाथाओं की संख्या के अनुसार न होकर उनके विषय के अनुसार होता तो कदाचित् अधिक अच्छा था। जातकों में विषय-क्रम से कोई वर्गीकरण नहीं।

एक से नौ-निपात तक के निपात वर्गों में विभक्त हैं। इन वर्गों में किसी किसी का नाम उस वर्ग के पहले जातक के अनुसार है, जैसे अपण्णक वर्ग, किसी किसी का उस वर्ग में आए जातकों के विषय का ध्यान रखकर जैसे स्त्रीवर्ग; लेकिन उसी स्त्रीवर्ग में कुदाल पण्डित की कथा[2] है जिसका स्त्रीवर्ग से कोई सम्वन्ध नहीं।

जातकों के नामकरण में कुछ का नामकरण तो उस जातक में आई गाथा के पहले शब्दों का ध्यान रखकर किया गया है जैसे अपण्णक जातक (१), किसी का प्रधान पात्र के अनुसार जैसे बक जातक (३८), किसी का मुख्य विषय के अनुसार जैसे वण्णुपथ जातक (२), किसी का बोधिसत्त्व ने जो जन्म-ग्रहण किए, जिस मछली, हाथी या बन्दर की योनि में पैदा हुए उनके अनुसार।

बोधिसत्त्व प्रायः तपस्वी, राजा, वृक्षदेवता, ब्राह्मण आदि होकर पैदा हुए

[1] श्री ईशान चन्द्र घोष का अनुभान है कि लगभग तीन हजार होंगी।

[2] कुदाल जातक (७०)।

और कभी कभी सिंह, हाथी, घोड़ा, गीदड़, कुत्ता आदि भी। कम से कम तीन बार चाण्डाल योनि में पैदा हुए। हाँ, एक बार जुआरी भी।

इस जातकट्ठकथा का रचयिता, संग्रहकर्त्ता वा अनुवादक कौन है? **महावंस**[1] में लिखा है कि आचार्य्य बुद्धघोष अभिधम्म पिटक के प्रथम ग्रन्थ धम्मसंगणि पर अत्थसालिनि टीका लिख चुकने के बाद भारत से सिंहल गए। सिंहल जाने का उनका एकमात्र उद्देश्य था सिंहल-भाषा में सुरक्षित अट्ठकथाओं का पाली में अनुवाद करना। ये अट्ठकथाएँ कहते हैं महेन्द्र के साथ भारत से सिंहल पहुँचीं, इन्हीं का बुद्धघोष ने महास्थविर संघपाल की अधीनता में महाविहार, अनुराधपुर में रहकर अध्ययन किया। जब वह विसुद्धिमग्ग नामक प्रसिद्ध ग्रन्थ लिखकर अपनी उन अट्ठकथाओं को पालि स्वरूप देने की अपनी योग्यता प्रमाणित कर चुके, तभी सिंहल के भिक्षुसंघ ने उन्हें उन सिंहल अट्ठकथाओं को पालि में अनुवाद करने की आज्ञा दी। महावंस का कहना है कि उसने "सारी अट्ठकथाओं" का पालि अनुवाद किया। पता नहीं इन "सारी अट्ठकथाओं" में कौन कौन अट्ठकथाएँ सम्मिलित हैं। आज हमें जो अट्ठकथाएँ प्राप्य हैं, वे सब तो स्पष्ट रूप से आचार्य्य बुद्धघोष रचित नहीं हैं। खुद्दकनिकाय के कई ग्रन्थों—थेरगाथा, थेरीगाथा, उदान, विमान, पेत-वत्थु, इतिवुत्तक, चरियापिटक—पर महास्थविर धम्मपाल रचित अट्ठकथाएँ हैं। जिनका समय तो निश्चित नहीं, लेकिन वे बुद्धघोष के बाद ही हुए हैं। विनय-पिटक के ग्रन्थों तथा सुत्तपिटक के अन्तर्गत चारों निकायों पर अट्ठकथाएँ लिखने से भी आचार्य्य बुद्धघोष "सारी अट्ठकथाओं" के रचयिता वा अनुवादक माने जा सकते हैं। परम्परा तो उन्हें ही जातकट्ठकथा का भी अनुवादक मानती है; लेकिन अधिक सम्भावना यही है कि यह श्रेय किसी अन्य आचार्य्य को प्राप्त है।

जातकट्ठकथा के रचयिता ग्रन्थ के आरम्भ में कहते हैं कि "बुद्धधर्म की चिरस्थिति चाहने वाले अर्थदर्शी स्थविर सहवासी तथा एकान्तप्रेमी शान्त-चित्त पण्डित **बुद्धमित्त**, और **महिंशासक वंश में** उत्पन्न, शास्त्रज्ञ शुद्धबुद्धि

[1] महावंस परिच्छेद ३८, गाथा संख्या २१५–२४६

भिक्षु बुद्धदेव के कहने से महापुरुषों के चरित्र के अनन्त प्रभाव को प्रकट करने वाली जातक अर्थवण्णना की महाविहार वालों के मत के अनुसार व्याख्या करूँगा।[1] यहाँ इस आत्म-परिचयात्मक लेख में जो महिंशासक सम्प्रदाय के बुद्धदेव का नाम है, वह कुछ बहुत अनोखा है, खटकने वाला है। महिंशासक सम्प्रदाय स्थविरवाद से बाहर निकला हुआ एक सम्प्रदाय था। महाविहार परम्परा शुद्ध स्थविरवाद को ही मानने वाली परम्परा रही है। आचार्य्य बुद्धघोष ने अपनी सब अट्ठकथाओं में इसी परम्परा को अपनाया है। यदि जातकट्ठकथा बुद्धघोष रचित मानी जाए, तो उसमें महिंशासक सम्प्रदायी बुद्धदेव की याचना का क्या अर्थ ?

इन कारणों से आचार्य्य बुद्धघोष को जिन्हें अनेक दूसरी अट्ठकथाएँ लिखने का श्रेय प्राप्त है, इस अट्ठकथा का भी श्रेय देने की प्रवृत्ति नहीं होती।

इन कथाओं का अन्तिम संग्रह वा सम्पादन किसी के भी हाथों हुआ हो किन्तु इनकी रचना में तथा इनके जातकट्ठकथा का वर्तमान रूप धारण करने में कई शताब्दियाँ अवश्य लगी होंगी। कुछ न कुछ जातकों का उल्लेख तो स्थविरवाद तथा महायान के प्राचीनतम साहित्य में है। उनकी यथार्थ संख्या कह सकना कठिन है। सम्भव है कि इन कथाओं में से अनेक कथाएँ भगवान् बुद्ध से पूर्व की हैं। बुद्ध ने अपने उपदेशों में उनका उपयोग भर किया है।

कुछ ऐसा अबौद्ध साहित्य है जो यद्यपि भगवान् बुद्ध से पूर्व का समझा जाता है, लेकिन उसकी परम्परा भले ही पुरानी रही हो, उसका सम्पादन पीछे ही हुआ है। उस साहित्य में और बौद्ध कथा-साहित्य में जो साम्य है वह जहाँ एक दूसरे की लेन देन हो सकता है, वहाँ यही अधिक सम्भव है कि एक ही मूलकथा ने दोनों जगह भिन्न भिन्न रूप धारण किया है।

जहाँ तक पालि वाङ्मय का अपना सम्बन्ध है, इन कथाओं में से कुछ तिपिटक में स्वतन्त्र रूप से आई हैं। सारे तिपिटक का वर्तमान स्वरूप कब स्थिर हुआ, इसके बारे में कोई निश्चित बात कह सकना बहुत कठिन है। महावंस का तो मत है कि ईस्वी सन् की प्रथम शताब्दी में सिंहल में राजा

[1] **जातकट्ठकथा, उपोद्घात (पृ० १)।**

वट्टगामणी के समय अट्ठकथाओं सहित सारा तिपिटक लेख बद्ध हो गया था।[1] प्रतीत होता है कि तिपिटक तो वट्टगामणी के समय प्रथम शताब्दी में ही अन्तिम रूप से स्थिर हो गया था; लेकिन अट्ठकथाओं ने तो बुद्धघोष के समय अर्थात पाँचवीं सदी के आरम्भ में जाकर अन्तिम रूप ग्रहण किया होगा। यदि बुद्ध-घोष जातकट्ठकथाओं के अनुवादक वा सम्पादक न भी रहे हों, तो भी यह कार्य्य उनके बहुत पीछे नहीं हुआ।

इससे बहुत पहले (ई० पू० द्वितीय शताब्दी में) इस संग्रह की अनेक कथाओं को हम भरहुत के स्तूपों पर उनके नाम के साथ अङ्कित पाते हैं।[2] यद्यपि हम सारी कथाओं के लिए कोई भी एक समय निर्धारित करने में असमर्थ हैं तो भी इतना कह सकते हैं कि इस संग्रह की कहानियाँ ईसा पूर्व पाँचवीं शताब्दी के भी पहले से लेकर ईसा के बाद की प्रथम या द्वितीय शताब्दी तक ही रची गई होंगी। यह जातक-संग्रह अपने वर्तमान स्वरूप में कम से कम लगभग दो हजार वर्ष पुराना है।

जातक कथा-संग्रह शुद्ध भारतीय साहित्य होने से अबौद्ध साहित्य की कथाओं में भी इनसे साम्य वा इनका प्रभाव दिखाई देना स्वाभाविक है। तिपिटक में न महाभारत का कहीं उल्लेख है, न रामायण का। बुद्ध के आस-पास के किसी और साहित्य में भी नहीं। सिविजातक सदृश अनेक कथाओं ने महाभारत में स्थान पाया है। रामायण में बुद्ध का नाम आया है।[3] इतना

[1] पिटकत्तय पालिं च तस्सा अट्ठकथंपि च
मुखपाठेन आनेसुं पुब्बे भिक्खू महामति;
हानिं दिस्वान सत्तानं तदा भिक्खू समागता
चिरट्ठितत्थं धम्मस्स पोत्थकेसु लिखापयुं॥
महावंसं॥ (३३, १००-१०२)

[2] तीस से अधिक जातक दृश्यों का निश्चय हो गया है—भरहुत शिलालेख।

[3] श्लोक प्रक्षिप्त माना जाता है; कहते हैं प्राचीन प्रतियों में अप्राप्य है—
यथा हि चोरः स तथाहि बुद्धस्तथागतं नास्तिकमत्र विद्धि॥
तस्माद्धि यः शङ्क्यतमः प्रजानां न नास्तिकेनाभिमुखो बुधः स्यात्॥
अयोध्याकाण्डम्॥ २।१६।३४

ही नहीं सारा रामायण दसरथ जातक,[१] देवधम्म जातक आदि कुछ जातक लेकर रचा प्रतीत होता है। यह साम्य कैसे हुआ ?

सामान्य लोगों का कहना है कि महाभारत और रामायण इतने अधिक प्राचीन ग्रन्थ हैं कि उनमें यदि कोई परवर्ती उल्लेख पाया जाए तो उसे प्रक्षिप्त ही मानना चाहिए। दूसरे पक्ष का कहना है कि चाहे महाभारत रामायण के कुछ अंश की परम्परा प्राचीन भी रही हो तो भी उनके सम्पादकों नें उनका सम्पादन करते समय अनेक बार इनमें बहुत कुछ मिला दिया। इसलिए महाभारत-रामायण तथा जातकों में यदि कुछ साम्य दिखाई देता है तो वह जातक-कथाओं की ही देन है।

हमारा अनुमान है कि किसी अंश में तो अबौद्ध और बौद्ध साहित्य दोनों एक ही परम्परा के ऋणी हैं। प्राचीन काल का कथा साहित्य आज की तरह

[१] दसरथ जातक में है—

फलानं इव पक्कानं निच्चं पपतना भयं।
एवं जातानं मच्चानं निच्चं मरणतो भयं ॥५॥

रामायण में है—

यथा फलानां पक्वानां नान्यत्र पतनाद् भयं।
एवं नराणां जातानं नान्यत्र मरणाद् भयं ॥

दसरथ जातक में है—

एको व मच्चो अच्चेति, एकोव जायते कुले ॥१०॥

रामायण में है—

यद् एको जायते जन्तुरेकेव विनश्यति।

दसरथ जातक में है—

दसवस्स सहस्सानि सट्ठि वस्स सतानि च
कम्बुगीवो महाबाहु रामो रज्जं अकारयि ॥१३॥

रामायण में है—

दश वर्ष सहस्राणि दश वर्ष शतानि च
बीत शोक भय क्रोधो रामो राज्यं अकारयत् ॥

स्पष्ट रूप से बौद्ध और अबौद्ध विभाग में विभक्त नहीं था। उस समय एक ही कथा ने बौद्धों के हाथों बौद्ध रूप और अबौद्ध कलाकारों के हाथों पड़कर अबौद्ध रूप धारण किया होगा।

तो भी इतना तो कहना ही होगा कि शक काल तक महाभारत और रामायण का अपने वर्तमान रूप में न तो अस्तित्व दिखाई देता है न प्रचार। सारे देश में महाभारत और रामायण की कथा घर घर होती रही हो और समकालीन साहित्य में उसके बारे में कहीं कुछ न हो, यह हो नहीं सकता। डा० भण्डारकर का कहना है कि पतञ्जलि के महाभाष्य तक में राम का नाम नहीं, और न किसी प्राचीन शिला लेख में।[1] साधारणतया रामायण महाभारत से प्राचीन समझी जाती है। लेकिन बात उल्टी है। श्री० धम्मानन्द जी कोसम्बी का कहना है कि रामायण के रामचन्द्र और उनकी अयोध्या नगरी दोनों के भारतीय होने में शंका है। रामायण को छोड़कर पतञ्जलि के समय तक भी किसी प्राचीन संस्कृत-ग्रन्थ में अयोध्या का नाम नहीं आता। इसलिए चाहे रामायण की कथा में कुछ ऐतिहासिकता हो चाहे न हो महाभारत और रामायण में महाभारत ही अपेक्षाकृत प्राचीन है।

हाँ, पाँचवीं शताब्दी में आचार्य्य बुद्धघोष महाभारत और रामायण से परिचित प्रतीत होते हैं। वे लिखते हैं—"आख्यान का मतलब है भारत-रामायण आदि। वह कथा जहाँ हो रही हो, वहाँ जाना योग्य नहीं।"[2] फिर दूसरी जगह भारत-युद्ध सीता-हरण आदि को निरर्थक कहा है।[3] जयद्दिस जातक (५१३) में राम के दण्डकारण्य जाने का उल्लेख है। अपने

[1] There is no mention of his (Rama's) name in such a work as that of patanjali, nor is there any old inscription in which it occurs.

Vaishnavism Saivism etc. by R.G. Bhandarkar P.66.

[2] अक्खानं ति भारत रामायणादि। तं यस्मि ठाने कथयति, तत्थ गन्तुं न वट्टति। (दी० नि० अ० १।८४)।

[3] भारतयुद्ध सीता हरणादि निरत्थक कथा (दी० नि० अ० १।८६)

जिस अविकसित रूप में जातक-कथा की कहानियों ने महाभारत और रामायण में आकर विकास पाया, उससे यही पक्ष ठीक मालूम होता है कि इन कथाओं के आरम्भिक रूप का लेखा जातक-कथाओं में विद्यमान है और पीछे के सँवरे-मँजे रूप का महाभारत और रामायण में।

घट जातक, एक प्रकार से छोटा मोटा भागवत ही है। उसमें कृष्ण-जन्म से लेकर कंस की हत्या करने और फिर द्वारिका जा बसने तक की सारी कथा आई है। उसमें चानूर और मुष्टिक पहलवानों की हत्या करने जैसी छोटी छोटी बातें भी हैं। लेकिन श्रीमद्भागवत स्पष्ट रूप से पीछे की चीज़ होने से इसमें सन्देह नहीं कि कृष्ण-जन्म की कथा अपने प्राचीन रूप में जातक में ही विद्यमान है।

कुछ भी हो महाभारत रामायण की कथाओं से मिलती जुलती जातक में जो कथाएँ हैं, उनका अपना महत्त्व है और वह कम नहीं।

ईसा की प्रथम शताब्दी में आन्ध्र राजाओं के समय गुणाढ्य नाम के किसी पण्डित ने पैशाची भाषा में "बृहत्कथा" नाम का एक ग्रन्थ लिखा था। पैशाची भाषा या तो आधुनिक दरदी की पूर्वज भाषा थी या उज्जैन के पास की एक बोली।[1] यह गुणाढ्य कौन थे, कहना कठिन है। इनकी "बृहत्कथा" एकदम अप्राप्य है। अब तक किसी के देखने में नहीं आई। इससे नहीं कहा जा सकता कि वह "बृहत्कथा" कितनी बृहत् थी और उसमें क्या क्या था। बाण के हर्षचरित में, दण्डी के काव्यादर्श में, क्षेमेन्द्र की बृहत्कथा मञ्जरी में और सोमदेव के कथा सरितसागर में उसका प्रमाण है। सोमदेव ने, जो कि एक बौद्ध था, अपना कथा सरितसागर "बृहत्कथा" से ही सामग्री लेकर लिखा और सोमदेव के कथा सरितसागर में अनेक जातक-कथाएँ विद्यमान हैं। इससे अनुमान होता है कि "बृहत्कथा" का आदि श्रोत जातक-कथाएँ ही रही होंगी।

प्रसिद्ध पञ्चतन्त्र की अधिकांश कथाओं का मूल जातकों में ही है।[2]

[1] भारत भूमि और उसके निवासी (पृ० २४६) जयचन्द्र विद्यालंकार।

[2] बक जातक (३८)। २ वानरिन्द जातक (५८)। ३ कूट वाणिज जातक (६८)। ४ मिति चिन्ति जातक (११४) आदि।

उसका कर्ता ब्राह्मण था। बौद्ध कथाएँ जहाँ जन-साहित्य हैं और उनका उद्देश्य जनसाधारण का शिक्षण रहा है, वहाँ पञ्चतन्त्र के ब्राह्मण रचयिता ने उन कथाओं का उपयोग केवल राजकुमारों को शिक्षित करने के लिए किया है।

हितोपदेश में श्लोकों की अधिकता है। वे सचमुच हितोपदेश हैं। उसमें पञ्चतन्त्र से सहायता ली गई है और अनेक जातक-कथाएँ विद्यमान हैं।

आख्यायिका-साहित्य में वैताल पञ्चविंशति का भी स्थान है। उसमें पता नहीं कोई जातक-कथा है वा नहीं? सिंहासन द्वात्रिंशिका शुकसप्तति आदि और भी कई ग्रन्थ हैं। जैन वाङ्मय में भी आख्यायिका साहित्य है ही। इस सारे साहित्य में और बौद्ध जातक कथाओं में कहीं न कहीं साम्य अवश्य है, जो अधिकांश में जातक-कथाओं के ही प्रभाव का परिणाम है।

जातक-कथाओं में कई कथाएँ ऐसी हैं जो पृथ्वी के प्रायः हर कोने में पहुँच गई हैं। पञ्चतन्त्र ही इन कथाओं को फैलाने का मुख्य साधन बना प्रतीत होता है। छठी सदी में पञ्चतन्त्र का एक अनुवाद पहलवी अथवा प्राचीन फारसी में हुआ। यह अनुवाद खुसरो नौशेरवाँ के राजवैद्य की कृति था। इसी अनुवाद से पञ्चतन्त्र का एक अनुवाद सीरिया की भाषा में हुआ, जो जर्मन अनुवाद के साथ १८७६ में लीपज़िग् से छपा। पञ्चतन्त्र ही का एक अरबी अनुवाद लगभग ७५० ई० में अलमीकाफ के पुत्र अब्दुल्ला ने किया; जिसका नाम था कलेला दमना।[1] यह कथा-संग्रह अरबों को बहुत प्रिय हुआ। आगे चलकर जब अरब योरोप के दक्षिण देशों में फैले तो उन्हें इन कथाओं को यूरोप में फैलाने का श्रेय मिला।

१८१६ में पञ्चतन्त्र के अरबी अनुवाद कलेला दमना (كليله دمنا) का अंग्रेज़ी अनुवाद हुआ। १४८३ में अर्बी अनुवाद से ही पञ्चतन्त्र जर्मन में अनूदित हुआ। १०८० में इस अरबी अनुवाद का ग्रीक भाषा में एक अनुवाद हो चुका था। १८६६ में इस ग्रीक अनुवाद से लातीनी भाषा में अनुवाद हुआ। इसी प्रकार १५वीं सदी के अन्त में पञ्चतन्त्र के अरबी अनुवाद का फारसी अनुवाद हुआ जिसका नाम है अनवार सहेली। १६४४ में उस अनवार सहेली से

[1] दोनों नाम पञ्चतन्त्र के कर्कट और दमनक के विकृत रूप हैं।

लिव्रे दे ल्यूमिरे (Livre des Lumieres), नाम से फ्रेंच अनुवाद हुआ। १८७२ में ग्रीक अनुवाद से इटली की भाषा में अनुवाद हुआ। १२५० में अरबी अनुवाद से ही हीब्रू में अनुवाद हुआ; और इसी सदी के अन्त में हीब्रू से लातीनी में भी। फिर आगे चलकर १८५४ में सीधा अरबी से भी एक अनुवाद हुआ।

ईसप् की कथाओं के नाम से जिन कथाओं का यूरोप में प्रचार है और जिनके कुछ अनुवाद हमारी भारतीय भाषाओं में, यहाँ तक कि संस्कृत में भी छप चुके हैं,[1] उनका मूल उद्गम-स्थान कहाँ है? श्री० रीजडेविड्स उन कथाओं के बारे में विस्तृत अन्वेषण करने के बाद इस परिणाम पर पहुँचे हैं कि उनमें से किसी कथा का किसी ईसप से सम्बन्ध नहीं है।[2] 'ईसप-कथाओं' का प्रथम संग्रह मध्यम-युग में हुआ। उनमें से अधिकांश का मूल-स्थान हमारी जातक-कथाएँ ही हैं, और बहुत सम्भव है कि लगभग सभी का मूल-स्थान भारतवर्ष है।[3]

पञ्चतन्त्र के जिस अरबी अनुवाद का हमने ऊपर उल्लेख किया है वह ८वीं शताब्दी में बगदाद के खलीफ़ा अलमंसूर के दरबार में लिखा गया था। इसी खलीफ़ा के दरबार में एक ईसाई पदाधिकारी था, जो बाद में सन्यासी हो गया। उसका नाम है डमसकस का सन्त जान (St. John of Damascus)। उसने ग्रीक भाषा में अनेक किताबें लिखीं। उन्हीं में एक किताब बरलाम एण्ड जोसफ (Barlaam and Joāsaph) है। इस कथा के जोसफ कौन हैं? स्वयं बुद्ध। ऊपर कह आए हैं कि बुद्धत्व प्राप्ति से पूर्व अपने पिछले और अन्तिम जन्म में बुद्ध **बोधिसत्त्व** कहलाए। यह **बोधिसत्त्व** ही बोसत और फिर जोसफ बना। सन्त जान की इस किताब में बुद्ध का आंशिक चरित्र और अनेक जातक कथाएँ हैं।

[1] अहमद नगर के श्री० बालकृष्ण गोड़बोले ने संस्कृत में अनुवाद किया था।

[2] श्री० मैकडानल के अनुसार बब्रिय् ने २०० ई० में ईसप् कथाओं को लिखा। (इण्डियाज़ पास्ट पृष्ठ १२५)।

[3] बुद्धिस्ट बर्थ स्टोरीज पृ० ३२

अरबी के कलैला दमना की तरह यह ग्रन्थ लोगों को बहुत प्रिय हुआ और इसका प्रचार भी बहुत हुआ। अनेक यूरोपिय भाषाओं में इसका अनुवाद किया गया। यह ग्रन्थ लातीनी, फ्रेंच, इटालियन, स्पैनिश, जर्मन, अंग्रेज़ी, स्वेडिश और डच में प्राप्य है। १२०४ में आइसलैण्ड की भाषा में भी इसका अनुवाद हुआ; और फिलिपाइन द्वीप में जो स्पेन-बोली बोली जाती है, उस तक में यह प्रकाशित हो चुका है।

कितने ही आश्चर्य्य की बात प्रतीत होने पर भी यह सत्य है कि सन्त जोसफत के रूप में भगवान् बुद्ध आज सारे रोमन कैथालिक ईसाइयों द्वारा स्वीकृत[1] हैं, आदृत हैं और पूजे जा रहे हैं।

इन जातक कथाओं के प्रसार और प्रभाव की कथा अनन्त प्रतीत होती है। एक इटालियन विद्वान ने सिद्ध किया है कि किताब उल् सिन्दबाद की अनेक कथाओं का और अलिफलैला (Arabian Nights) की अनेक कथाओं का भी मूल-स्थान जातक-कथाएँ ही हैं।

जिस समय हूण पूर्वी यूरोप में गए तो वे भी अपने साथ जातक कथाओं में से कुछ ले गए। बहुत सी ऐसी कथाएँ जिनका मूल जातक कथाओं में है सलाव लोगों में मिली हैं।

बौद्ध देशों में जातक कथाओं का प्रचार है ही।

इस प्रकार जातक वाङ्मय चाहे उसे प्राचीनता की दृष्टि से देखें, चाहे विस्तार की, और चाहे उपदेशपरक तथा मनोरञ्जक होने की दृष्टि से, वह संसार में अपना सानी नहीं रखता।

अट्ठकथानुसार इन कथाओं में से तीन चौथाई कहानियाँ जेतवन विहार में कही गईं। शेष राजगृह तथा अन्य कोसम्बी, वैशाली आदि स्थानों में।

जातक कथाओं में जो वर्तमान कथाएँ हैं, ऊपरी दृष्टि से देखने से, उनका ऐतिहासिक मूल्य अधिक प्रतीत होता है। वे कथाएँ उतनी ऐतिहासिक नहीं

[1] देखो पोप सिक्सटस् (१५८५-९०) की २७ नवम्बर की डिक्री जिसमें भारत के बरलाम और जोसफत को कैथालिक ईसाइयों के सन्तों के रूप में स्वीकृत किया है।

हैं जितनी काल्पनिक। वर्तमान-कथाओं की अपेक्षा अतीत-कथाओं का ऐतिहासिक मूल्य कहीं अधिक है ?

प्रायः सभी जातकों के आरम्भ में "पूर्व काल में बाराणसी में राजा ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय" आता है। पता नहीं यह ब्रह्मदत्त कोई राजा हुआ है वा नहीं ? कुछ लोगों का ख्याल है कि 'जनक' की तरह यह ब्रह्मदत्त भी अनेक राजाओं की पदवी रही होगी। हमारा तो ख्याल है कि कथाओं में ब्रह्मदत्त का मूल्य कथा आरम्भ करने के लिए एक निश्चित शब्द-समूह से अधिक कुछ नहीं; जैसे उर्दू की प्रायः हर कहानी 'एक दफा का ज़िकर है' से आरम्भ होती है, और अंग्रेज़ी की वन्स अपान ए टाइम (Once upon a time) से, वैसे ही हमारी अनेक जातक कथाओं के लिए 'पूर्व काल में बाराणसी में राजा ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय' है।

जातक कथाओं के विषयों के बारे में थोड़े में कुछ भी कह सकना कठिन है। मानवजीवन का कोई भी पहलू इन कथाओं से अछूता बचा प्रतीत नहीं होता। यही वजह है कि पिछले दो सहस्र वर्ष के इतिहास में यह जातक कथाएँ मनुष्य समाज पर अनेक रूप से अपनी छाप छोड़ने में समर्थ हुई हैं।

जब कभी कहा जाता है कि भारतवर्ष का सारा साहित्य परलोक चिन्तामय है, उसको इहलोक की चिन्ता ही नहीं, तो हम उसे अपनी और अपने वाङ्मय की प्रशंसा समझते हैं। किसी भी जाति का काम केवल परलोक-परक होने से नहीं चल सकता। भगवान् बुद्ध ने इह लोक तथा परलोक चिन्ता में समत्व स्थापित किया। यही कारण है कि जातक कथाओं को बौद्ध वाङ्मय में महत्त्वपूर्ण स्थान मिला और उनका विकास हुआ। जातक साहित्य जन-साहित्य के सच्चे अर्थों में जनता का साहित्य है। इसमें हमारे उठने बैठने खाने पीने, ओढ़ने बिछाने की साधारण बातों से लेकर हमारी शिल्पकला, हमारी कारीगरी, हमारे व्यापार की चर्चा के साथ हमारी अर्थनीति, राजनीति तथा हमारे समाज के संगठन का विस्तृत इतिहास भरा पड़ा है। उस युग के भू-वृत्त की भी पर्य्याप्त सामग्री है, विशेष रूप से उस युग के जल-मार्गों तथा स्थल-मार्गों की।

भारतीय जीवन का कोई पहलू ऐसा नहीं जिसका लेखा इन कथाओं में न मिलता हो। यदि भविष्य में हमारा इतिहास राजाओं की जन्म-मरण

तिथियों का लेखा मात्र न रह कर जनता के जन्म-मरण के इतिहास के रूप में यथार्थ ढंग से लिखे जाने को है, तो प्राचीन काल के वैसे इतिहास के लिए इन कथाओं का मूल्य बहुत ही अधिक है।

यदि मनोरञ्जन के साथ साथ उपदेश ग्रहण करना हो, यदि हृदय को उदार तथा शुद्ध बनाने वाली कथाओं के साथ साथ बुद्धि को प्रखर करने वाली कथाएँ पढ़नी हों; यदि अपने देश की प्राचीन आर्थिक, धार्मिक, राजनीतिक तथा सामाजिक अवस्था से परिचित होना हो, तो हम जातक कथाओं से बढ़ कर किसी दूसरे साहित्य की सिफारिश नहीं कर सकते।

× × ×

१९३३ में मैं इंगलैण्ड में था। श्रद्धेय राहुल जी का पत्र आया कि बौद्ध ग्रन्थों को हिन्दी में लाने की एक पञ्चवर्षीय योजना बनी है, तुम्हारे हिस्से में केवल जातक-कथाओं का हिन्दी अनुवाद आया है, इसे तुम्हें ही कर डालना होगा। १९३४ में जब मैं इंगलैण्ड से सिंहल लौटा और वहाँ से पीनाङ्ग आया तो उस वर्ष पीनाङ्ग-निवास के दिनों में मेरा मुख्य कार्य्य जातक कथाओं का अनुवाद ही रहा। वहाँ मैं ज्ञानोदय बौद्धसभा का अतिथि था और सौभाग्य-वश मुझे आदरणीय स्थविर गुणरत्न जी का सान्निध्य प्राप्त हुआ। परिश्रम अधिक करना पड़ा किन्तु राहुल जी की इच्छा के अनुसार निदान-कथा और प्रथम परिच्छेद की सौ जातक कथाओं का अनुवाद उसी वर्षा-वास के अन्त में समाप्त हो गया। भाई गुणरत्न जी ने अपनी बहुज्ञता से अनुवाद कार्य्य में और उसे मूल पालि से मिलाने में बड़ी सहायता की।

१९३५ में मैं स्याम के रास्ते भारत चला आया। ज्ञानोदय बौद्ध सभा वाले चाहते थे कि जातक कथा के प्रकाशित करने का पुण्य वे ही प्राप्त करें। किन्तु इससे पहले पञ्जाब विश्वविद्यालय के संस्कृत डिपार्टमेंट के अध्यक्ष डा० लक्ष्मण स्वरूप जी इन कथाओं को छपाने के लिए राहुल जी को लिख चुके थे; और राहुल जी ने भी उन्हें लिख दिया था। इसलिए मैंने पीनाङ्ग वालों से कहा कि भारत की कथाएँ भारत के ही पैसे से छपें तो ही ठीक होगा।

१९३५ में मैंने जो कुछ पीनाङ्ग में लिखा था, वह राहुल जी को लाकर दे दिया। उन्होंने उसे डाक्टर लक्षमण स्वरूप के पास लाहौर भेज दिया। छपाई आरम्भ हुई। अनुवादक सारनाथ में, छपाई लाहौर में; प्रूफ़ के आने

जाने में देर लग जाएगी; इस ख्याल से प्रूफ़ लाहौर में ही देखे जाने लगे। निदान-कथा और बारह-कथाएँ छपीं। किन्तु यह प्रबन्ध सन्तोषजनक सिद्ध न हुआ। जितना अंश छप चुका था, उतना ही 'प्रथम-भाग' बनकर प्रकाशित हुआ।

इस प्रकार जातक कथाओं के आरम्भिक भाग को हिन्दी में प्रकाशित करने का प्रथम श्रेय डाक्टर साहब को है; जिनका मैं कृतज्ञ हूँ।

लगभग ढाई तीन वर्ष पाण्डुलिपि मेरे पास रही। हिन्दी के कई प्रकाशकों ने उसे प्रकाशित करने की इच्छा प्रकट की। किन्तु यह कार्य्य ज़रा बड़ा था। कई प्रकाशकों ने चुनी हुई कहानियाँ माँगीं। मेरा कहना था कि मैं कहानी-लेखक नहीं हूँ, मैं तो अनुवादक का धर्म पूरा करना चाहता हूँ।

पिछले वर्ष आदरणीय श्री० पुरुषोत्तमदास जी टण्डन की प्रेरणा से जब हिन्दी साहित्य सम्मेलन की साहित्य समिति ने जातक कथाओं के हिन्दी अनुवाद को प्रकाशित करने का संकल्प किया, तो मुझे लगा कि अब यह कार्य्य सम्पन्न होकर रहेगा। उस सन्ध्या को जब श्री० टण्डन जी ने मेरा सारनाथ लौटना रोक कर श्री० उदयनारायण त्रिपाठी के साथ "आज ही और अभी प्रेस जाकर सब निश्चय कर आने के लिए" कहा तो मैंने समझा कि टण्डन जी के सोचने और कार्य्य करने में कितना कम अन्तर है। टण्डन जी और साहित्य सम्मेलन अविभाज्य हैं। टण्डन जी साहित्य सम्मेलन हैं; और साहित्य सम्मेलन टण्डन जी। तो भी मैं इस अवसर पर टण्डन जी के प्रति व्यक्तिगत रूप से अपनी कृतज्ञता प्रकट किए बिना नहीं रह सकता।

सम्मेलन के साहित्यमन्त्री श्री० ज्योतिप्रसाद मिश्र निर्मल जी तथा सहायक मन्त्री श्री० नारायणदत्त जी पाण्डेय ने जातक की छपाई को बिल्कुल अपना काम समझा।

मेरे भाग्य से जिस समय जातक लॉ जर्नल प्रेस में छप रहा था, उसी समय श्री० कोसम्बी जी बम्बई से सारनाथ आए और यहीं रहने लगे। उन्होंने मेरे सारे अनुवाद को सुनने की कृपा की; और अनेक ऐसी भूलों का जो मेरे अज्ञान वा असावधानी के कारण रह गई थीं, मार्जन कर दिया। मुझे सन्तोष है कि अब यह अनुवाद एक प्रकार से शायद निर्दोष कहा जा सकता है। यह कोसम्बी जी की ही कृपा का फल है।

पूज्य महास्थविर बोधानन्द जी का आशीर्वाद मिलता रहा है। भाई जगदीश काश्यप जी आदि सभी सारनाथ-वासी समय समय पर इस कार्य्य में अनेक प्रकार से सहायक होते रहे। अपनों को क्या धन्यवाद दिया जाए ?

प्रथम-खण्ड में जातकट्ठकथा की निदान-कथा और एक सौ कथाएँ हैं। दूसरे खण्ड में (जो प्रेस में है) दो सौ कथाएँ रहेंगी। इस प्रकार प्रथम दो खण्डों में तीन सौ कथाओं का समावेश हो जाएगा। शेष दो सौ सैंतालीस कथाएँ उत्तरोत्तर लम्बी होती जाती हैं। आशा है, पाठक किसी दिन सभी को हिन्दी में अनूदित पढ़ सकेंगे।

श्रद्धेय श्री० जयचन्द्र जी तथा कुछ मित्रों का आग्रह रहा है कि भूमिका में जातकों के आधार पर तत्कालीन अवस्था का विस्तृत दिग्दर्शन रहना चाहिए और रहना चाहिए जातकों में उपलब्ध सामग्री का ऐतिहासिक विश्लेषण। इसके लिए जातकों के जिस मन्थन की आवश्यकता है वह सभी जातकों का अनुवाद छप चुकने पर ही सम्भव प्रतीत हुआ। तत्काल अनुवादक की सीमा के अन्दर रहने में ही सन्तोष मानना पड़ा।

भाई अमृत पाल जी की सहायता से पुस्तक के लिए जो नकशा बनाया गया है, हो सकता है कि जातकों का अनुवाद समाप्त होने पर उसमें कहीं कुछ परिवर्तन की आवश्यकता पड़े। तब तक के लिए आशा है पाठक इसे स्वीकार करेंगे।

मैंने यह अनुवाद सिंहल अक्षरों में हेवावितारण ट्रस्ट की ओर से छपी पालि अट्ठकथा से किया है। कहीं कहीं सन्दिग्ध स्थल होने पर श्री० फोसबोल द्वारा रोमन अक्षरों में सम्पादित पालि टैक्स्ट को भी देख लेता रहा हूँ। मैं दोनों का ऋणी हूँ।

अनुवाद में पालि जातकों का सिंहल अनुवाद और विशेष रूप से पालि गाथाओं का सिंहल अनुवाद सहायक हुआ है। सन्देह होने पर कभी कभी बँगला अनुवाद तथा अंग्रेज़ी अनुवाद को भी देख लिया है।

बँगला और अंग्रेज़ी अनुवादों में पालि गाथाओं का पद्य-बद्ध अनुवाद है। मैं कवि न होने से वैसा नहीं कर सका। मुझे पालि में मूल गाथाएँ देकर, उनके नीचे अपना हिन्दी अनुवाद दे देना ही अधिक अच्छा जँचा।

पुस्तक में केवल दो ही तरह के टाइपों का प्रयोग है—काला और सफेद। काले टाइप में जो है वह पालि है, अथवा पालि गाथाओं का अनुवाद; और जहाँ कहीं सफेद टाइप में काला टाइप है वह पालि शब्दों के लिए है या पारिभाषिक तथा महत्त्व-पूर्ण शब्दों के लिए।

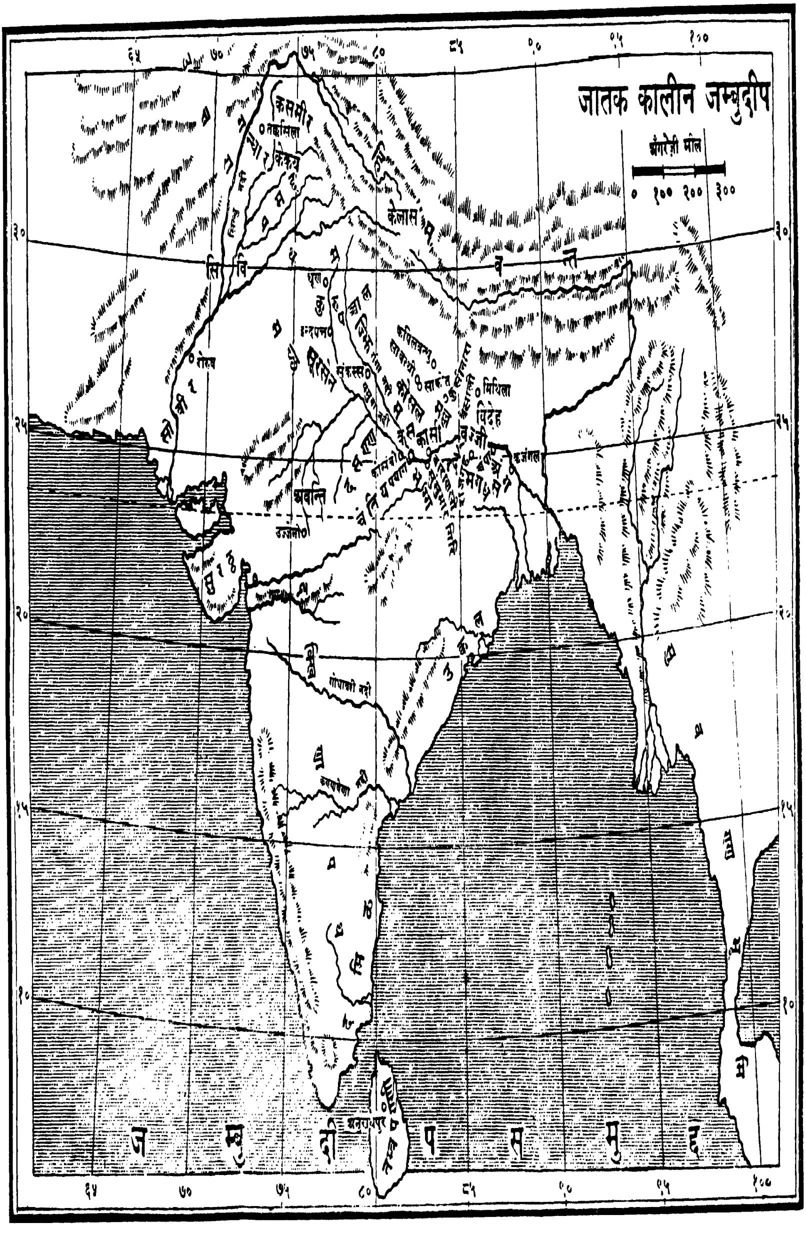
पुस्तक की सुन्दर छपाई का श्रेय ला जर्नल प्रेस को है। उसके स्टाफ ने इसकी छपाई में हर तरह से सहयोग दिया है।

अपनी ओर से पूरी सावधानी रखने पर भी भूल हो जाना मानव स्वभाव है; मुझसे भी कुछ अवश्य हुई होंगी। आशा है विज्ञजन सूचित करने की दया दिखावेंगे।

मूलगन्धकुटी विहार
सारनाथ
२३-८-४१

आनन्द कौसल्यायन

विषय-सूची



जातक कालीन जम्बुद्वीप
अँगरेज़ी मील
० १०० २०० ३००
कस्मीर
तक्षशिला
केकय
केलास
सिवि
मिथिला
विदेह
अवन्ति
उज्जैनी
गोदावरी नदी
ज म्बु द्वी प स मु द्र

जातक

[प्रथम खण्ड]

नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स

जातक अट्ठकथा

उपोद्घात

लाखों जन्मों में जिन महर्षि लोकनाथ ने संसार का अनन्त हित किया, उनके चरणों में प्रणाम करता हूँ; धर्म को हाथ जोड़ता हूँ; तथा सब से आदरणीय (भिक्षु-) संघ की पूजा करता हूँ। इन तीनों रत्नों[1] के नमस्कारादि (से प्राप्त) इस पुण्य के प्रताप से सब उपद्रवों का नाश हो। प्रकाश-स्वरूप महर्षि (=बुद्ध) ने अपण्णक[2] आदि जातकों को पहले कहा, जिन्हें कि लोक के उद्धार की इच्छा से, नायक, शास्ता (=बुद्ध) ने बुद्ध होने के लिए आवश्यक अनन्त सामग्री की प्राप्ति के लिए पूरा किया। उन सब पूर्व जन्म की कथाओं के संग्रह को धर्म (-ग्रन्थ) संग्रह करने वालों[3] ने जातक नाम से संगायन किया। बुद्ध-धर्म की चिर-स्थिति चाहने वाले अर्थदर्शी स्थविर, सहवासी तथा एकान्तप्रेमी शान्त चित्त, पण्डित बुद्धिमित्त और महिंशासक[4] वंश में उत्पन्न, शास्त्रज्ञ, शुद्ध-बुद्धि भिक्षु बुद्धदेव के कहने से महापुरुषों के चरित्र के अनन्त प्रभाव को प्रकट करने वाली जातक अर्थवर्णना की महाविहार[5] वालों के मत के

[1] बुद्ध, धर्म तथा संघ—यह तीन रत्न हैं।

[2] अपण्णक (जातक), प्रथम जातक।

[3] बुद्ध-निर्वाण के बाद उनके उपदेशों को संग्रह करने वाले।

[4] प्राचीन अठारह बौद्ध सम्प्रदायों में से एक।

[5] पुराने बौद्ध-सम्प्रदायों में से, प्राचीन स्थविर-सम्प्रदाय का सिंहल में एक भेद।

अनुसार व्याख्या करूँगा। मेरी इस व्याख्या को सब सज्जन अच्छी तरह ग्रहण करें।

जातक की यह व्याख्या **'दूरेनिदान', 'अविदूरे-निदान', 'सन्तिके-निदान'**—इन तीनों निदानों में वर्णित है, और जो इसे इस तरह से सुनते हैं, वे आरम्भ से भली प्रकार समझने के कारण ठीक समझते हैं। इस लिए हम इसे इन तीनों निदानों में विभक्त कर के कहेंगे। पहले इन तीनों निदानों के वर्गीकरण को ही समझ लेना चाहिए। भगवान् **दीपङ्कर**[1] के चरणों में जीवन अर्पण करने के समय से ले कर **वेस्सन्तर**[2] का शरीर छोड़ तुषित-स्वर्ग लोक में उत्पन्न होने तक की (जीवन-) कथा **'दूरेनिदान'** कही जाती है। तुषित-लोक से च्युत हो कर **बोध गया** (बोधिमण्ड) में बुद्ध होने तक की कथा **'अविदूरे-निदान'** कही जाती है। (उपरान्त) **'सन्तिके-निदान'** तो भिन्न भिन्न स्थानों में विचरते हुए उन उन स्थानों पर जो जीवन-कथा मिलती है वह (ही है)।

क. दूरेनिदान

१. सुमेध (बाल्य, वैराग्य)

'दू रे नि दा न' इस प्रकार है :—

चार असंखेय्य एक लाख कल्प पहले **अमरवती** नाम की एक नगरी थी। उस नगरी में **सुमेध** नामक ब्राह्मण रहता था। वह माता-पिता दोनों के कुल से सुजात, शुद्ध-जन्मा, सात पीढ़ी तक कुल दोष से रहित, सुन्दर, दर्शनीय, मनोहर, उत्तम रंग के सौन्दर्य से युक्त था। उसने और कोई काम न कर ब्राह्मणों ही की विद्या सीखी थी। बचपन में ही उसके माता-पिता मर गये। तब खज़ानची (=**राशि-वर्द्धक अमात्य**)[3] बही-खाता

[1] सब से पहले बुद्ध।

[2] देखो वेस्सन्तर जातक (५३८)।

[3] बही-खाता रखने वाला राशि-वर्धक नामक मन्त्री।

(=आय-पुस्तक) ले कर आया और सोना, चाँदी, मोती आदि से भरी कोठरियों को खोल खोल कर कहने लगा—'इतना मातृ-धन है। इतना पितृ-धन है। इतना दादा-परदादा का धन है....। इस प्रकार सात पीढ़ी तक के धन को कह कर बोला, "कुमार लो इसे सँभालो!"

सुमेध पण्डित ने सोचा:—"इस धन को संग्रह कर मेरे पिता पितामह आदि परलोक जाते हुए एक पैसा (=कार्षापण) भी साथ नहीं ले गये, लेकिन मुझे इसे साथ ले कर ही जाना चाहिए।"

उसने राजा को कह नगर में ढंढोरा पिटवाया; और जन-समूह को दान दे तापसों के संप्रदाय में साधु हो गया। इस बात को अधिक स्पष्ट करने के लिए यहाँ **सुमेध** की कथा का कहा जाना ज़रूरी है। **सुमेध** की कथा कुछ न कुछ **बुद्ध-वंस**[1] में आई है, लेकिन उस कथा के पद्यमय (=गाथा-सम्बन्ध में आई) होने से, (उसका) अर्थ ठीक स्पष्ट नहीं होता। इस लिए हम उस कथा को बीच बीच में उन गाथाओं के सम्बन्ध को स्पष्ट करते हुए कहेंगे।

चार असंखेय्य एक लाख कल्प पूर्व दस प्रकार के शब्दों से युक्त **अमरवती** अथवा अमर नामक एक नगर था, जिसके बारे में **बुद्ध-वंस** में कहा है:—

"चार असंखेय्य एक लाख कल्प पूर्व एक मनोरम, दर्शनीय, दस शब्दों से युक्त, अन्नपान से संयुक्त 'अ म र' नामक नगर था।"

वहाँ 'दस शब्दों से युक्त' का अर्थ है—हाथी-शब्द, अश्व-शब्द, रथ-शब्द, भेरि-शब्द, मृदङ्ग-शब्द, वीणा-शब्द, गीत-शब्द, शङ्ख-शब्द, ताल-शब्द, खाने पीने का शब्द—इन दस शब्दों से युक्त। इन दसों शब्दों को एकत्र ग्रहण करने से:—

हस्ति-शब्द, अश्व-शब्द और भेरि, शङ्ख, रथ आदि शब्द, खाने पीने का शब्द और अन्नपान का घोष।

'बुद्ध-वंस' में इस गाथा को कह कर:—

[1] सुत्तपिटक के खुद्दक-निकाय का एक ग्रन्थ।

"सर्वाङ्ग सम्पूर्ण, सब भोगों से युक्त, सात रत्नों से सम्पन्न, नाना जन समाकुल, देव नगर की तरह वैभवशाली, पुण्यात्माओं के निवास, अमरवती नाम नगर में, करोड़ों का मालिक बहुत से धन धान्य वाला, वेद-पाठी (=अध्यायक) मन्त्रधर, तीनों वेदों में पारङ्गत, लक्षण, इतिहास और सद्धर्म में पूर्णता-प्राप्त सुमेध नामक ब्राह्मण रहता था।"

एक दिन महल के ऊपर के सुन्दर कोठे पर आसन मार कर एकान्त में बैठा हुआ सुमेध पण्डित सोचने लगा—'पण्डित ! जन्म ग्रहण करना दुःख है। प्रत्येक जन्म में मृत्यु दुःख है। उत्पन्न होना, बूढ़ा होना, रोगी होना (तथा) मरना; मेरे लिये अनिवार्य है। अतः मुझे चाहिए कि मैं उस अमृत महा-निर्वाण को खोजूं जो उत्पत्ति, जरा, व्याधि, दुःख तथा सुख से रहित है और शीतल तथा अमृत स्वरूप है। आवागमन से मुक्त होने का एक निर्वाण-मार्ग अवश्य होगा। इसी लिए कहा है :—

"तब मैं ने एकान्त में बैठ कर सोचा कि आवागमन तथा शरीर-त्याग—दोनों दुःख हैं। अतः उत्पत्ति, जरा और व्याधि से युक्त मैं, अजर, अमर (और) क्षेम (-स्वरूप) नि र्वा ण को खोजूं। अवश्य ही मुझे इस नाना प्रकार के गन्दगी से भरे, अपवित्र शरीर को छोड़ कर माया ममता रहित हो (चला) जाना होगा।

"जो मार्ग है, वह होगा (=रहेगा) ही। वह न हो (ऐसा) नहीं हो सकता। संसार से मुक्ति के पाने के लिए मैं उसी मार्ग को खोजूंगा।"

वह आगे भी ऐसा सोचने लगा :—

"जिस प्रकार लोक में दुःख का प्रतिपक्षी सुख है, उसी प्रकार आवागमन (=भव) का प्रतिपक्षी आवागमन का अभाव (=विभव) भी अवश्य होना चाहिए। जिस प्रकार गर्मी के रहने पर, उसको शान्त करने वाली ठंडक भी रहती है, इसी प्रकार राग आदि अग्नियों का शमन करने वाला निर्वाण भी अवश्य होगा। जिस प्रकार पाप का प्रतिपक्षी पुण्य तथा निर्दोषता है, उसी प्रकार इस पापी (=दुःखमय) जन्म के रहते सारे जन्मों के क्षय होने से जन्म रहित निर्वाण भी अवश्य होगा। इसी लिए कहा है :—

"जैसे यदि दुःख है, तो सुख भी है; वैसे ही आवागमन है तो आवागमन का अभाव भी है। जैसे गर्मी के रहने पर, उसके विपरीत शीतलता भी है, इसी प्रकार त्रिविध अग्नि के रहते निर्वाण भी होना चाहिए। जिस प्रकार पाप

के रहने पर पुण्य भी है; उसी प्रकार जन्म के रहने पर आवागमन से मुक्ति भी होनी चाहिए।"

और भी सोचने लगा :—

जिस प्रकार मल के ढेर में डूबे मनुष्य को दूर से भी पाँच रंगों के कमलों से आच्छादित तालाब को देख कर 'मुझे किस मार्ग से तालाब तक पहुँचना चाहिए' सोच तालाब को खोजना चाहिए। यदि वह न खोजे, तो उसमें तालाब का दोष नहीं। इसी प्रकार सब मलों को धोने में समर्थ अमृत रूपी निर्वाण के महान् तालाब के रहते (यदि मनुष्य) उसे न खोजे, तो उसमें अमृत रूपी निर्वाण के महान् तालाब का दोष नहीं। जिस प्रकार डाकुओं से घिरा हुआ मनुष्य भागने का रास्ता रहने पर भी, यदि न भागे तो वह रास्ते का दोष नहीं, उस आदमी का ही दोष है। इसी प्रकार यदि मलों से लिप्त मनुष्य निर्वाण की ओर ले जाने वाले कल्याण-मार्ग के रहते भी, उस मार्ग को न खोजे, तो वह मार्ग का दोष नहीं, उस आदमी का ही दोष है। जैसे रोग-ग्रस्त मनुष्य रोग चिकित्सक वैद्य के रहते भी, यदि उस वैद्य को ढूँढ कर रोग की चिकित्सा न कराये, तो वह वैद्य का दोष नहीं। इसी प्रकार जो (चित्त-) मल के रोग से पीड़ित मनुष्य, मल के दूर करने के उपाय के जानकार आचार्य्य के विद्यमान् रहते भी (उन्हें) नहीं खोजता, तो यह उसीका दोष है, मल-निवारक आचार्य्य का दोष नहीं। इसी लिए कहा है :—

"जैसे गन्दगी में फँसा हुआ मनुष्य, पानी से भरे तालाब को (दूर से) देख कर भी, यदि उसे नहीं खोजता; तो वह तालाब का दोष नहीं। इसी प्रकार मल धो देने वाले अमृत-सरोवर के रहते भी, यदि मनुष्य उस सरोवर को नहीं खोजता, तो वह उस अमृत-सरोवर का दोष नहीं। जैसे शत्रुओं से घिरा हुआ (मनुष्य) यदि भागने का मार्ग रहते भी नहीं भागता है, तो उसमें मार्ग का दोष नहीं। इसी प्रकार मलों से घिरा हुआ (मनुष्य) यदि कल्याणकारी मार्ग के रहते भी उस मार्ग को नहीं ढूँढता है, तो वह उस मार्ग का दोष नहीं। जिस प्रकार रोग से पीड़ित पुरुष, यदि चिकित्सक के विद्यमान् रहते भी, उस रोग की चिकित्सा नहीं करता, तो वह चिकित्सक का दोष नहीं; इसी प्रकार मल के रोग से दुखी, पीड़ित पुरुष भी, यदि मल-निवारक आचार्य को नहीं खोजता, तो वह आचार्य का दोष नहीं।"

और भी सोचने लगा :—

"जैसे शौक़ीन आदमी गले में लगे हुए मैल को उतार कर सुख-पूर्वक जाता है, इसी प्रकार मुझे भी इस मलिन काय को छोड़ ममता रहित हो निर्वाण-नगर में प्रवेश करना चाहिए। जिस प्रकार स्त्री-पुरुष मल-मूत्र करने के स्थान पर मल-मूत्र करके न तो उसे अपने अङ्क (=उच्छंग) में ले कर जाते हैं, न उसे अपने पल्ले में ही बाँध कर ले जाते हैं बल्कि उसके प्रति घृणा कर अनिच्छुक हो, उस (मल-मूत्र) को वहीं छोड़ जाते हैं, इसी प्रकार मुझे भी इस मलिन-काय को अनिच्छुक हो छोड़ अविनाशी (=अमृत) निर्वाण नगर में प्रविष्ट होना चाहिए। जैसे मल्लाह लोग पुरानी नाव को बेपरवाह हो छोड़ जाते हैं, इसी प्रकार मैं भी इस नौ छिद्रों से चूने वाले शरीर को छोड़ बे-परवाह हो निर्वाण-नगर में प्रवेश करूँगा। जैसे अनेक रत्नों को ले कर चोरों के साथ जाने वाला मनुष्य, अपने रत्नों के नाश होने के डर से, उन चोरों को छोड़ कर कल्याणकारी मार्ग ग्रहण करता है; इसी प्रकार यह जो शरीर है, सो यह भी रत्न लूटने वाले डाकुओं की तरह है। यदि मैं इस शरीर के प्रति लोभ रखूँगा, तो मेरा आर्य-मार्ग रूपी पुण्य (=रत्न) नष्ट हो जायगा। इस लिए मुझे इस डाकू के समान शरीर को छोड़ कर निर्वाण-नगर में प्रवेश करना चाहिए। इसी लिए कहा है :—

"जिस प्रकार मनुष्य मुर्दे को गले में बाँधने से घृणा कर उसे स्वेच्छापूर्वक अपने आप खुशी से छोड़ जाये, उसी प्रकार मैं इस नाना प्रकार की गन्दगी से भरी अपवित्र काया को बे-परवाह तथा आकांक्षा (=अर्थ) रहित हो छोड़ जाऊँ। जैसे स्त्री-पुरुष मल-मूत्र करने के स्थान पर मल को बिना किसी चाह अथवा आकांक्षा के छोड़ कर चले जाते हैं, इसी प्रकार मैं इस नाना प्रकार की गन्दगी से भरी काया को पाखाने (=वच्चकुटि) में मल के समान छोड़ कर चल दूँगा। जैसे मल्लाह पुरानी, टूटी फूटी, पानी भर जाने वाली नाव को बिना किसी चाह या आकांक्षा के छोड़ कर चले जाते हैं, वैसेही मैं इस नौ छिद्रों से सदा गन्दगी बहाने वाले शरीर को, मल्लाह की नाव की तरह, छोड़ कर चल दूँगा। जैसे सामान लेकर जाता हुआ पुरुष चोरों के सामान लूट लेने के डर से (रास्ता) छोड़ कर जाता है; इसी प्रकार यह शरीर महा-चोर के समान है। इसलिए मैं इसे कुशल (=कर्म) के नाश के डर से छोड़ कर जाऊँगा।"

२. संन्यास

इस प्रकार **सुमेध** पण्डित नाना प्रकार के दृष्टान्तों से इस अनासक्ति के भाव का चिन्तन कर, पूर्वोक्त विधि से अपने घर पर पड़ी अनन्त भोग की वस्तुओं को याचकों और पथिकों को प्रदान कर, महादान दे, चीजों और कामुकता के लोभ को छोड़, अमर (नामक) नगर से निकल कर अकेले ही हिमालय में धम्मक नाम पर्वत के पास आश्रम, पर्ण-कुटी और टहलने का चबूतरा (=**चंक्रमण भूमि**)[1] बना कर पाँच **नीवरणों**[2] से रहित 'इस प्रकार एकाग्र चित्तता' आदि क्रम से कहे गये आठ **कारण-गुणों**[3] से युक्त **अभिज्ञा** (=ज्ञान) नामक बल की प्राप्ति के लिए, उस आश्रम में नौ दोषों वाले वस्त्रों को छोड़ कर, बारह गुणों से युक्त छाल (=वल्कल) को धारण कर ऋषियों के नियमानुसार साधु बन गये। इस तरह साधु बन आठ दोषों से युक्त उस पर्ण-कुटी को छोड़, दस गुणों से युक्त 'वृक्ष की छाया' के नीचे जा कर, अनाज के बने सभी भोजनों को छोड़, वृक्ष से गिरे फलों को ही खाने लगे। बैठे, खड़े रहते तथा चलते हुए ही (=अर्थात् कभी न लेट कर) योग्याभ्यास (=प्रयत्न) करते हुए सात दिनों के अन्दर ही अन्दर आठ **समापत्तियों**[4] और पाँच **अभिञ्ञाओं**[5] को पा लिया। इसी प्रकार उसने इच्छित अभिञ्ञा-बल प्राप्त किया।

[1] टहलते हुए योगाभ्यास करने की जगह।

[2] चित्त की शुद्ध वृत्तियों को ढाँकने वाले—१ काम-छन्द, २ व्यापाद (=क्रोध), ३ स्त्यानमृद्ध (=आलस्य), ४ औद्धत्य-कौकृत्य (=उद्धता), ५ विचिकित्सा (=सन्देह)।

[3] १ समाहित (=एकाग्र-चित्त), २ परिशुद्ध, ३ परियोदात, ४ अङ्गण-रहित, ५ उपक्लेश-रहित, ६ मृदु, ७ कम्मनीय, ८ स्थिरता-प्राप्त (=अभिञ्ञा-प्राप्त)।

[4] चार रूप तथा चार अरूप समापत्तियाँ।

[5] दिव्य-चक्षु, दिव्य-श्रोत्र, पूर्व जन्म की स्मृति, ऋद्धि-बल, पर-चित्त का ज्ञान।

इसी लिए कहा गया है :—

"इस प्रकार विचार कर मैं अरबों धन याचकों और अनाथों को दे हिमालय में चला आया। हिमालय के पास ही धम्मक नामक पर्वत है। वहाँ मैंने आश्रम, पर्ण-कुटी तथा पाँच दोषों से रहित टहलने का चबूतरा (=चंक्रमण-भूमि) बनाया, और आठ गुणों से युक्त अभिञ्ञा-बल प्राप्त किया। नौ दोषों से युक्त वस्त्र को छोड़ कर बारह गुणों से युक्त छाल (वल्कल) का चीवर धारण किया। आठ दोषों से युक्त पर्ण-कुटी को छोड़, दस गुणों वाली 'वृक्षों की छाया' का आश्रय लिया। बो, जोत कर तैयार किए अनाजों को बिल्कुल त्याग दिया; और अनेक गुणों से युक्त 'वृक्षों से गिरे फलों' को ग्रहण किया। वहाँ बैठे, खड़े और टहलते हुए ही योग का अभ्यास कर, सप्ताह के अन्दर अभिञ्ञा-बल प्राप्त किया।"

इस **पाली**[1] में सुमेध पण्डित ने, आश्रम और टहलने के चबूतरे, अपने हाथ से बनाये—ऐसा कहा है। लेकिन इसका (वास्तविक) अर्थ यह है—महापुरुष ने सोचा कि आज मैं **हिमालय** में जा, **धम्मक** पर्वत में प्रवेश करूँगा? इस विचार से उन्होंने गृह-त्याग किया।

३. आश्रम

देवताओं के राजा **शक्र** (=इन्द्र) ने सुमेध के गृह-त्याग को देख **विश्वकर्मा** देव-पुत्र को सम्बोधित किया—"तात! इस **सुमेध** पण्डित ने साधु होने के विचार से घर छोड़ा है; जा इसके लिए निवास स्थान का निर्माण कर।"

विश्वकर्मा ने उसके वचन को स्वीकार कर, रमणीय आश्रम, सुरक्षित पर्ण-कुटी और मनोरम टहलने के चबूतरे का निर्माण किया। भगवान् ने अपने प्रज्ञाबल से उस आश्रम के बारे में कहा था :—"सारिपुत्र! उस धम्मक पर्वत में 'मेरे लिए आश्रम किया' और 'पर्णशाला बनाई गई' तथा पाँच दोषों से रहित चङ्क्रमण-भूमि बनाई गई।" सो वहाँ "मेरे लिए किया" का अर्थ

[1] पाली; तुलसीदास जी की पाँति की तरह; बुद्ध-वचन का पर्य्यायवाची।

है मेरे द्वारा की गई, और 'पर्णशाला बनाई गई' का अर्थ है "पत्तों से ढकी हुई शाला भी मेरे लिए बनी हुई थी।" "पाँच दोषों से रहित"; चबूतरे के यह पाँच दोष हैं—कड़ा होना समतल न होना, बीच में वृक्षों का होना, घनी छाया होना, बहुत संकीर्ण होना तथा लम्बा चौड़ा होना।

कड़ी तथा ऊबड़ खाबड़ भूमि में टहलते हुए टहलने वाले के पैर दुखने लग जाते हैं, छाले पड़ जाते हैं, चित्त एकाग्र नहीं होता, योग-क्रिया (=कर्म-स्थान)[1] सिद्ध नहीं होती। कोमल और समतल पर टहलने से योग-क्रिया सिद्ध होती है। इस लिए भूमि की कठोरता और ऊबड़-खाबड़-पन को एक दोष समझना चाहिए। चबूतरे के किनारे पर बीच में अथवा सिरे पर वृक्ष रहने से बे-परवाही के कारण (कभी कभी) उनमें माथा या सिर टकरा जाता है, इस लिए 'बीच बीच में वृक्षों का होना' दूसरा दोष है। तृण-लता आदि से आच्छादित घनी छाया वाले स्थान में टहलते हुए अन्धकार के समय या तो साँप आदि जीवों को (अपने पैर से) कुचल कर मार देता है, अथवा उनके द्वारा डसे जाने से (स्वयं) दुःख को प्राप्त होता है। इस लिए 'घनी छाया वाला होना' तीसरा दोष है। चौड़ाई में केवल हाथ (रत्न)[2] वा आधे हाथ भर चौड़े, बहुत ही तंग चबूतरे पर टहलने से टहलने वाले (पुरुष) की अगल-बगल में फिसल जाने के कारण नाखून और उँगलियाँ तक टूट जाती हैं। इस लिए 'बहुत तंग होना' चौथा दोष है। बहुत चौड़े स्थान में टहलने से (आदमी) का चित्त (इधर उधर) भागता है, एकाग्र नहीं होता इस लिए 'बहुत लम्बा चौड़ा होना' पाँचवाँ दोष है। चौड़ाई डेढ़ हाथ, दोनों तरफ एक एक हाथ चौड़ी बगली (=अनुचंक्रमण), लम्बाई साठ हाथ और उस पर समतल बालू बिखरा हुआ—चबूतरा ऐसा होना चाहिए। (सिंहल-)द्वीप को श्रद्धावान् बनाने वाले महेन्द्र स्थविर का चबूतरा चेतिय गिरि[3] (विहार)

[1] योगाभ्यास का साधन, योग-युक्ति।

[2] रत्न=एक हाथ भर।

[3] लंका में जिस मिश्रक-पर्वत (=मिहिन्तले) पर महामहेन्द्र उतरे थे, उसी पर्वत पर निर्मित विहार।

में वैसा ही था। इसी लिए कहा है 'पाँच दोषों से रहित चबूतरा बनाया'। 'आठ गुणों से युक्त' का मतलब है "साधुओं के आठ सुखों से युक्त'। साधुओं के आठ सुख यह हैं :—धन धान्य के संग्रह (की चिन्ता) का न होना, निर्दोष भिक्षा की प्राप्ति का प्रयत्न करना, तैयार भिक्षा का भोजन करना, राज्य अधिकारियों के देश को सता कर धन दौलत या **सीस-कहापण**[1] आदि ग्रहण करते हुए (स्वयं) देश को पीड़ित न करना, वस्तुओं में वैराग्य, चोरों द्वारा (धन आदि) लूटे जाने से निर्भयता, राजाओं और राज्यामात्यों से बहुत लगाव न होना, और चारों दिशाओं में बेरोक-टोक पहुँच। चूँकि इस आश्रम में रहते हुए, इन आठ सुखों का आनन्द लिया जा सकता था, इस लिए कहा गया है कि "आठ गुणों से युक्त उस आश्रम को बनाया"। "अभिज्ञा-बल को प्राप्त किया" का मतलब है कि आगे चल कर उस आश्रम में रहते हुए कृत्स्न (=**कसिण**)[2] परिकर्म का आरम्भ करके अभिज्ञाओं तथा समापत्तियों को प्राप्ति के लिए, अनित्यता और दुःख के भाव की **वि द र्श ना**[3] का अभ्यास कर प्रयत्न से प्राप्य विदर्शना-बल को प्राप्त किया। चूँकि 'इस आश्रम में रहते हुए इस बल को प्राप्त किया जा सकता है' यह विचार था, इस लिए उस आश्रम को, अभिञ्जा की प्राप्ति के लिए विदर्शना बल (की प्राप्ति) के अनुकूल बनाया'—यह अर्थ है।

"नौ दोषों से युक्त वस्त्र को छोड़ देने" के सम्बन्ध की यह क्रमानुकूल कथा है। उस समय कुटी, गुफा, टहलने के चबूतरे आदि से युक्त, फल फूल वाले वृक्षों से आच्छादित, रमणीय, मधुर जलाशयों सहित, बाघ आदि हिंसक पशु तथा भयानक पक्षियों से शून्य, शान्त आश्रम बना कर, सुन्दर चबूतरे के दोनों ओर सहारे के लिए बाही लगा कर, और चबूतरे के बीच में बैठने के

[1] तत्कालीन सिक्कों का व्यक्तिगत कर।

[2] योगाभ्यास के चालीसों साधनों में से किसी भी एक को साधारणतया 'कर्म-स्थान' कहते हैं। उनमें से प्रथम दस में से किसी को भी कसिन (=कृत्स्न) कहते हैं।

[3] विपश्यना (=प्रज्ञा)।

लिए मूँगे के रंग की समतल शिला बना कर, पर्ण-कुटी के अन्दर जटा-मण्डल, बल्कल-चीर, त्रिदण्ड, कुण्डी आदि तापसों के सामान, मण्डप में पानी का बरतन, पानी (-भरा) शङ्ख, पानी (पीने के) कसोरे, अग्निशाला में अँगीठी तथा जलावन इत्यादि—इस प्रकार साधुओं की जो जो आवश्यकतायें हैं, उन का प्रबन्ध करके, पर्ण-कुटी की दीवार पर 'जो कोई साधु होना चाहें, इन चीज़ों को ले कर प्रव्रजित हों'—इन अक्षरों को खोद कर विश्वकर्मा देव-पुत्र के देव-लोक चले जाने पर सुमेध पण्डित ने **हिमालय** की तराई में गिरि-कन्दराओं के साथ साथ, अपने लिए सुख से रहने योग्य स्थान को ढूँढते हुए नदी के मोड़ पर **विश्वकर्मा** द्वारा निर्मित, इन्द्र का दिया हुआ, रमणीक आश्रम देखा। टहलने के चबूतरे के छोर पर जा और वहाँ पद-चिह्न को न देख, सोचा—अवश्य साधु लोग समीप के गाँव में भिक्षा माँग आ कर थके हुए लौट कर, पर्ण-कुटी में प्रवेश कर, अन्दर बैठे होंगे। कुछ देर प्रतीक्षा कर वह सोचने लगा—'वे बहुत देर कर रहे हैं' ज़रा देखूँ। (फिर) पर्ण-कुटी के द्वार को खोल अन्दर प्रवेश कर, इधर उधर देखते हुए बड़ी दीवार पर (लिखे) अक्षरों को बाँच कर (सोचा)—यह वस्तुएँ मेरे योग्य हैं, इन्हें ग्रहण कर साधु बनूँगा। यह सोच अपने पहने धोती चादर को छोड़ दिया। इस लिए कहा है—'वहाँ वस्त्र को छोड़ दिया'। **सारिपुत्र**। इस प्रकार प्रविष्ट हो, मैंने इस पर्ण-कुटी में धोती को छोड़ा"। "नौ दोषों से युक्त" कह कर दिखाया गया है कि नौ दोषों को देख कर छोड़ा।

तापस साधुओं के तापस साधु बनने पर (उनके) पहनने के वस्त्र में नौ दोष होते हैं—'अति मूल्यवान् होना' एक दोष है। 'दूसरे पर निर्भर रह कर मिलना' एक दोष। 'पहनने पर जल्दी से मलिन होना' एक दोष। 'मलिन होने पर वस्त्र को धोना तथा रंगना होता है। 'पहनने से फट जाना' एक। 'फटने से सीना' या पेवन्द लगाना होता है। 'फिर ढूँढने पर कठिनाई से मिलना' एक। 'साधु-जीवन से मेल न खाना' एक। 'चोरों के लिए चोरी करने योग्य होना' एक। जैसे उसे चोर न चुरावे, वैसे छिपाना होता है। 'उपयोग करने से सजावट का कारण होना' एक। 'ले कर चलते समय कन्धे के लिए भार और लोभ होना' एक। "वल्कल चीर को धारण किया" का अर्थ है, "**सारिपुत्र!** तब मैं ने इन नौ दोषों को देख, वस्त्र को छोड़ छाल (=वल्कल) का

वस्त्र धारण किया—अर्थात् मूञ्ज-तृण को चीर, गाँठ बाँध बाँध कर बनाये वल्कल चीवर को धारण करने और पहनने के लिए ग्रहण किया।"

'बारह गुणों से युक्त' का अर्थ है कि बारह कल्याणकारी बातों से संयुक्त'। वल्कल चीवर में बारह गुण हैं—सस्ता, सुन्दर तथा विहित होना यह पहला गुण है। अपने हाथ से बनाया जा सकता है, यह दूसरा। जल्दी मैला नहीं होता है और धोने में भी कठिनाई नहीं, यह तीसरा। उपयोग करते करते फटने पर सीने की आवश्यकता न रहना, यह चौथा। नया ढूंढने पर आसानी से मिल सकना, यह पाँचवाँ। तापस साधुओं के अनुकूल होना, यह छठा। चोरों के काम का न होना, यह सातवाँ। पहनने वाले के लिए शौक का कारण नहीं होना, यह आठवाँ। पहनने में हलका रहता है, यह नौवाँ। चीवर रूपी सामान (=प्रत्यय) के विषय में संतोष, यह दसवाँ। छाल (=वल्कल) से उत्पन्न होने के कारण धर्म की दृष्टि से निर्दोष होना, ग्यारहवाँ। छाल के चीवर के नष्ट होने पर, उसके लिए परवाह न होना, यह बारहवाँ गुण है।

"आठ दोषों से युक्त पर्ण-शाला को छोड़ा", सो उसे कैसे छोड़ा? (अपनी) उस सुन्दर धोती चादर को छोड़ कर, चीवर रखने के बाँस पर टँगे हुए **अनोज-फूल** की माला जैसे लाल रंग के छाल के चीवर को ले पहना। उसके ऊपर दूसरा सुनहरी रंग का छाल का चीवर पहना। फिर **पुन्नाग-फूल** की शय्या के समान और खुर सहित मृग-चर्म को एक कन्धे पर बाँधा। जटाओं को खोल, जूड़ा बाँध, (उनके) स्थिर करने के लिए (बालों में) सलाई डाली। मोतियों के जाल के सदृश छीके में मूँगे के रंग की कुण्डी को रक्खा। तीन स्थानों (=दोनों सिरों और बीच में) से झुकी बँहगी को ले कर, बँहगी के एक सिरे पर कुण्डी और दूसरे सिरे पर अंकुश की पिटारी तथा त्रिदण्ड आदि लटका कर, खरिया के भार को कन्धे पर रख, दक्षिण हाथ में वैशाखी (=टेक कर चलने की लकड़ी) ले, पर्ण-कुटी से निकले; और साठ हाथ लम्बे टहलने के चबूतरे (=महाचंक्रमण-भूमि) पर एक सिरे से दूसरे सिरे तक टहलते हुए अपने वेष को देख कर सोचने लगे—"मेरा विचार सफल हुआ। प्रव्रज्या मुझे शोभती है। बुद्ध आदि सभी वीर पुरुषों ने इस प्रव्रज्या की प्रशंसा की है। मेरा गृह-बन्धन छूट गया। मैं अनासक्ति (=नैष्क्रम्य) के लिए

निकल पड़ा। मुझे उत्तम प्रव्रज्या मिल गई। मैं संन्यास (=श्रमण-धर्म) के अनुसार आचरण कर मार्ग-फल[1] के सुख को प्राप्त करूँगा।"

(यह सोच) उत्साह से बँहगी को उतार चबूतरे के बीच में मूँगे के रंग के शिला-पट्ट पर सोने की मूर्ति की तरह बैठे। (फिर) दिन बीत जाने पर, सन्ध्या के समय पर्णशाला के भीतर जा, बाँस की चारपाई के पास के लकड़ी के फट्टों पर लेट विश्राम किया।

(दूसरे दिन) बहुत प्रातःकाल उठ, अपने आने (के उद्देश्य) पर विचार किया—"मैं गृहस्थ जीवन के दोषों को देख, अपार भोग-राशि तथा अनन्त यश को छोड़ जंगल में आ, अनासक्ति की चाह से साधु हुआ। इस लिए अब आगे से मुझे आलस्य नहीं करना चाहिए। एकान्त(-चिन्तन) को छोड़, बेकार घूमने वाले (पुरुष) को झूठे वितर्क रूपी मक्खियाँ खा जाती हैं। इस लिए अब मुझे एकान्त-चिन्तन की वृद्धि करनी चाहिए। मैं गृहस्थ जीवन को संताप समझ (घर छोड़ बाहर) निकला हूँ। यह (मेरी) मनोहर कुटिया—(जिसकी कि) पक्के बेल के रंग जैसी लिपि भूमि है; चाँदी सी सफेद दीवारें हैं; कबूतर के पैर के रंग सी पत्तों की छत है; चित्र-विचित्र कालीन के रंग का सा बाँस का पलँग है—सुखदायक निवास स्थान है; मेरे घर की सम्पत्ति और इसमें कोई विशेष अन्तर दिखाई नहीं देता। यह (सोच) पर्ण-कुटी के दोषों पर विचार करते हुए (उसमें) आठ दोषों को देखा।

कुटिया के सेवन में आठ दोष हैं—(१) बड़े प्रयत्न से आवश्यक चीजों को जुटा, उनको खोजना-बनाना; (२) (उसके) पत्ते, तृण और मिट्टी के गिर पड़ने पर, उन्हें फिर फिर लगाने के कारण निरन्तर मरम्मत करना; (३) आसन-वासन (=शयनासन)पर बड़े बूढ़ों का अधिकार है, सोच उन के आने पर बे वक्त उठने पर चित्त एकाग्र नहीं होता। इसके लिए वैसी चिन्ता; (४) सरदी गर्मी से शरीर का सुकुमार हो जाना; (५) छिप कर घर में सभी पाप-कर्म करके पाप छिपाने की गुञ्जाइश होना; (६) 'यह मेरी है' ऐसी ममता होना; (७) घर होने का मतलब ही है 'अकेला न होना', इसके लिए

[1] अर्हत्व-प्राप्ति का मार्ग तथा अर्हत्व-प्राप्ति।

'साथी चाहना'; (८) जूँ, पिस्सू, छिपकली आदि का आम तौर से बहुत बढ़ जाना आठवाँ दोष है। इन आठ प्रकार के दोषों को देख कर महात्मा ने कुटिया त्याग दी। इस लिए कहा है—"आठ दोषों से युक्त पर्ण-शाला को छोड़ा।"

"दस गुणों से युक्त वृक्ष के नीचे आ गया" कहने का अभिप्राय यह है कि कुटिया को छोड़, दस गुणों से युक्त वृक्ष की छाया के नीचे आ गया हूँ। वे दस गुण यह हैं—(१) चीज़ों के जुटाने की चिन्ता न होना पहला गुण; क्योंकि वहाँ (वृक्ष) तक केवल जाने भर का ही (परिश्रम) होता है। (२) ठीक-ठाक करने का बहुत परिश्रम न होना दूसरा; (क्योंकि) चाहे झाड़ू लगायें या न लगायें—दोनों अवस्थाओं में उसे सेवन किया जा सकता है; (३) 'उठने (की चिन्ता) न होना' तीसरा; (४) वह पाप कर्म को छिपा नहीं सकता। वहाँ पाप-कर्म करते लज्जा आती है; इसके लिए पाप-कर्म को न छिपा सकना चौथा; (५) खुले आकाश के नीचे रहने से शरीर जैसा रूखा हो जाता है, वृक्ष की छाया में वैसा नहीं होता; इस लिए शरीर का रुखाई से बचना पाँचवाँ; (६) जोड़ने बटोरने की गुञ्जाइश न होना छठा (७) घर के प्रति होने वाली आसक्ति का अभाव सातवाँ; (८) सार्वजनिक शालाओं में से जैसे सफाई या मरम्मत के लिए निकल जाना होता है; वैसे यहाँ से न निकलना पड़ना आठवाँ; (९) प्रसन्नता के साथ रहना नौवाँ; (१०) वृक्ष के नीचे सभी जगह आसन-वासन आसानी से मिल जाने के कारण उसके लिए 'चाह न होना' दसवाँ। इन दस गुणों को देख मैं वृक्ष के नीचे आया हूँ—यह भावार्थ (=कथन) है।

इन (सब) बातों का ख्याल कर अगले दिन महात्मा ने भिक्षा के लिए (गाँव में) प्रवेश किया। गाँव में लोगों ने बड़े उत्साह-पूर्वक भिक्षा दी। भोजन समाप्त कर, आश्रम को लौटे और बैठ कर सोचने लगे :—"मैं समझता था कि आहार नहीं मिलेगा; यही सोच मैं प्रव्रजित हुआ। यह चिकना चुपड़ा आहार अभिमान और पौरुष के मदों को बढ़ाने वाला है। (इस प्रकार के) आहार से उत्पन्न दुःख का अन्त नहीं है। इस लिए मैं बोये जोते अनाज से बने भोजन को त्याग, सिर्फ (वृक्षों से) गिरे फल को खाऊँगा।" तब से उसने उसी तरह का भोजन ग्रहण कर, योगाभ्यास में लगे रह, एक सप्ताह के अन्दर ही आठ समापत्तियों और पाँच अभिञ्ञाओं को प्राप्त किया। इसी लिए कहा है :—

"बोये जोते अनाजों को बिल्कुल त्याग दिया। और अनेक गुणों से युक्त 'वृक्षों से गिरे फल' को ग्रहण किया। वहाँ बैठे, खड़े, और टहलते योगाभ्यास में लगे रह सप्ताह के अन्दर अभिञ्ञा-बल को प्राप्त किया।"

४. दीपंकर का दर्शन

इस प्रकार अभिञ्जा-बल को प्राप्त कर तपस्वी **सुमेध** के दिन समाधि सुख में बीत रहे थे। उसी समय दीपङ्कर नामक बुद्ध संसार में उत्पन्न हुए। उनके गर्भ-प्रवेश (=पटिसन्धि ग्रहण), जन्म, बुद्धत्व प्राप्ति तथा धर्म चक्र प्रवर्तन के समय सारे दस हजार ब्रह्माण्ड (=दस सहस्र लोक-धातु) कम्पित= प्रकम्पित हुए; और महानाद हुआ। बत्तीस **पूर्व-निमित्त**[1] दिखाई पड़े। लेकिन समाधि के सुख में दिन बिताते तपस्वी सुमेध ने न तो उन शब्दों (=महानाद) को सुना न उन शकुनों (=निमित्तों) को देखा। इसी लिए कहा है:—

"इस प्रकार मेरे सिद्धि-प्राप्त तथा धर्म में रत रहते समय, संसार के नेता दीपङ्कर नामक बुद्ध (=जिन) उत्पन्न हुए। समाधि में होने से मैंने उनके गर्भ-प्रवेश, उत्पत्ति, बुद्धत्व-प्राप्ति तथा धर्मोपदेश के समय हुए चारों शकुनों (=निमित्तों) को नहीं देखा।"

उस समय चार लाख अर्हतों के साथ दसबलों[2] वाले **दीपङ्कर** क्रमशः चारिका करते, **रम्मक** नामक नगर में पहुँच (वहाँ के) **सुदर्शन** महाविहार में रहते थे। रम्मक नगर-वासियों ने सुना कि साधु-सम्राट **दीपङ्कर बुद्धत्व** के उत्तम पद को प्राप्त कर क्रमशः चारिका करते (हमारे) रम्मक नगर में आ, सुदर्शन महाविहार में रहते हैं। यह सुन मक्खन, घी आदि भैषज और वस्त्र-बिछौने लिवा कर, गन्धमाला हाथ में ले बुद्ध, धर्म तथा संघ के प्रति श्रद्धा से नम्र हो बुद्ध (=शास्ता) के पास गये। और गन्ध आदि से उन की पूजा कर हाथ जोड़ एक ओर बैठे। बुद्ध का धर्म-उपदेश सुन दूसरे दिन के (भोजन के) लिए निमन्त्रण दे, आसन से उठ कर चले गये। अगले दिन भोजन

[1] देखो जातक (पृ० ६७)
[2] देखिए अंगुत्तर-निकाय, दसमो निपातो।

(=महादान) तैयार कराया। दीपङ्कर बुद्ध के आगमन (के उपलक्ष) में (सारा) नगर सजाया गया। पानी बहने से टूटे फूटे स्थानों में रेत डाली गई, भूमि को समतल बनाया गया। चाँदी की पत्री जैसे सफेद बालू को फैलाया गया। खीलों और फूलों की वर्षा की गई। नाना रंग के वस्त्रों की ध्वजा पताकायें उड़ रही थीं। केलों और जल से भरे घटों की पंक्तियाँ लगी हुई थीं। उस समय तपस्वी सुमेध ने अपने आश्रम से ऊपर उठ (कर) लोगों के सिर पर से आकाश मार्ग से जाते हुए उन सन्तुष्ट मनुष्यों को देख सोचा "इसका क्या कारण है ?" फिर आकाश से उतर कर एक ओर खड़े हो, उनसे पूछा :— "ओ ! तुम इस मार्ग को किस के लिए अलङ्कृत कर रहे हो ?" इसी लिए कहा गया है :—

सीमान्त (=प्रत्यन्त) प्रदेश में बुद्ध को निमन्त्रित कर, सन्तुष्ट चित्त हो लोग, उनके आगमन-मार्ग को ठीक कर रहे थे। मैं उस समय अपने आश्रम से निकल (अपने) कंपित बल्कल वस्त्र के साथ आकाश-मार्ग से जा रहा था। लोगों को प्रमुदित, प्रसन्न चित्त, सन्तुष्ट देख, उसी समय आकाश से उतर लोगों से पूछा :—"यह जन-समूह प्रमुदित, प्रसन्न, सन्तुष्ट हो किस के आने के लिए मार्ग ठीक कर रहा है ?"

लोगों ने कहा :—"भन्ते ! सुमेध ! क्या तुम नहीं जानते ? दीपङ्कर दस-(दिव्य) बल-वाले बुद्ध हो, (अपने) श्रेष्ठ धर्म का प्रचार आरम्भ कर, विचरते हुए हमारे नगर में पहुँच सुदर्शन महाविहार में वास करते हैं। हमने उन भगवान् को निमन्त्रित किया है। (इस लिए) उन भगवान् बुद्ध के आने के मार्ग को अलङ्कृत कर रहे हैं।"

तपस्वी **सुमेध** सोचने लगा :—"बुद्ध" शब्द का सुनना भी लोक में दुर्लभ है; बुद्ध के जन्म लेने की तो बात ही क्या ? मुझे भी इन मनुष्यों के साथ (मिल कर) बुद्ध (=दशबल) का मार्ग अलङ्कृत करना चाहिए।" (यह सोच) उसने उन मनुष्यों को कहा—"भो ! यदि तुम इस मार्ग को बुद्ध के लिए अलङ्कृत कर रहे हो, तो मुझे भी (इसका) एक भाग दो। मैं भी तुम्हारे साथ (मिल कर) मार्ग को अलङ्कृत करूँगा। उन्होंने 'अच्छा' कह कर स्वीकार कर, 'तपस्वी सुमेध दिव्य शक्तिधारी है—यह जान आप इस स्थान को अलंकृत करें' कह पानी से ऊबड़-खाबड़ हुआ एक स्थान दिया।

सुमेघ ने बुद्ध के ध्यान से उत्पन्न आनन्द से संतुष्ट हो सोचा—"मैं इस स्थान को अपने योग-बल से अलंकृत कर सकता हूँ। लेकिन इस प्रकार अलंकृत करने से मेरा मन संतुष्ट न होगा। इस लिए आज मुझे देह से परिश्रम करना चाहिए।" वह बालू रेत ला कर उस स्थान पर फैलाने लगा। अभी उसने उस स्थान को पूरा अलंकृत न कर पाया था कि दीपङ्कर-बुद्ध छः अभिज्ञाओं[1] से युक्त, चार लाख महा प्रतापी अर्हतों (=क्षीणाश्रवों) के साथ उसी अलंकृत मार्ग से आ निकले। उस समय देवता लोग दिव्य माला गन्ध आदि से उनकी पूजा कर रहे थे। देवता दिव्य संगीत गा रहे थे और मनुष्य गन्धों तथा मालाओं से पूजा कर रहे थे। (उस समय) वह अनन्त बुद्ध की लीलाओं के साथ मनः शिला पर अँगड़ाई लेते सिंह की तरह उस अलंकृत मार्ग पर चल रहे थे। तपस्वी सुमेघ ने आँखों से देखा—अलंकृत मार्ग से आते हुए बत्तीस महापुरुष लक्षणों[2] तथा अस्सी अनुव्यञ्जनों[3] से युक्त बुद्ध उसी अलंकृत मार्ग से आ रहे हैं। उनका मुख मण्डल (फैलाये हुए) दोनों हाथ (=व्याममात्र) के प्रभा-मण्डल से घिरा था, जिससे मणियों के रंग की प्रभा निकल कर, आकाश तल में नाना प्रकार के विद्युत प्रकाशों की भाँति इकट्ठी हो दो दो की जोड़ी करके छः रंग[4] की घनी बुद्ध किरणें प्रस्तारित कर रही थी। उनके अत्युत्तम सुन्दर शरीर को देख कर (सुमेघ ने) सोचा—"आज मुझे बुद्ध के लिए जीवन अर्पण करना चाहिए। भगवान् को कीचड़ में नहीं चलने देना चाहिए। यदि चार लाख अर्हतों (=क्षीणाश्रवों) के साथ (भगवान्) मणि फलकों से निर्मित पुल पर चलने के समान, मेरी पीठ को मर्दित करते चलें; (तो) वह दीर्घ काल तक मेरे हित और सुख के लिए होगा"। वह केशों को खोल मृगछाला (=अजिन चर्म), जटा और छाल (=वल्कल) के वस्त्रों को काले रंग की कीच पर फैला, नगों की पट्टी (=मणि फलक)

[1] दिव्य-चक्षु, दिव्य-श्रोत्र, पूर्व जन्म की स्मृति, ऋद्धि बल, परचित्त का ज्ञान तथा आश्रवक्षय ज्ञान।

[2] देखो, लक्खण-सूक्त (दीर्घ-निकाय)।

[3] महापुरिस-लक्खण (विनय १. ६५)।

[4] नीला, पीला, सफेद, मंजीठा, लाल तथा प्रभास्वर।

के बने पुल की तरह (उस) कीचड़ में लेट गया। इसी लिये कहा है :—

"उन्हों ने मेरे पूछने पर बताया कि अनुपम लोकनायक दीपङ्कर नामक बुद्ध (=शास्ता) लोक में उत्पन्न हुए हैं। यह मार्ग उनके लिए साफ किया जा रहा है। 'बुद्ध'—यह सुनते ही उस समय मेरे मन में आनन्द (=प्रीति) उत्पन्न हुआ। 'बुद्ध' 'बुद्ध' कहते हुए मैं गद्गद (=सौमनस्य को प्राप्त) हो गया। जोश और सन्तोष से मेरा दिल भर गया; और वहाँ खड़े खड़े मैंने सोचा—"मैं यहाँ (पुण्य का) बीज रोपूँगा। यह क्षण (कहीं हाथ से) चला न जाय" और लोगों से कहा—"यदि यह मार्ग बुद्ध के लिए साफ कर रहे हो, तो (इसका) एक हिस्सा मुझे भी दो, मैं भी (उसे) साफ करूँगा। उन्हों ने साफ करने के लिए मुझे मार्ग दे दिया। तब मैं 'बुद्ध' 'बुद्ध'—(यह) चिन्तन करते उसे साफ करने लगा। मेरे हिस्से के तैयार हो जाने के पहले ही छः अ भि ज्ञा ओं[1] से युक्त स्थित-प्रज्ञ, निर्मल (-चित्त) चार लाख अर्हतों (=क्षीणाश्रवों) के साथ महामुनि दी प ङ्क र उस मार्ग पर चले आये। अगवानी के लिए बहुत सी भेरियाँ बज रही थीं। आनन्दित हो देवता और मनुष्य 'साधु' 'साधु'[2] कह रहे थे। उस समय देवता मनुष्यों को देखते थे और मनुष्य देवताओं को। (वे) दोनों हाथ जोड़े बुद्ध (=तथागत) के पीछे चल रहे थे। देवता दिव्य वाद्य (=तुर्य) को और मनुष्य मानुषिक वाद्य को बजाते तथागत का अनुगमन करते थे। आकाश-मण्डल में अवस्थित देवता मन्दार, पद्म, पारिजात (आदि के) दिव्य पुष्पों को चारों ओर (=दिशा बिदिशा में) बरसा रहे थे। भूमितल पर अवस्थित मनुष्य चम्पक, सलल, नीप, नाग, पुन्नाग, केतक (के पुष्पों) को चारों ओर बिखेर रहे थे। मैं यहाँ वहाँ अपने केशों को खोल, वल्कल वस्त्र और (आसन-वाले) चर्म खण्ड को कीचड़ पर फैला, मुँह के बल लेट गया, जिसमें कि शिष्यों सहित बुद्ध बिना कीचड़ लगे मेरे ऊपर से चले जायें। वह मेरे हित के लिए होगा।"

[1] दिव्य-चक्षु, दिव्य-श्रोत्र, पूर्व जन्मों का ज्ञान, ऋद्धि-बल, पर-चित्त का जानना, आश्रवों के क्षय होने का ज्ञान।

[2] 'हुर्रा' 'Hurrah' सदृश प्रसन्नता-सूचक नाद।

५. बुद्ध बनने का संकल्प

उसने कीचड़ में ही पड़े पड़े फिर आँखें खोल दीपङ्कर बुद्ध (=दशबल) की बुद्ध-श्री को देखते हुए सोचा—यदि मेरी इच्छा हो, तो मैं सब चित्त-मलों (=क्लेशों) का नाश कर भिक्षु बन रम्य नगर (=निर्वाण) में प्रवेश कर सकता हूँ। लेकिन अप्रसिद्ध वेषभूषा के साथ चित्त-मलों का नाश कर, निर्वाण-प्राप्ति करना मेरा ध्येय (=कृत्य) नहीं। मेरे लिए (तो) यही उचित (=योग्य) है कि मैं (भी) दशबल दीपङ्कर बुद्ध की तरह उत्तम बुद्ध पद को प्राप्त कर मानव-समूह (=महाजन) को, धर्म रूपी नाव पर चढ़ा संसार-सागर से पार उतार लेने के बाद निर्वाण को प्राप्त होऊँ। (इस लिए) आठ धर्मों पर विचार करते हुए बुद्ध-पद के लिए कामना (=प्रार्थना) करता लेटा रहा।

इसी लिए कहा है :—

"पृथ्वी पर लेटे हुए मुझे ख्याल आया कि यदि मेरी इच्छा हो, तो मैं आज अपने क्लेशों का नाश कर सकता हूँ; लेकिन (इस) अप्रसिद्ध वेष से धर्म के साक्षात् करने से क्या? मैं बुद्धपद (=सर्वज्ञता) प्राप्त कर देवताओं सहित (सारे) लोक का बुद्ध होऊँगा। प्रयत्न-शील (=वीर्य-दर्शी) हो मेरे अकेले (संसार सागर से) पार होने से क्या? बुद्ध-पद (=सर्वज्ञता) प्राप्त कर मैं देवताओं सहित (सारे) लोक को पार उतार सकूँगा। नर-श्रेष्ठ (=दीपङ्कर) के लिए की गई इस (पूजा के) प्रताप (=अधिकार) से, मैं बुद्ध-पद (=सर्वज्ञता) प्राप्त कर बहुत जनता को पार उतार सकूँगा। मैं (अब) आवागमन की धारा (=संसार-स्रोत) को छेद तीनों भवों[1] का नाश कर, देवताओं सहित (सारे) लोक को धर्म रूपी नाव पर चढ़ा कर पार उतारूँगा।"

लेकिन बुद्ध-पद की चाह रखने वाला यदि मनुष्य-योनि, लिङ्ग-प्राप्ति, हेतु (=भाग्य), बुद्ध (=शास्ता) का दर्शन, संन्यास (=प्रव्रज्या) और उसके गुण की प्राप्ति, योग्यता (=अधिकार), कामना (=छन्द)—(इन)

[1] काम-भव, रूप-भव तथा अरूप-भव।

आठ धर्मों से युक्त हो, तभी (उस को) वह प्रबल इच्छा (=अभिनीहार) पूरी होती है।

मनुष्य योनि में ही बुद्ध-पद की कामना करने वाले की इच्छा पूरी होती है। नाग, गरुड़ या देवता की योनियों में वह पूरी नहीं हो सकती। मनुष्य योनि में भी पुरुष-लिङ्ग में स्थित होने ही पर इच्छा पूरी होती है। स्त्री, षण्ड (=नपुंसक) अथवा (स्त्री-पुरुष) दोनों लिङ्गों वाले होने पर पूरी नहीं हो सकती। पुरुष होने पर भी यदि उसी जन्म में अर्हत पद की प्राप्ति का **हेतु**[1] हो तो इच्छा पूरी होती है, नहीं तो नहीं। हेतु होने पर भी बुद्ध के जीते जी उनके पास प्रबल इच्छा (=प्रार्थना) रखने वाले की ही इच्छा पूरी होती है; बुद्ध के निर्वाण प्राप्त हो जाने पर (उनके) चैत्य (=मृतस्तूप) अथवा बोधिवृक्ष के पास प्रार्थना करके इच्छा पूरी नहीं होती। बुद्धों के पास से (अर्हत पद की प्राप्ति) के लिए इच्छा करते हुए भी भिक्षु-आश्रमी की ही इच्छा पूरी होती है, गृहस्थ-आश्रमी की नहीं। भिक्षु आश्रमियों में भी जो पाँच **अभिज्ञाओं** और आठ **समापत्तियों** को प्राप्त कर चुका हो, उसी की पूरी होती है। जिसे यह गुण (=गुण-सम्पत्ति) प्राप्त नहीं, उसकी नहीं। गुण के होने पर भी, जिसने अपना जीवन बुद्धों के लिए अर्पण कर दिया, इस (त्याग)-अधिकार से अधिकारी होने पर उसी की पूरी होती है, दूसरे की नहीं। अधिकारी होने पर बुद्ध-पद की प्राप्ति में सहायक धर्मों के प्रति जिसकी महती इच्छा, महान् उत्साह और प्रयत्न तथा खोज का भाव (पर्येषण) होता है, उसी की पूरी होती है; दूसरे की नहीं।

इच्छा-बल (=छन्द) के विषय में एक उपमा है—जो कोई सारे ब्रह्माण्डों (=चक्रवालों) के (गल कर) जलमय हुए (समुद्र के) गर्भ को, अपने बाहु-बल से तैर कर, पार जा सके, वही (पुरुष) बुद्ध-पद प्राप्त कर सकता है; अथवा जो कोई सारे ब्रह्माण्डों (=चक्रवालों) के बाँसों की झाड़ी से ढके हुए गर्भ को हटा कर, मर्दन कर, पाँव से चल कर, पार कर सके, वह बुद्धपद को प्राप्त कर सकता है; अथवा जो कोई छुरियाँ गड़े हुए सारे ब्रह्माण्ड पर नंगे पाँव से चलकर

[1] **पूर्व कर्म का पुण्य फल**

उसे पार कर सके, वह बुद्ध-पद को प्राप्त कर सकता है; अथवा जो कोई अंगारों से भरे हुए सारे ब्रह्माण्ड के गर्भ को पाँव से मर्दन करता हुआ, उस पार जा सके, वह बुद्ध-पद को प्राप्त कर सकता है। जो इनमें से किसी एक बात को भी अपने लिए दुष्कर न समझे; 'मैं इसे भी तैर कर, वा चल कर पार करूँगा,' जिसकी कि इस प्रकार की महान् इच्छा, उत्साह, प्रयत्न तथा पर्येषण हो; उसी की प्रार्थना पूरी होती है; दूसरे की नहीं।

तपस्वी सुमेध इन आठ बातों (=धर्मों) का ख्याल कर बुद्ध-पद (की प्राप्ति) के लिए बलवती इच्छा (=अभिनीहार) कर लेट गया।

६. दीपङ्कर की भविष्यद्वाणी

भगवान् **दीपङ्कर** आ, तपस्वी **सुमेध** के सिर की ओर खड़े हुए। मणि (-निर्मित) खिड़की को खोलते हुए की तरह, पाँच प्रकार के रंगीन चक्षु-प्रासाद से युक्त आँखों को खोल कर कीचड़ पर पड़े तपस्वी सुमेध को देखा। फिर—यह तपस्वी 'बुद्धपद' के लिए दृढ़ संकल्प (=अभिनीहार) करके पड़ा है; इसकी इच्छा पूरी होगी अथवा नहीं?—इस प्रकार भविष्य सोचते हुए जाना कि अब से चार असंखेय्य एक लाख कल्प बीतने पर **गौतम** नाम के बुद्ध होंगे। (तब) मण्डली के बीच में खड़े हो कहा—"देखते हो न तुम कीचड़ में पड़े उग्र तपस्या करने वाले इस तपस्वी को?"

"भन्ते! हाँ!"

"यह तपस्वी बुद्ध-पद के लिए दृढ़-संकल्प कर के पड़ा है। इसकी कामना पूरी होगी। अब से चार असंखेय्य एक लाख कल्प के बीतने पर यह गौतम नामक 'बुद्ध' होगा। उस जन्म में इसका निवास **कपिलवस्तु**[1] नामक नगर होगा; **माया** नामक देवी इसकी माता होगी, **शुद्धोदन** नामक राजा पिता होगा। **उपतिष्य**[2] नामक स्थविर प्रधान-शिष्य (=अग्र-श्रावक) होगा। **कोलित**[2] नामक (स्थविर) द्वितीय शिष्य (=श्रावक) होगा। आनन्द (स्थविर)

[1] तिलौराकोट, तौलिहवा (नैपाल-तराई) से दो मील उत्तर।

[2] सारिपुत्र तथा मौद्गल्यायन।

परिचारक (=उपस्थायक) होगा। **खेमा** नामक स्थविरा प्रधान शिष्या (=अग्र श्राविका) होगी; **उत्पलवर्णा** नामक स्थविरा द्वितीय शिष्या (=श्राविका) होगी। ज्ञान के परिपक्व हो जाने पर वह गृह त्याग (महाभि-निष्क्रमण) करेगा; और महान् तपस्या करने के बाद **न्यग्रोध**(-वृक्ष) के नीचे खीर ग्रहण कर, **नेरञ्जरा**[1] नदी के किनारे उसे भोजन कर, बोधि मण्ड पर चढ़ **अश्वत्थ**[2] वृक्ष के नीचे बुद्ध-पद प्राप्त करेगा।

इसी लिए कहा है:—

"सत्कार(=आहुति)-भाजन, लोक के ज्ञाता, दी प ङ्क र मेरे शिर के पास खड़े हो कर यह बोले—"इस उग्र तपस्या करने वाले जटिल तपस्वी को देखते हो? अब से चार असंखेय्य एक लाख कल्प के बीतने पर यह बुद्ध होगा। तथागत क पि ल (वस्तु) नामक रम्य नगर से निकल कर, महान् उद्योग और दुष्कर तपस्या करेंगे। फिर अ ज पा ल वृक्ष के नीचे बैठ खीर ग्रहण कर, ने र ञ्ज रा नदी के तट पर जायेंगे। वहाँ ने र ञ्ज रा नदी के किनारे वह खीर को खा सुसज्जित मार्ग से बोधि-वृक्ष के नीचे जायेंगे। वह अनुपम महा यशस्वी (पुरुष) बोधिमण्ड की प्रदक्षिणा कर, अ श्व त्थ पीपल-वृक्ष के नीचे बुद्ध (पद को प्राप्त) होगा। इसकी जननी, माता मा या (देवी) होगी; पिता शु द्धो द न और यह गौ त म होगा। इस जिन (=शास्ता) के को लि त और उ प ति ष्य नाम के वीतरागी, शान्त-चित्त, समाधि-प्राप्त (दो) अर्हत अग्र-श्रावक होंगे; और आ न न्द नामक परिचारक (=उपस्थायक) परिचर्या (=उपस्थान) करेंगे। क्षे मा तथा उ त्प ल वर्णा आश्रव-रहित, वीतराग, शान्त-चित्त, समाधि-प्राप्त (दो) अर्हत प्रधान शिष्यायें (=अग्र-श्राविकायें) होंगी और उन भगवान् के बुद्ध(-पद) प्राप्ति करने का वृक्ष (=बोधि) पीपल (=अ श्व त्थ - बो धि) कहलाएगा।"

तपस्वी सुमेध 'मेरी' कामना सम्पूर्ण होगी' सोच संतुष्ट हुआ। जनता (=महाजन) ने बुद्ध (=दशबल) दीपङ्कर के वचन को सुना; और 'यह

[1] नीलाजन नदी (जि० गया)।

[2] बोध गया का प्रसिद्ध पीपल-वृक्ष।

तपस्वी सुमेध बुद्ध-बीज है, बुद्ध-अंकुर है'—सोच कामना की—"जैसे सामने के घाट (=तीर्थ) से नदी को पार न कर सकने पर मनुष्य नीचे के घाट से नदी पार करता है। इसी प्रकार हम बुद्ध दीपङ्कर के शासन-काल में यदि मार्ग-फल को न पा सकें, तो जब तू बुद्ध होगा, तब तेरे सन्मुख मार्ग-फल प्राप्त करने में समर्थ हों।"

दीपङ्कर बुद्ध भी बोधिसत्त्व (सुमेध) की प्रशंसा कर, आठ मुट्ठी फूल से पूज, प्रदक्षिणा कर चल दिये और वे चार लाख अर्हत भी गन्ध तथा माला से बोधिसत्त्व की पूजा कर, प्रदक्षिणा कर आगे बढ़े। देवता और मनुष्य भी उसी प्रकार पूजा तथा वन्दना कर चल दिये। सब के चले जाने पर बोधिसत्त्व उठ कर **पारमिताओं** पर चिन्तन करने की इच्छा से, पुष्पों के ढेर पर पालथी मार बैठ गये। बोधिसत्त्व के इस प्रकार बैठने पर, सारे दस हज़ार ब्रह्माण्डों (=चक्र वालों) के देवताओं ने एकत्र हो, साधुकार दे—"(साधु!) आर्य! तपस्वी सुमेध! (साधु)! पुराने बोधिसत्त्वों की (भाँति) आसन मार पारमिताओं पर चिन्तन करने की इच्छा से बैठने के समय जो जो शकुन (=पूर्व निमित्त) पहले प्रकट होते रहे; वह सब आज भी प्रकट हो रहे हैं, इस लिए हम यह जानते हैं कि तू निस्सन्देह बुद्ध होगा। जिनके लिए यह चिन्ह प्रकट होते हैं, वह निश्चय बुद्ध होता है। इस लिए तू अपने उद्योग को दृढ़ करके प्रयत्न कर।" (इस प्रकार देवताओं ने) नाना प्रकार की स्तुतियों से बोधिसत्त्व की प्रशंसा की। इस लिए कहा है:—

"अनुपम महर्षि (दीपङ्कर) के इस वचन को सुन कर, कि यह (तपस्वी सुमेध) बुद्ध-अङ्कुर हैं देवता और मनुष्य प्रसन्न हुए। (उस समय) देवताओं सहित सारे दस हज़ार ब्रह्माण्ड घोषणा करते, ताली बजाते, हँसते तथा हाथ जोड़ कर प्रणाम करते थे और (लोग सोच रहे थे) कि यदि इस (दीपङ्कर) बुद्ध (=लोक नाथ) के काल में हम चूक गये, तो भविष्य में इस (तपस्वी सुमेध के बुद्ध होने) के समय (कृतकार्य) होंगे। जिस प्रकार नदी पार करने वाले पुरुष सामने के घाट के छूट जाने पर, नीचे के घाट से महा नदी को पार करते हैं, इसी प्रकार यदि हम सब से यह बुद्ध छूट जायेंगे, तो हम भविष्य काल में इन बुद्ध के समकालीन (उत्पन्न) होंगे।"

७. सुमेध का दृढ़ संकल्प

"पूजा के भाजन, लोक के जानकार, दीपङ्कर ने मेरे कार्य की प्रशंसा करके दक्षिण पैर उठाया। वहाँ जितने बुद्ध के शिष्य (=जिन-पुत्र) थे, उन सब ने मेरी परिक्रमा की। नर, नाग, (तथा) गन्धर्व, सभी अभिवादन करके गये। जब संघ-सहित बुद्ध (=लोक नायक) आँखों से ओझल हो गये, तब मैं प्रसन्न चित्त हो उठ बैठा। सुख से सुखित, प्रमोद से प्रमुदित, आनन्द (=प्रीति) से शान्त हो, मैंने आसन लगाया। आसन लगा मैं सोचने लगा—मैं ध्यान-प्राप्त हूँ। अभिज्ञाएँ मुझे मिल चुकी हैं। सहस्रों लोकों में भी मेरे समान (दूसरा) ऋषि नहीं। मैं अद्वितीय (=असदृश्य) हूँ। मैंने दिव्य-शक्ति (=ऋद्धि-धर्मों) में ऐसा सुख प्राप्त किया है।

"मेरे पालथी मार बैठने पर, इन सहस्र ब्रह्माण्डों के निवासियों ने महानाद किया—"तू निश्चय से बुद्ध होगा।"

"पूर्व (काल) में बोधिसत्त्वों के आसन लगा कर बैठने पर, जो शकुन दिखाई देते रहते हैं, वे आज (भी) दिखाई देते हैं। शीत का चला जाना, उष्णता का शान्त हो जाना—ये शकुन आज भी दिखाई देते हैं। (इसलिए) तू निश्चय से बुद्ध होगा।"

"दस सहस्र ब्रह्माण्डों का निश्शब्द और निर्द्वन्द्व होना—ये शकुन आज भी दिखाई देते हैं। तू निश्चय से बुद्ध होगा।"

"न आँधी (=महा वायु), न नदियाँ (प्रचण्डता से) बहती हैं। ये शकुन आज भी दिखाई देते हैं। तू निश्चय से बुद्ध होगा।"

"उस समय जल तथा स्थल (दोनों) पर फूलने वाले सभी फूल फूल जाते हैं। सो सभी आज भी फूले हुए हैं। तू निश्चय से बुद्ध होगा।"

"उस समय सभी लतायें तथा वृक्ष फलों से लदे होते हैं। वे सभी आज फलों से लदे हैं। तू निश्चय से बुद्ध होगा।"

"उस समय आकाश और पृथ्वी (दोनों) में विद्यमान रत्न चमकने लगते हैं। वे सभी रत्न आज चमक रहे हैं। तू निश्चय से बुद्ध होगा।"

"उस समय दिव्य और मानुष (सभी) बाजे (तूर्ण) बजते हैं, वे दोनों भी आज बज रहे हैं। तू निश्चय से बुद्ध होगा।"

"उस समय आकाश से चित्र विचित्र फूलों की वर्षा होती है। वह वर्षा आज भी हो रही है। तू निश्चय से बुद्ध होगा।"

"(उस समय) महासमुद्र संकुचित होता है, और दस सहस्र ब्रह्माण्ड काँपने लगते हैं। वे भी दोनों आज कंपन का शब्द कर रहे हैं। तू निश्चय से बुद्ध होगा।"

"उस समय दस सहस्र ब्रह्माण्डों के नरकों की भी अग्नियाँ बुझ जाती हैं, वे अग्नियाँ भी आज बुझ गई हैं। तू निश्चय से बुद्ध होगा।"

"उस समय सूर्य्य निर्मल होता है, सभी तारे दिखाई देने लगते हैं, वे भी आज दिखाई दे रहे हैं। तू निश्चय से बुद्ध होगा।"

"उस समय बिना वर्षा के ही पृथ्वी से पानी निकलता है, वह भी आज पृथ्वी से निकल रहा है। तू निश्चय से बुद्ध होगा।"

"उस समय आकाश मण्डल में तारे और नक्षत्र चमकने लगते हैं। चन्द्रमा वि शा खा नक्षत्र में होता है।....'तू निश्चय से बुद्ध होगा।"

"(उस समय) बिलों में तथा पर्वतों पर रहने वाले सब (प्राणी) अपने अपने घरों से निकल आते हैं। वे भी आज (अपने अपने) बसेरों से बाहर आ गये हैं। तू निश्चय से बुद्ध होगा।"

"उस समय प्राणियों को असन्तोष नहीं होता, सभी जीव संतुष्ट होते हैं। वे भी सब आज सन्तुष्ट हैं। तू निश्चय से बुद्ध होगा।"

"(उस समय) रोग शान्त हो जाते हैं, भूख नष्ट हो जाती है। वे (लक्षण) भी आज दिखाई देते हैं। तू निश्चय से बुद्ध होगा।"

"उस समय राग कम हो जाता है, द्वेष और मोह भी नष्ट हो जाते हैं। वे भी आज सब नष्ट हो गये हैं। तू निश्चय से बुद्ध होगा।"

"उस समय (किसी को) भय नहीं होता। आज भी ऐसा ही दिखाई देता है। इस चिन्ह से हम जानते हैं, कि तू निश्चय से बुद्ध होगा।"

"(उस समय) धूलि ऊपर को उड़ती है, आज भी वह दिखाई देती है। इस चिन्ह से हम जानते हैं, तू निश्चय से बुद्ध होगा।"

"(उस समय हवा से) बुरी गन्ध हट जाती है, दिव्य गन्ध बहती है। वह गन्ध भी आज बह रही है, तू निश्चय से बुद्ध होगा।"

"आकार रहित (=अरूपी) देवताओं के अतिरिक्त बाकी सब देवता

दिखाई देने लगते हैं। वे भी आज सब दिखाई दे रहे हैं। तू निश्चय से बुद्ध होगा।"

"उस समय जितने नरक (होते) हैं, वे सब दिखाई देते हैं। वे भी सब आज दिखाई दे रहे हैं। तू निश्चय से बुद्ध होगा।"

"उस समय दीवार, दरवाज़े तथा पर्वत ढाँकने की शक्ति खोये हुए (=निरावरण) होते हैं। वे भी आज आकाश से हो गये हैं। तू निश्चय से बुद्ध होगा।"

"उस क्षण में जन्म और मृत्यु का होना बन्द हो जाता है। वह लक्षण भी आज दिखाई देते हैं। तू निश्चय से बुद्ध होगा।"

"उद्योग को दृढ़ कर। रुक मत, आगे बढ़। हम यह जानते हैं, तू निश्चय से बुद्ध होगा।"

दीपङ्कर बुद्ध तथा उन सहस्र ब्रह्माण्डों के देवताओं के वचन को सुन कर, (और भी) अधिक आनन्द (=सौमनस्य) से उत्साहित हो बोधिसत्त्व ने सोचा—बुद्धों का वचन झूठा नहीं होता? बुद्धों का कथन उलट नहीं सकता। जैसे आकाश में फेंके ढेले का गिरना, जन्मने वाले का मरना, उषा (=अरुण के उद्गमन) के वाद सूर्य्योदय, गुफा से निकलते समय सिंह का गर्जन, भारी गर्भवती स्त्री का जनन—(यह सब) अनिवार्य (=ध्रुव) और अवश्यम्भावी है, इसी प्रकार बुद्धों का वचन निष्फल नहीं जाता "मैं निश्चय से बुद्ध होऊँगा।" इसी लिए कहा है :—

"तब बुद्ध तथा दस हज़ार ब्रह्माण्डों के देवताओं के वचन को सुन कर सन्तुष्ट, प्रसन्न हो मैंने सोचा—"बुद्ध एक बात कहने वाले होते हैं। उनका वचन निष्फल नहीं जाता। बुद्धों का कथन असत्य नहीं होता। मैं ज़रूर बुद्ध होऊँगा। जिस प्रकार आकाश में फेंका हुआ ढेला, पृथ्वी पर अवश्य गिरता है, इसी प्रकार श्रेष्ठ बुद्धों का वचन अनिवार्य (=ध्रुव=शाश्वत) है। जिस प्रकार सब प्राणियों का मरना अनिवार्य है, उसी प्रकार श्रेष्ठ बुद्धों का वचन अनिवार्य है। जिस प्रकार रात्रि के बीतने पर सूर्योदय निश्चित है, इसी प्रकार श्रेष्ठ-बुद्धों के वचन (की पूर्ति) निश्चित है। जिस प्रकार बसेरे से निकलते सिंह का गर्जन करना निश्चित है, उसी प्रकार श्रेष्ठ-बुद्धों के वचन (की पूर्ति) निश्चित है। जिस प्रकार गर्भ में आये प्राणियों का प्रसव निश्चित है, उसी प्रकार श्रेष्ठ-बुद्धों के वचन (की पूर्ति) निश्चित है।"

८. दस पारमिताएँ और दृढ़ संकल्प की पूजा

(१) दान पारमिता

"मैं बुद्ध अवश्य होऊँगा", (इस प्रकार का) निश्चय कर, बुद्ध बनाने वाले धर्मों का निश्चय करने के लिए सोचा—बुद्ध बनाने वाले धर्म कहाँ हैं? ऊपर हैं, नीचे हैं, (वा) दस दिशाओं में हैं? इस प्रकार क्रम से सभी धर्मों (=धर्म धातुओं) पर विचार करने लगा। फिर प्राचीन काल के बोधिसत्त्वों द्वारा सेवित किये प्रथम-पारमिता **दान-पारमिता**[1] को देख, उसने अपने को समझाया—'पण्डित सुमेध! अब से तुझे पहले दान-पारमिता पूरी करनी होगी। जिस प्रकार पानी का घड़ा उलटने पर अपने को बिलकुल खाली कर, पानी गिरा देता है, और फिर वापिस ग्रहण नहीं करता, इसी प्रकार धन, यश, पुत्र, दारा अथवा (शरीर का) अङ्ग प्रत्यङ्ग (किसी) का (भी कुछ) ख्याल न कर, जो कोई भी याचक आवे, उसकी सभी इच्छित (वस्तुओं) को ठीक से प्रदान करते हुए, बोधि-वृक्ष के नीचे बैठ कर तू बुद्ध-पद को प्राप्त होगा। इस लिए पहले तू **दान पारमिता** (की पूर्ति) के लिए दृढ़ संकल्प (=अधिष्ठान) कर। इसी लिए कहा है—

'अहो! बुद्ध बनाने वाले धर्मों को यहाँ, वहाँ, ऊपर, नीचे दसों दिशाओं में, जितनी भी धर्म-धातुएँ हैं, (उन सब में) ढूँढ़ते हुए, मैंने पूर्व-महर्षियों द्वारा सेवित महान् मार्ग (=महापथ, महायान) दान-पारमिता को देखा। (और समझाया) पहले तू दृढ़ता पूर्वक इस दान-पारमिता को ग्रहण कर। यदि बुद्ध-पद के पाने की इच्छा है, तो दान को परम सीमा तक चला जा। जिस प्रकार पानी का भरा घड़ा उलटा करने पर अपने सारे पानी को गिरा देता है, कुछ भी बचा नहीं रखता, उसी प्रकार तू उत्तम, मध्यम, अधम (सभी तरह के) याचकों को पा, औंधे घड़े की तरह अपने सरवस्व का दान कर।'

(२) शील पारमिता

'बुद्ध बनाने वाले धर्म इतने ही नहीं हो सकते' (विचार) और भी सोचते

[1] दान की पराकाष्ठा।

हुए उसने द्वितीय (पारमिता) शील-पारमिता को देख कर सोचा—'पण्डित सुमेध' अब से तुझे शील-पारमिता भी पूरी करनी होगी। जिस प्रकार चमरी (=चमरी-मृग) अपने जीवन की भी परवाह न कर, अपनी पूँछ की रक्षा करता है, इसी प्रकार तू भी अब से जीवन की भी परवाह न कर शील रक्षा करते हुए बुद्ध-पद को प्राप्त होगा। "(इस लिए) तू द्वितीय शील-पारमिता (की पूर्ति) का दृढ़ संकल्प कर।" इसी से कहा है :—

"यह बुद्ध बनाने वाले धर्म इतने ही नहीं होंगे। और भी जो जो धर्म बुद्ध-पद की प्राप्ति में सहायक हैं; उन्हें भी ढूंढ़ना चाहिए, यह सोचते हुए उसने पूर्व महर्षियों से सेवित द्वितीय पारमिता शील-पारमिता को देखा। (और) अपने मन को समझाया—तू इस दूसरी शील-पारमिता को दृढ़ता पूर्वक ग्रहण कर। यदि बुद्ध-पद की इच्छा है, तो शील की (चरम) सीमा तक पहुँच जा। जिस प्रकार चमरी चाहे मर जावे; लेकिन किसी चीज में फँसी अपनी पूँछ को हानि पहुँचने नहीं देती। उसी प्रकार चा रों भू मि यों[1] में शील की पूर्ति करते हुए चमरी की पूँछ की भाँति (अपने) शील की रक्षा कर।

(३) नैष्क्रम्य पारमिता

फिर विचार हुआ—'बुद्ध बनाने वाले धर्म इतने ही नहीं हो सकते' और भी सोचते हुए तृतीय नैष्क्रम्य पारमिता को देख विचारा—"पण्डित सुमेध ! अब से तुझे नैष्क्रम्य पारमिता भी पूरी करनी होगी। जिस प्रकार जेल (=बन्धनागार) में चिरकाल तक रहने वाला मनुष्य भी जेल के प्रति स्नेह नहीं रखता, वहाँ न रहने के लिए ही उत्कण्ठित है, इसी प्रकार तू सब योनियों (=भवों) को जेल (सदृश) ही समझ, सब योनियों से ऊब कर उन्हें छोड़ने की इच्छा कर, नैष्क्रम्य की ओर झुक। इस प्रकार तू बुद्ध-पद को प्राप्त होगा। (इस लिए) तू तृतीय नैष्क्रम्य-पारमिता (की पूर्ति) का दृढ़ संकल्प (=अधिष्ठान) कर। इसीलिए कहा है—

[1] प्रतिमोक्ष संवर-शील (=यम नियमों की पूर्ति), इंद्रिय संवर-शील (=इन्द्रिय संयम), आजीव परिशुद्धि (=जीविका की शुद्धि), प्रत्यय परि-षेवण (=शारीरिक आवश्यकताओं की खोज)।

'बुद्ध बनाने वाले धर्म इतने ही नहीं होंगे। जो जो भी बुद्ध-पद की प्राप्ति में सहायक धर्म हैं, उन्हें भी ढूंढ़ना चाहिए। यह सोचते हुए पूर्व ऋषियों से सेवित तृतीय नैष्कम्य पारमिता को देखा। तू इस तीसरी नैष्कम्य पारमिता को दृढ़ता पूर्वक ग्रहण कर। यदि बुद्ध-पद की प्राप्ति की इच्छा है, तो नैष्कम्यता की भी सीमा को पार कर जा। जिस प्रकार चिरकाल तक जेल में रह (उसके) दुःखों को झेले मनुष्य को उस जेल के प्रति राग उत्पन्न नहीं होता (बल्कि उससे) छूटना ही चाहता है; इसी प्रकार तू सब योनियों को जेल की तरह समझ, और उन (योनियों) से छूटने के लिए नैष्कम्य की ओर चल।

(४) प्रज्ञा पारमिता

तब 'इतने ही बुद्ध बनाने वाले धर्म नहीं हो सकते, और भी (होंगे)' सोचते हुए चौथी प्रज्ञा-पारमिता को देखा और मन में सोचा—"पण्डित सुमेध! अब से तुझे प्रज्ञा-पारमिता भी पूरी करनी होगी। उत्तम, मध्यम, अधम, किसी को भी बिना छोड़े सभी पण्डितों के पास जा कर प्रश्न पूछने होंगे। जिस प्रकार भिक्षा माँगने वाला भिक्षु (उत्तम, मध्यम) हीन (सभी) कुलों में किसी को भी न छोड़ कर एक ओर से भिक्षाटन करते हुए शीघ्र ही (आवश्यक) भोजन (=यापन) प्राप्त कर लेता है, इसी प्रकार तू भी सभी पण्डितों के पास जा कर प्रश्न पूछते पूछते बुद्ध-पद को प्राप्त कर लेगा।" इस लिए तू चतुर्थ प्रज्ञा पारमिता (की पूर्ति) का दृढ़ संकल्प कर। इसी से कहा है—

'बुद्ध बनाने वाले धर्म इतने ही नहीं होंगे। और भी जो बुद्ध-पद की प्राप्ति में सहायक धर्म हैं उन्हें भी खोजना चाहिए। यह ढूंढ़ने की इच्छा से पूर्व ऋषियों से सेवित चौथी प्रज्ञा पारमिता को देखा।" चौथे तू इस प्रज्ञा-पारमिता को दृढ़ता पूर्वक ग्रहण कर। यदि बुद्धत्व-प्राप्ति की इच्छा है, तो प्रज्ञा की सीमा के पार जा। जिस प्रकार भिक्षु उत्तम, मध्यम (तथा) अधम कुलों में से (किसी एक कुल को भी) बिना छोड़े, भिक्षा माँगते हुए अपना निर्वाह (=यापन) करता है, उसी प्रकार तू पण्डित जनों से सर्वदा (प्रश्न) पूछता हुआ, प्रज्ञा की सीमा के अंत पर जा कर बुद्ध-पद को प्राप्त करेगा।"

(५) वीर्य पारमिता

'बुद्ध बनाने वाले धर्म इतने ही नहीं हो सकते, और भी' सोचते हुए पाँचवीं

वीर्य-पारमिता को देख यह (विचार) हुआ। "पण्डित सुमेध! अब से तुझे वीर्य-पारमिता भी पूरी करनी होगी। जिस प्रकार (मृग-)राज सिंह सब अवस्थाओं (=ईर्यापथों) में दृढ़ उद्योगी होता है, उसी प्रकार तू भी सब योनियों में, सब अवस्थाओं में दृढ़ उद्योगी, निरालस्य, और यत्नवान् हो बुद्ध-पद को प्राप्त होगा। (इसलिए) तू पाँचवीं वीर्य-पारमिता (की पूर्ति) का दृढ़ संकल्प कर। इसीसे कहा है—

बुद्ध बनाने वाले धर्म इतने ही नहीं होंगे। और भी जो जो बुद्ध-पद की प्राप्ति में सहायक धर्म हैं, उन्हें भी खोजना चाहिए। यह सोचते हुए पूर्व-ऋषियों से सेवित पाँचवीं वीर्य-पारमिता को देखा। पाँचवें तू इस वीर्य-पारमिता को दृढ़ता-पूर्वक ग्रहण कर। यदि बुद्धत्व प्राप्ति की इच्छा है तो वीर्य की सीमा के पार जा। जिस प्रकार मृग-राज सिंह बैठते, खड़े होते, चलते (सदैव) निरालस, उद्योगी तथा दृढ़-मनस्क होता है, उसी प्रकार तू भी सब योनियों में दृढ़ उद्योग को ग्रहण कर। वीर्य की सीमा के अंत पर जा कर बुद्ध-पद को प्राप्त करेगा।

(६) क्षान्ति पारमिता

तब 'बुद्ध बनाने वाले धर्म इतने ही नहीं हो सकते, और भी' सोचते हुए, छठी क्षान्ति पारमिता को देखा। (उसके मन में) यह विचार हुआ। 'पण्डित सुमेध! अब से तुझे क्षान्ति पारमिता भी पूरी करनी होगी। सम्मान और अपमान, दोनों को सहना होगा। जिस प्रकार पृथ्वी पर (लोग) शुद्ध चीज भी फेंकते हैं, अशुद्ध चीज भी फेंकते हैं। पृथ्वी सहन करती है। न तो (अच्छी चीज फेंकने से) खुश होती है, न (बुरी चीज फेंकने से) नाराज। इसी प्रकार तू भी सम्मान तथा अपमान, दोनों को सहने वाला हो कर ही बुद्ध-पद को प्राप्त होगा। (इसलिए) तू छठी क्षान्ति-पारमिता (की पूर्ति) का दृढ़ संकल्प कर। इसी से कहा है—

बुद्ध बनाने वाले धर्म इतने ही नहीं होंगे और भी जो बुद्ध-पद की प्राप्ति में सहायक धर्म हैं उन्हें भी ढूंढ़ना चाहिए। यह सोचते हुए, पूर्व-ऋषियों से सेवित छठी क्षान्ति-पारमिता को देखा और (मन में) विचार हुआ—छठे तू इस क्षान्ति-पारमिता को दृढ़ता-पूर्वक ग्रहण कर। इसमें स्थिर चित्त हो लगने पर तू बुद्ध-पद को प्राप्त करेगा। जिस प्रकार पृथ्वी (अपने पर) शुद्ध, अशुद्ध सब ही

(चीजों) के फेंकने को सहन करती है, न क्रोध ही करती है, न खुश ही होती है। उसी प्रकार तू भी सब (प्रकार) के मान, अपमान सहता क्षान्ति की सीमा के अंत पर जा बुद्ध-पद को प्राप्त करेगा।

(७) सत्य पारमिता

बुद्ध बनाने वाले धर्म इतने ही नहीं हो सकते, और भी सोचते हुए, सातवीं सत्य पारमिता को देखा और मन में यह विचार हुआ। 'पण्डित सुमेध! अब से तुम्हें सत्य पारमिता भी पूरी करनी होगी। चाहे सिर पर विजली गिरे, धन आदि का अत्यधिक लोभ हो तो भी जान बूझ कर झूठ न बोलना चाहिए। जिस प्रकार शुक्र का तारा (औषधि) चाहे कोई ऋतु हो अपने गमन-मार्ग को छोड़ कर, दूसरे मार्ग से नहीं जाता, अपने ही मार्ग से जाता है। इसी प्रकार तू भी सिवाय सत्य को छोड़, मृषावाद न करके ही बुद्धत्व को प्राप्त होगा। (इसलिए) तू सातवीं सत्य-पारमिता (की पूर्ति) का दृढ़ अधिष्ठान कर। इसी से कहा है—

बुद्ध बनाने वाले धर्म इतने ही नहीं होंगे और भी जो जो बुद्ध-पदवी-प्राप्ति में सहायक धर्म हैं उन्हें भी ढूँढ़ना चाहिए। यह सोचते हुए, पूर्व ऋषियों से सेवित सातवीं सत्य-पारमिता को देखा। (और) मन में कहा—सातवें तू इस सत्य-पारमिता को दृढ़ता पूर्वक ग्रहण कर। एक बात बोलने वाला होने पर तू बुद्धपद को प्राप्त करेगा। जिस प्रकार शुक्र (तारा) सदैव (लोक) में एक समान हो, वर्षा-ऋतु अथवा (दूसरे) समय में अपने मार्ग का अतिक्रमण नहीं करता। उसी प्रकार तू भी सत्य (के विषय) में अपने मार्ग का अतिक्रमण न करने वाला बन। सत्य की सीमा के अंत पर जा, तू बुद्धपद को प्राप्त करेगा।

(८) अधिष्ठान-पारमिता

बुद्ध बनाने वाले धर्म इतने ही नहीं हो सकते, और भी सोचते हुए आठवीं अधिष्ठान (=दृढ़ संकल्प) (-पारमिता) को देखा, और (उसके मन में) विचार हुआ। 'पण्डित सुमेध! अब से तुझे अधिष्ठान पारमिता भी पूरी करनी होगी। जो अधिष्ठान (=दृढ़ निश्चय) करना होगा, उस अधिष्ठान पर निश्चल रहना होगा। जिस प्रकार पर्वत सब दिशाओं में (प्रचण्ड) हवा के झोंके के लगने पर भी, न काँपता है, न हिलता है, और अपने स्थान पर स्थिर रहता है, इसी प्रकार तू भी अपने अधिष्ठान में निश्चल रहते हुए ही बुद्ध-पद

को प्राप्त होगा। (इसलिए) तू आठवीं अधिष्ठान-पारमिता (की पूर्ति) का दृढ़ संकल्प कर। इसीसे कहा :—

'बुद्ध बनाने वाले धर्म इतने ही नहीं होंगे। और भी जो जो बुद्धपद की प्राप्ति में सहायक धर्म हैं, उन्हें भी ढूँढ़ना चाहिए, यह सोचते हुए, पूर्व ऋषियों से सेवित आठवीं अधिष्ठान-पारमिता को देखा। (और मन में कहा—) आठवें तू अधिष्ठान-पारमिता को दृढ़ता पूर्वक ग्रहण कर इसमें अचल होने से तू बुद्ध-पद को प्राप्त कर। जिस प्रकार अचल, सुप्रतिष्ठित, शैल पर्वत तेज वायु से (भी) नहीं काँपता, अपने स्थान पर ही स्थिर रहता है, इसी प्रकार तू भी अपने अधिष्ठान में सदैव निश्चल हो। अधिष्ठान की सीमा के अंत पर जाने से तू बुद्ध-पद को प्राप्त करेगा।

(९) मैत्री-पारमिता

तब बुद्ध बनाने वाले धर्म इतने ही नहीं हो सकते', और भी सोचते हुए नौवीं मैत्री पारमिता को देखा। और (उसके) मन में यह विचार हुआ। 'पण्डित सुमेध! अब से तुझे मैत्री-पारमिता भी पूरी करनी होगी। हित, अनहित सब के प्रति समानभाव रखना होगा। जिस प्रकार पानी, पापी और पुण्यात्मा दोनों के लिए एक जैसी शीतलता रखता है, उसी प्रकार तू भी सब प्राणियों के प्रति एक जैसी मैत्री रखते हुए बुद्ध-पद को प्राप्त होगा। (इसलिए) तू मैत्री-पारमिता (की पूर्ति) का दृढ़ निश्चय कर। इसीसे कहा :—

'बुद्ध बनाने वाले धर्म इतने ही नहीं होंगे', और भी जो बुद्ध-पद की प्राप्ति में सहायक धर्म हों उन्हें भी ढूँढ़ना चाहिए। यह सोचते हुए, पूर्व ऋषियों से सेवित नौवीं मैत्री-पारमिता को देखा। (मन से कहा—) तू इस मैत्री-पारमिता को दृढ़ता-पूर्वक ग्रहण कर। यदि बुद्ध-पद की प्राप्ति की इच्छा है तो मैत्री-भावना में बेजोड़ बन। जिस प्रकार पानी, पापी और पुण्यात्मा दोनों को ही समान रूप से शीतलता पहुँचाता है और (दोनों के) मैल को धो देता है। उसी प्रकार तू भी हित, अनहित दोनों के प्रति समान भाव से मैत्री-भावना कर। मैत्री-भावना की सीमा के अंत पर जाने से बुद्ध-पद को प्राप्त होगा।

(१०) उपेक्षा पारमिता

'बुद्ध बनाने वाले धर्म इतने ही नहीं हो सकते', और भी सोचते हुए दसवीं

उपेक्षा-पारमिता को देखा। (मन में) यह विचार हुआ—"पण्डित सुमेध! अब से तुझे उपेक्षा-पारमिता भी पूरी करनी होगी। सुख और दुःख में मध्यस्थ ही रहना होगा। जिस प्रकार पृथ्वी, शुचि और अशुचि, दोनों को (उसपर) फेंकने पर भी मध्यस्थ ही रहती है, इस प्रकार तू भी सुख, दुःख दोनों में मध्यस्थ रहते हुए बुद्ध-पद को प्राप्त होगा। (इसलिए) तू दसवीं उपेक्षा-पारमिता (की पूर्ति) का दृढ़ निश्चय कर। इसीसे कहा है :—

'बुद्ध बनाने वाले धर्म इतने ही नहीं होंगे', और भी जो जो बोधि-सहायक धर्म हैं, उन्हें भी ढूंढ़ना चाहिए। यह सोचते हुए पूर्व ऋषियों से सेवित दसवीं उपेक्षा-पारमिता को देखा। (मन से कहा—) दसवें तू इस उपेक्षा-पारमिता को दृढ़ करके ग्रहण कर। दृढ़ता-पूर्वक तुला (सदृश) बन, बुद्ध-पद को प्राप्त करेगा। जिस प्रकार पृथ्वी खुशी और नाराजी छोड़ (अपने ऊपर) शुचि और अशुचि, दोनों के फेंकने की उपेक्षा करती है, इसी प्रकार तू भी सदैव सुख दुःख के प्रति तुल्य हो। उपेक्षा की (चरम-)सीमा के अंत पर जाने से बुद्ध-पद को प्राप्त होगा।

इसके बाद सोचा—इस लोक में बोधिसत्त्वों द्वारा पूरे किये जाने वाले, परम ज्ञान (=बोधि)परिपक्व करने वाले, तथा बुद्ध बनानेवाले धर्म इतने ही हैं; (इन) दस पारमिताओं को छोड़ कर अन्य नहीं। यह दस पारमिताएँ भी न तो ऊपर आकाश में हैं, न पूर्व आदि दिशाओं में हैं; किन्तु मेरे हृदय के भीतर ही प्रतिष्ठित हैं। इस प्रकार उनके हृदय ही में प्रतिष्ठित होने (की बात) जान, सब के लिए दृढ़ निश्चय कर, फिर फिर उनपर सीधे-उल्टे (=अनुलोम प्रतिलोम) क्रम से विचार करने लगा। अन्त से शुरू करके आदि तक पहुँचाता, आदि से शुरू करके अन्त तक पहुँचाता, बीच से ग्रहण करके दोनों ओर खतम करता, (तथा) दोनों सिरों से आरम्भ करके बीच में खतम करता। (अपने) अंग का परित्याग पारमिताएँ, बाहरी वस्तुओं का त्याग उपपारमिताएँ और प्राणों का परित्याग परमार्थ-पारमिताएँ, (कहलाती) हैं। दस पारमिताएँ, दस उपपारमिताएँ और दस परमार्थ-पारमिताएँ—(इन तीसों पर) दो तेलों को मिलाने की तरह, तथा सुमेरु पर्वत की मथनी बना चक्रवाल महा समुद्र को मथने की तरह विचारने लगा।

उन दस पारमिताओं पर विचार करते समय धर्म-तेज से चार नियुत

दो लाख योजन घनी यह पृथ्वी भारी शब्द कर वैसे ही काँप उठी जैसे हाथी द्वारा आक्रान्त नर्कट, अथवा पेरा जाता ऊख-यंत्र; और कुम्हार के चक्र (तथा) तेली के कोल्हू की तरह घूमी। इसीसे कहा है :—

'लोक में परमज्ञान (की प्राप्ति में) सहायक धर्म इतने ही हैं। इनसे अधिक अन्य नहीं हैं। उनमें दृढ़ता पूर्वक स्थित हो, स्वभाव, रस तथा लक्षणों सहित इन धर्मों पर विचार करने लगा। उस समय धर्म तेज के प्रवाह से दस सहस्र ब्रह्माण्डों वाली पृथ्वी काँप उठी। पेरते ऊख के कोल्हू की तरह और तेल के कोल्हू के चक्र की तरह पृथ्वी हिली और नाद किया।'

रम्य-नगर-वासी, काँपती हुई महा पृथ्वी पर नहीं खड़े रह सके; और प्रलय-वायु से प्रताड़ित महान् शाल वृक्षों की तरह, मूर्छित हो गिर पड़े। कुम्हार के बनते हुए घड़े आदि बर्तन एक दूसरे से भिड़ कर चूर्ण विचूर्ण हो गये। भयभीत त्रसित जनता ने बुद्ध के पास जाकर पूछा :—"भगवान्! क्या यह नागों का विप्लव (=आवर्त्त) है, अथवा भूत, यक्ष, देवताओं के विप्लवों में से (कोई) एक है? हम इसे नहीं जानते। सारी जनता भयभीत है। क्या इससे लोक का कुछ अनिष्ट होगा अथवा भला? हमें यह बात बतलाइए।"

शास्ता ने उनका कथन सुनकर कहा :—मत डरो, चिन्ता मत करो, यह भय का कारण नहीं। आज जो मैंने पण्डित-सुमेध के भविष्य में गौतम नामक बुद्ध होने की भविष्यत् वाणी (=व्याकरण) की, सो वह (पण्डित सुमेध) अब पारमिताओं पर विचार कर रहा है। उसके पारमिताओं पर विचार करते, तथा उन्हें मन्थन करते समय, धर्म-तेज से सारे दस सहस्र ब्रह्माण्ड एक झटके से काँप उठे और नाद करने लगे। इसीसे कहा है :—

"बुद्ध के भोजन-स्थान पर जितनी भी मण्डली थी, वह वहाँ कम्पित और मूर्छित हो पृथ्वी पर लेट गई। हजारों घड़े, सैकड़ों मटके एक दूसरे से भिड़ कर चूर्ण हो गये। विह्वल, त्रसित, भयभीत, शंकित, और उत्पीड़ित मनवाला जन समूह इकट्ठा हो, दीपङ्कर के पास आया (और बोला):—हे आँखों वाले! इस दुनिया का क्या (कुछ) भला होने वाला है या बुरा? सारी दुनिया भय से भरी जाती है। इस (के कष्ट) को दूर करो।"

तब महामुनि दीपङ्कर ने उन (लोगों) को कहा—धैर्य रक्खो। इस भूमि कम्पन से मत डरो। जिसके लिए आज मैंने लोक में बुद्ध होने की भविष्यत्-

वाणी को, वह पुराने बुद्धों के सेवन के धर्म का विचार कर रहा हूँ। उसके बुद्ध विषयक (बुद्ध भूमि) धर्मों का पूर्णरूप से विचार करने से, यह देवताओं सहित दस हजार (लोकों वाली) पृथ्वी काँपी है।"

(११) दृढ़ संकल्प की पूजा

तथागत के वचन को सुन कर लोगों को संतोष हुआ; और वह माला-गंध-लेप ले, रम्य नगर से निकल बोधिसत्त्व के पास गये। माला आदि से पूजन बन्दना तथा प्रदक्षिणा कर, रम्यनगर में लौट आये। बोधिसत्त्व भी दस पारमिताओं पर विचार कर उत्साह पूर्वक दृढ़ संकल्प कर आसन से उठे। इसीसे कहा है :—

"बुद्ध वचन को सुनने के समय ही (लोगों का) मन शान्त हो गया। सब ने मेरे समीप आकर प्रणाम किया। तब मैं बुद्ध के गुणों का ध्यान कर (तथा) चित्त को दृढ़ बना, दीपङ्कर को नमस्कार कर, आसन से उठा।"

तव सारे दस हज़ार ब्रह्माण्डों के देवताओं ने इकट्ठे हो, आसन से उठते हुए बोधिसत्त्व की दिव्यमाला-गंधों से पूजा कर इस प्रकार स्तुति-मंगल (पाठ) किया—"आर्य! तपस्वी सुमेध! तू ने आज बुद्ध दीपङ्कर के चरणों में बड़ी प्रार्थना की। वह तेरी (प्रार्थना) निर्विघ्न पूरी हो। तुझे भय-रोमाञ्च न हो। (तेरे) शरीर को कुछ भी रोग न हो। (तू) शीघ्र ही पारमिताओं को पूरा कर उत्तम बुद्धपद को प्राप्त करे। जिस प्रकार फल फूल वाले वृक्ष समय आने पर फलते फूलते हैं; इसी प्रकार तुम भी समय का अतिक्रमण किये बिना शीघ्र ही बुद्ध-पद पर पहुँचो।" (स्तुति) पाठ के बाद (देवता) अपने अपने लोक को गये। देवताओं से प्रशंसित बोधिसत्त्व भी, "मैं दस पारमिताओं को पूरा कर, चार लाख असंखेय्य एक लाख कल्प बीतने पर बुद्धपद को प्राप्त होऊँगा।" बड़े उत्साह के साथ दृढ़ संकल्प कर, आकाश-मार्ग से हिमालय को चला गया। इसीसे कहा है :—

"आसन से उठते वक्त (तपस्वी सुमेध) पर देवता और मनुष्य दिव्य तथा मानुषिक—दोनों प्रकार के फूलों की वर्षा कर रहे थे। देवता तथा मनुष्य दोनों (तपस्वी सुमेध के लिए) मंगल कामना प्रकट कर रहे थे—"तेरी कामना महान् है। तेरी इच्छा पूरी हो। सब भय दूर हों; रोग शोक का विनाश हो। तुझे कोई विघ्न न हो। तू शीघ्र ही श्रेष्ठ बुद्ध-पद पर पहुँच जा।"

"जिस प्रकार फल वाला वृक्ष समय आने पर फलता है। उसी प्रकार महावीर! तेरे में बुद्ध-ज्ञान फले। जिस प्रकार दूसरे सभी बुद्धों ने दस पारमिताओं को पूरा किया; उसी प्रकार महावीर! तू दस पारमिताओं को पूरा कर। जिस प्रकार दूसरे बुद्ध बोधि-मण्ड में बुद्ध-पद को प्राप्त हुए, उसी प्रकार महावीर! तू बुद्ध के परम ज्ञान का जानने वाला हो। जिस प्रकार दूसरे बुद्धों ने धर्म-चक्र चलाया, उसी प्रकार महावीर! तू धर्म का चक्र चला। जिस प्रकार पूर्णिमा के दिन निर्मल चन्द्र चमकता है, उसी प्रकार तू भी पूर्ण-मन हो दस हजार ब्रह्माण्डों में प्रकाशित हो। जिस प्रकार राहु से मुक्त हुआ सूर्य्य (अपने) तेज से अत्यन्त प्रकाशित होता है, उसी प्रकार तू भी लोक से मुक्त हो (अपनी) श्री से प्रकाशित हो। जिस प्रकार सभी नदियाँ समुद्र की ओर जाती हैं; उसी प्रकार देवताओं सहित (सारा) लोक तेरे पास आवे।"

इस तरह उन (देवताओं) ने सुमेध की स्तुति-प्रशंसा की। तब वह उन दस धर्मों को ग्रहण कर, उनका पालन करते हुए बन में प्रविष्ट हुआ।

सुमेध कथा समाप्त

९. पहले के बुद्ध

(१) दीपंकर बुद्ध

रम्य नगर निवासियों ने भी नगर में प्रविष्ट हो बुद्ध प्रमुख भिक्षु संघ को भोजन (=महादान) दिया। भगवान् (=शास्ता) उनको धर्मोपदेश दे, जन समूह को (त्रि०) शरण आदि में स्थापित कर, रम्य नगर से निकले। तब से आगे भी, आयु भर सभी बुद्धों के कर्तव्य करते हुए क्रमानुसार उपाधि-रहित **परिनिर्वाण**[1] को प्राप्त हुए। इस विषय में और सब वात, **बुद्ध-वंस** में कहे अनुसार ही समझना चाहिए। वहाँ कहा है:—

[1] परिनिर्वाण दो प्रकार का है:—(१) उपाधि-शेष परिनिर्वाण (=पाँच स्कंधों के शेष रहते निर्वाण; जैसे जीवन्मुक्त) (२) अनुपाधि-शेष परिनिर्वाण।

"तब वे संघ सहित बुद्ध (=लोक नामक) को भोजन करा दीपङ्कर बुद्ध (=शास्ता) की शरण गये। तथागत ने कुछ को **शरणागमन**[1] में, कुछ को **पंच शीलों**[2] में, तथा दूसरों को **दस शीलों**[3] की दीक्षा दी। किसी को **चार उत्तम-फलों**[4] को प्राप्त साधु बनाया। किसी को **असमान-धर्मों**[5] का पटिसम्भिदा(-ज्ञान) दिया। उस नर-श्रेष्ठ ने किसी को आठ समापत्तियाँ दीं। किसी को **तीन विद्याएँ**[6] किसी को छः अभिज्ञाएँ दीं। वह महामुनि इस प्रकार से जन-समूह को उपदेश करते थे, इसीसे उन (=लोकनाथ) का धर्म (=शासन) फैला। बड़ी ठुड्डी (=महाहनु), ऊँचे कन्धे वाले दीपङ्कर नामक (बुद्ध) ने बहुत से जनों को (संसार सागर से) पार उतार दुर्गति से मुक्त किया। महामुनि यदि एक लाख योजन पर भी ज्ञान के पात्र (=समझदार मनुष्य) को देखते, तो एक क्षण में वहाँ पहुँच, उसे बोध कराते थे।

प्रथम सम्मेलन (=अभिसमय) में बुद्ध ने एक अरब को बोध कराया। दूसरे सम्मेलन में नाथ ने दस खरब को बोध कराया। तृतीय-सम्मेलन के वक्त जब बुद्ध ने देव-लोक में धर्मोपदेश दिया, उस समय नौ खरब को बोध हुआ। दीपङ्कर बुद्ध (=शास्ता) के तीन सम्मेलन (=सन्निपात) हुए थे। पहला सम्मेलन दस खरब का हुआ था। फिर शास्ता के नारद-कूट (पर्वत) में एकान्त-वास करते वक्त एक अरब पुरुष मल-हीन शान्त अर्हत्-पद को प्राप्त हुए। जिस समय महावीर (=बुद्ध) सुदर्शन (नामक) ऊँचे पर्वत पर रहते थे, उस समय

[1] बुद्ध, धर्म तथा संघ की शरण में।

[2] अहिंसा, चोरी न करना, काम भोग में मिथ्याचार न करना (=पर स्त्री-गमन से दूर रहना), झूठ न बोलना तथा मद्य-पान न करना।

[3] ऊपर के पाँच शील (तीसरे शील में सम्पूर्ण ब्रह्मचर्य), ६ असमय (=विकाल) भोजन न करना, ७ नृत्य-गीत आदि का त्यागना, ८ माला गन्ध आदि का न धारण करना, ९ ऊँचे तथा महार्घ पलंगों का सेवन न करना। १० चाँदी-सोने का ग्रहण न करना।

[4] स्रोतापत्ति, सकृदागामी, अनागामी तथा अर्हत्।

[5] अर्थ, धर्म, निरुक्ति तथा प्रतिभान।

[6] दिव्य-चक्षु, पूर्व-जन्म-स्मृति तथा आश्रव-क्षय ज्ञान।

मुनि की नौ खरब की सभा थी। उस समय मैं जटाधारी घोर तपस्वी था। आकाश में विचरण करता था, और पाँच अभिज्ञायें मुझे प्राप्त थीं। (एक एक बार) दस-बीस हज़ारों को धर्म का साक्षात्कार हुआ। एक दो (करके) धर्म साक्षात्कार करने वालों की तो गणना असंख्य है।

तब भगवान् दीपङ्कर का अत्यन्त शुद्ध धर्म (=शासन), बहुत प्रसिद्ध, विस्तार, उन्नति और वैभव को प्राप्त हुआ। चार लाख छः अभिज्ञाओं वाले बड़े बड़े योग बलों से युक्त चार लाख अनुयायी, लोक-वेत्ता दीपङ्कर को सदैव घेरे रहते थे। उस समय यदि कोई (पुरुष) मानुषिक भव को छोड़, अप्राप्त-मन, शैक्ष रहते मनुष्य शरीर को छोड़ता, तो वह निन्दा का भाजन होता। भगवान् दीपङ्कर का प्रवचन देव-लोक सहित इस लोक में स्थिर-चित्त, क्षीणाश्रव, स्थित-प्रज्ञ, विमल अर्हतों से सुशोभित था।

दीपङ्कर बुद्ध (की जन्म-भूमि) थी रम्मवती नाम की नगरी। पिता था सुदेव नाम का क्षत्रिय। माता का नाम सुमेधा था। दीपङ्कर बुद्ध के सुमङ्गल और तिष्य नाम के दो प्रधान शिष्य (=अग्रश्रावक) तथा सागत नाम का हजूरी (=उपस्थायक) था। उन भगवान् की नन्दा तथा सुनन्दा नाम की दो प्रधान शिष्यायें (=अग्रश्राविकाएँ) थीं, और उनका बोधि-वृक्ष पीपल का वृक्ष था। महामुनि दीपङ्कर का शरीर, दीप-वृक्ष की तरह अस्सी हाथ ऊँचा था (और) प्रथित महान् शाल-वृक्ष की तरह शोभा देता था। उस महर्षि की आयु एक लाख वर्ष की (थी) उतने समय जीवित रह (=ठहर) कर उन्होंने बहुत से जनों को (संसार सागर से पार) उतारा। सद्धर्म को प्रकाशित कर, तथा जन-समूह को पार उतार वह अपने शिष्यों सहित, अग्नि-राशि की तरह प्रज्वलित हो निर्वाण को प्राप्त हुए। वह ऋद्धि, वह यश, और चरणों में वह चक्र-रत्न—वे सब अन्तर्धान हो गये। सच है सभी बनी चीज़ें (=संस्कार) खाली (=शून्य) हैं।

(२) कौण्डिन्य बुद्ध

भगवान् दीपङ्कर के बाद, एक असंखेय्य (कल्प) बीतने पर, **कौण्डिन्य** नामक बुद्ध (=शास्ता) उत्पन्न हुए। उनके भी तीन सम्मेलन (=सन्निपात) हुए। पहले सम्मेलन में दस खरब, दूसरे में दस अरब, तीसरे में नब्बे करोड़।

उस समय बोधिसत्त्व, विजितावी नामक चक्रवर्ती (के रूप में) पैदा हुए थे। उन्होंने बुद्ध प्रमुख दस खरब भिक्षुओं के संघ को भोजन दान (=महादान) दिया। भगवान् (शास्ता) ने 'बुद्ध होगा', प्रकाशित कर धर्मोपदेश दिया। (विजितावी राजा) बुद्ध की धर्म-कथा सुन राज्य त्याग कर साधु हो गया। उसने **तीनों पिटक**[1] पढ़े, आठों समापत्तियाँ तथा पाँचों अभिज्ञाएँ प्राप्त कीं; और (मरकर) बिना ध्यान नष्ट हुए ही ब्रह्म-लोक में उत्पन्न हुआ।

कौण्डिन्य बुद्ध की (जन्म-भूमि) **रम्मवती** नाम नगर था। **सुनन्द** नामक क्षत्रिय पिता, **सुजाता** नामक देवी माता, **भद्र** तथा **सुभद्र** दो प्रधान-शिष्य, **अनुरुद्ध** नामक उपस्थायक, **तिष्या** तथा **उपतिष्या** दो प्रधान शिष्याएँ **शाल** का मङ्गलमय बोधि (वृक्ष), अठासी हाथ ऊँचा शरीर, तथा लाख वर्ष की आयु थी।

दीपङ्कर के बाद, अनन्ततेज, अमितयश और अप्रमेय तथा अनाक्रमणीय कोण्डञ्ञ नामक शास्ता हुए।

(३) मंगल बुद्ध

उसके बाद एक असंखेय्य (कल्प) बीत जाने पर, एक ही कल्प में चार बुद्ध उत्पन्न हुए। **मङ्गल, सुमन, रेवत, सोभित**। भगवान् मङ्गल के तीन शिष्य सम्मेलन (=श्रावक सन्निपात) हुए। उनमें से पहले सम्मेलन में दस खरब भिक्षु हुए, दूसरे में दस अरब, तीसरे में नब्बे करोड़। इनका आनन्द-कुमार नामक सौतेला भाई, नब्बे करोड़ की मण्डली के साथ धर्म सुनने के लिए बुद्ध (=शास्ता) के पास गया। बुद्ध ने उसको क्रमशः (धर्म) कथा कही। वह मण्डली के साथ पटिसम्भिदा-ज्ञान (सहित) अर्हत पद को प्राप्त हो गया। शास्ता उन कुल पुत्रों का पूर्व-चरित्र तथा योग-बल से मिलने वाले पात्र-चीवरों को जानते थे। उन्होंने दाहिना हाथ पसार कर, "आओ भिक्षुओ" कहा। वे सभी उसी क्षण योग-बल से प्राप्त पात्रचीवर धारण किये साठ वर्ष के वृद्ध साधुओं (=स्थविरों) की तरह के हो गये; और बुद्ध को प्रणाम कर उन्हें चारों ओर से घेर लिया। यह इनका तीसरा शिष्य-सम्मेलन हुआ।

जिस प्रकार दूसरे बुद्धों का शरीर-प्रकाश चारों ओर अस्सी अस्सी हाथ

[1] सुत्त-पिटक, विनय-पिटक तथा अभिधम्म-पिटक।

भर का था, इस प्रकार उन (मङ्गल) का नहीं था। उन भगवान् का शरीर-प्रकाश सदैव दस हज़ार ब्रह्माण्ड में व्याप्त रहता था। (उनके शरीर-प्रकाश से) वृक्ष, पृथ्वी, पर्वत, समुद्र आदि ही नहीं ऊखल इत्यादि तक भी सुवर्ण-वस्त्र से आच्छादित से जान पड़ते थे। इनकी आयु नब्बे हज़ार वर्ष की हुई। इतने काल तक चाँद सूर्य्य आदि (संसार को) अपने प्रकाश से प्रकाशित न करते थे। रात दिन का भेद (=परिच्छेद) मालूम नहीं होता था। (आज कल) जैसे सूर्य प्रकाश से पूर्ण दिन में प्राणी विचरते हैं, वैसे ही (उस समय) वह सदा बुद्ध प्रकाश में विचरते थे। (उस समय) लोग सायंकाल के फूलने वाले कुसुमों तथा प्रातःकाल के बोलने वाले पक्षी आदि से दिन रात का भेद समझते थे। (सवाल होगा—) क्या दूसरे बुद्धों में ऐसा प्रताप नहीं था? नहीं था (ऐसा) नहीं; वे भी यदि चाहते तो दस हज़ार ब्रह्माण्ड अथवा उससे भी अधिक को, (अपने) प्रकाश से व्याप्त कर सकते। लेकिन पूर्व-प्रार्थना अनुसार, भगवान् **मङ्गल** की शरीर-प्रभा दूसरे (बुद्धों) की व्याप्त-प्रभा की तरह सदैव दस सहस्र लोक धातु को स्पर्श करती थी।

वह (भगवान् मङ्गल) बोधिसत्त्व (अवस्था) के समय, **वेस्सन्तर**[1] जैसे जन्म में उत्पन्न हो, पुत्र तथा स्त्री सहित वङ्क पर्वत जैसे पर्वत में रहते थे। तब खरदाठिक नाम का एक यक्ष, महापुरुष का दान (देने) का विचार सुन, ब्राह्मण वेष में निकट आया, और उसने महात्मा से दोनों बच्चे माँगे। महासत्त्व ने 'ब्राह्मण को दोनों बच्चे देने का संकल्प किया, और सन्तुष्ट चित्त हो जल-स्थल सहित सारी पृथ्वी को कम्पित कर दोनों बच्चे प्रदान किये। यक्ष ने टहलने की भूमि के छोर पर (लगी) बाँही के तख्ते के सहारे खड़े हो, महात्मा की आँखों ही के सामने, दोनों बच्चों को मूली के ढेर की तरह खा लिया। यक्ष के मुँह खोलने पर अग्नि-ज्वाला की तरह (उसके) मुँह से रक्तधारा निकलते देख कर भी, महापुरुष का चित्त राई भर (=केशाग्रमात्र) खिन्न नहीं हुआ। बल्कि 'मेरा दान सुदान है' सोच, उसके शरीर में महान् आनन्द पैदा हुआ।

[1] **भगवान् गौतमबुद्ध का मनुष्य-लोक में सिद्धार्थ से पहले का जन्म (देखो वेस्सन्तर जातक)।**

उसने 'भविष्य काल में इसके फल स्वरूप इसी प्रभाव (=नीहार) से किरणें निकलें' ऐसी कामना की। उसकी इस कामना के कारण ही बुद्ध होने पर उसके शरीर से किरणें निकल कर इतनी दूर तक पहुँचीं।

इनके और भी पूर्व चरित्र हैं। बोधिसत्त्व रहने की अवस्था में, एक बुद्ध के चैत्य को देख कर, 'इस बुद्ध के लिए मुझे जीवन दान करना चाहिए' सोचा, और मशाल (दण्डदीपक) लपेटने की तरह सारे शरीर को लिपटवाया, और लाख मूल्य की, रत्न-जड़ित सोने की थाली में घी भरवा, उसमें हज़ारों बत्तियाँ जलवा, उसे सिर पर ले, सारे शरीर में आग लगवा, चैत्य की प्रदक्षिणा करते सारी रात बिता दी। इस प्रकार सूर्योदय तक प्रयत्न करते हुए, उनका लोम-छिद्र मात्र भी गर्म न हो, पद्म-गर्भ में प्रविष्ट जैसा रहा। धर्म अपनी रक्षा करने वालों की रक्षा करता है। इसीसे भगवान ने कहा है—

धर्मानुकूल आचरण करने वाले की, धर्म निश्चय से रक्षा करता है। ठीक से आचरण किया हुआ धर्म सुख की ओर ले जाता है। धर्म के ठीक आचरण करने का यह फल है कि धर्मचारी दुर्गति को प्राप्त नहीं होता।

इस कर्म के फलस्वरूप भी, उन भगवान् (मङ्गल) के शरीर की किरण दस हज़ार ब्रह्माण्डों तक पहुँचा करती थी।

उस समय हमारे बोधिसत्त्व **सुरुचि** नामक ब्राह्मण थे। बुद्ध को निमन्त्रित करने की इच्छा से उन्होंने समीप जा, मधुर-धर्म कथा सुन, प्रार्थना की—

"भन्ते! कल मेरी भिक्षा ग्रहण करें।"

"ब्राह्मण! तुझे कितने भिक्षु चाहिएँ।"

"भन्ते! (आपके) अनुयायी भिक्षु कितने हैं?"

उस समय शास्ता का केवल प्रथम-सम्मेलन ही हुआ था, इस लिए "दस अरब" कहा।

"भन्ते! सभी को साथ ले, मेरे घर पर भिक्षा ग्रहण करें।"

बुद्ध (=शास्ता) ने स्वीकार किया। दूसरे दिन के लिए निमन्त्रित कर, घर लौटते हुए ब्राह्मण सोचने लगा—"मैं इतने भिक्षुओं को खिचड़ी, भात, वस्त्र आदि तो दे सकता हूँ, लेकिन (इतनों के लिए) बैठने का स्थान कैसे होगा?"

उसकी इस चिन्ता से, चौरासी हज़ार योजन की दूरी पर (स्वर्ग की) पण्डुकम्बल शिला पर बैठे देव-राज (इन्द्र) का आसन गर्म हो गया। शक्र

(-देव) ने सोचा—कौन है जो मुझे इस स्थान से गिराना चाहता है ? (तब) दिव्य चक्षु से देखते हुए, महापुरुष को देखा, और 'सुरुचि-ब्राह्मण बुद्ध-सहित भिक्षु संघ को निमन्त्रित कर, (उसे) बिठाने के स्थान की फ़िक्र में है, मुझे भी वहाँ पहुँच कर पुण्य में सहभागी होना चाहिए' (सोच) बढ़ई का भेष बना, बसूली-कुल्हाड़ा हाथ में ले, महात्मा के सम्मुख प्रकट हुआ। और पूछा "कि क्या किसी को मज़दूरी से काम है ?"

महापुरुष ने देख कर पूछा, "क्या काम कर सकोगे ?'

"ऐसा कोई हुनर नहीं जो मुझे मालूम न हो। घर हो, अथवा मण्डप, जो कुछ कोई बनवाना चाहे, उसके लिए मैं वही बना देना जानता हूँ।"

"तो, मेरे पास काम है।"

"आर्य ! क्या काम है ?"

"मैंने कल के लिए दस अरब भिक्षुओं को निमन्त्रित किया है। उनके बैठने के लिए मण्डप बनाओगे ?"

"मैं बना दूँगा, यदि मुझे मेरी मज़दूरी दे सकोगे।" "तात ! दे सकूँगा।"

"अच्छा ! तो बनाऊँगा।"

(यह कह उसने) जा कर एक स्थान को देखा। **कसिण-मण्डल**[1] की तरह समतल, बारह तेरह योजन का एक प्रदेश था। उसने 'इतने स्थान में सप्त रत्नमय मण्डप बने' ऐसा दृढ़ संकल्प कर देखा, तो उसी समय (एक) मण्डप पृथ्वी भेद कर उठ आया। उसके सोने के खम्भों पर चाँदी के, रूपे के खम्भों पर सोने के, मणिस्तम्भों पर मणिमय, सप्त-रत्न-मय स्तम्भों पर सप्त-रत्न-मय घटक थे। तब (सोचा—) मण्डप में बीच बीच में घंटियों की झालर लटक जावे। उसके देखते ही देखते एक ऐसी झालर लटक गई, जिससे मन्द वायु से हिलने पर पाँचों प्रकार के बाजों (=तूरिय-नाद) का मधुर शब्द निकलता था, और दिव्य सङ्गीत बजने का सा समा होता था। सोचा—'बीच बीच में सुगन्धित माला दाम आदि लटकें।' मालाएँ लटक गईं। 'पृथ्वी भेद कर दस खरब भिक्षुओं के लिए आसन और (सामने पात्र रखने के लिए) आधार बन

[1] योगाभ्यास के लिए मिट्टी आदि का बना हुआ समतल पहिये सदृश चक्र।

जावें।' उसी समय बन गये। 'एक एक कोने में एक एक पानी की चाटी निकल आये।' पानी की चाटियाँ निकल आईं। इतना हो जाने पर ब्राह्मण के पास जा कर कहा—'आर्य! आवें, अपना मण्डप देख कर मुझे मजदूरी दें।' महापुरुष ने जा कर मण्डप देखा। देखने के साथ ही उसका सारा शरीर पाँच प्रकार के आनन्द (=प्रीति)[1] से भर गया।

तब मण्डप को देख कर उसे यह (विचार) हुआ। 'यह मण्डप मनुष्य का बनाया हुआ नहीं है। मेरे विचार और मेरे गुण के कारण निस्सन्देह इन्द्र-लोक गर्म हुआ होगा। उसके बाद देव-राज शक्र ने यह मण्डप बनवाया होगा। मेरे लिए यह उचित नहीं है कि ऐसे मण्डप में, केवल एक ही दिन दान दूँ। मैं एक सप्ताह तक (दान) दूँगा।'

कितना भी बाहरी दान हो, उससे बोधिसत्त्वों का सन्तोष नहीं होता। अलंकृत शिर को काट कर, अञ्जित आँखों को निकाल कर, अथवा हृदय-मांस को नोच कर (=उब्बत्तेत्वा) देने से ही बोधिसत्त्वों को त्याग के सम्बन्ध में सन्तोष होता है। **सिवि जातक**[2] में हमारे बोधिसत्त्व को भी प्रतिदिन पाँच **अम्मण**[3] कार्षापण दे, नगर में चारों द्वारों के बीच में दान करते हुए, उस दान से त्याग विषयक सन्तोष नहीं हो सका। लेकिन जब देव-राज इन्द्र ने ब्राह्मण वेष धर, आ, आँखें माँगीं; तब, उखाड़ कर देते हुए उन्हें प्रसन्नता हुई। (ऐसा करते हुए) चित्त में बाल की नोक के बराबर भी विकार नहीं हुआ। इस प्रकार (बाहरी) दान से बोधिसत्त्वों की तृप्ति नहीं होती।

इसलिए उस महापुरुष ने भी, 'मुझे दस खरब भिक्षुओं को सप्ताह भर (भोजन) दान देना चाहिए', सोच, उन्हें मण्डप में बिठा सप्ताह भर 'गोपान' (=गवपान) का दान दिया। बड़े बड़े कड़ाहों को दूध से भर, चूल्हे पर चढ़ा, दूध के गाढ़े हो जाने पर, उसमें थोड़े से चावल डाल कर, पकने पर, मधुर शक्कर और घी से पकाये हुए भोजन को गोपान (=गवपान) कहते हैं। अकेले

[1] क्षुद्र, क्षणिक, ऊर्ध्वगामी, तरंग-सदृश तथा प्रसरणशील। (दे० विशुद्धिमार्ग)

[2] देखो सिवि जातक (१५. ३)

[3] ११ द्रोण=१ अम्मण।

मनुष्य उसे नहीं परोस सकते थे। देवताओं ने भी इकट्ठे हो कर परोसा। बारह तेरह योजन का लम्बा-चौड़ा स्थान भी भिक्षुओं को (बैठ कर) खाने के लिए काफी न था, लेकिन वह अपने अपने योगबल के प्रभाव से बैठ गये। अन्तिम दिन सब भिक्षुओं के पात्र धुलवा कर, (उन्हें), घी, मक्खन, मधु, खाँड (=फाणित) आदि भैषज्य से भर कर, तीन तीन चीवरों के साथ दिया। नये साधु बने भिक्षुओं को मिले चीवर के कपड़े (=शाटक) ही लाख के मूल्य के थे। बुद्ध ने (पुण्य का) अनुमोदन करते हुए 'इस पुरुष ने इस प्रकार का महादान दिया है, भविष्य में यह क्या होगा?' सोच, 'लक्षाधिक दो असंखेय्य कल्पों के बीत जाने पर, यह गौतम नामक बुद्ध होगा', देख, महापुरुष को सम्बोधन कर, कहा—"तू इतना समय बीत जाने पर गौतम नामक बुद्ध होगा।" महापुरुष इस कथन (=व्याकरण) को सुन, "मैं बुद्ध होऊँगा, मुझे घर-वास से क्या मतलब? मैं साधु होता हूँ" सोच, उतनी सम्पत्ति को थूक के समान त्याग, बुद्ध (=शास्ता) के पास प्रव्रजित हो, बुद्ध-वचन सीख, अभिञ्ञा तथा समापत्तियाँ प्राप्त कर, आयु के बीत जाने पर ब्रह्मलोक में उत्पन्न हुआ।

भगवान् मङ्गल के नगर का नाम **उत्तर** था। उनका पिता भी **उत्तर** नामक क्षत्रिय था। माता का नाम भी **उत्तरा** था। **सुदेव** तथा **धर्मसेन** दो उनके प्रधान शिष्य थे। **पालित** नामक परिचारक (=उपस्थायक) था। **सीवली** और **असोका**—दो प्रधान शिष्यायें थीं। **नाग-वृक्ष** बोधि था। अठासी हाथ ऊँचा उनका शरीर था। नब्बे हज़ार वर्ष जीवित रह कर, जब वह निर्वाण को प्राप्त हुए तो दस हज़ार ब्रह्माण्डों में एक दम अन्धकार छा गया। सभी ब्रह्माण्डों में लोग रोने पीटने लगे!

'कौडिन्य (=कोण्डञ्ञ) के बाद मङ्गल नामक नायक ने लोक के अन्धकार का नाश कर धर्म रूपी मशाल (=उल्का) को धारण किया।'

(४) सुमन बुद्ध

इस प्रकार दस हज़ार ब्रह्माण्डों को अन्धकार-मय बना जब भगवान् (मङ्गल) निर्वाण को प्राप्त हुए तो **सुमन** नामक बुद्ध (=शास्ता) उत्पन्न हुए। उनके भी तीन शिष्य-सम्मेलन (=श्रावक-सन्निपात) हुए। प्रथम

सम्मेलन में दस खरब भिक्षु (जमा) हुए। दूसरे (सम्मेलन में) कञ्चन पर्वत पर नौ खरब, तीसरे में आठ खरब।

उस समय (हमारे) बोधिसत्त्व **अतुल** नाम के बड़े ऋद्धि वाले महानुभाव सम्पन्न नाग-राज थे। बुद्ध की उत्पत्ति को सुन, अपने जाति-भाइयों के साथ, नाग लोक से निकल कर, दस खरब भिक्षुओं से घिरे उन भगवान् का दिव्य वाद्य (=तुरीय-नाद) से सत्कार किया, और भोजन कर प्रत्येक (भिक्षु) को दुशाले का जोड़ा दे तीनों (रत्नों) की शरण ग्रहण की। सुमन बुद्ध ने भी भविष्यद्वाणी की—'तू भविष्य में बुद्ध होगा।' भगवान् सुमन के नगर का नाम **खेम** था। **सुदत्त** नामक राजा उनका पिता था। **सिरिमा** नामक माता थी। **शरण** और **भावितात्मा**, दो प्रधान शिष्य थे। **उदेन** नामक परिचारक था। **सोणा** और उपसोणा दो प्रधान शिष्यायें थीं। **नाग-वृक्ष** बोधि था। नब्बे हाथ ऊँचा शरीर, और नब्बे हज़ार वर्ष ही आयु का प्रमाण था।

"(भगवान्) मङ्गल के बाद सब बातों (=धर्म) में अनुपम तथा सब प्राणियों में श्रेष्ठ सुमन नामक बुद्ध (=नायक) हुए।"

(५) रेवत बुद्ध

उनके बाद **रेवत** नामक बुद्ध (=शास्ता) उत्पन्न हुए। उनके भी तीन शिष्य-सम्मेलन हुए। प्रथम सम्मेलन की तो गणना नहीं। दूसरे में दस खरब भिक्षु (जमा) हुए। तीसरे में भी उतने ही। उस समय (हमारे) बोधिसत्त्व अतिदेव, नामक ब्राह्मण थे। उन्होंने बुद्ध (=शास्ता) का वह धर्मोपदेश सुन, तीनों रत्नों की शरण ले सिर पर हाथ की अञ्जली जोड़ी, और चित्त-मल के नाश के बारे में उन बुद्ध की स्तुति कर, वस्त्र को एक कन्धे पर रख पूजा की। उनने भी कहा—"तू बुद्ध होगा।"

(रेवत बुद्ध) के नगर का नाम **धान्यवती** (धञ्ञवती) था। पिता **विपुल** नामक क्षत्रिय थे। माता का नाम **विपुला** था। **वरुण** और **ब्रह्मदेव** (दो) प्रधान शिष्य थे। **सम्भव** नामक परिचारक था। **भद्रा** और **सुभद्रा** प्रधान शिष्याएँ थीं। **नाग-वृक्ष** ही बोधि था। शरीर अस्सी हाथ ऊँचा और आयु साठ हज़ार वर्ष की थी।

(भगवान्) सुमन के बाद रेवत नामक बुद्ध (=नायक) हुए। (वह) अनुपम, अद्वितीय अतुल, उत्तम बुद्ध (=जिन) थे।

(६) सोभित बुद्ध

उनके बाद **सोभित** नामक (=शास्ता) उत्पन्न हुए। उनके भी तीन शिष्य सम्मेलन हुए। पहले सम्मेलन में एक अरब भिक्षु थे। दूसरे में नब्बे करोड़। तीसरे में अस्सी करोड़। उस समय (हमारे) बोधिसत्त्व **अजित** नामक ब्राह्मण थे। उन्होंने बुद्ध का धर्मोपदेश सुन, (तीन रत्नों की) शरण ग्रहण की, और बुद्ध सहित भिक्षु संघ को भोजन दिया। उनने भी कहा—"तू बुद्ध होगा।" उन भगवान् का नगर **सुधर्म्म** नामक था। पिता **सुधर्म** नामक राजा था। माता का भी नाम **सुधर्मा** था। **असम** और **सुनेत्र** (दो) प्रधान शिष्य थे। **अनोम** नामक परिचारक था। **नकुला** और **सुजाता** प्रधान शिष्यायें थीं। **नाग-वृक्ष** (की) ही बोधि थी। अट्ठावन हाथ ऊँचा शरीर और नब्बे हज़ार वर्ष की आयु थी।

"(भगवान्) रेवत के बाद सोभित नामक बुद्ध (=नायक) (हुए)। (वह) एकाग्र-चित्त, शान्त-चित्त, असम=अद्वितीय पुरुष थे।"

(७) अनोमदर्शी बुद्ध

उसके बाद, एक असंखेय्य (कल्प) बीत जाने पर एक कल्प में **अनोमदर्शी, पद्म,** तथा **नारद,** तीन बुद्ध हुए। भगवान् अनोमदर्शी के तीन शिष्य सम्मेलन हुए। पहले में आठ लाख भिक्षु, दूसरे में सात लाख, तीसरे में छः लाख (एकत्रित हुए)। उस समय (हमारे) बोधिसत्त्व, बड़े ऋद्धि वाले, महाप्रतापी, अनेक लाख-करोड़ यक्षों के स्वामी, एक यक्ष-सेनापति थे। उन्होंने बुद्ध के उत्पन्न होने की बात सुन, आ कर बुद्ध सहित भिक्षु संघ को भोजन (=महादान) दिया। बुद्ध ने भी कहा—"तू भविष्य में बुद्ध होगा।" भगवान् अनोमदर्शी के नगर का नाम **चन्द्रावती** था। पिता **यशवान्** नामक राजा था। माता का नाम **यशोधरा** था। **निसभ** और **अनोम** दो प्रधान शिष्य थे। **वरुण** नामक परिचारक था। **सुन्दरी** तथा **सुमना** दो प्रधान शिष्याएँ थीं। **अर्जुन-वृक्ष** (की) बोधि थी। अट्ठावन हाथ ऊँचा शरीर और लाख वर्ष की उनकी आयु थी।

(भगवान्) सोभित के बाद नर-श्रेष्ठ, अमितयश, तेजस्वी, दुरतिक्रम अनोमदर्शी बुद्ध हुए।

(८) पद्म बुद्ध

उनके बाद **पद्म** नामक बुद्ध उत्पन्न हुए। उनके भी तीन शिष्य सम्मेलन हुए। पहले सम्मेलन में दस खरब भिक्षु थे। दूसरे में तीन लाख। ग्राम से दूर जंगल में होने वाले तीसरे सम्मेलन में महावन-खण्ड-निवासी दो लाख भिक्षु थे। तब तथागत के उस बन-खण्ड में रहते समय (हमारे) बोधिसत्त्व सिंह के रूप में जन्मे थे। सिंह ने बुद्ध को निरोध समाधि लगाए देख, प्रसन्न चित्त हो बन्दना तथा प्रदक्षिणा की, और (अन्यत्र) प्रीति तथा हर्ष से युक्त हो, तीन बार सिंह-नाद किया। सप्ताह भर तक उन्होंने बुद्ध की ओर ध्यान करने से उत्पन्न उस प्रीति को न छोड़ा, और उस प्रीति-सुख में निमग्न हो, शिकार के लिए न जा अपना जीवन-मोहत्याग उपासना की। बुद्ध (शास्ता) ने सप्ताह के बीतने पर निरोध समाधि से उठ, सिंह को देख, सोचा—"यह सिंह भिक्षु-संघ के प्रति चित्त में भक्ति कर, संघ को भी प्रणाम करेगा, और संकल्प किया कि भिक्षु-संघ आवे।" उस समय भिक्षु आ गये। सिंह के चित्त में संघ के प्रति श्रद्धा उत्पन्न हुई। बुद्ध ने उसका मन देख कर कहा—"तू भविष्य में बुद्ध होगा।" भगवान् **पद्म** का **चम्पक** नामक नगर था। **असम** नामक राजा पिता था। माता भी **असमा** नामक थी। **साल** और **उपसाल** (दो) प्रधान शिष्य थे। **वरुण** नामक परिचारक था। **रामा** तथा **सुरामा** प्रधान शिष्याएँ थीं। **सोण-वृक्ष** की बोधि थी। अट्ठावन हाथ ऊँचा शरीर और लाख वर्ष की आयु थी।

अनोमदर्शी के बाद नर-श्रेष्ठ, असम=अद्वितीय-पुरुष पद्म नामक बुद्ध हुए।

(९) नारद बुद्ध

उनके बाद **नारद** नामक बुद्ध उत्पन्न हुए। उनके भी तीन शिष्य सम्मेलन हुए। पहले में दस खरब। दूसरे में नौ खरब। तीसरे में आठ खरब भिक्षु (जमा) हुए। उस समय बोधिसत्त्व ने ऋषियों के नियमानुसार साधु बन पाँच अभिञ्ञायें (=दिव्य-शक्तियाँ) और आठ समापत्तियाँ प्राप्त कर, बुद्ध सहित भिक्षु-संघ को भोजन दान दे, चन्दन से पूजा की। उन्होंने भी कहा—"तू भविष्य में बुद्ध होगा।" उन भगवान् का **धान्यवती** नामक नगर था।

सुदेव नामक क्षत्रिय पिता था। **अनोमा** नामक माता थी। **भद्रशाल** तथा **जितमित्र** (दो) प्रधान शिष्य थे। **वशिष्ठ** नामक परिचारक (=उपस्थायक) था। **उत्तरा** तथा **फाल्गुणी**, (दो) प्रधान शिष्याएँ थीं। **महासोण-वृक्ष** (की) बोधि थी। अट्ठासी हाथ ऊँचा शरीर; और नब्बे हज़ार वर्ष की आयु थी।

(भगवान्) पद्म के बाद नर-श्रेष्ठ, असम=अद्वितीय नारद नामक बुद्ध हुए।

(१०) पद्मोतर बुद्ध

नारद बुद्ध के बाद, एक लाख कल्प बीत जाने पर, एक कल्प में एक **पद्मोत्तर** नामक बुद्ध ही उत्पन्न हुए। उनके भी तीन शिष्य सम्मेलन हुए। प्रथम सम्मेलन में दस खरब भिक्षु (जमा) हुए। **वेभार पर्वत**[1] के दूसरे सम्मेलनमें नौ खरब। तीसरे में आठ खरब। उस समय (हमारे) बोधिसत्त्व **जटिल** नामक महानागरिक (=महाराष्ट्रीय) थे। उन्होंने बुद्ध सहित भिक्षु संघ को तीनों भिक्षु-वस्त्र (=चीवर) दान दिये। उन बुद्ध ने भी कहा—"तू भविष्य में बुद्ध होगा।" भगवान् **पद्मोत्तर** के समय (दूसरे) पन्थाई (=तीर्थिक) नहीं थे। सब देवता और मनुष्य उन (बुद्ध) की शरण गये। उनका (जन्म) **हंसवती** नाम के नगर (में हुआ)। **आनन्द** नाम का क्षत्रिय पिता था। **सुजाता** नामक देवी माता थी। **देवल** तथा **सुजात** दो प्रधान शिष्य थे। **सुमन** नामक परिचारक था। **अमिता** तथा **असमा** दो प्रधान शिष्याएँ थीं। **शाल-वृक्ष** की बोधि थी। शरीर अट्ठासी हाथ ऊँचा था, और शरीर की प्रभा चारों ओर बारह योजन तक फैलती थी। (उनकी) आयु लाख वर्ष (की) थी।

(भगवान्) नारद के बाद नर-श्रेष्ठ, सागर की तरह से निश्चल पद्मोत्तर नामक जिन बुद्ध हुए।

(११) सुमेध बुद्ध

उसके बाद तीस लाख कल्प बीत जाने पर, एक कल्प में **सुमेध** और

[1] **वैभार-गिरि (राजगृह में, जिसके पास काल-शिला है)।**

सुजात दो बुद्ध पैदा हुए। सुमेध के भी तीन शिष्य सम्मेलन हुए। सुदर्शन नगर में प्रथम सम्मेलन में एक अरब अर्हत् जमा थे। दूसरे में नव्वे करोड़, तीसरे में अस्सी करोड़। (उस समय) बोधिसत्त्व **उत्तर** नामक ब्राह्मणयुवक (माणवक) थे। (उन्होंने) पृथ्वी में गाड़ कर रखे हुए अस्सी करोड़ धन को त्याग, बुद्ध सहित भिक्षु-संघ को महादान दे, धर्म को सुन, तीनों (रत्नों) की शरण ग्रहण की, और (घर से) निकल कर साधु हो गये। उन (बुद्ध) ने भी कहा—"तू भविष्य में बुद्ध होगा।"

भगवान् **सुमेध** का **सुदर्शन** नाम का नगर था। **सुदत्त** नाम का राजा पिता था। माता भी **सुदत्ता** नाम की थी। **सरण** और **सर्वकाम** दो प्रधान शिष्य थे। **सागर** नामक परिचारक था। **रामा** और **सुरामा** दो प्रधान शिष्यायें थीं। **महा-कदम्ब-वृक्ष** (की) बोधि थी। अट्ठासी हाथ ऊँचा शरीर था। नव्वे हज़ार वर्ष की आयु थी।

(भगवान्) पद्मोत्तर के बाद सुमेध नामक नायक हुए। वह दुराक्रमणीय उग्रतेज, लोक-श्रेष्ठ मुनि थे।

(१२) सुजात बुद्ध

उनके बाद **सुजात** नामक बुद्ध (=शास्ता) उत्पन्न हुए। उनके भी तीन शिष्य सम्मेलन हुए। पहले सम्मेलन में साठ हज़ार भिक्षु थे। दूसरे में पचास हज़ार। तीसरे में चालीस हज़ार। उस समय (हमारे) बोधिसत्त्व चक्रवर्ती राजा थे। वे 'बुद्ध उत्पन्न होने की बात' सुन, पास जा, धर्म सुन, बुद्ध सहित भिक्षु-संघ को सप्त रत्नों के साथ चारों महाद्वीपों का राज्य दान दे, बुद्ध के पास साधु हुए। सभी देश-वासी (उस समय) देश की उपज ले, विहार (=आराम) के काम को पूरा करते हुए, बुद्ध सहित संघ को महादान देते थे। उनने भी उसे 'बुद्ध' (होगा) कहा। उन भगवान् का नगर **सुमङ्गल** था। **उग्गत** नाम राजा पिता था। **प्रभावती** नाम की माता थी। **सुदर्शन** और **देव** (दो) प्रधान शिष्य थे। **नारद** नामक परिचारक (=उपस्थायक) था। **नागा** और **नागसमाला** (दो) प्रधान शिष्यायें थीं। **महावेणु** (की) बोधि थी। कम छिद्र घनी शाखा वाले (बोधि) की ऊपर वाली शाखाएँ मोर-पुच्छ-समूह की तरह चमकती थीं। उन भगवान् का शरीर पचास हाथ ऊँचा था। आयु नव्वे हज़ार वर्ष की (हुई)।

"वहाँ उस मण्ड-कल्प में, सिंह की सी ठोढ़ी (=हनु)वाले, वृषभ-स्कन्ध अप्रमेय, दुराक्रमणीय सुजात नामक बुद्ध (=नायक) हुए।"

(१३) प्रियदर्शी बुद्ध

उसके बाद अठारह सौ कल्प बीत जाने पर, एक ही कल्प में **प्रिय-दर्शी, अर्थ-दर्शी, धर्म-दर्शी**—तीन बुद्ध उत्पन्न हुए। प्रिय-दर्शी के भी तीन शिष्य सम्मेलन हुए थे। पहले सम्मेलन में दस खरब भिक्षु, दूसरे में नौ खरब, तीसरे में आठ खरब थे। उस समय बोधिसत्त्व **काश्यप** नामक ब्राह्मण (के कुल में पैदा हुए) थे। उन्होंने जवानी में तीनों वेदों में पारङ्गत हो, बुद्ध के उपदेश को सुन दस खरब धन के व्यय से विहार (=संघाराम) बनवा कर, (त्रि-) शरण तथा (पंच-) शील को ग्रहण किया। तब बुद्ध ने कहा—"अठारह सौ कल्पों के बीत जाने पर तू बुद्ध होगा।"

उन भगवान् का **अनोम** नाम का नगर था। **सुदिन्न** नामक राजा पिता था। **चन्दा** नामक माता थी। **पालित** तथा **सर्वदर्शी** (दो) प्रधान शिष्य थे। **सोभित** नामक उपस्थायक था। **सुजाता** तथा **धम्मदिन्ना** (दो) प्रधान शिष्यायें थीं। **पियंगु**(-वृक्ष) की बोधि थी। अस्सी हाथ ऊँचा शरीर और नव्वे हज़ार वर्ष की आयु थी।

"(भगवान्) सुजात के बाद, दुराक्रमणीय, असदृश, महा-यशस्वी, स्वयम्भू (नायक) लोक-नायक हुए।"

(१४) अर्थ-दर्शी बुद्ध

उनके बाद अर्थ-दर्शी नामक बुद्ध उत्पन्न हुए। उनके भी तीन शिष्य-सम्मेलन हुए। पहले में अट्ठानवे लाख भिक्षु (एकत्रित) हुए। दूसरे में अट्ठासी लाख, (और) तीसरे में भी उतने ही। उस समय (हमारे) बोधिसत्त्व सुसीम नामक महा ऋद्धिवान् तापस के रूप में पैदा हुए थे; उन्होंने देव-लोक से मन्दार पुष्प का छत्र ला बुद्ध की पूज की। उन्होंने भी कहा—"तू बुद्ध होगा।"

उन भगवान् का **सोभित** नाम का नगर था। **सागर** नामक राजा पिता था। **सुदर्शना** नाम की माता थी। **शान्त** तथा **उपशान्त** (दो) प्रधान शिष्य थे। **अभय** नामक परिचारक (=उपस्थायक) था। **धम्मा** और **सुधम्मा** प्रधान शिष्यायें थीं। **चम्पक-वृक्ष** (की) बोधि थी। उनका शरीर अस्सी हाथ

ऊँचा था। शरीर की प्रभा सदैव, चारों ओर एक योजन तक फैली रहती थी। उनकी आयु लाख वर्ष की (हुई)।

"वहीं उस मण्ड-कल्प में नर-श्रेष्ठ (=नरऋषभ) अर्थदर्शी ने महान् अन्धकार को नाश कर उत्तम बुद्ध-पद को प्राप्त किया।"

(१५) धर्मदर्शी बुद्ध

उनके बाद **धर्मदर्शी** नामक बुद्ध उत्पन्न हुए। उनके भी तीन शिष्य सम्मेलन हुए। पहले सम्मेलन में एक अरब भिक्षु थे। दूसरे में सत्तर करोड़, तीसरे में अस्सी करोड़। उस समय (हमारे) बोधिसत्त्व देवराज शक्र के रूप में पैदा हुए थे। उन्होंने दिव्य गन्ध-पुष्प तथा दिव्य-वाद्य से (बुद्ध की) पूजा की। बुद्ध ने भी कहा—"(तू बुद्ध होगा)।"

उन भगवान् का **सरण** नाम का नगर था। **सरण** नाम का राजा पिता था। **सुनन्दा** नाम की माता थी। **पदुम** तथा **फुस्सदेव** (दो) प्रधान शिष्य थे। **सुनेत्र** नामक परिचारक (=उपस्थायक) था। **क्षेमा** तथा **सर्वनामा** दो प्रधान शिष्याएँ थीं। **रक्त-कुरबक** (नामक) वृक्ष की बोधि थी। यह (वृक्ष) बिम्बि-जाल भी कहा जाता है। अस्सी हाथ ऊँचा (उसका) शरीर था और आयु भी लाख वर्ष की।

उसी मण्ड-कल्प में महा यशस्वी धम्मदर्शी (बुद्ध) उस अन्धकार का नाश कर देवताओं सहित (सारे) लोक में प्रकाशित हुए।

(१६) सिद्धार्थ बुद्ध

इस कल्प से चौरानवे कल्प पहले एक कल्प में **सिद्धार्थ** नाम के एक ही बुद्ध उत्पन्न हुए। उनके भी तीन शिष्य-सम्मेलन (हुए) थे। पहले सम्मेलन में दस खरब, दूसरे में नौ खरब, तीसरे में आठ खरब भिक्षु थे। वह (हमारे) बोधिसत्त्व उग्र-तेजा, सिद्धि (=अभिज्ञा)-प्राप्त, **मङ्गल** नामक तापस के रूप में पैदा हुए थे। उन्होंने महा जम्बु (=जामुन) वृक्ष के फल को ला कर तथागत को प्रदान किया। बुद्ध (=शास्ता) ने उस फल को सेवन कर बोधि-सत्त्व से कहा—"चौरानवे कल्प बीत जाने पर तू बुद्ध होगा।"

उन भगवान् (सिद्धार्थ) के नगर का नाम **वेभार** था। **जयसेन** नामक राजा पिता था। **सुफस्सा** नाम की माता थी। **सम्बहुल** तथा **सुमित्र** दो प्रधान

शिष्य थे। **रेवत** नामक उपस्थायक था। **सीवली** और **सुरामा** प्रधान शिष्याएँ थीं। **कर्णिकार-वृक्ष** (की) वोधि थी। साठ हाथ ऊँचा (उनका) शरीर था और आयु लाख वर्ष की।

(भगवान्) धर्म-दर्शी के वाद सिद्धार्थ नामक नायक का, सारे अन्धकार को नाश कर, सूर्य्य की भाँति उदय हुआ।

(१७) तिष्य बुद्ध

इस कल्प से ब्यानवे कल्प पहले एक कल्प में **तिस्स** तथा **फुस्स**—दो बुद्ध उत्पन्न हुए। भगवान् तिष्य के तीन शिष्य-सम्मेलन हुए। पहले सम्मेलन में एक अरब, दूसरे में नव्वे करोड़, तीसरे में अस्सी करोड़ भिक्षु थे। उस समय (हमारे) वोधिसत्त्व महाऐश्वर्य-शाली, महायशस्वी सुजात क्षत्रिय के रूप में पैदा हुए थे। उन्होंने ऋषियों के नियम के अनुसार प्रव्रज्या ग्रहण की, और ऋद्धि को प्राप्त हो, बुद्ध के उत्पन्न होने की वात सुन, दिव्य मन्दार-पदुम तथा पारिजात पुष्प ले, चारों प्रकार की परिषद् के वीच चलते हुए तथागत की पूजा की, (और) आकाश में फूलों का चँदवा लगवा दिया। उन शास्ता ने भी कहा—"ब्यानवे कल्प बीत जाने पर तू बुद्ध होगा।

उन भगवान् का **क्षेम** नामक नगर था। **जन-सन्ध** नामक क्षत्रिय पिता था। **पद्मा** (=पदुमा) नामक माता थी। **ब्रह्मदेव** और **उदय** दो प्रधान शिष्य थे। **सम्भव** नाम का परिचारक (=उपस्थायक) था। **फुस्सा** तथा **सुदत्ता** दो प्रधान शिष्याएँ थीं। **असन-वृक्ष** (की) बोधि थी। साठ हाथ ऊँचा उनका शरीर था। लाख वर्ष की आयु थी।

(भगवान्) सिद्धार्थ के बाद, अनुपम, अद्वितीय, अनन्त शीलों से युक्त तथा अनन्त यशों के भागी तिष्य (नामक) लोक के श्रेष्ठ नायक (=बुद्ध) हुए।

(१८) पुष्य बुद्ध

उनके वाद **फुस्स** नामक बुद्ध (=शास्ता) उत्पन्न हुए। उनके भी तीन शिष्य-सम्मेलन हुए। प्रथम सम्मेलन में साठ लाख भिक्षु (जमा) हुए। दूसरे में पचास (लाख), तीसरे में बत्तीस (लाख)। उस समय (हमारे) बोधिसत्त्व **विजितावी** नामक क्षत्रिय थे। वह (अपने) महान् राज्य को छोड़,

बुद्ध (=शास्ता) के पास संन्यासी हो, तीनों पिटक पढ़, जन-समूह को धर्म-उपदेश करते तथा सदाचार (=शील-पारमिता) को पूरा करते थे। (फुस्स) बुद्ध ने भी उसके बारे में वैसी ही भविष्यद्वाणी की। उन भगवान् का **काशी** नामक नगर था। **जयसेन** नामक राजा पिता था। **सिरिमा** नामक माता थी। **सुरक्खित और धम्मसेन** (दो) प्रधान शिष्य थे। **सभिय** नामक उपस्थायक था। **चाला और उपचाला** (दो) प्रधान शिष्याएँ थीं। **आँवले के** वृक्ष (की) बोधि थी। अट्ठावन हाथ ऊँचा शरीर था, और नव्वे हज़ार वर्ष की आयु थी।

"उस मण्ड-कल्प में अनुत्तर=अनुपम=असदृश, लोक में सर्वश्रेष्ठ फुस्स नामक बुद्ध हुए।"

(१९) विपश्यी बुद्ध

इस कल्प से इकानवे कल्प पहले भगवान् **विपस्सी** उत्पन्न हुए। उनके भी तीन शिष्य-सम्मेलन थे। पहले सम्मेलन में अड़सठ लाख, दूसरे में एक लाख, तीसरे में अस्सी हज़ार। उस समय वोधिसत्त्व बड़े ऋद्धिमान्, महा प्रतापी, अतुल नामक नाग-राजा थे। (अतुल ने) सप्त रत्न जड़ित, सोने का सिंहासन भगवान् (विपश्यी) को प्रदान किया। उन (भगवान्) ने भी भविष्यद्वाणी की—"अब से इकानवे कल्प बीत जाने पर तू बुद्ध होगा।"

उन (भगवान्) का **बन्धुमती** नाम का नगर था। **बन्धुमान्** नाम का राजा पिता था। **बन्धुमती** नाम की माता थी। **खण्ड और तिष्य** प्रधान शिष्य थे। **अशोक** नामक परिचारक था। **चन्द्रा और चन्द्रमित्रा** प्रधान शिष्याएँ थीं। **पाटलि-वृक्ष** (की) वोधि थी। शरीर अस्सी हाथ ऊँचा था और शरीर की प्रभा सदैव सात योजन तक फैली रहती थी। उनकी आयु अस्सी हज़ार वर्ष की थी।

"(भगवान्) फुस्स के बाद विपस्सी नामक नर-श्रेष्ठ, द्रष्टा, बुद्ध लोक में उत्पन्न हुए।"

(२०) शिखी बुद्ध

इस कल्प से इकत्तीस कल्प पहले **सिखी** (शिखी) और **वेस्सभू** (विश्वभू) दो बुद्ध उत्पन्न हुए। सिखी के भी तीन शिष्य-सम्मेलन हुए।

पहले सम्मेलन में एक लाख भिक्षु थे। दूसरे में अस्सी हज़ार, तीसरे में सत्तर (हज़ार)। उस समय (हमारे) बोधिसत्त्व अरिन्दम नामक राजा थे। उन्होंने बुद्ध सहित भिक्षु-संघ को चीवर और भोजन (महादान) दे, सप्त रत्नों से सजा गज-रत्न दे, फिर (गज-रत्न के बदले में), उसके समान मूल्य की **विहित (=कप्पिय)**[1] वस्तुएँ दीं। उनने भी कहा—'अब से इकत्तीस कल्प बीत जाने पर, तू बुद्ध होगा।"

उन भगवान् का **अरुणवती** नाम का नगर था। **अरुण** नाम का क्षत्रिय पिता था। **प्रभावती** नाम की माता थी। **अभिभू** और **सम्भव** प्रधान शिष्य थे। **क्षेमङ्कर** नामक परिचारक था। **मखिला** और **पदुमा** प्रधान शिष्याएँ थीं। **पुण्डरीक** वृक्ष (की) बोधि थी। सैंतीस हाथ ऊँचा शरीर था और शरीर की प्रभा तीन योजन तक फैली होती थी। सैंतीस हज़ार वर्ष की उनकी आयु थी।

(भगवान्) विपस्सी के बाद, अतुलनीय, अद्वितीय, नर-श्रेष्ठ सिखि नामक जिन बुद्ध हुए।

(२१) विश्वभू बुद्ध

उनके बाद **वेस्सभू** नामक शास्ता उत्पन्न हुए। उनके भी तीन शिष्य-सम्मेलन हुए। पहले सम्मेलन में अस्सी लाख भिक्षु थे, दूसरे में सत्तर (-लाख) तीसरे में साठ लाख। उस समय (हमारे) बोधिसत्त्व सुदर्शन नामक राजा थे। वे बुद्ध सहित भिक्षु-संघ को चीवर और भोजन दे, उनके पास प्रव्रजित हुए। वह सद् (आचार) तथा (सद्) गुणों से युक्त थे। बुद्ध रत्न में उनकी अपार श्रद्धा थी। उन भगवान् ने भी कहा—"अब से इकत्तीस कल्प बीत जाने पर तू बुद्ध होगा।"

उन भगवान् का **अनुपम** नाम का नगर था। **सुप्पतीत** (सुप्रतीत) नाम का राजा पिता था। **यशोवती** नामक माता थी। **सोण** और **उत्तर** प्रधान शिष्य थे। **उपशान्त** नामक परिचारक था। **दामा** और **सुमाला** प्रधान शिष्याएँ थीं। **शाल-वृक्ष** (की) बोधि थी। साठ हाथ ऊँचा शरीर था। साठ हज़ार वर्ष की उनकी आयु थी।

[1] ऐसी चीजें, जिनका ग्रहण, भिक्षु के लिए अनुचित न हो।

उसी मण्ड-कल्प में अतुलनीय, अद्वितीय, वेस्सभू नाम के बुद्ध लोकमें उत्पन्न हुए।

(२२) ककुसन्ध बुद्ध

उसके बाद इस कल्प में **ककुसन्ध, कोणागमन, काश्यप** और हमारे भगवान्—यह चार बुद्ध उत्पन्न हुए। भगवान् ककुसन्ध का एक ही सम्मेलन हुआ। उसमें चालीस हज़ार भिक्षु एकत्र हुए। उस समय (हमारे) बोधि-सत्त्व खेम नामक राजा थे। उन्होंने बुद्ध सहित भिक्षु-संघ को पात्र-चीवरों सहित भोजन तथा अंजन आदि दवाइयाँ प्रदान कीं और बुद्ध का धर्मोपदेश सुन प्रव्रज्या ग्रहण की। उनने भी कहा—"तू बुद्ध होगा।"

भगवान् **ककुसन्ध** का **खेम** नाम का नगर था। **अग्निदत्त** नामक ब्राह्मण पिता था। **विशाखा** नामक ब्राह्मणी माता थी। **विधुर** तथा **सञ्जीव** प्रधान शिष्य थे। **बुद्धिज** नामक परिचारक था। **सामा** तथा **चम्पका** प्रधान शिष्याएँ थीं। महान् **शिरीष-वृक्ष** (की) बोधि थी। चवालीस हाथ ऊँचा शरीर था। आयु उनकी चालीस हज़ार वर्ष की थी।

भगवान् (वेस्सभू) के बाद नर-श्रेष्ठ, अप्रमेय, दुराक्रमणीय ककुसन्ध नाम के बुद्ध हुए।

(२३) कोणागमन बुद्ध

उनके बाद **कोणागमन** बुद्ध उत्पन्न हुए। उनका भी एक ही शिष्य-सम्मेलन हुआ। उसमें तीस हज़ार भिक्षु (एकत्र) हुए। उस समय हमारे बोधिसत्त्व पर्वत नामक राजा थे। उन्होंने अमात्यों के साथ, बुद्ध के पास जा, धर्मोपदेश सुना, और बुद्ध सहित भिक्षु-संघ को निमन्त्रित कर, प्रतूर्ण, **चीनवस्त्र**, रेशम (कोसेय्य), कम्बल, दुकूल और स्वर्ण-वस्त्र के साथ भोजन प्रदान कर शास्ता के पास प्रव्रज्या ग्रहण की। उनने भी कहा—"तू बुद्ध होगा।"

उन भगवान् का **सोभवती** नाम का नगर था। **यज्ञदत्त** नामक ब्राह्मण पिता था। **उत्तरा** नामक ब्राह्मणी माता थी। **भीयस** और **उत्तर** (दो) प्रधान शिष्य थे। **स्वस्तिज** नाम का परिचारक था। **सुमुद्रा** और **उत्तरा** प्रधान शिष्याएँ थीं। **उदुम्बर** (गूलर) वृक्ष (की) बोधि थी। तीस हाथ ऊँचा शरीर था। तीस सहस्र वर्ष की उनकी आयु थी।

"(भगवान्) ककुसन्ध के बाद नर-श्रेष्ठ, नर-पुङ्गव, लोक-ज्येष्ठ, कोणा-गमन नामक जिन सम्बुद्ध हुए।"

(२४) काश्यप बुद्ध

उनके वाद लोक में **काश्यप** नाम के बुद्ध शास्ता उत्पन्न हुए। उनका भी एक ही शिष्य-सम्मेलन हुग्रा। उसमें बीस हज़ार भिक्षु (एकत्र) हुए। उस समय (हमारे) बोधिसत्त्व तीनों वेदों में पारंगत **ज्योति-पाल** नामक ब्राह्मण-युवक थे। भूमि-आकाश (सर्वत्र) प्रसिद्ध, **घटिकार** नाम का कुम्हार उनका मित्र था। वह अपने (मित्र) के साथ शास्ता के पास गये और उपदेश सुन, भिक्षु बन गये। प्रयत्नशील बन **तीनों पिटकों**[1] को सीखा और अपने **शारीरिक कर्त्तव्यों**[2] की पूर्ति से बुद्ध धर्म के लिए भूषण बने। काश्यप बुद्ध ने भी कहा— "तू बुद्ध होगा।"

उन भगवान् का जन्म-नगर **बनारस** (=वाराणसी) था। **ब्रह्मदत्त** नामक ब्राह्मण पिता था। **धनवती** नामक ब्राह्मणी माता थी। **तिस्स** और **भारद्वाज**—दो प्रधान शिष्य थे। **सर्व-मित्र** नाम का परिचारक था। **अनुला** तथा **उरुवेला** प्रधान शिष्याएँ थीं। **न्यग्रोध-वृक्ष** (की) बोधि थी। वीस हाथ ऊँचा शरीर था। वीस हज़ार वर्ष की उनकी आयु थी।

"(भगवान्) कोणागमन के बाद नर-श्रेष्ठ, धर्म-राज, प्रभङ्कर काश्यप नामक जिन बुद्ध हुए।"

जिस कल्प में दीपङ्कर बुद्ध उत्पन्न हुए, उस कल्प में अन्य भी तीन बुद्ध हुए। लेकिन उनके पास (हमारे) बोधिसत्त्व के बुद्ध होने की भविष्यद्वाणी (=व्याकरण) नहीं हुई, इस लिए वे (तीन बुद्ध) यहाँ नहीं दिखाये गये। लेकिन **अर्थ-कथा**[3] में उस कल्प से आरम्भ करके सभी बुद्धों को दिखाने (=वर्णित करने) के लिए यह कहा गया है:—

'त ण्ह ङ्क र, मे ध ङ्क र, फिर श र ण ङ्क र, दी प ङ्क र बुद्ध, नर-श्रेष्ठ

[1] सूत्र-पिटक, विनय-पिटक तथा अभिधर्म-पिटक।

[2] विहार में झाड़ू देना आदि।

[3] बुद्धवंश की अट्ठकथा।

कोण्डञ्ज, मङ्गल, सुमन, रेवत, सोभित मुनि, अनोम दर्शी, पदुम, नारद, पदुमुत्तर, सुमेध, सुजात, महायशस्वी प्रियदर्शी, अर्थदर्शी, धर्मदर्शी, सिद्धार्थ लोकनायक, तिस्स, फुस्स बुद्ध, विपस्सी, सिखि, वेस्सभू, ककुसन्ध, कोणागमन, नायक काश्यप—यह सब वीतराग, संयमी, बुद्ध महा अन्धकार को नाश करते हुए, सौररश्मियों की तरह उत्पन्न हुए, और अग्नि-पुंज की तरह जल कर, शिष्यों-सहित निर्वाण को प्राप्त हुए।'

धर्मों का आचरण

इस प्रकार हमारे बोधिसत्त्व, दीपङ्कर आदि चौबीस बुद्धों के पास से अधिकार प्राप्त करते हुए, लक्षाधिक चार असंखेय्य-कल्पों (तक) आये। इस (भद्र कल्प-युग में) भगवान् काश्यप-बुद्ध के बाद इन सम्यक् सम्बुद्ध के अतिरिक्त दूसरे कोई बुद्ध नहीं (हुए)। इस प्रकार दीपङ्कर आदि चौबीस बुद्धों ने जिनके लिए भविष्यद्वाणी की, उन बोधिसत्त्व के बारे में (कहा है) :—

"मनुष्यत्त्व जाति, (पुरुष-)लिङ्ग, (उत्तम-)हेतु (=भाग्य), बुद्ध से भेंट, प्रव्रज्या, गुणों की प्राप्ति, अधिकार, सदिच्छा; इन आठ बातों से युक्त होने पर, संकल्प (=अभिनीहार) पूरा होता है।"

इन आठ बातों पर भली भाँति विचार कर, (हमारे बोधिसत्त्व ने दीपंकर (बुद्ध) के चरणों में अभिनीहार किया—"हन्त! मैं जहाँ तहाँ से बुद्धत्व प्राप्ति के सहायक गुणों की खोज करूँगा।" फिर उत्साह पूर्वक खोजते हुए पहले पहल दान-पारमिता को देखा। (इस प्रकार) दान-पारमिता आदि बुद्ध बनाने वाली बातों की ओर ख्याल गया। उन (बुद्ध-कारक) बातों को पूरा करते हुए, वह वेस्सन्तर के जन्म तक आये। ऐसे (साधनों में लग्न हो) चले आते (बोधिसत्त्व की) तथा दूसरे बोधिसत्त्वों की सुफलता को (इस प्रकार) वर्णित किया गया है—

"इस प्रकार जो सर्वाङ्ग-पूर्ण पुरुष है, जिसका बुद्ध होना निश्चित है, वह एक अरब कल्प तक के लम्बे काल में आवागमन करते हुए भी, अवीचि,[1]

[1] आठ महान् नरकों में से, सबसे नीचे का नरक।

तथा लोकान्तरों[1] में उत्पन्न नहीं होते, और न ही वह निज्झामतृष्ण[2] क्षुधापिपासा, कालकञ्जक[3] जैसी योनियों में जाते हैं। दुर्गति[4] में जाने पर भी वह छोटे छोटे जीव के रूप में पैदा नहीं होते। मनुष्य-योनि में पैदा होने पर, वह जन्मान्ध पैदा नहीं होते। वह बहरे नहीं होते, और न ही गूँगे होते हैं। वह स्त्री-योनि में नहीं जाते, न ही दोनों लिङ्गों वाले तथा नपुंसक (होते हैं)। ऐसे पुरुष, जिनका बुद्ध होना निश्चित है, वह (उक्त योनियों की ओर) नहीं लौटते। वह सर्वत्र शुद्ध और आनन्तर्य[5] कर्मों से मुक्त होते हैं। वह कर्मक्रियादर्शी[6] पुरुष झूठी धारणा नहीं ग्रहण करते। यदि वह स्वर्ग में पैदा होते हैं भी, तो असंज्ञी[7] (योनि) में उत्पन्न नहीं होते। शुद्धावास[8] देव-लोक में (उनके लिए उत्पन्न होने का) कारण नहीं होता। नैष्कर्म्य के झुके हुए, भवाभव वियुक्त सत्पुरुष सब पारमिताओं को पूरा करते, लोकोपकार के लिए विचरण करते हैं।

१०. जातकों में पारमिताओं का अभ्यास

(१) दान पारमिता

इन महात्म्यों को प्राप्त करते हुए ही (बोधिसत्त्व अन्तिम जन्म तक)

[1] तीन चक्रवाल के बीच के अत्यन्त शीत-नरक।

[2] प्रेत की योनि।

[3] असुर-योनि।

[4] तिरश्चीन-योनि।

[5] मातृ-हत्या, पितृ-हत्या, अर्हत की हत्या, बुद्ध के शरीर में जख्म करके उनका रक्त बहाना, संघ-भेद (=संघ में नाइत्तफाकी पैदा करना)। यह पाँच अनन्तर-कर्म हैं। इन कर्मों का फल तुरन्त और अवश्य भोगना पड़ता है।

[6] कर्म और उनका फल मानने वाले।

[7] रूप-लोक की योनियों में से एक।

[8] अनागामी-फल प्राप्त (व्यक्ति) फिर इस लोक में उत्पन्न नहीं होते। वे शुद्धावास-लोक में उत्पन्न हो, वहीं आवागमन से मुक्त हो जाते हैं।

पहुँचे। उन्होंने पारमिताओं को पूर्ण करते हुए, अकीर्ति ब्राह्मण, सङ्ख ब्राह्मण धनञ्जय राजा, महासुदर्शन, महागोविन्द, निमि महाराज, चन्द्रकुमार, विसय्ह श्रेष्ठी, सिवि राजा तथा वेस्सन्तर के जन्मों में, दान-पारमिता पूरा करने में पराकाष्ठा कर दी। लेकिन **शश-पण्डित** जातक में तो निश्चयरूप से (समझो)—

याचक को देख कर, मैंने अपने शरीर तक को दे दिया। दान देने में मेरे समान (कोई) नहीं; यह मेरी दान-पारमिता है।

इस प्रकार शरीर प्रदान करते हुए उनकी दान-पारमिता परमार्थ-पारमिता हुई।

(२) शील-पारमिता

इसी प्रकार शीलव नाग-राज, चम्पेय्य नाग-राज, भूरिदत्त नाग-राज, छद्दंत नाग-राज, जय-द्दिश राजा के पुत्र अलीन शत्रु कुमार के जन्मों में शील-पारमिता की पूर्ति की चरम-सीमा नहीं, लेकिन **शङ्खपाल** के जन्म में तो निश्चय-रूप से (सोचा)—

शूल से छेदने और शक्ति (-आयुध) से प्रहार करने पर भी सपेरा के प्रति मुझे क्रोध नहीं होता। यह मेरी शील-पारमिता है।

इस प्रकार आत्म-त्याग करते हुए (उन) की शील-पारमिता परमार्थ-पारमिता हुई।

(३) नैष्कम्य पारमिता

उसी प्रकार सौमनस्य कुमार, हस्तिपाल कुमार तथा अयोघर पण्डित के जन्मों में महान् राज्य को छोड़ नैष्क्रम्य पारमिता की पूर्ति की सीमा नहीं। **चूल-सुतसोम** जातक में तो निश्चय रूप से—

मैंने अपने हाथ के महान् राज्य को थूक की तरह त्याग दिया। और उसको छोड़ते हुए आसक्ति (का अनुभव) नहीं हुआ। यह मेरी नैष्क्रम्य पारमिता है।

इस प्रकार निर्लिप्त हो राज्य छोड़ कर कामना रहित होने से (उन)की नैष्क्रम्य पारमिता परमार्थ-पारमिता हुई।

(४) प्रज्ञा पारमिता

इसी प्रकार विधुर पण्डित, महागोविन्द पण्डित, कुदाल पण्डित, अरक पण्डित, बोधि परिव्राजक, महौषध पण्डित के जन्मों में, प्रज्ञा पारमिता की पूर्ति की सीमा नहीं। लेकिन सेनक पण्डित के समय **सत्तुभस्त** जातक में तो निश्चय रूप से—

प्रज्ञा की खोज में, मैंने ब्राह्मण को दुख से मुक्त किया। प्रज्ञा में (कोई) मेरे समान नहीं है। यह मेरी प्रज्ञा पारमिता है।

थैली के भीतर वाले साँप को दिखाने में (उन) की प्रज्ञा पारमिता परमार्थ पारमिता हुई।

(५) वीर्य पारमिता

इसी प्रकार वीर्य पारमिता आदि (दूसरी) पारमिताओं की पूर्ति की भी (दूसरे जन्मों में चरम) सीमा नहीं।

हाँ, महाजनक जातक में तो निश्चय रूप से—

जल में किनारा न देख सकने वाले सभी मनुष्य मर गए, (किन्तु मेरे) चित्त में विकार नहीं उत्पन्न हुआ। यह मेरी वीर्य पारमिता है।

इस प्रकार महा समुद्र को पार करते हुए (उन) की वीर्य पारमिता परमार्थ पारमिता हुई।

(६) क्षान्ति पारमिता

क्षान्तिवाद जातक में—

"तेज फरसे से जड़ वस्तु की तरह मुझे काट रहे थे, इसपर भी, काशीराज के प्रति मुझे क्रोध नहीं आया। यह मेरी क्षान्ति (क्षमा) पारमिता है।"

इस प्रकार जड़ वस्तु की भाँति भयंकर पीड़ा को सहते हुए वह क्षान्ति पारमिता परमार्थ पारमिता हुई।

(७) सत्य पारमिता

महासुतसोम जातक में—

"सत्यवादिता की रक्षा करते हुए, अपने जीवन का परित्याग कर, मैंने एक सौ क्षत्रियों को मुक्त किया। (यह मेरी) परमार्थ सत्य-पारमिता है।"

इस प्रकार जीवन परित्याग कर सत्य की रक्षा कर वह सत्य-पारमिता परमार्थ पारमिता हुई।

(८) अधिष्ठान पारमिता

मूग पक्ख (=मूक पक्ष) जातक में—

न तो मेरा माता-पिता से द्वेष है, न महाशय से ही द्वेष है। मुझे बुद्ध-पद (=सर्वज्ञता) प्रिय है। इसलिए मैंने इस व्रत का अधिष्ठान किया है।

इस प्रकार जीवन परित्याग करके भी (अपने) व्रत का अधिष्ठान (=दृढ़ता से पालन) करना (यह उन)की अधिष्ठान पारमिता परमार्थ-पारमिता हुई।

(९) मैत्री पारमिता

एकराज जातक में—

न मुझे कोई डराता है, न मैं किसी से डरता हूँ। मैं मैत्री-बल पर निर्भर हो सदैव बन में विचरता हूँ।

इस प्रकार जीवन तक की परवाह न करके मैत्री करना (यह उन)की मैत्री-पारमिता परमार्थ-पारमिता हुई।

(१०) उपेक्षा पारमिता

लोमहंस जातक में—

मुर्दों तथा हड्डियों का तकिया बनाकर श्मशान में सोता हूँ। ग्वाले मेरे पास आकर अनेक प्रकार के रूप दिखाते हैं।

इस प्रकार ग्रामीण बालकों के थूक फेंकने आदि से पीड़ा देने तथा, माला गन्ध उपहार आदि द्वारा सुख देने से भी समभाव (=उपेक्षा) का उल्लंघन नहीं किया। इस प्रकार की (उनकी) उपेक्षा पारमिता परमार्थ-पारमिता हुई।

यहाँ यह संक्षेप से कहा गया है, विस्तार के लिए **चरियापिटक**[1] को देखना चाहिए।

[1] खुद्दक निकाय का एक ग्रन्थ।

इस प्रकार पारमिताओं को पूरा कर वह वेस्सन्तर के जन्म (=आत्म भाव) में आये।

यह पृथिवी अचेतन है। सुख दुख से प्रभावित नहीं होती है; किन्तु वह भी मेरे दान के बल से सात बार काँपी।

इस प्रकार महापृथ्वी को कँपाने वाले महापुण्य कर्मा, (हमारे बोधिसत्त्व) आयु को बिता कर, तुषित-देवलोक में उत्पन्न हुए।

भगवान् 'दीपङ्कर के चरणों' से आरम्भ करके तुषित-लोक में जन्म लेने तक के इस भाग को **'दूरेनिदान'** जानना चाहिए।

ख. अविदूरेनिदान

१. गौतम का (बाल्य) चरित

(१) देव-लोक से मनुष्य-लोक की ओर

बोधिसत्त्व के तुषित लोक में रहते समय ही बुद्ध-कोलाहल (=घोष) पैदा हुआ। लोक में कल्प-कोलाहल, बुद्ध-कोलाहल तथा चक्रवर्ती-कोलाहल—तीन प्रकार के कोलाहल उत्पन्न होते हैं। (आज से) लाख वर्ष के बीत जाने पर कल्प-उत्थान होगा (सोच) काम-धातु के लोक-व्यूह नामक देवता, खुले सिर, बिखरे-केश, रोनी-शकल बना, हाथों से आँसू पोंछते हुए, लाल वस्त्र पहने अत्यन्त कुरूप वेश धारण किये मनुष्य-लोक में घूमते हुए इस प्रकार चिल्लाते हैं—"मित्रो ! लाख वर्ष व्यतीत होने पर कल्प-उत्थान होगा—यह लोक नष्ट हो जायगा। महा-समुद्र सूख जायगा। यह महापृथ्वी और पर्वत-राज सुमेरु उड़ जायेंगे, नष्ट हो जायेंगे। ब्रह्म-लोक तक (समस्त) ब्रह्माण्ड का नाश हो जायगा। मित्रो ! मैत्री-भावना की भावना करो। करुणा, मुदिता, उपेक्षा (भावना) की भावना करो। माता-पिता की सेवा करो। कुल में जो ज्येष्ठ हों उनकी सेवा करो।" यह कल्प-कोलाहल हुआ।

सहस्र वर्ष बीतने पर, लोक में सर्वज्ञ बुद्ध उत्पन्न होंगे (सोच) लोक-पाल देवता "मित्रो ! अब से सहस्र वर्ष बीतने पर लोक में बुद्ध उत्पन्न होंगे" उद्-घोषित करते हुए घूमते हैं। यह बुद्ध-कोलाहल हुआ।

सौ वर्ष के बीतने पर चक्रवर्ती राजा उत्पन्न होगा, (सोच) देवता "मित्रो ! अब से सौ वर्ष बीतने पर, लोक में चक्रवर्ती राजा उत्पन्न होगा" उद्घोषित करते हुए घूमते हैं। यह चक्रवर्ती-कोलाहल हुआ।

यह तीनों कोलाहल महान्-कोलाहल होते हैं।

बुद्ध-कोलाहल के शब्द को सुन कर, सारे दस सहस्र चक्रवालों के देवता एक स्थान पर एकत्रित हो, 'अमुक व्यक्ति बुद्ध होगा' जान पूर्व लक्षणों को देख उसके पास जा प्रार्थना (=याचना) करते हैं।

जब वह पूर्व-लक्षण उदय हो गये, तो (इस) चक्रवाल के सभी देवताओं—चतुर्महाराजिक, शक्र, सुयाम, संतुषित, परनिर्मित-वशवर्ती—ने महाब्रह्माओं के साथ एक चक्रवाल में इकट्ठे हो (सलाह) की, (और फिर) तुषित-लोक में बोधिसत्त्व के पास जा कर, उन्होंने प्रार्थना की—"मित्र ! तुमने जो दस पारमिताओं की पूर्ति की, वह न तो इन्द्रासन पाने के लिए, न मार, ब्रह्मा अथवा चक्रवर्ती के पद की प्राप्ति के लिए। लोक-निस्तार के लिए, बुद्धत्व की इच्छा से ही उन्हें तुमने पूरा किया। सो मित्र ! अब यह बुद्ध होने का काल है। मित्र ! यह बुद्ध होने का समय है।"

(२) बोधिसत्व का जन्म कुल देश आदि

उस समय बोधिसत्त्व ने देवताओं को वचन दिए बिना ही (अपने जन्म सम्बन्धी) समय, द्वीप, देश, कुल, माता तथा आयु-परिमाण—इन पाँच 'महा-विलोकनों' पर विचार किया। (सर्व) प्रथम, 'समय उचित है या नहीं' (पर) समय का विचार किया। लाख वर्ष से ऊपर की आयु का समय (बुद्धों के जन्म के लिए) उचित समय नहीं होता। सो क्यों? उस समय प्राणियों को जन्म, जरा, मरण का भान नहीं होता। बुद्धों का धर्मोपदेश **तीन लक्षणों से रहित**[1] नहीं होता। उस समय 'अनित्य-दुःख तथा अनात्म' सम्बन्धी उपदेश करने पर लोग "यह क्या कहते हैं? (कह कर) उसे ध्यान से नहीं सुनते, न उसपर श्रद्धा करते हैं। इसी लिए उन्हें (धर्म का) बोध नहीं हो सकता। उसके न होने पर बुद्ध-धर्म (उनके लिए) सहायक (=नैर्याणिक) नहीं होता। इसीलिए

[1] अनित्य, दुक्ख तथा अनात्म-भाव।

वह समय अनुकूल नहीं है ? सौ वर्ष से कम आयु का समय अनुकूल समय नहीं होता। क्यों? सौ वर्ष से कम की आयु वाले प्राणियों में राग-द्वेष बहुत होते हैं। अधिक राग-द्वेष वाले प्राणियों को दिया गया उपदेश भी प्रभावोत्पादक नहीं होता। पानी पर, लकड़ी से खींची हुई लकीर की तरह वह शीघ्र ही नष्ट हो जाता है। इसीलिए यह भी समय अनुकूल समय नहीं है।

महासत्त्व ने देखा कि लाख वर्ष से नीचे और सौ वर्ष से ऊपर का समय अनुकूल समय है और कि वह सौ वर्ष की आयु वाला समय है; इसलिए बुद्धों के उत्पन्न होने का समय है।

तब द्वीप का विचार करते हुए, उपद्वीपों सहित चारों द्वीपों को (देख) विचार किया—दूसरे **तीनों द्वीपों**[1] में बुद्ध उत्पन्न नहीं हुआ करते, जम्बू-द्वीप में ही वह जन्म लेते हैं; और (जम्बू-द्वीप में जन्मने का) निश्चय किया। फिर 'जम्बू-द्वीप तो दस हजार योजन बड़ा है' कौन से प्रदेश में बुद्ध जन्म लेते हैं ? इस तरह प्रदेश पर विचार करते हुए मध्य-प्रदेश को देखा। "मध्य देश की पूर्व दिशा में **कजंगल**[2] नामक कस्वा है, उसके बाद बड़े शाल (के बन) हैं, और फिर आगे सीमान्त (=प्रत्यन्त) देश। पूर्व-दक्षिण में **सललवती**[3] नामक नदी है, उसके आगे सीमान्त देश। दक्षिण दिशा में **सेतकण्णिक**[4] नामक कस्बा है, उसके बाद सीमान्त देश। पश्चिम दिशा में **थून**[5] नामक ब्राह्मण-ग्राम है, उसके बाद सीमान्त देश। उत्तर दिशा में **उशीरध्वज**[6] नामक पर्वत है, उसके बाद सीमान्त देश।'—इस प्रकार विनय (-पिटक) में (मध्य-) देश का वर्णन है।

यह (मध्य-देश) लम्बाई में तीन सौ योजन, चौड़ाई में ढाई सौ योजन, और घेरे में नौ सौ योजन है। इसी प्रदेश में बुद्ध, प्रत्येक-बुद्ध, प्रधान अग्र-श्रावक

[1] अपर-गोयान, पूर्व-विदेह तथा उत्तर-कुरु में।
[2] वर्तमान कंकजोल, जिला संथाल पर्गना (बिहार)।
[3] वर्तमान सिलई नदी (हजारी बाग और मेदनीपुर जिला)।
[4] हजारी बाग जिले में कोई स्थान।
[5] थानेश्वर, जिला कर्नाल।
[6] हिमालय का कोई पर्वत-भाग।

(=प्रधान शिष्य), महाश्रावक, अस्सी महा-श्रावक, चक्रवर्ती राजा, तथा दूसरे महाप्रतापी, ऐश्वर्यशाली, क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य पैदा होते हैं। और वहीं यह **कपिल वस्तु**[1] नामक नगर है, वहीं मुझे जन्म लेना है'—यह निश्चय किया।

तब कुल का विचार करते हुए—"बुद्ध वैश्य या शूद्र कुल में उत्पन्न नहीं होते। लोकमान्य क्षत्रिय या ब्राह्मण, इन्हीं दो कुलों में जन्म लेते हैं। आज कल क्षत्रिय कुल लोकमान्य है। (इसलिए) उसी (कुल) में जन्म लूँगा। शुद्धोदन नामक राजा मेरा पिता होगा (सोच) कुल का निश्चय किया।

फिर माता का विचार करते हुए—"बुद्धों की माता चञ्चल और शराबी तो होती नहीं। लाख कल्प से (दान आदि) पारमिताएँ पूरी करने वाली, और जन्म से ही अखण्ड पञ्च शील (=सदाचार) रखने वाली होती है। यह **महामाया** नामक देवी ऐसी (ही) है, यह मेरी माता होगी। लेकिन इसकी (बाकी) आयु कितनी होगी' (विचारते हुए) दस महीने सात दिन की आयु देखी।

(३) मायादेवी के गर्भ में

इस प्रकार इन पाँच-'विलोकनों' को विलोकन कर, 'हाँ मित्रो ! मेरे बुद्ध होने का समय है'—इस प्रकार वचन दे देवताओं को सन्तुष्ट किया; और "आप लोग जाइए" (कह) देवताओं को विदा कर, तुषित देवताओं के साथ, तुषित लोक के नन्दन वन में प्रवेश किया। सभी देवलोकों में नन्दन वन होते हैं। वहाँ (साथी) देवता (लोग),—'यहाँ से च्युत हो कर (अमुक) सुगति को प्राप्त होते हैं'—इस प्रकार बोधिसत्त्व को पूर्व के किये पुण्य कर्मों (के बल) से मिलने वाले स्थानों का स्मरण दिलाते हुए घूम रहे थे। इस प्रकार पुण्य कर्मों की स्मृति कराते देवताओं के साथ वे वहाँ रहे। फिर वहाँ से च्युत हो कर, महामाया देवी की कुक्षि में प्रवेश किया।

उस (गर्भ) प्रवेश को स्पष्ट करने के लिए क्रमानुसार कथा इस प्रकार है :— उस समय **कपिल वस्तु** नगर में **आषाढ़** का उत्सव उद्घोषित हुआ था। जनता उत्सव मना रही थी। पूर्णिमा के सात दिन पहले **महामाया** देवी बिना मद्य-पान

[1] **देखो तिलौराकोट (नेपाल की तराई)।**

के मालागन्ध से सुशोभित हो, उत्सव मना रही थीं। सातवें दिन प्रातः ही उठ, उसने सुगन्धित जल से स्नान कर, चार लाख का महादान दिया; और सब अलङ्कारों से विभूषित हो, सुन्दर भोजन ग्रहण कर, उपोसथ (=व्रत) के नियमों (=अङ्गों) को धारण किया। फिर सु-अलङ्कृत शयनागार में प्रविष्ट हो, सुन्दर शय्या पर लेटे, निद्रित अवस्था में यह स्वप्न देखा—

'उसे चार-महाराज (दिक्पाल) शय्या सहित उठा कर, हिमवन्त (-प्रदेश) में ले जा कर, साठ योजन के मन-शिला (नामक शिला) के ऊपर, सात योजन (छाया) वाले महान् शाल-वृक्ष के नीचे रख कर खड़े हो गये।

तब उन (दिक्पालों) की देवियों ने आकर, (महामाया) देवी को **अनोतप्त-दह** में ले जाकर, मनुष्य-मल दूर करने के लिए स्नान कराया; दिव्य-वस्त्र पहनाया, गन्धों से लेप किया, दिव्य फूलों से सजाया। वहाँ से समीप ही रजत-पर्वत है; जिसके अन्दर सुवर्ण-विमान है। वहीं पूर्व की ओर सिर करके दिव्य-शयन बिछवा कर उन्होंने उसे लिटाया। बोधिसत्त्व श्वेत सुन्दर हाथी बन समीपवर्ती सुवर्ण-पर्वत पर विचर कर, वहाँ से उतर रजत-पर्वत पर चढ़े। फिर उत्तर दिशा से आ कर (उक्त स्थान पर पहुँचे)। उनकी रुपहली माला जैसी सूण्ड में श्वेत पद्म था। उन्होंने मधुर नाद कर, स्वर्ण-विमान में प्रवेश कर फिर तीन बार माता की शय्या की प्रदक्षिणा की। फिर दाहिनी बगल को चीर, कुक्षि में प्रविष्ट हुए से जान पड़े। इस प्रकार (बोधिसत्त्व ने) उत्तराषाढ़ नक्षत्र में गर्भ में प्रवेश किया।

दूसरे दिन जाग कर देवी ने इस स्वप्न को राजा से कहा। राजा ने चौंसठ प्रधान ब्राह्मणों को बुलवाया। गोबर-लीपी, खीलों (=लाजा) आदि से मङ्गलाचरण की गई भूमि पर महार्घ आसन बिछवाये। उन पर ब्राह्मणों को बैठा घी, मधु, शक्कर से प्रस्तुत की गई खीर से सोने-चाँदी की थालियाँ भर कर, उन्हें सोने-चाँदी की ही थालियों से ढक कर परोसा। और नवीन वस्त्र तथा कपिला गौ आदि के दान से भी उन्हें संतर्पित किया। उनकी सब इच्छाएँ पूरी कर उन्होंने ब्राह्मणों को स्वप्न की बात कह "स्वप्न का (फल) क्या होगा ?" पूछा।

ब्राह्मणों ने कहा—"महाराज ! चिन्ता न करें। आपकी देवी की कुक्षि में गर्भ प्रतिष्ठित हुआ है। वह स्त्री-गर्भ नहीं, पुरुष-गर्भ है। आपके पुत्र होगा।

वह यदि घर (=गृहस्थ) में रहेगा, तो चक्रवर्ती राजा होगा, यदि घर से निकल कर, प्रव्रजित होगा, तो लोक में कपाट खुला (=ज्ञानी) बुद्ध होगा।"

बोधिसत्त्व के गर्भ में आने के समय, समस्त दस-सहस्र ब्रह्माण्ड एक प्रहार से काँपने की तरह काँपे। बत्तीस पूर्व-शकुन (=लक्षण) प्रकट हुए। दस सहस्र चक्रवालों में अनन्त प्रकाश हो उठा। मानो (प्रकाश) की उस कान्ति (=श्री) को देखने के लिए ही, अन्धों को आँखें मिल गईं। बहरे शब्द सुनने लगे। गूँगे बोलने लगे। कुबड़े सीधे हो गये। लँगड़े पाँव से चलने लगे। बन्धनों में पड़े हुए सभी प्राणी बेड़ी हथकड़ी से मुक्त हो गए। सारे नरकों की आग बुझ गई। प्रेतों की क्षुधा-पिपासा शान्त हो गई। पशुओं (=तिरश्चीनों) का भय जाता रहा। तमाम प्राणियों के रोग शान्त हो गये। सभी प्राणी प्रिय-भाषी हो गये। घोड़े मधुर स्वर से हिनहिनाने लगे। हाथी चिंघाड़ने लगे। सारे वाद्य (=तुरिय) स्वयं बजने लगे। मनुष्यों के हाथों के आभरण, बिना आपस में टकराये ही, शब्द करने लगे। सब दिशाएँ शान्त हो गईं। प्राणियों को सुखी करती, मृदुल शीतल हवा चलने लगी। बे-मौसम के वर्षा बरसने लगी। पृथ्वी से भी पानी निकल कर बहने लगा। पक्षियों ने आकाश में उड़ना छोड़ दिया। नदियों ने बहना छोड़ दिया। महासमुद्र का पानी मीठा हो गया। सभी जगहें पाँच रंग के कमलों से ढक गईं। जल-थल में उत्पन्न होने वाले सब प्रकार के पुष्प खिल उठे। वृक्षों के स्कन्धों में, स्कन्ध-कमल, शाखाओं में शाखा-कमल, लताओं में लता-कमल पुष्पित हुए। स्थल पर शिला-तलों को फाड़ कर, ऊपर ऊपर से, सात सात हो, दण्ड-कमल निकले। आकाश में लटकने वाले कमल उत्पन्न हुए। चारों ओर से पुष्पों की वर्षा हुई। आकाश में दिव्य वाद्य (=तुर्य) बजे। चारों ओर सारी दस-साहस्री लोक धातु (=ब्रह्माण्ड) माला-गुच्छ की तरह, दाबकर बँधे माला-समूह की तरह, सजे सजाये माला-आसन की तरह, एक माला-पंक्ति की तार, अथवा पुष्प धूप गन्ध से सुवासित खिली हुई चवँर की तरह परम शोभा को प्राप्त हुई।

बोधिसत्त्व के गर्भ में आने के समय से ही बोधिसत्त्व और उनकी माता के संकट के निवारण करने के लिए चारों देव-पुत्र (महाराज) हाथ में खड्ग लिये हुए पहरा देते थे। (उसके बाद) बोधिसत्त्व की माता को पुरुष में राग नहीं हुआ। वह बड़े लाभ और यश को प्राप्त हो सुखी तथा अक्लान्त-शरीर

रहीं। वह कुक्षिस्थ बोधिसत्त्व को सुन्दर मणि-रत्न में पिरोए हुए पीले धागे की तरह देख सकती थी। क्योंकि जिस कोख में बोधिसत्त्व वास करते हैं, वह चैत्य के गर्भ के समान (फिर) दूसरे प्राणी के रहने या उपभोग करने योग्य नहीं रहती; इसीलिए (बोधिसत्त्व की माता) बोधिसत्त्व के जन्म के (एक) सप्ताह बाद ही मर कर, तुषित देव-लोक में जन्म ग्रहण करती है। जिस प्रकार दूसरी स्त्रियाँ दस मास से कम (या) अधिक में भी, बैठी या लेटी भी, प्रसव करती हैं; ऐसा बोधिसत्त्व-माता नहीं करती। वह(बोधिसत्त्व को)दस मास कुक्षि में रख, खड़ी ही प्रसव करती है। यह बोधिसत्त्व-माता की धर्मता (=विशेषता) है।

(४) सिद्धार्थ का जन्म

महामाया देवी भी पात्र में तेल की भाँति, बोधिसत्त्व को दस मास कोख में धारण कर, गर्भ के परिपूर्ण होने पर, नैहर (पीहर) जाने की इच्छा से शुद्धोदन महाराज से बोलीं—'देव, (अपने पिता के) कुल के देव-दह नगर को जाना चाहती हूँ। राजा ने 'अच्छा' कह, कपिलवस्तु से देवदह नगर तक के मार्ग को सम-तल करा और केला, पूर्ण-घट, ध्वजा, पताका आदि से अलंकृत करवा, देवी को सोने की पालकी में बिठा, एक हज़ार अफ़सर तथा बहुत भारी सेवक-मण्डली के साथ भेज दिया।

दोनों नगरों के बीच में, दोनों ही नगर वालों का **लुम्बिनी**[1] बन नामक एक मङ्गल शाल बन था। उस समय (वह बन) मूल से ले कर शिखर की शाखाओं तक एक दम फूला हुआ था। शाखाओं तथा पुष्पों के बीच में पाँच रङ्गों के भ्रमर गण, और नाना प्रकार के पक्षि-संघ मधुर-स्वर से कूजन करते विचर रहे थे। सारा लुम्बिनी-वन विचित्र लता-बन—जैसा, प्रतापी राजा के सुसज्जित बाज़ार जैसा (जान पड़ता) था। उसे देख देवी के मन में शाल वन में क्रीड़ा करने की इच्छा उत्पन्न हुई। आमात्य, देवी को ले शाल-बन में गये। देवी ने सुन्दर शाल के नीचे जा, शाल की डाली पकड़नी चाही।

[1] रुम्मिन् देइ, नौतनवा स्टेशन (B.N.W.R.) से प्रायः ८ मील पश्चिम, नैपाल की तराई में।

शाल-शाखा अच्छी तरह सिद्ध किये बेंत की छड़ी की नोक की भाँति लटक कर देवी के हाथ के पास आ गई। उसने हाथ पसार कर शाखा पकड़ ली। उसी समय से प्रसववेदना (=कमर्ज-वायु) हुई। लोग (इर्द गिर्द) कनात घेर, स्वयं अलग हो गये। शाल-शाखा पकड़े, खड़े ही खड़े, उसे गर्भ-उत्थान हो गया। उस समय चारों शुद्ध-चित्त महाब्रह्मा ने सोने का जाल ले, पहुँच कर उस जाल में बोधिसत्त्व को ग्रहण किया, और माता के सम्मुख रख कर बोले—'देवी सन्तुष्ट होओ। तुम्हें महाप्रतापी पुत्र उत्पन्न हुआ है।'

जिस प्रकार अन्य प्राणी माता की कोख से निकलते समय, गन्दे, मल-विलिप्त निकलते हैं, वैसे बोधिसत्त्व नहीं निकलते। बोधिसत्त्व धर्मासन (=व्यास-गद्दी) से उतरे धर्म-कथिक (=धर्मोपदेशक) के समान, सीढ़ी से उतरे पुरुष की तरह, दोनों हाथ और दोनों पैर पसारे खड़े हुए (मनुष्य) के समान, माता की कोख के मल से बिलकुल अलिप्त, शुद्ध, विशुद्ध, काशी-देश के वस्त्र में रक्खे मणि-रत्न के समान, चमकते हुए, माता की कोख से निकले। ऐसा होने पर भी बोधिसत्त्व और बोधिसत्त्व की माता के सत्कारार्थ, आकाश से दो जल की धाराओं ने निकल, बोधिसत्त्व और उनकी माता के शरीर को ठंडा किया।

तब चारों महाराजाओं ने सोने के जाल में लेकर खड़े ब्रह्माओं के हाथ से, (बोधिसत्त्व) को माङ्गलिक समझे जाने वाले, कोमल मृग-चर्म में ग्रहण किया। उनके हाथ से मनुष्यों ने दुकूल की तह (चुम्बट) में ग्रहण किया। मनुष्यों के हाथ से निकल कर (बोधिसत्त्व ने) पृथ्वी पर खड़े हो, पूर्व दिशा की ओर देखा। अनेक सहस्र चक्रवाल एक-आँगन से हो गये। मनुष्य गन्ध माला आदि से पूजा करते हुए बोले—"महापुरुष! यहाँ आप जैसा भी कोई नहीं है, बढ़ कर तो कहाँ होगा।" बोधिसत्त्व ने चारों दिशाएँ चारों अनुदिशाएँ नीचे-ऊपर—दसों ही दिशाओं का अवलोकन कर, अपने जैसा किसी को न देख, उत्तर दिशा की ओर (करके) क्रम से सात पग गमन किया। (उस समय) महाब्रह्मा श्वेत-छत्र सुयाम (देवता) ताल-व्यजन (=पंखा), और अन्य देवता शेष राजकीय **ककुध-भाण्ड**[1] हाथ में लिये अनुगमन

[1] **खड्ग, छत्र, पगड़ी, पादुका तथा व्यजन (=पंखा)।**

कर रहे थे। सातवें पग पर ठहर "मैं संसार में सर्व-श्रेष्ठ हूँ" नर-पुङ्गवों की इस प्रथम निर्भीक वाणी का उच्चारण करते हुए सिंहनाद किया।

बोधिसत्त्व ने इस प्रकार माता की कोख से निकलते ही तीन जन्मों में, वाणी का उच्चारण किया—महोसध-जन्म में, वेस्सन्तर-जन्म में और इस जन्म में। महोसध-जन्म में तो बोधिसत्त्व के कोख से निकलते ही, देवेन्द्र शक्र आया और चन्दन-सार हाथ में रख कर चला गया। बोधिसत्त्व उसे हाथ में लिये ही निकला। तब उसकी माता ने पूछा—"तात! क्या लेकर आया है?" "अम्मा! औषध?" औषध लेकर आया होने के कारण उसका नाम औषध दारक ही कर दिया गया। उस औषध को लेकर बरतन (=चाटी) में डाल दिया। वह औषध अन्धे, बहरे, इत्यादि सभी प्रकार के आने वाले रोगियों के रोग-उपशमन की दवाई हुई। तब "यह महौषध है, यह महौषध है," इस प्रकार की ख्याति उत्पन्न होने के कारण, (=बोधिसत्त्व) का नाम भी महोषध ही पड़ गया। वेस्सन्तर के जन्म में तो बोधिसत्त्व माता की कोख से निकलते ही 'माँ! घर में कुछ है? दान दूँगा" पूछते हुए निकला। उसकी माता ने "तात तू धनवान् कुल में पैदा हुआ है" (कह) पुत्र की हथेली को अपनी हथेली पर रख, हज़ार की थैली रखवाई। इस जन्म में तो केवल यह सिंह-नाद ही किया। इस प्रकार बोधिसत्त्व ने तीन जन्मों में माता की कोख से निकलते ही, शब्द उच्चारण किया।

गर्भ धारण के समय की भाँति ही जन्म के समय भी बत्तीस शकुन, प्रकट हुए। जिस समय **लुम्बिनी** वन में हमारे बोधिसत्त्व उत्पन्न हुए, उसी समय **राहुल-माता देवी, आमात्य छन्न** (=छन्दक) **आमात्य कालउदायी,** हस्तिराज **आजानीय,**[1] अश्वराज **कन्थक, महाबोधि-वृक्ष,** और ख़ज़ानों से भरे चार घड़े भी उत्पन्न हुए। उनमें (क्रम से) एक गव्यूति (=$\frac{1}{8}$ योजन=२ मील) भर, एक आधे योजन भर एक तीन गव्यूति भर और एक योजन भर था। यह सात एक ही समय पैदा हुए। दोनों नगरों के निवासी बोधिसत्त्व को लेकर कपिलवस्तु नगर को ही लौटे।

[1] उत्तम जाति का।

'कपिलवस्तु नगर में शुद्धोदन महाराज को पुत्र हुआ है; यह कुमार बोधि-वृक्ष के नीचे बैठ कर बुद्ध होगा' (सोच) उसी दिन त्रयस्त्रिंश (तैंतीस) भवन के सन्तुष्ट-चित्त देव-संघ वस्त्रों को उछाल उछाल कर क्रीड़ा करने लगे।

(५) काल देवल की भविष्यद्वाणी

उस समय शुद्धोदन महाराज के कुलमान्य, आठ समाधि (=समापत्ति) वाले **काल-देवल** नामक तपस्वी, भोजन करके, दिन में मनोविनोद के लिए त्रयस्त्रिंश देवलोक में गये। वहाँ दिन के विश्राम के लिए बैठे हुए उन्होंने, उन देवताओं को देख कर पूछा—"किस कारण से तुम इस प्रकार सन्तुष्ट-चित्त हो क्रीड़ा कर रहे हो? मुझे भी वह बात बताओ।" देवताओं ने उत्तर दिया "मित्र! शुद्धोदन राजा को पुत्र उत्पन्न हुआ है। वह बोधि-वृक्ष के नीचे बैठ, बुद्ध हो, धर्मचक्र प्रवर्तित करेगा। हमें उसकी अनन्त बुद्ध-लीला देखनी, तथा (उसका) धर्म सुनने को मिलेगा—इस कारण से हम प्रसन्न-चित्त हैं।"

उनकी बात सुन, तपस्वी ने शीघ्र ही देवलोक से उतर, राज-महल में प्रवेश कर, बिछे आसन पर बैठ, पूछा—"महाराज! आपको पुत्र हुआ है, मैं उसे देखना चाहता हूँ।" राजा सु-अलंकृत कुमार को मँगा, तापस की वन्दना कराने को ले गया। बोधिसत्त्व के चरण उठ कर तापस की जटा में जा लगे। बोधिसत्त्व के जन्म में, बोधिसत्त्व के लिए दूसरा कोई वन्दनीय नहीं। यदि अजान में बोधिसत्त्व का शिर तापस के चरण पर रखा जाता, तो तापस का शिर सात टुकड़े हो जाता। तापस ने—'मुझे अपने आपको नाश करना योग्य नहीं है' (सोच) आसन से उठ हाथ जोड़ कर (प्रणाम किया)। राजा ने, इस आश्चर्य को देख, अपने पुत्र की वन्दना की। तपस्वी को अतीत के चालीस और भविष्य के चालीस—अस्सी कल्पों की (बात) याद आ सकती थी। उस ने बोधिसत्त्व के (शरीर के) लक्षणों को देख, 'यह बुद्ध होगा या नहीं' इस बात का विचार कर मालूम किया, कि 'यह अवश्य बुद्ध होगा। यह अद्भुत पुरुष है' जान मुस्कराया। फिर सोचने लगा "इसके बुद्ध होने पर, मैं इसे देख सकूँगा वा नहीं?" सोचने से (मालूम हुआ) 'नहीं देख पाऊँगा; (इसके बुद्ध होने से) पहले ही मर कर अरूप-लोक में—जहाँ सौ अथवा हज़ार बुद्धों के जाने पर भी ज्ञान-प्राप्ति (=अवबोध) नहीं हो सकती—उत्पन्न होऊँगा। तब

'ऐसे अद्भुत पुरुष को बुद्ध होने पर नहीं देख पाऊँगा, मेरा दुर्भाग्य है' सोच रो उठा। लोगों ने जब देखा—कि 'हमारे आर्य (=अय्य=बाबा) अभी हँसे और फिर रोने लग गये' तो उन्होंने पूछा—"क्यों भन्ते ! क्या हमारे आर्य-पुत्र को कोई संकट होगा ?"

"इनको संकट नहीं है, यह निस्संशय बुद्ध होंगे।"

"तो (आप) किस लिए रोते हैं ?"

"इस प्रकार के पुरुष को बुद्ध हुए नहीं देख सकूँगा, मेरा बड़ा दुर्भाग्य (=हानि) है—यही सोच अपने लिए रो रहा हूँ।"

फिर 'मेरे सम्बन्धियों में से कोई इसे बुद्ध-हुआ देखेगा, या नहीं'—विचार, अपने भांजे नाळक को इस योग्य जान, अपनी बहिन के घर जाकर (पूछा)।

'तेरा पुत्र नाळक कहाँ है ?'

'घर में है, आर्य।"

"उसे बुला।"

(भांजे के) पास आने पर बोला—"तात ! महाराज शुद्धोदन के घर में पुत्र उत्पन्न हुआ है, वह बुद्ध-अंकुर है। पैंतीस वर्ष बाद वह बुद्ध होगा; और तू उसे देख पायेगा। तू आज ही प्रव्रजित हो जा।"

वह—'मैं सत्तासी करोड़ धनवाले कुल में उत्पन्न बालक हूँ; (तो भी) मामा मुझे अनर्थ में नहीं लगा रहा है'— सोच, उसी समय बाज़ार से काषाय (वस्त्र) तथा मट्टी का पात्र मँगवा, शिर-दाढ़ी मुँड़ा, काषाय वस्त्र पहिन, 'लोक में जो उत्तम पुरुष है, उसीके नाम पर मेरी यह प्रव्रज्या है', यह (कहते) बोधिसत्त्व की ओर अञ्जलि जोड़, पाँचों अंगों से वन्दना की; फिर पात्र को झोली में रख, उसे कंधे पर लटका, हिमालय में प्रवेश कर, श्रमण-धर्म का पालन करने लगा।

फिर तथागत के बुद्ध हो जाने पर, (उनके) पास आ, उनसे नाळक'-ज्ञान' सुन, हिमालय में चले गये; वहाँ अर्हत पद को प्राप्त कर, सर्व-श्रेष्ठ मार्ग (=उत्कृष्ट प्रतिपदा) पर आरूढ़, सात मास तक ही जीवित रह, एक सुवर्ण पर्वत के पास निवास करते, खड़े ही खड़े उपाधि-रहित निर्वाण को प्राप्त हुए।

(६) ज्योतिषी की भविष्यद्वाणी

पाँचवें दिन बोधिसत्त्व को शिर से नहलाया गया, नामकरण संस्कार किया गया। राजभवन को चारों प्रकार के गन्धों से लिपवाया गया। खीलों सहित चार प्रकार के पुष्प बखेरे गये। निर्जल खीर पकाई गई। राजा ने तीनों वेदों के पारंगत एक सौ आठ ब्राह्मणों को निमन्त्रित किया। उन्हें राजभवन में बैठा, सुभोजन करा, सत्कार पूर्वक (बोधिसत्त्व के) लक्षण के बारे में पूछा—"भविष्य क्या है ?" उनमें :—

उस समय रा म, ध्व ज, ल क्ष्म ण, म न्त्री, कों ड ञ् ञ, भो ज, सु या म और सु द त्त—यह आठ षड्-अंग जानने वाले ब्राह्मण थे, जिन्होंने मन्त्रों की व्याख्या की।

यह आठ ही लक्षण जानने वाले (=दैवज्ञ) ब्राह्मण थे। गर्भ धारण के दिन 'स्वप्न' का भी विचार इन्होंने ही किया था। उनमें से सात जनों ने दो उँगलियाँ उठा कर, दो प्रकार से भविष्य कहा—'ऐसे लक्षणों वाला यदि गृहस्थ रहे, तो चक्रवर्ती राजा होता है, और यदि प्रब्रजित हो, तो बुद्ध।" और फिर चक्रवर्ती राजा की श्री सम्पत्ति का वर्णन किया। उनमें सब से कम उमर और कौण्डिन्य गोत्री तरुण ब्राह्मण ने बोधिसत्त्व के सुन्दर लक्षणों को देख एक ही उँगली उठा कर, एक ही प्रकार का भविष्य कहा—"इसके घर में रहने की सम्भावना (=कारण) नहीं है, यह महाज्ञानी (=विवृत-कपाट) बुद्ध होगा। उस अधिकारी, अन्तिम-जन्मधारी, प्रज्ञा में अन्य जनों से बढ़े हुए, इन लक्षणों वाले पुरुष के घर में ठहरने की सम्भावना नहीं, यह निश्चय बुद्ध होगा—इस एक ही अवस्था (=गति) को देखा। इसीलिए एक ही उँगली उठा कर भविष्य कहा।

उन ब्राह्मणों ने अपने अपने घर जाकर, पुत्रों से कहा—"तात ! हम बूढ़े हो गये हैं। महाराज शुद्धोदन के पुत्र के बुद्ध होने तक (हम) रहेंगे वा नहीं, (लेकिन) उस कुमार के बुद्धपद प्राप्त करने पर तुम उसके धर्म में प्रब्रजित होना।"

वे सातों आयु पूर्ण होने पर, अपने कर्मानुसार (परलोक) सिधारे। अकेला **कौण्डिन्य** माणवक ही जीवित रहा। वह महासत्त्व (बोधिसत्त्व) की

ओर ध्यान रख, गृह को त्याग, क्रमशः उरुवेला[1] जा, 'यह भूमि-भाग बड़ा रमणीय है, योगार्थी कुल-पुत्र के योगाभ्यास के लिए उपयुक्त स्थान है' सोच, वहीं रहने लगा। (फिर) "महापुरुष प्रव्रजित हो गये" सुन, (सात) ब्राह्मणों के पुत्रों के पास जाकर कहा—"सिद्धार्थ-कुमार प्रव्रजित हो गये, वह निःसंशय बुद्ध होंगे। यदि तुम्हारे पिता जीवित होते, तो वह आज घर छोड़ प्रव्रजित हुए होते। यदि तुम चाहते हो, तो (मेरे साथ) आओ हम उस पुरुष के पीछे प्रव्रजित होंगे।"

वे सब (लड़के) एक मत न हो सके। तीन प्रव्रजित नहीं हुए। शेष चारों कौण्डिन्य ब्राह्मण को मुखिया बना कर प्रव्रजित हुए। (आगे चल कर) वह पाँचो जने पंचवर्गीय स्थविरों के नाम से प्रसिद्ध हुए।

तब राजा ने पूछा—"क्या देख कर, मेरा पुत्र प्रव्रजित होगा?" (उत्तर मिला) "चार पूर्व लक्षण।" "कौन कौन से चार लक्षण (=निमित्त)?" "बृद्ध, रोगी, मृत और प्रव्रजित।"

राजा ने (आज्ञा की)—"अब से इस प्रकार के किसी लक्षण (=वृद्ध आदि) को मेरे पुत्र के पास मत आने दो। मुझे, उसके बुद्ध बनने से मतलब नहीं। मैं उसे दो सहस्र द्वीपों से घिरे चारों महाद्वीपों का आधिपत्य करते हुए, छत्तीस योजन घेरे की परिषद् के बीच, आकाश के नीचे विचरते देखने की इच्छा रखता हूँ।" यह कह, राजा ने इन चार प्रकार के पुरुषों को कुमार के दृष्टि-गोचर होने से बचाने के लिए चारों दिशाओं में तीन तीन कोस की दूरी पर पहरा बैठा दिया। उसी दिन उस माङ्गलिक स्थान पर एकत्र हुए, अस्सी हजार ज्ञाति-सम्बन्धियों ने अपने एक एक पुत्र (को देने) की प्रतिज्ञा की। यह (कुमार) चाहे बुद्ध हो, अथवा राजा, हम (इसे) अपना एक एक पुत्र दे देंगे। यदि यह बुद्ध होगा तो क्षत्रिय साधुओं से पुरस्कृत तथा परिवारित हो विचरेगा। यदि राजा होगा तो क्षत्रिय-कुमारों से पुरस्कृत तथा परिवारित हो विचरेगा।

[1] बोध-गया, जि० गया (बिहार)।

(७) शैशव का एक चमत्कार

राजा ने बोधिसत्त्व के लिए उत्तम रूप वाली, सब दोषों से रहित धाइयाँ नियुक्त कीं। बोधिसत्त्व अनन्त परिवार, तथा महती शोभा और श्री के साथ बढ़ने लगे। एक दिन राजा के यहाँ (खेत) बोने का उत्सव था। उस (उत्सव के) दिन लोग सारे नगर को देवताओं के विमान की भाँति अलंकृत करते थे। सभी दास (=गुलाम) और नौकर आदि नये वस्त्र पहिन, गंध माला आदि से विभूषित हो, राज-महल में इकट्ठे होते थे। राजा को एक हज़ार हलों की खेती थी। लेकिन उस दिन बैलों की रस्सी की जोत के साथ एक कम आठ सौ सभी रुपहले हल थे। राजा का हल रत्न-सुवर्ण-जटित था। बैलों के सींग, और रस्सी-कोड़े भी सुवर्ण-खचित ही थे। राजा बड़े दल-बल के साथ, पुत्र को भी ले, वहाँ पहुँचा। खेती के स्थान पर ही, बहुत पत्रों तथा घनी छाया वाला एक जामुन का वृक्ष था। उसके नीचे कुमार की शय्या बिछाई गई। ऊपर सुवर्ण-तार-खचित चँदवा तनवाया गया। उसे कनात से घिरवा, पहरा लगवा दिया गया। फिर सब अलङ्कारों से अलंकृत हो, अमात्य गण सहित राजा, हल जोतने के स्थान पर गया। वहाँ उसने सुनहले हल को पकड़ा, अमात्यों ने (अन्य) एक-कम आठ सौ रुपहले हलों को और कृषकों ने शेष दूसरे हलों को। हलों को पकड़ कर, वे इधर उधर जोतने लगे। राजा इस पार से उस पार, और उस पार से इस पार आता था। वहाँ बड़ी भीड़ थी, बड़ा तमाशा था। बोधिसत्त्व को घेर कर बैठी धाइयाँ, राजकीय-तमाशा देखने के लिए कनात के भीतर से बाहर चली आईं। बोधिसत्त्व इधर उधर किसी को न देख, जल्दी से उठ, श्वास-प्रश्वास पर ध्यान दे, प्रथम-ध्यान प्राप्त हो गये। धाइयों ने खाद्य-भोज्य में (लगे रह कर) कुछ देर कर दी। सभी वृक्षों की छाया घूम गई, लेकिन (बोधिसत्त्व वाले) वृक्ष की छाया गोल ही खड़ी रही। धाइयों ने 'आर्य-पुत्र अकेले हैं', ख्याल कर जल्दी से कनात उठा, अन्दर घुस कर, बोधिसत्त्व को बिछौने पर आसन मारे बैठे देखा। उस चमत्कार को देख उन्होंने जाकर राजा से कहा—'देव ! कुमार इस तरह बैठा है। अन्य सभी वृक्षों की छाया लम्बी हो गई है, लेकिन जामुन के वृक्ष की छाया गोलाकार ही खड़ी है।" राजा ने वेग से आ, उस चमत्कार को देखा, "तात ! यह दूसरी बार तेरी वन्दना है" (कह) पुत्र की वन्दना की।

२. गौतम का चरित

(१) यौवन प्रवेश

क्रमशः बोधिसत्त्व सोलह वर्ष के हुए। राजा ने बोधिसत्त्व के लिए, तीनों ऋतुओं के लायक तीन महल बनवा दिये। उनमें एक नौ तला, दूसरा सात तला, तीसरा पाँच तला था। चालीस हज़ार नाटक-करने वाली स्त्रियों को नियुक्त किया। बोधिसत्त्व अप्सराओं के समुदाय से घिरे देवताओं की भाँति, अलंकृत नटियों से परिवृत, स्त्रियों द्वारा बजाये गये वाद्यों से सेवित, महा-सम्पत्ति को उपभोग करते हुए, ऋतुओं के क्रम से, उतने (ऋतुओं के अनुकूल) प्रसादों में विहरते थे। **राहुल-माता देवी** इनकी अग्रमहिषी (=पटरानी) थी।

वह इस प्रकार महा-सम्पत्ति का उपभोग करते रहते थे। उसी समय एक दिन बोधिसत्त्व की ञाति-बिरादरी में ऐसी बात चली—"सिद्धार्थ-क्रीड़ा में ही रत रहता है। किसी कला को नहीं सीखता, युद्ध आने पर क्या करेगा?" राजा ने बोधिसत्त्व को बुला कर कहा—"तात! तेरे सगे सम्बन्धी कहते हैं कि सद्धार्थ किसी कला को न सीख कर सिर्फ खेलों में ही लिप्त रहता है। तुम इस विषय में क्या उचित समझते हो?"

"देव! मुझे शिल्प सीखने को नहीं है। नगर में मेरा शिल्प देखने के लिए ढँढोरा पिटवा दें कि आज से सातवें दिन (मैं) ञाति वालों को (अपना) शिल्प (कर्तव्य) दिखाऊँगा।"

राजा ने वैसा ही किया। बोधिसत्त्व ने अक्षण बेध, बाल-बेध जानने वाले धनुर्धारियों को एकत्रित कर, लोगों के मध्य में अन्य धनुर्धारियों से (भी) विशेष बारह प्रकार के शिल्प (=कला) ञाति-बिरादरी वालों को दिखलाये। इन (के विस्तार) को **सरभंग-जातक**[1] में आये (वर्णन) के अनुसार जानना चाहिए। तब बोधिसत्त्व के सगे सम्बन्धियों की शंका दूर हुई।

(२) जरा, व्याधि, मृत्यु और संन्यास-दर्शन

एक दिन बोधिसत्त्व ने बगीचा देखने की इच्छा से सारथी को बुला कर

[1] सरभंग जातक (१७. २)

रथ जोतने को कहा। उसने 'अच्छा' कह महार्घ उत्तम रथ को सब अलङ्कारों से अलंकृत कर, कमल-पत्र-सदृश चार मङ्गल सिन्धु-देशीय (घोड़ों) को जोत, बोधिसत्त्व को सूचना दी। बोधिसत्त्व देव-विमान-सदृश रथ पर चढ़ कर बगीचे की ओर चले। देवताओं ने (सोचा), सिद्धार्थ-कुमार के बुद्धत्व प्राप्त करने का समय समीप है, (हम) इसे पूर्व-लक्षण दिखायें। (सो उन्होंने) एक देव-पुत्र को जरा से जर्जरित, टूटे-दाँत, पक्के केश, टेढ़े-झुके शरीर, हाथ में लकड़ी लिये, काँपता हुआ (करके) दिखलाया। उसे (केवल) बोधिसत्त्व और सारथी ही देखते थे। तब बोधिसत्त्व ने **महापदानसूत्र**[1] में आये (वर्णन) अनुसार सारथी से पूछा—"सौम्य, यह कौन पुरुष है! इसके केश भी औरों के समान नहीं हैं।" (और) सारथी का उत्तर पा, (वे) अहो! धिक्कार है जन्म को, जहाँ जन्म-लेने-वाले को (ऐसा) बुढ़ापा हो, (सोचते हुए) उदास हो, वहाँ से लौट कर महल में चले गये। राजा ने पूछा—"मेरा पुत्र जल्दी क्यों लौट आया?" "देव! बूढ़े आदमी को देख कर।" (भविष्यद्वक्ताओं ने) बूढ़े आदमी को देख कर प्रव्रजित होगा कहा था (सोच) राजा ने 'इसलिए, मेरा नाश मत करो। पुत्र के लिए शीघ्र ही नृत्य तैयार करो। भोग भोगते हुए प्रव्रज्या का ख्याल न आयेगा' कह, पहरा और भी बढ़ा कर चारों दिशाओं में आधे योजन तक का करवा दिया।

फिर एक दिन बोधिसत्त्व उसी प्रकार बगीचे जाते हुए, देवताओं द्वारा निर्मित रोगी पुरुष को देख, पहले की भाँति पूछ, शोकाकुल हृदय से महल में लौट आये। राजा ने भी पूछ कर, पहले की भाँति खिन्न चित्त हो, पहरे को फिर बढ़ा कर चारों ओर पौन योजन तक का कर दिया।

फिर एक दिन बोधिसत्त्व उसी प्रकार उद्यान जाते हुए, देवताओं द्वारा निर्मित मृत-पुरुष को देख, पहले की भाँति पूछ, उदास हो, फिर महल में लौट आये। राजा ने भी पूछ कर पहले की भाँति खिन्न चित्त हो, पहरे को फिर बढ़ा कर चारों ओर एक योजन तक का कर दिया।

फिर एक दिन उद्यान जाते हुए, बोधिसत्त्व ने देवताओं द्वारा निर्मित

[1] **देखो दीर्घ-निकाय।**

भली प्रकार (वस्त्र) पहिने, (चीवर से) भले प्रकार ढँके एक प्रव्रजित (संन्यासी) को देख कर, सारथी से पूछा—'सौम्य ! यह कौन है ?' अभी बुद्ध प्रकट नहीं हुए थे, इसीलिए सारथी को प्रव्रजित (वा) प्रव्रज्या के गुणों के बारे में कुछ मालूम न था। लेकिन देवताओं की प्रेरणा से सारथी ने—'देव ! यह प्रव्रजित है' कह प्रव्रजितों के गुण वर्णन किये। बोधिसत्त्व 'प्रव्रज्या' में रुचि उत्पन्न कर, उस दिन उद्यान को गये। यहाँ पर **दीर्घ-भाणकों**[1] का मत है कि 'बोधिसत्त्व ने) चारों पूर्व-लक्षणों (=निमित्तों) को एक ही दिन देखा।'

(३) पुत्र जन्म

बोधिसत्त्व ने उद्यान में दिन भर विनोद कर, सुन्दर पुष्करिणी में स्नान किया। सूर्यास्त के समय सुन्दर शिला पट्ट पर, अपने को आभूषित कराने की इच्छा से बैठे। उस समय इनके परिचारक नाना रङ्ग के दुशाले, नाना भाँति के आभूषण, माला, सुगन्धि, उबटन लेकर चारों ओर से घेर कर खड़े थे। उसी समय इन्द्र का आसन गर्म हुआ। उसने, "कौन मुझे इस सिंहासन से उतारना चाहता है" सोचते हुए बोधिसत्त्व के अलंकृत होने का काल देख, विश्वकर्मा को बुला कर कहा—"सौम्य विश्वकर्मा ! आज आधी रात के समय सिद्धार्थ-कुमार महाभिनिष्क्रमण (=गृह त्याग) करेंगे। यह (आज का शृङ्गार) उनका अन्तिम शृङ्गार है। उद्यान में जाकर महापुरुष को दिव्य अलंकारों से अलंकृत करो।"

उसने 'अच्छा' कह, देव-बल से उसी क्षण आकर, बोधिसत्त्व के जामा-साज़ के सदृश ही रूप धारण कर, जामा-साज़ के हाथ से दुशाला ले, बोधिसत्त्व के सिर पर बाँधा।

उसके हाथ के स्पर्श से ही बोधिसत्त्व जान गये कि यह मनुष्य नहीं, कोई देव-पुत्र है। पगड़ी से सिर को वेष्टित करते ही सिर में, मुकुट के रत्नों की भाँति एक सहस्र, दुशाले उत्पन्न हो गये। फिर बाँधने पर दस सहस्र, इस प्रकार दस वार बाँधने पर दस-सहस्र दुशाले उत्पन्न हुए। सिर छोटा और

[1] 'दीर्घ-निकाय' कण्ठ करने वाले पुराने आचार्यों को दीर्घ-भाणक कहा जाता है।

दुशाले बहुत, इसकी शंका न होनी चाहिए (क्योंकि) उनमें सब से बड़े दुशाले (का वज़न ही) श्यामा-लता के फूल के बराबर था, (और) दूसरे तो कुतुम्बुक पुष्प के ही बराबर थे। बोधिसत्त्व का सिर किंजल्क-युक्त कुय्यक फूल के समान था। उनके सब आभूषणों से आभूषित हो, सब (गीत=) तालज्ञ ब्राह्मणों के अपनी अपनी प्रतिभा का प्रदर्शन कर लेने पर, 'जय हो' आदि वचनों से, तथा सूतमागधों के नाना प्रकार के मङ्गल वचनों तथा स्तुति-घोषों से सत्कृत हो, (बोधिसत्त्व) सर्वालङ्कार-विभूषित उत्तम रथ पर आरूढ़ हुए।

उसी समय 'राहुल-माता ने पुत्र प्रसव किया' सुन महाराज शुद्धोदन ने आज्ञा की कि मेरे पुत्र को यह शुभ-समाचार सुनाओ। बोधिसत्त्व ने उसे सुन कहा "राहु पैदा हुआ, बन्धन पैदा हुआ।" राजा ने 'मेरे पुत्र ने क्या कहा', पूछ, उसे सुन, कहा—"अब से मेरे पोते का नाम राहुल-कुमार हो।"

बोधिसत्त्व भी श्रेष्ठ रथ पर चढ़, बड़े भारी यश, अति मनोरम शोभा तथा सौभाग्य के साथ नगर में प्रविष्ट हुए। उस समय, प्रासाद के ऊपर बैठी, कृशा-गौतमी नामक क्षत्रिय-कन्या ने नगर की परिक्रमा करते हुए बोधिसत्त्व की रूप शोभा को देख कर, बहुत ही प्रसन्नता तथा हर्ष से यह 'उदान'[1] कहा :—

परम शान्त है वह माता, परम शान्त है वह पिता, और परम शान्त है वह नारी, जिसका इस प्रकार का पति हो।

बोधिसत्त्व ने यह सुना तो सोचा—यह कह रही है, कि इस प्रकार के रूप के देखने वाली माता का हृदय परम शान्त होता है, पिता का हृदय परम शान्त होता है, पत्नी का हृदय परम शान्त होता है। किस के शान्त होने पर हृदय परम शान्त होता है? तब रागादि क्लेशों (मलों) से विरक्त होते हुए, (बोधिसत्त्व) को यह (विचार) हुआ कि राग-अग्नि के शान्त होने पर परम-शान्ति होती है। द्वेष-अग्नि तथा मोह-अग्नि के शान्त होने पर परम-शान्ति होती है। अभिमान मिथ्या-विचार (=दृष्टि) आदि सभी मलों के उपशमन होने पर परम-शान्ति होती है। यह मुझे प्रिय-वचन सुना रही है। मैं निर्वाण को ढूँढ़ रहा हूँ। आज ही मुझे गृह-वास छोड़, निकल कर, प्रव्रजित हो, निर्वाण

[1] आनन्दोल्लास में निकली वाक्यावली।

की खोज में लगना चाहिए। 'यह इसकी गुरु-दक्षिणा हो'—कह उन्होंने अपने गले से एक लाख का मोती का हार उतार कृशा गौतमी के पास भेज दिया। "सिद्धार्थ-कुमार ने मेरे प्रेम में फँस कर भेंट भेजी है" सोच वह बड़ी प्रसन्न हुई।

(४) गृह-त्याग

बोधिसत्त्व भी वड़े श्री-सौभाग्य के साथ अपने महल में जा, सुन्दर शय्या पर लेट रहे। उसी समय सभी अलङ्कारों से विभूषित, नृत्य गीत आदि में दक्ष देव-कन्या समान परम सुन्दरी स्त्रियों ने अनेक प्रकार के वाद्यों को लेकर, (कुमार को) घेर कर, खुश करने के लिए नृत्य, गीत और वाद्य आरम्भ किया। बोधिसत्त्व (रागादि) मलों से विरक्त-चित्त होने के कारण, नृत्य आदि में रत न हो, थोड़ी ही देर में सो गये। उन स्त्रियों ने भी सोचा—"जिसके लिए हम नृत्य आदि करती हैं, वह ही सो गया। अब (हम) काहे को तकलीफ़ करें।" इसलिए वह भी अपने अपने वाजों को साथ लिये ही सो गईं। उस समय सुगन्धित-तेल-पूर्ण प्रदीप जल रहे थे। बोधिसत्त्व जाग कर, पलंग पर आसन मार बैठ गये। उन्होंने वाद्य-भाण्डों को साथ ही लिये सोई उन स्त्रियों को देखा। (उनमें) किन्हीं के मुँह से कफ और लार बह कर, उनका शरीर भीग गया था, कोई दाँत कटकटा रही थीं, कोई खाँस रही थीं, कोई बर्रा रही थीं, किन्हीं के मुँह खुले हुए थे, किन्हीं के वस्त्र हटे होने से अति घृणोत्पादक गुह्य स्थान दिखलाई दे रहे थे। उन (स्त्रियों) के इन विकारों को देख कर (वे) और भी अधिक दृढ़ता-पूर्वक काम-भोगों से विरक्त हो गये। उन्हें वह सु-अलंकृत इन्द्र-भवन सदृश महाभवन सड़ती हुई नाना प्रकार की लाशों से पूर्ण कच्चे श्मशान की भाँति मालूम हुआ। तीनों ही भव (=संसार) जलते हुए घर की तरह दिखलाई पड़े। हा! कष्ट!! हा! शोक!! ऐसी आह निकल पड़ी। उस समय उनका चित्त प्रव्रज्या के लिए, अत्यन्त आतुर हो गया। 'आज ही मुझे महाभिनिष्क्रमण (गृह-त्याग) करना चाहिए' (इस प्रकार निश्चय कर) पलंग पर से उतर, द्वार के पास जा पूछा—"कौन है?"

ड्योढ़ी में सिर रख कर सोये हुए छन्न ने कहा—'आर्य पुत्र! मैं छन्दक हूँ।'

"मैं आज महाभिनिष्क्रमण करना चाहता हूँ, मेरे लिए एक घोड़ा तैयार करो।"

'अच्छा देव!' कह, उसने घोड़े का साज़-सामान ले, घोड़सार में जा, सुगन्धित तेल के जलते प्रदीपों (के प्रकाश) में, बेल-बूटे वाले चँदवे के नीचे, सुन्दर स्थान पर खड़े, अश्व-राज कन्थक को देख कर, 'आज मुझे इसे ही तैयार करना चाहिए' (सोच) कन्थक को ही तैयार किया। साज सजाये जाते समय (कन्थक) ने सोचा—'(आज की) तैयारी बहुत कसी हुई है। अन्य दिनों में उद्यान-क्रीड़ा आदि की यात्रा की तैयारी जैसी तैयारी नहीं है। आज मेरे आर्य-पुत्र महाभिनिष्क्रमण के इच्छुक होंगे।' इसलिए प्रसन्न-चित्त हो, ज़ोर से हिनहिनाया। वह शब्द सारे नगर में फैल जाता; लेकिन देवताओं ने उस शब्द को रोक कर, किसी को न सुनने दिया।

बोधिसत्त्व छन्दक को (तो उधर) भेज, पुत्र को देखने की इच्छा से, अपने आसन को छोड़ राहुल-माता के वास-स्थान की ओर गये। वहाँ शयनागार का द्वार खोला। उस समय घर के भीतर सुगन्धित तेल-प्रदीप जल रहा था। राहुल-माता बेला, चमेली आदि के **अम्मन**[1] भर फूलों से सजी शय्या पर, पुत्र के मस्तक पर हाथ रखे सो रही थी। बोधिसत्त्व ने देहली में पैर रख खड़े खड़े देख कर सोचा—'यदि मैं देवी के हाथ को हटा कर अपने पुत्र को ग्रहण करूँगा, तो देवी जाग उठेगी, इस प्रकार मेरे गमन में विघ्न होगा। बुद्ध होने के पश्चात् ही, आकर पुत्र को देखूँगा' तब महल से उतर आये। **जातकट्ठकथा**[2] में जो 'उस समय राहुल-कुमार एक सप्ताह के थे' कहा है, वह दूसरी अट्ठकथाओं में नहीं है। इसलिए यहाँ यही समझना चाहिए।

इस प्रकार बोधिसत्त्व ने महल से उतर कर, घोड़े के पास जाकर कहा—तात! कन्थक! आज तू मुझे एक रात तार दे, मैं तेरी सहायता से बुद्ध होकर, देवताओं सहित सारे लोक को तारूँगा। फिर कूद कर कन्थक की पीठ पर सवार हुए। कन्थक गर्दन से ले कर (पूँछ तक) अठारह हाथ लम्बा (और) वैसे ही महाकाय, बल-वेग-सम्पन्न धुले शङ्ख-सदृश सर्व-श्वेत वर्ण का था। यदि वह हिनहिनाता वा पैर खटखटाता, तो (वह) शब्द सारे नगर में फैल

[1] ११ द्रोण=अम्मन।

[2] यह पुरानी सिहळ भाषा वाली जातक-कथा होगी

जाता। इसलिए देवताओं ने अपने प्रताप से, ऐसा किया, जिससे कोई उस शब्द को न सुने। उन्होंने हिनहिनाने के शब्द को रोक लिया (और) जहाँ जहाँ (घोड़ा) पैर रखता था, वहाँ वहाँ हथेलियाँ रखीं। बोधिसत्त्व श्रेष्ठ अश्व की पीठ पर सवार हो छन्दक को उसकी पूँछ पकड़वा, आधी रात के समय महा-द्वार के समीप पहुँचे। उस समय राजा ने यह सोच, कि कहीं बोधिसत्त्व जिस किसी समय नगर-द्वार को खोल कर, (बाहिर) न निकल जायें, दर्वाजे के दोनों कपाटों में से प्रत्येक को एक हज़ार मनुष्यों द्वारा खुलने लायक बनवाया था। बोधिसत्त्व महाबल-सम्पन्न हाथी की गिनती से दस अरब हाथी के बल को धारण करते थे; और पुरुष के हिसाब से एक खरब पुरुषों का बल। उन्होंने सोचा—"यदि द्वार न खुला तो आज मैं कन्थक की पीठ पर बैठे, उसकी पूँछ पकड़ कर लटके छन्दक के साथ ही, घोड़े को जाँघ से दबा कर अठारह हाथ ऊँचे प्राकार को कूद कर पार करूँगा।" छन्दक ने भी सोचा, "यदि द्वार न खुला, तो मैं आर्यपुत्र को कन्धे पर बैठा कन्थक को दाहिने हाथ से बगल में दवा प्राकार फाँद जाऊँगा।" कन्थक ने भी सोचा—"यदि द्वार नहीं खुला, तो मैं अपने स्वामी के पीठ पर वैसे ही बैठे, पूँछ पकड़ कर लटकते छन्दक के साथ ही, प्राकार को लाँघ जाऊँगा।" यदि द्वार न खुलता, तो तीनों में से प्रत्येक ऊपर सोचे अनुसार करता। लेकिन द्वार में रहने वाले देवता ने द्वार खोल दिया।

उस समय बोधिसत्त्व को (वापिस) लौटाने की इच्छा से, आकर, आकाश में खड़े हो मार[1] ने कहा—"मार्ष (मित्र)! मत निकलो। आज से सातवें दिन तुम्हारे लिए चक्र-रत्न प्रकट होगा। दो हज़ार छोटे द्वीपों सहित चारों महाद्वीपों पर राज्य करोगे। लौटो, मार्ष!"

"तुम कौन हो?"

"मैं वश वर्ती हूँ।"

"मार! मैं भी जानता हूँ कि मेरे लिए चक्र-रत्न प्रकट होगा। लेकिन मुझे राज्य से काम नहीं। मैं तो साहस्रिक लोक-धातुओं को निनादित कर बुद्ध बनूँगा।"

[1]कामदेव या शैतान।

"आज से जब कभी तुम्हारे मन में कामना सम्बन्धी वितर्क, द्रोह सम्बन्धी वितर्क, या हिंसा-सम्बन्धी वितर्क उत्पन्न होगा, तब मैं तुम्हें समझूँगा।" कह, मार मौका ताकते हुए, छाया की भाँति ज़रा भी अलग न होते हुए, पीछा करने लगा।

बोधिसत्त्व हाथ में आये चक्रवर्ती-राज्य (के प्रति) अपेक्षा रहित हो, उसे थूक की भाँति छोड़ कर, आषाढ़ की पूर्णिमा को उत्तराषाढ़ नक्षत्र में नगर से निकले। (लेकिन) नगर से निकल कर, (उन्हें) फिर नगर देखने की इच्छा उत्पन्न हुई। चित्त में ऐसा विचार होते ही महापृथ्वी कुम्हार के चक्के की भाँति काँपी, मानों कह रही थी कि 'महापुरुष! तूने लौट कर देखने का काम (कभी) नहीं किया।' बोधिसत्त्व जहाँ से मुँह फेर कर नगर को देखा था, उस भू-प्रदेश में "कन्थक-निवर्तन-चैत्य" का चिन्ह बना वह गन्तव्य-मार्ग की ओर कन्थक का मुँह फेर, अत्यन्त सत्कार और महान् श्री-सौभाग्य के साथ चले। उस समय देवताओं ने उनके सम्मुख साठ हज़ार, पीछे साठ हज़ार, दाहिनी तरफ़ साठ हज़ार और बाईं तरफ़ भी साठ हज़ार मशाल धारण किये। अन्य देवताओं ने चक्रवालों के द्वार-समूह पर अपरिमित मशालों को धारण किया। और (भी) दूसरे देवताओं तथा नाग, सुपर्ण (=गरुड़) आदि (के) दिव्य गन्ध, माला, चूर्ण, धूप से पूजा करते हुए, पारिजात-पुष्प, मन्दार-पुष्प, (की वृष्टि से) घने मेघों की वृष्टि के समय (बरसती) धाराओं की भाँति, आकाश आच्छादित हो गया। उस समय दिव्य संगीत हो रहे थे। चारों ओर आठ प्रकार के, साठ प्रकार के अड़सठ लाख बाजे बज रहे थे। समुद्र के उदर में मेघ-गर्जनकाल की भाँति, युगन्धर की कुक्षि में सागर-निर्घोष काल की भाँति (शब्द) हो रहा था। इस श्री और सौभाग्य के साथ जाते हुए, बोधिसत्त्व एक ही रात में **तीन राज्यों**[1] को पार कर, तीस योजन की दूरी पर **अनोमा**[2] नामक नदी के तट पर पहुँचे।

क्या अश्व तीस योजन से अधिक न जा सका? नहीं, न जा सका! वह

[1] शाक्य, कोलिय और राम-ग्राम।

[2] औमी नदी? जिला गोरखपुर।

(अश्व) एक चक्रवाल के अन्दर के घेरे को, पृथ्वी पर पड़े चक्के के घेरे की तरह, मर्दित करते हुए, कोने कोने पर घूम कर, प्रातःकाल के भोजन के समय से पूर्व लौट कर अपने लिए तैयार किये गये भोजन को खा सकता था। लेकिन, उस समय मार्ग आकाश में स्थित देव नाग तथा गरुड़ आदि द्वारा बरसाये गये गन्धमाला आदि से जाँघ तक ढका हुआ था। शरीर निकालते निकालते, गन्ध माला के जाल को हटाते हटाते बहुत देर हो गई। इसलिए केवल तीस योजन ही पहुँच सका।

३. गौतम का संन्यास

(१) भिक्षु वेश में

तब बोधिसत्त्व ने नदी के किनारे खड़े हो छन्दक से पूछा—

"इस नदी का क्या नाम है ?"

"देव ! अनोमा है।"

"हमारी भी प्रव्रज्या **अनोमा**[१] होगी", (सोच) एड़ी से रगड़ कर घोड़े को इशारा किया। घोड़ा छलाँग मार कर, **आठ ऋषभ**[२] चौड़ी नदी के दूसरे तट पर जा खड़ा हुआ। बोधिसत्त्व ने घोड़े की पीठ से उतर, रुपहले रेशम जैसे (नर्म) बालुका-तट पर खड़े हो, छन्दक को कहा—"सौम्य ! छन्दक ! तू मेरे आभूषणों तथा कन्थक को लेकर जा, मैं प्रव्रजित होऊँगा।"

"देव ! मैं भी प्रव्रजित होऊँगा।"

"तुझे प्रव्रज्या नहीं मिल सकती, लौट जा" तीन बार कह कर, बोधिसत्त्व उसे आभरण और कन्थक सौंप सोचने लगे :—

"यह मेरे केश श्रमण-भाव (=संन्यासीपन) के योग्य नहीं हैं, और बोधिसत्त्व के केश काटने लायक दूसरा कोई नहीं है, इसलिए अपने ही आप खड्ग से इन्हें काटूँ।"

(यह सोच) दाहिने हाथ में तलवार ले, बायें हाथ से मौर सहित जूड़े को काट डाला। केश सिर्फ़ दो अंगुल के होकर, दाहिनी ओर से घूम, सिर में

[१] अनोमा=अन्+अवम्=छोटी नहीं। [२] १४० हाथ=१ ऋषभ।

चिपट गये। फिर ज़िन्दगी भर, उनका वही परिमाण रहा। मूँछ(-दाढ़ी) भी उनके अनुसार ही हो गई। फिर सिर-दाढ़ी मुँड़ाने की ज़रूरत नहीं रही। बोधिसत्त्व ने मौर-सहित जूड़े को ले, आकाश में फेंक दिया और (सोचा) यदि मैं बुद्ध होऊँ, तो यह आकाश में ठहरे, नहीं तो, भूमि पर गिर पड़े।" वह चूड़ा-मणि वेष्टन योजन भर (ऊपर) जाकर, आकाश में ठहरा। शक्र देवराज ने दिव्य-दृष्टि से देख, (उसे) उपयुक्त रत्नमय करण्ड में ग्रहण कर त्रयस्त्रिंश (स्वर्ग) लोक में चूड़ामणि चैत्य की स्थापना की।

बोधिसत्त्व (अग्र-पुद्गल) ने सुगन्धयुक्त मौर को काट कर, आकाश में, फेंक दिया। देवेन्द्र (=सहस्राक्ष) ने, उसे सुवर्ण-करण्ड में ग्रहण कर शिरोधार्य किया।

फिर बोधिसत्त्व ने सोचा—यह काशी के बने वस्त्र भिक्षु के योग्य नहीं हैं। तब कश्यप बुद्ध के समय के इनके पुराने मित्र घटिकार महाब्रह्मा ने एक **बुद्धन्तर**[1] बीतने पर भी जरा को अप्राप्त मित्र-भाव के कारण सोचा—आज मेरे मित्र ने महाअभिनिष्क्रमण किया है। मैं उसके लिए भिक्षु की आवश्यक-ताएँ (=श्रमण परिष्कार) ले चलूँगा।

"योग में युक्त भिक्षु के लिए, तीन चीवर, पात्र, उस्तरा, सुई, काय-बन्धन और पानी छानने का वस्त्र—यह आठ (चीजें) होती हैं।"

(उसने) इन आठ परिष्कारों को लाकर बोधिसत्त्व को दिया। बोधिसत्त्व ने अर्हत-ध्वजा को धारण कर (अर्थात्) श्रेष्ठ प्रव्रज्या-वेष को ग्रहण कर छन्दक को प्रेरित किया।

'**छन्दक**! मेरी बात से माता पिता को आरोग्य कहना।' छन्दक बोधि-सत्त्व की वन्दना तथा प्रदक्षिणा कर चल दिया। लेकिन **कन्थक** ने बोधिसत्त्व की छन्दक के साथ हुई बात को सुना। "अब मुझे, फिर स्वामी का दर्शन नहीं होगा" सोच, आँख से ओझल होने के शोक को न सह सकने के कारण, वह कलेजा फट कर मर गया; और **त्रयस्त्रिंश-भवन** में कन्थक नामक देवपुत्र हो उत्पन्न हुआ। छन्दक को पहले एक ही शोक था; लेकिन कन्थक की मृत्यु से (अब) दूसरे शोक से (भी) पीड़ित हो (वह) रोता नगर को चला।

[1] **दो बुद्धों के बीच का समय।**

(२) राजगृह में भिक्षाटन

बोधिसत्त्व भी प्रव्रजित हो उसी प्रदेश में, **अनूपिया** नामक कस्बे के आमों के बाग में, एक सप्ताह प्रव्रज्या सुख में बिता, एक ही दिन में तीस योजन मार्ग पैदल चल कर, राजगृह में प्रविष्ट हुए। वहाँ प्रविष्ट हो भिक्षा माँगने के लिए निकले। जैसे धनपाल राजगृह में प्रविष्ट हुआ हो, जैसे असुरेन्द्र देवनगर में प्रविष्ट हुआ हो, वैसे ही बोधिसत्त्व के रूप को देख कर सारा नगर संक्षुब्ध हो गया। राज-पुरुषों ने जाकर राजा से कहा—"देव! इस रूप का एक पुरुष नगर में मधूकरी माँग रहा है। वह देव है या मनुष्य, नाग है या गरुड़, कौन है हम नहीं जानते?" राजा ने महल के ऊपर खड़े हो महापुरुष को देख आश्चर्यान्वित हो, (अपने) आदमियों को आज्ञा दी—'जाओ! देखो! यदि अमनुष्य होगा, तो नगर से निकल कर अन्तर्धान हो जायगा। यदि देवता होगा, तो आकाश से चला जायगा, यदि नाग होगा तो पृथ्वी में डुबकी लगा कर चला जायगा। यदि मनुष्य होगा, तो जो भिक्षा मिली है, उसे खायेगा।" महापुरुष ने मिश्रित भोजन को संग्रह कर, 'इतना मेरे लिए पर्याप्त होगा' जान, प्रविष्ट हुए द्वार से ही (बाहर) निकल, **पाण्डव-पर्वत**[1] की छाया में पूरब-मुँह बैठ, भोजन करना आरम्भ किया। उस समय उनके आँत उलट कर मुँह से निकलते जैसे मालूम हुए। तब इस जन्म में, इससे पूर्व ऐसा भोजन आँख से भी न देखा होने से, उस प्रतिकूल भोजन से दु:खित हुए अपने आपको, अपने आप ही यों समझाया—

"सिद्धार्थ! तू अन्न-पान सुलभ कुल में तीन वर्ष के (पुराने) सुगन्धित चावल का भोजन किये जाने वाले स्थान में पैदा होकर भी, गुदरीधारी (भिक्षु) को देख कर (सोचता था)—कि मैं भी कब इसी तरह (भिक्षु) बन कर भिक्षा माँग भोजन करूँगा? क्या वह भी समय होगा?—और यही सोच घर से निकला था। अब यह क्या कर रहा है?" इस प्रकार अपने ही अपने आपको समझा कर निर्विकार हो भोजन किया। राज-पुरुषों ने उस वृत्तान्त को देख, जाकर राजा से कहा। राजा ने दूत की बात सुन, नगर से शीघ्र निकल, बोधि-

[1] वर्तमान रत्नगिरि या रत्नकूट।

सत्त्व के पास जा, उनकी चर्या से ही प्रसन्न हो बोधिसत्त्व को (अपने) सभी ऐश्वर्य अर्पण किये। बोधिसत्त्व ने कहा—"महाराज ! मुझे न वस्तु-कामना है, न भोग-कामना। मैंने महान् बुद्ध-ज्ञान (=अभिसंबोधित) की प्राप्ति के लिए गृह-त्याग (=अभिनिष्क्रमण) किया है। राजा के बहुत तरह से प्रार्थना करने पर भी, उसका चित्त आकृष्ट न कर सकने पर, कहा—अच्छा ! तुम निश्चय से बुद्ध होगे। बुद्ध होने पर पहले पहल हमारे राज्य में आना।" यह यहाँ संक्षेप में है। विस्तार "प्रव्रज्या का वर्णन करता हूँ, जिस प्रकार चक्षुमान् प्रव्रजित हुए" (इस प्रकार आरम्भ होने वाले) **प्रव्रज्या-सूत्र**[1] को अट्ठकथा के साथ प्रव्रज्या सूत्र में देख कर जानना चाहिए।

(३) तपस्या

बोधिसत्त्व ने भी राजा को वचन दे, क्रमशः विचरण करते हुए, **आलार कालाम** तथा **उद्दक राम-पुत्र** के पास पहुँच समाधि (=समापत्ति) सीखी। फिर यह (समाधि) ज्ञान (=बोध) का रास्ता नहीं है, (सोच) उस समाधि भावना को अपर्याप्त समझ, देवताओं सहित सभी लोकों को अपना बल वीर्य दिखाने के लिए महान् प्रयत्न में लगने की इच्छा से, **उरुवेला** में पहुँच—"यह भूमि-भाग (=प्रदेश) रमणीय है" सोच, वहाँ रह महा-प्रयत्न करने लगे।

कौण्डिन्य आदि पाँच परिव्राजक भी, गाँव, शहर, राजधानी में भिक्षा-चरण करते, बोधिसत्त्व के पास वहाँ पहुँचे। 'अब बुद्ध होंगे, अब बुद्ध होंगे' इस आशा से, वह उनके छः वर्ष तक महा-प्रयत्न करने के समय, आश्रम की झाड़ू-बर्दारी आदि सेवाओं को करते, बोधिसत्त्व के पास रहे।

बोधिसत्त्व भी 'अन्तिम दर्जे की दुष्कर-क्रिया करूँगा' सोच (एक) तिल तण्डुलादि से भी काल-क्षेप करने लगे। (आगे चल कर) आहार ग्रहण करना सर्वथा छोड़ दिया। देवताओं ने रोम कूपों द्वारा (उनके शरीर में) ओज डाला। (तो भी) आहार के बिना बहुत दुबले होकर, उनका कनक-वर्ण शरीर काला पड़ गया। (शरीर में विद्यमान) महापुरुषों के बत्तीस-लक्षण छिप गये।

[1] सुत्त-निपात, मार-वग्ग

एक बार श्वास-रहित ध्यान करते समय, काय क्लेश से बहुत ही पीड़ित (एवं) बेहोश हो टहलने के चबूतरे (=चंक्रमण-भूमि) पर गिर पड़े। तब कुछ देवताओं ने कहा, 'श्रमण गौतम मर गये।' कुछ ने कहा 'अर्हत-व्यक्ति का विहरण (=चर्या) ऐसा ही होता है।" तब जिन (देवताओं) का विचार था कि (श्रमण गौतम) मर गये, उन्होंने जाकर राजा शुद्धोदन से कहा—"तुम्हारा पुत्र मर गया।"

मेरे पुत्र ने 'बुद्ध' होने के पश्चात् शरीर छोड़ा अथवा 'बुद्ध' होने से पूर्व ही शरीर छोड़ दिया ?"

" 'बुद्ध' न हो सका। प्रयत्न-भूमि में, (प्रयत्न करते हुए ही) गिर कर मर गया।"

यह सुन कर राजा ने (इस बात का) विरोध किया—"मैं इसमें विश्वास नहीं करता। 'बुद्ध' हुए बिना मेरे पुत्र की मृत्यु होने वाली नहीं।"

राजा ने किस लिए विश्वास नहीं किया ? तपस्वी काल देवल के वन्दना करने के दिन तथा जम्बू-वृक्ष के नीचे अलौकिक घटनाएँ देखे रहने के कारण। होश में आकर, बोधिसत्त्व के उठ बैठने पर, उन देवताओं ने फिर महाराज शुद्धोदन को जाकर कहा—"महाराज ! तुम्हारा पुत्र सकुशल है।" राजा ने कहा—"हाँ ! मैं अपने पुत्र के जीवित रहने की बात जानता हूँ।" महासत्त्व की छः वर्ष की दुष्कर तपस्या आकाश में गाँठ बाँधने के समान (निष्फल) हुई। तब उन्होंने सोचा—"यह दुष्कर तपस्या बुद्धत्त्व-प्राप्ति का मार्ग नहीं है।" (इसलिए) स्थूल आहार ग्रहण करने के लिए ग्रामों तथा नगरों में भिक्षाटन कर, भोजन करना आरम्भ कर दिया। (शरीर के) बत्तीस महापुरुष-लक्षण (फिर) स्वाभाविक अवस्था में आ गये। शरीर फिर सुवर्ण-वर्ण हो गया। पंच वर्गीय भिक्षुओं ने सोचा—छः वर्ष तक दुष्कर तपस्या करके भी यह सर्वज्ञता को प्राप्त नहीं कर सका, अब ग्रामादि में भिक्षा माँग कर स्थूल आहार ग्रहण करता हुआ तो यह क्या ही कर सकेगा ? यह लालची है। तपस्या के मार्ग से भ्रष्ट है। जैसे शिर से नहाने की इच्छा रखने वाले के लिए ओस-बूंद की ओर ताकना (निष्फल) है, वैसे ही हमारा इसकी ओर ताकना (=आशा रखना) है। इससे हमारा क्या मतलब (सिधेगा) ? ऐसा सोच महापुरुष

को छोड़, अपने अपने पात्र चीवर ले, अठारह योजन चल कर ऋषिपतन[1] पहुँचे।

(४) सुजाता की खीर

उस समय **उरुवेला** (प्रदेश) के **सेनानी** नामक कस्बे में, सेनानी कुटुम्बी के घर में उत्पन्न **सुजाता** नाम की कन्या ने तरुणी (वयस्-प्राप्त) होने पर, एक बरगद के वृक्ष से सुख सुख रक्खी थी (=प्रार्थना की थी)—"यदि समान जाति के कुल-घर में जा, पहले ही गर्भ में पुत्र लाभ करूँगी, तो प्रति वर्ष एक लाख के खर्च से तेरी पूजा (=बलि कर्म) करूँगी" उसकी वह प्रार्थना पूरी हुई। महासत्व (=महापुरुष) की दुष्कर तपश्चर्या का छठा वर्ष पूरा होने पर, वैशाख पूर्णिमा के दिन बलि-कर्म करने की इच्छा से, उसने पहले हज़ार गायों को यष्टि-मधु (=जेठी मधु) के बन में चरवा कर, उनका दूध दूसरी पाँच सौ गायों को पिलवाया। (फिर) उनका दूध ढाई सौ गायों को; इस तरह (एक का दूध दूसरे को पिलाते) १६ गायों का दूध आठ गायों को पिलवाया। इस प्रकार दूध का गाढ़ापन, मधुरता, और ओज (बढ़ाने के लिए) उसने क्षीर-परिवर्तन किया। उसने वैशाख-पूर्णिमा के प्रातः ही बलि-कर्म करने की इच्छा से भिन-सार को उठ कर, उन आठ गायों को दुहवाया। बछड़ों ने गौवों के थनों को मुँह नहीं लगाया। थनों के पास नवीन बरतन के लाते ही, क्षीर-धारा अपने आप ही निकलने लगी। उस आश्चर्य को देख, सुजाता ने, अपने ही हाथ से दूध को लेकर, नवीन बरतन में डाल, अपने ही हाथ से आग जला (खीर) पकाना आरम्भ किया। उस खीर के पकते समय, (उसमें) बड़े बड़े बुलबुले उठ कर दक्षिण की ओर (हो) संचार करते थे। एक बुलबुला भी बाहर नहीं गिरता था। चूल्हे से ज़रा सा भी धुआँ नहीं उठता था। उस समय चारों लोकपालों ने आकर चूल्हे पर पहरा देना शुरू किया। महाब्रह्मा ने छत्र धारण किया। शक्र (=इन्द्र) ने ईंधन ला ला आग जलाई। देवताओं ने दो सहस्र द्वीप परि-वारों और चारों महाद्वीपों के देवताओं और मनुष्यों के योग्य ओज, अपने देव-प्रताप से, डण्डे पर लगे हुए मधु-छत्ते को निचोड़ कर मधु ग्रहण करने की तरह,

[1] सारनाथ (B. N. W. RY), जि० बनारस।

एकत्र कर उसमें डाला। और समय पर देवता ओज को कौल, कौल (=कवल) में डालते हैं। लेकिन सम्बुद्धत्व-प्राप्ति के दिन और परिनिर्वाण के दिन ऊरवसी (=देगची) में ही उँडेल देते हैं।

एक ही दिन में अनेक आश्चर्यों को प्रकट हुआ देख, सुजाता ने (अपनी) पूर्णा (नाम की) दासी को कहा—"अम्मा पूर्णे! आज हमारे देवता बहुत ही प्रसन्न हैं। मैंने इससे पहले, इतने समय तक (कभी) इस प्रकार का आश्चर्य नहीं देखा। जल्दी से जाकर देवस्थान को साफ़ करो" "आर्य्ये! अच्छा" कह उसके वचन को ग्रहण कर, वह जल्दी जल्दी वृक्ष के नीचे पहुँची। बोधिसत्त्व भी, उस रात को पाँच महास्वप्न देख, "आज मैं निःसंशय बुद्ध होऊँगा" निश्चय कर उस रात के बीतने पर, शौच आदि से निवृत्त हो, भिक्षा-काल की प्रतीक्षा करते हुए, प्रातःकाल ही आकर, अपनी प्रभा से सारे वृक्ष को प्रकाशित करते हुए, उस वृक्ष के नीचे बैठे। पूर्णा ने आकर देखा कि बोधिसत्त्व वृक्ष के नीचे बैठे हैं और पूर्व की ओर ताक रहे हैं। उनके शरीर से निकलने वाली प्रभा के कारण सारा वृक्ष प्रकाशित है। (यह) देख कर उसने सोचा—"आज हमारे देवता वृक्ष से उतर कर अपने ही हाथ से बलि ग्रहण करने को बैठे हैं" (इसलिए) उद्विग्न हो, उसने बहुत जल्दी से यह (बात) जाकर सुजाता से कही।

सुजाता ने उसकी बात को सुन कर प्रसन्न हो, "आज से तू मेरी ज्येष्ठ-पुत्री बन कर रह" कह, (अपनी) लड़की के योग्य सब आभरण आदि उसको दिये।

'बुद्धत्व प्राप्ति के दिन लाख के मूल्य का सुवर्ण-थाल मिलना चाहिए' इसलिए (सुजाता ने खीर) को सोने की थाल में डालने का विचार कर, लाख के मूल्य का सोने का थाल मँगवा कर, उसमें खीर डालने की इच्छा से पके बरतन पर ध्यान दिया। पद्म-पुष्प में रक्खे पानी की तरह, सारी खीर उलट कर, थाल में आ पड़ी। और वह (खीर) ठीक एक थाल भर ही हुई। वह उस सुवर्ण-थाल को दूसरे सुवर्ण-थाल से ढक, कपड़े से बाँध, अपने को सब अलंकारों से अलंकृत कर, थाल को अपने सिर पर रख, बड़े वैभव के साथ न्यग्रोध-वृक्ष के नीचे गई और बोधिसत्त्व को देख बहुत ही सन्तुष्ट हो, (उन्हें) वृक्ष का देवता समझ, (प्रथम) दिखाई पड़ने की जगह में ही (गौरवार्थ) झुक झुक कर जा, सिर से थाल को उतार कर खोला। फिर सोने की झारी में सुगन्धित पुष्पों से सुवासित जल ले, बोधिसत्त्व के पास जा खड़ी हुई। घटिकार महाब्रह्मा द्वारा

दिया गया मिट्टी का पात्र (=भिक्षा पात्र) इतने समय तक बराबर बोधिसत्त्व के पास रहा, लेकिन इस समय वह अदृश्य हो गया। बोधिसत्त्व ने पात्र को न देख कर, दाहिने हाथ को फैला जल ग्रहण किया। सुजाता ने पात्रसहित खीर को महापुरुष के हाथ में अर्पण किया। महापुरुष ने सुजाता की ओर देखा। उसने संकेत से जान कर—"आर्य ! मैंने तुम्हें यह प्रदान किया, इसे ग्रहण कर यथारुचि पधारिये" कह, वन्दना कर (फिर) "जैसा मेरा मनोरथ पूर्ण हुआ, वैसे ही तुम्हारा भी पूरा हो" कह, लाख (मुद्रा) के मूल्य के उस सुवर्ण थाल को लिये पुरानी पत्तल की भाँति ज़रा भी ख्याल न कर चल दी।

बोधिसत्त्व न्यग्रोध के नीचे बैठे हुए स्थान से उठ, वृक्ष की प्रदक्षिणा कर, थाल को ले, नेरञ्जरा के तीर पर गये। वहाँ लाखों बोधिसत्त्वों के बुद्धत्व-प्राप्ति के दिन, उतर कर नहाने योग्य, **सुप्रतिष्ठित तीर्थ** है; वहाँ किनारे पर थाल को रख कर, उतर नहा कर अनेक लाख बुद्धों का पहरावा अर्हत्-ध्वजा (=चीवर) पहन कर, पूर्व दिशा की ओर मुँह कर बैठ, एक (ही) बीज वाले पके ताल-फल के प्रमाण के, उनचास कवल (पिण्ड) करके, उस समस्त निर्जल मधुर-खीर का भोजन किया। यही आहार बुद्धत्व-प्राप्ति होने पर, बोधि-मण्ड में सात-सप्ताह तक बैठे रहने के समय, उनचास दिन का आहार हुआ। इतने समय तक न दूसरा आहार किया, न नहाया, न मुँह धोया, न (अन्य) शारीरिक कृत्य किए। (इन सप्ताहों को) ध्यान-सुख, मार्ग (-लाभ) सुख तथा फल (=दुःख-क्षय) सुख में ही बिताया। हाँ, उस खीर को खा, सोने के थाल को ले, "यदि मैं बुद्ध हो सकूँ, तो यह थाल पानी के स्रोत की तरफ़ चले; यदि न हो सकूँ तो नीचे की ओर जाये" कह कर, (नदी में) फेंक दिया। वह थाल धार चीर कर, नदी के बीच जा, बीचों बीच ही वेगवान् घोड़े की तरह, अस्सी हाथ (की दूरी) तक स्रोत से उलटा चला और एक गढ़े में डूब कर, काल नाग राज के भवन में जा, तीनों बुद्धों के उपयोग किये थालों से टकरा कर छन-छन (किल-किल) शब्द करता हुआ, उन सब थालों के नीचे जाकर बैठ गया। काल-नाग-राजा उस शब्द को सुन कर, "कल (भी) एक बुद्ध उत्पन्न हुआ था, आज फिर एक बुद्ध उत्पन्न हुआ है" (सोच) अनेक सौ श्लोकों से प्रशंसा करता रहा। उस (नाग-राज) को पृथ्वी का एक योजन तीन गव्यूति मोटा (?) हो जाने का समय 'आज' या 'कल' की तरह ही था।

बोधिसत्त्व भी नदी तीर के सुपुष्पित शाल बन में दिन बिता कर, शाम को डंठल से फूलों के गिरने के समय, देवताओं द्वारा अलंकृत, आठ ऋषभ चौड़े मार्ग से, सिंह-गति से बोधि-वृक्ष के पास गए। नाग- यक्ष, गरुड़ आदि ने दिव्य गन्ध तथा पुष्पों से पूजा की। दिव्य संगीत का गायन किया। दस सहस्र लोक सर्वत्र सुगन्धित किये। एक समान माला (अलंकृत) एक समान 'साधु साधु' के शब्द से गूँजित हुई। उस समय, सामने से घास लिये आते हुए सोत्थिय नामक घास काटने वाले ने, महापुरुष के आकार को देख कर, उन्हें आठ मुट्ठी तृण दिया। बोधिसत्त्व तृण ले, बोधिमण्ड पर चढ़ दक्षिण-दिशा में उत्तर की ओर मुँह करके खड़े हुए। उस समय दक्षिण चक्रवाल दब कर, मानों अवीचि (नरक) तक नीचे चला गया; उत्तर-चक्रवाल ऊपर उठ कर, मानों भवाग्र तक ऊपर चला गया। "मालूम होता है, यहाँ सम्बुद्धत्व नहीं प्राप्त होगा" सोच, बोधिसत्त्व प्रदक्षिणा करते हुए, पश्चिम दिशा की ओर जा पूर्व की ओर मुँह करके खड़े हुए। तब पश्चिम चक्रवाल दब कर, मानों अवीचि (नरक) तक नीचे चला गया। पूर्व-चक्रवाल ऊपर उठ कर, मानों भवाग्र तक ऊपर चला गया। वह जहाँ जहाँ जाकर ठहरे, वहाँ वहाँ नेमियों को लम्बे करके, नाभी के सहारे लिटाये हुए, शकट के पहिए के सदृश महापृथ्वी ऊँची नीची हो उठी। "मालूम होता है, यहाँ भी बोधि (=ज्ञान) की प्राप्ति नहीं होगी" सोच, बोधिसत्त्व प्रदक्षिणा करते उत्तर दिशा की ओर जा दक्षिण की ओर मुँह कर खड़े हुए। तब उत्तर का चक्रवाल दब कर, मानों अवीचि (नरक) तक नीचे चला गया, दक्षिण चक्रवाल ऊपर उठ कर, मानों भवाग्र (लोक) तक ऊपर उठ गया। मालूम होता है, यह भी बुद्धत्व-प्राप्ति का स्थान न होगा" सोच, बोधिसत्त्व प्रदक्षिणा करते पूर्व दिशा की ओर जा, पश्चिम की ओर मुँह करके खड़े हुए। पूर्व-दिशा, सभी बुद्धों के बैठने का स्थान है इसलिए न हिलती है, न काँपती है। "यह सभी बुद्धों से अपरित्यक्त स्थान है, (यही) दुःख-पञ्जर के विध्वंसन का स्थान है"—जान, (बोधिसत्त्व ने) उन कुशों के छोरों को पकड़ कर हिलाया। उसी समय चौदह हाथ का आसन बन गया; और वह तृण ऐसे (सुन्दर) रूप से बैठ गये, जैसे (सुन्दर) रूप से कोई चतुर चित्रकार अथवा शिल्प (पोत्थ)-कार चित्रित नहीं कर सकता। बोधिसत्त्व ने बोधिवृक्ष को भी पीठ की ओर करके, दृढ़-चित्त हो निश्चय किया—"चाहे मेरा चमड़ा, नसें, हड्डी ही क्यों न

बाकी रह जायें; (और) शरीर-मांस, रक्त सूख जाये, तो भी यथार्थ ज्ञान को प्राप्त किये बिना इस आसन को नहीं छोड़ूँगा" और सौ बिजलियों के गिरने से भी न टूटने वाले अपराजित आसन लगा बैठ गये ।

(५) मार पराजय

उस समय **मार देव-पुत्र** ने सोचा—"सिद्धार्थ-कुमार मेरे अधिकार से वाहिर निकलना चाहता है, इसे नहीं जाने दूँगा"—और अपनी सेना के पास जा, यह वात कह, घोषणा करवा कर, अपनी सेना से निकल पड़ा। मार के आगे की ओर वह सेना बारह योजन तक; दाईं और वाईं ओर भी वारह बारह योजन तक; (लेकिन) पीछे की ओर चक्रवाल के अन्त तक फैली हुई थी। आसमान की ओर नौ योजन तक ऊँची थी। जय-घोष करने पर (उसका) जय-घोष एक हज़ार योजन दूर से भी पृथ्वी के फटने के शब्द की भाँति सुनाई देता था। तव मार देव-पुत्र ने डेढ़ सौ योजन के गिरिमेखल नामक हाथी पर चढ़ कर, सहस्रबाहु से नाना प्रकार के आयुधों को ग्रहण किया। मार-सेना के वाकी लोगों में से भी, किसी दो ने एक प्रकार के हथियार नहीं लिये। वे सब नाना प्रकार के रंग तथा मुख वाले बन कर बोधिसत्त्व को डराते हुए आये। उस समय दस सहस्र चक्रवालों के देवता महासत्त्व की स्तुति करते रहे। देवेन्द्र शक्र अपने विजयोत्तर-शङ्ख को फूँकता रहा। वह शङ्ख एक सौ बीस हाथ का था। एक बार फूंक देने से चार महीने तक बज कर निःशब्द होता था। महाकाल नाग-राजा शेष सौ श्लोकों से गुणगान कर रहा था। महाब्रह्मा श्वेत छत्र लिये खड़ा था। (लेकिन) मार-सेना के बोधि-मण्ड तक पहुँचते पहुँचते (देव-सेना) में (से) एक भी खड़ा न रह सका; (सभी) सामने आते ही भाग गये ।

काल-नाग-राज पृथ्वी में अन्तर्धान हो कर, पाँच सौ योजन वाले अपने मञ्जेरिक नाग-भवन में जा, दोनों हाथों से मुँह को ढँक, लेट रहा। शक्र विजयोत्तर-शङ्ख को पीठ पर रख कर चक्रवाल के प्रधान द्वार पर जा खड़ा हुआ। महाब्रह्मा श्वेत छत्र को चक्रवाल के सिरे पर रख (अपने आप) ब्रह्म-लोक को भाग गया। एक भी देवता न ठहर सका। महा-पुरुष अकेले ही बैठे रहे। मार ने भी अपने अनुचरों से कहा—"तात ! शुद्धोदन-पुत्र सिद्धार्थ के समान दूसरा (कोई) वीर नहीं है। हम सामने से इससे युद्ध नहीं कर सकेंगे (इसलिए)

पीछे से चल कर करें।" महापुरुष ने भी सब देवताओं के भाग जाने के कारण तीनों दिशाओं को खाली देखा। फिर उत्तर-दिशा की ओर से मार-सेना को आगे बढ़ते देख—"यह इतने लोग मेरे अकेले के विरुद्ध इतने प्रयत्नशील हैं। आज यहाँ माता, पिता, भाई या दूसरा कोई सम्बन्धी नहीं है। मेरी दस पारमिताएँ ही चिरकाल से परिशोषित मेरे परिजन के समान हैं। इसलिए इन पारमिताओं को ही ढाल बना कर, (इस) पारमिता-शस्त्र को ही चला कर, मुझे यह सेना-समूह विध्वंस करना होगा।" (यह सोच) दस पारमिताओं का स्मरण करते हुए बैठे रहे।

तब मार देव-पुत्र ने सिद्धार्थ को भगाने की इच्छा से आँधी उत्पन्न की। तत्काल (उसी क्षण) पूर्व, पश्चिम से झंझावात उठ कर, अर्ध-योजन, (योजन), दो योजन और तीन योजन तक के पर्वत-शिखरों को उखाड़ती, वृक्षों को उन्मूलन करती, चारों ओर ग्राम-नगरों को चूर्ण विचूर्ण करती आगे बढ़ी। किंतु महापुरुष के पुण्य-तेज से उसकी प्रचंडता बोधिसत्त्व के पास पहुँचते पहुँचते (इतनी निर्बल हो गई कि) उनके चीवर का कोना भी न हिला सकी। तब पानी में डुबाने की इच्छा से उसने भयंकर महा-वर्षा शुरू की। उसके दिव्य बल से ऊपर सौ (फिर) हज़ार तहों वाले बादल बरसने लगे। वर्षा की धाराओं के ज़ोर से पृथ्वी में छेद पड़ गये। बन-वृक्षों की ऊपरी चोटियों तक बाढ़ आ गई, तो भी, (वह) महासत्त्व के चीवरों को ओस की बूँदों के समान भी न भिगो सका। उसके बाद पत्थरों की वर्षा की। बड़े बड़े धुआँ-धार जलते दहकते पर्वत-शिखर आकाश-मार्ग से आये, लेकिन बोधिसत्त्व के पास पहुँच कर दिव्य-पुष्पों के गुच्छे बन गये। उसके बाद आयुध-वर्षा आरम्भ की। एक धार, द्विधार, असि (=तलवार), शक्ति, तीर आदि प्रज्वलित आयुध आकाश मार्ग से आने लगे; (लेकिन) बोधिसत्त्व के पास पहुँच कर (वह भी) दिव्य-पुष्प बन गये। उसके बाद अङ्गारों की वर्षा की। लाल लाल रंग के अङ्गार आकाश से बरसने लगे; (लेकिन) बोधिसत्त्व के पैरों पर वह दिव्य-फूल बन कर बिखर गये। उसके बाद राख की वर्षा की। अत्यन्त उष्ण अग्निचूर्ण आकाश से बरसने लगा, (लेकिन) बोधिसत्त्व के चरणों पर वह चन्दन-चूर्ण बन कर गिर पड़ा। तब रेत की वर्षा की। धुंधवाती, प्रज्वलित, अति सूक्ष्म बालुका आकाश से बरसने लगी, (लेकिन) बोधिसत्त्व के चरणों पर वह दिव्य-

पुष्प बन गिर पड़ी। तब कीचड़ की वर्षा की। धुंधवाता प्रज्वलित कीचड़ आकाश से बरसने लगा; (लेकिन) बोधिसत्त्व के पैरों पर वह दिव्य-लेप बन गिर पड़ा। तब मार देव-पुत्र ने कुमार को भगाने की इच्छा से अन्धकार कर दिया। वह अन्धकार चारों तरह से घनघोर अन्धकार था, तो (भी) बोधिसत्त्व के पास पहुँच, सूर्य प्रभा से विनष्ट अँधेरे की भाँति अन्तर्धान हो गया।

इस प्रकार मार जब वायु, वर्षा, पाषाण, हथियार, धधकती राख, बालू, कीचड़, अन्धकार की वर्षा से (भी) बोधिसत्त्व को न भगा सका तो (अपनी परिषद् से बोला)—" भणे! क्या खड़े हो। इस कुमार को पकड़ो, मारो, भगाओ" और इस प्रकार परिषद् को आज्ञा देकर, अपने आप गिरिमेखल हाथी के कन्धे पर बैठ, (अपने) चक्र को ले, बोधिसत्त्व के पास पहुँच कर बोला— "सिद्धार्थ! इस आसन से उठ, यह (आसन) तेरे लिए नहीं, मेरे लिए है।" महासत्त्व ने उसके वचन को सुन कर कहा—"मार! तू ने न दस पारमिताएँ पूरी कीं, न उपपारमिताएँ, न परमार्थ-पारमिताएँ ही, न तूने पाँच महात्याग ही किये, न ज्ञातिहित न लोक-हित काम किये, न ज्ञान का आचरण किया। यह आसन तेरे लिए नहीं, मेरे ही लिए है।"

मार अपने क्रोध के वेग को न रोक सका; और उसने महापुरुष पर चक्र चलाया। महापुरुष ने (अपनी) दस पारमिताओं का स्मरण किया; और उनके ऊपर, वे आयुध फूलों का चँदवा बन कर ठहर गये। यह वही तेज चक्र था, जिसे यदि और दिनों, मार क्रुद्ध होकर फेंकता तो एक ठोस पाषाण-स्तम्भ को बाँसों के कड़ीर की तरह खंड खंड कर देता। जब वह बोधिसत्त्व के लिए मालाओं का चँदवा बन गया, तब बाकी मार-परिषद् ने आसन से भगाने के लिए बड़ी बड़ी पत्थर की शिलाएँ फेंकी। वह पत्थर की शिलाएँ भी, दस पारमिताओं का स्मरण करते ही महापुरुष के पास आ कर, पुष्प मालाऐं बन कर, पृथ्वी पर गिर पड़ीं।

चक्रवाल के किनारे पर खड़े देवता-गण गर्दन पसार पसार सिर उठा उठा कर देख रहे थे। "भो! सिद्धार्थ-कुमार का सुन्दर स्वरूप नष्ट हो गया। अब वह क्या करेगा?" 'पारमिताओं को पूरा करने वाले बोधिसत्त्वों के बुद्धत्व-प्राप्ति के दिन (जो) आसन प्राप्त होता है, वह मेरे लिए ही है' कहने वाले मार से महापुरुष ने पूछा, "मार! तेरे दान देने का कौन साक्षी है?"

मार ने मार-सेना की ओर हाथ पसार कर कहा—"यह इतने जने साक्षी हैं।" उस समय "मैं साक्षी हूँ" 'मैं साक्षी हूँ' कह कर मार-परिषद् ने जो शब्द किया, वह पृथ्वी के फटने के शब्द के समान था। तब मार ने महापुरुष से पूछा—'सिद्धार्थ! तूने दान दिया है, इसका कौन साक्षी है?' महापुरुष ने कहा, "तेरे दान देने के साक्षी तो जीवित-प्राणी (=सचेतन) हैं लेकिन इस स्थान पर मेरे दान (दिये) का कोई जीवित साक्षी नहीं। दूसरे जन्मों में दिये दान (की बात) रहने दे। वेस्सन्तर-जन्म के समय मेरे द्वारा सात सप्ताह दिये गये दान की यह अचेतन ठोस महापृथ्वी भी साक्षिणी है, (और फिर) चीवर के भीतर से दाहिने हाथ को निकाल, "**वेस्सन्तर-जन्म** के समय मेरे द्वारा सात सप्ताह तक दिये गये दान की तू साक्षिणी है वा नहीं?" कह, महापृथ्वी की ओर हाथ लटकाया। महापृथ्वी ने "मैं तेरी तब की साक्षिणी हूँ", (इस प्रकार) सौ वाणी से, सहस्र वाणी से, लाख वाणी से, मार-बल को तितर-बितर करते हुए महा-नाद किया।

तब मार ने 'सिद्धार्थ! तूने महादान दिया, उत्तम दान दिया है' कहा। वेस्सन्तर के दान पर विचार करते करते डेढ़ सौ योजन के शरीर वाले गिरिमेखल हाथी ने (दोनों) घुटने टेक दिये। मार-सेना दिशाओं विदिशाओं की ओर भाग निकली। एक मार्ग से दो जनों का जाना नहीं हुआ। वे शिर के आभरण तथा पहने वस्त्रों को छोड़, जिधर मुँह समाया, उधर ही भाग निकले।

देव-गण ने भागती हुई मार-सेना को देख सोचा—'मार की पराजय हुई, सिद्धार्थ-कुमार विजयी हुए। (आओ हम चलकर) विजयी की पूजा करें।' फिर नागों ने नागों को, गरुड़ों ने गरुड़ों को, देवताओं ने देवताओं को, ब्रह्माओं ने ब्रह्माओं को (सन्देश) भेजा और हाथ में गन्ध माला ले, महापुरुष के पास, बोधि आसन के पास पहुँचे। इस प्रकार उनके वहाँ पहुँचने पर :—

उस समय प्रमुदित हो नाग-गण ने, "यह श्रीमान् बुद्ध की जय (हुई) और पापी मार पराजित हुआ" (कह) बोधिमण्ड में महर्षि की विजय उद्घोषित की।

उस समय प्रसन्न हो गरुड़ ने "यह श्रीमान् बुद्ध की जय (हुई), और पापी मार पराजित हुआ" (कह) बोधिमण्ड में महर्षि को विजय उद्घोषित की।

उस समय आनन्दित हो देव-गण ने "यह श्रीमान् बुद्ध की जय (हुई) और पापी मार पराजित हुआ" (कह) बोधिमण्ड में महर्षि की विजय उद्घोषित की।

उस समय आनन्दित हो ब्रह्माओं ने "यह श्रीमान् बुद्ध की जय (हुई) और पापी मार पराजित हुआ" (कह) बोधिमण्ड में स्थिर-चित्त (बुद्ध) की विजय उद्घोषित की।

शेष दस हज़ार चक्रवालों के देवता, माला-गन्ध-विलेपन से पूजा कर, नाना प्रकार की स्तुतियाँ करने लगे।

(६) बुद्ध-पद का लाभ

इस प्रकार महापुरुष ने सूर्य के रहते रहते मार-सेना को परास्त किया। चीवर के ऊपर, गिरते हुए, बोधिवृक्ष के अंकुर गिर रहे थे; जान पड़ता था, लाल मूँगों की (वर्षा से उनकी) पूजा हो रही है।

प्रथम याम में उन्हें पूर्व-जन्मों का ज्ञान हुआ; दूसरे याम में दिव्य-चक्षु विशुद्ध हुआ; और अन्तिम याम में उन्होंने **प्रतीत्य-समुत्पाद**[1] का साक्षात्कार किया।

सो उनके बारह-पदों के प्रत्यय-स्वरूप (प्रतीत्य-समुत्पाद) को आवर्त-विवर्त की दृष्टि से, सीधे (=अनुलोम) उलटे (=प्रतिलोम), विचार करते हुए, दस सहस्र लोक-धातु (=ब्रह्माण्ड), पानी की सतह तक, बारह बार काँपी।

महापुरुष ने दस सहस्र लोक-धातुओं को उन्नादित कर, दिन की लाली फटते समय बुद्धत्व (=सर्वज्ञता) का साक्षात्कार किया। उस समय, सारे दस सहस्र लोक-धातु सु-अलंकृत थे। पूर्व चक्रवाल के छोर पर ध्वजाएँ फहरा रही थीं। इन पताकाओं की प्रभायें पश्चिम चक्र-वाल के छोर तक पहुँच रही थीं। इसी प्रकार पश्चिम चक्र-वाल के छोर पर फहराती (ध्वजाओं की प्रभाओं से) पूर्व चक्रवाल के छोर (प्रभासित हो रहे थे)। उत्तर चक्रवाल के छोर पर फहराती उत्तेजित ध्वजायें दक्षिण चक्रवाल के छोर को प्रभासित कर रही थीं। दक्षिण-चक्रवाल के छोर पर उड़ाई (पताकाओं की प्रभा) उत्तर चक्रवाल के छोर तक पहुँच रही थी। पृथ्वी तल पर उठाई गई ध्वजा पताकायें, ब्रह्म-लोक को छू रही थीं; और ब्रह्मलोक में उठाई पताकायें पृथ्वी तल पर पहुँच रही थीं। दस सहस्र चक्रवाल में फूलदार वृक्षों पर फूल खिल गये, फलदार वृक्ष फलों के भार से लद गये। (वृक्षों के) स्कन्ध में स्कन्ध-कमल खिल गये। शाखाओं

[1] देखो, महा-निदान-सुत्त (दीर्घ-निकाय)।

में शाखा-कमल, लताओं में लता-कमल, आकाश में लटकने वाले कमल और शिला-तल को फोड़ कर ऊपर ऊपर सात सात होकर (खिलने वाले) दण्डक-पुष्प भी (खिल) उठे।

दस सहस्र लोक धातु घुमा कर रक्खी हुई माला के सदृश या सुप्रसारित पुष्प-शय्या के सदृश हो गये थे। चक्रवालों के बीच के आठ सहस्र 'लोकान्तर' (जो) पहले सात सूर्यों के प्रकाश से भी प्रकाशित नहीं होते थे; (अब) चारों ओर प्रकाश से प्रकाशित (=एको भासा) हो रहे थे। चौरासी हज़ार योजन गहरा महासमुद्र मीठे जल वाला हो गया था। नदियों का बहना रुक गया। जन्मान्ध को रूप दिखाई देने लगा था। जन्म के बहरे शब्द सुनने लगे थे। जन्म के पंगु पाँव से (चलने) लग गये थे। (बंदियों की) हथकड़ी, बेड़ी आदि बन्धन टूट कर गिर पड़े। इस प्रकार अनन्त प्रभा-शोभा से पूजित (हो) अनेक प्रकार की आश्चर्यकर घटनाएँ घटित हो रही थीं।

तब बुद्ध ने बुद्धत्व-ज्ञान का साक्षात् कर, सभी बुद्धों द्वारा कहे गये उदान (प्रीति-वाक्य) को कहा है :—

"दुःखदायी जन्म बार बार लेना पड़ा। मैं संसार में (शरीर रूपी गृह को बनाने वाले) गृह-कारक को पाने की खोज में निष्फल भटकता रहा। लेकिन गृह-कारक! अब मैंने तुझे देख लिया। (अब) तू फिर गृह निर्माण न कर सकेगा। तेरी सब कड़ियाँ टूट गईं, गृह-शिखर बिखर गया। चित्त निर्वाण प्राप्त हो गया; तृष्णा का क्षय देख लिया।"

यह तुषित देवलोक से आरम्भ करके यहाँ बोधिमण्ड में बुद्धत्व (=सर्वज्ञता) प्राप्ति तक की बात 'अविदूरे निदान' कही जाती है।

ग. सन्तिके निदान

(१) बोधि-वृक्ष के आसपास

लेकिन 'सन्तिके निदान' (क्या है)? "भगवान् श्रावस्ती[1] में अनाथ

[1] बलरामपुर से १० मील पर वर्तमान सहेट महेट (जि० गोण्डा, युक्त-प्रान्त)।

पिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते थे"। वैशाली[1] में महाबन की कूटागार शालामें विहार करते थे।" इस प्रकार उन उन स्थानों पर विहार करते समय का वृत्तान्त उन उन स्थानों पर ही मिलता है। जो कुछ इस विषय में कहा गया है, उसे भी आरम्भ से इस प्रकार समझना चाहिए :—

उस उदान (=प्रीति वाक्य) को कह कर (वहाँ) बैठे भगवान् के मन में हुआ—"मैं इस (बुद्ध) आसन के लिए चार असंखेय्य एक लाख कल्प दौड़ता रहा; इसी आसन के लिए मैंने इतने समय तक, अपने अलंकृत सीस को गर्दन से काट कर दिया; सुअञ्जित आँखों और हृदय-मांस को निकाल कर प्रदान करता रहा; जालिय कुमार सदृश पुत्र, कृष्णाजिना कुमारी सदृश पुत्री माद्रीदेवी सदृश भार्या को दूसरों के दास बनने के लिए दिया। मेरा यह आसन., जय-आसन है, श्रेष्ठासन है। यहाँ (इस आसन) पर बैठे मेरे सङ्कल्प पूरे हुए हैं। अभी मैं यहाँ से नहीं उठूँगा" (यह सोच) दसों खरब समापत्तियों (=ध्यानों) में रत, सप्ताह भर तक वहीं बैठे रहे। इसीके बारे में कहा है—"भगवान् सप्ताह-भर तक एक ही आसन से विमुक्ति सुख का आनन्द लेते हुए बैठे' रहे।"[2]

तब कुछ देवताओं के मन में ऐसा सन्देह उत्पन्न हुआ, 'सिद्धार्थ कुमार को अभी भी (कुछ योग) करना बाकी है। इसीसे वह आसन के मोह को नहीं छोड़ता है।' शास्ता ने देवताओं के संदेह को जान, उसे हटाने के लिए, आकाश में जाकर यमक-प्रातिहार्य[3] दिखाई। महाबोधि-मण्ड में की गई यह प्रातिहार्य, (देह-)सम्बन्धियों के समागम के समय पर की गई प्रातिहार्य, और पाटिकपुत्र (परिव्राजक) के समागम पर की गई प्रातिहार्य—ये सब प्रातिहार्य, गण्डम वृक्ष के नीचे की गई यमक-प्रातिहार्य जैसी ही हुई थीं। इस प्रकार इस प्रातिहार्य से देवताओं के संदेह को दूर कर, शास्ता ने (वज्र-) आसन से ज़रा थोड़ा

[1] बसाढ (जि० मुज़फ़्फ़रपुर) के प्रायः २ मील उत्तर वर्तमान कोल्हुआ, जहाँ आज अशोक-स्तम्भ खड़ा है।

[2] विनयपिटक, महावग्ग।

[3] दिव्य-चमत्कार।

पूर्व की ओर 'उत्तर-दिशा भाग' में खड़े हो सोचा—'इस स्थान पर मैंने सर्वज्ञता-ज्ञान प्राप्त किया।' फिर चार असंखेय्य एक लाख कल्प तक पूरी की गई पारमिताओं की फल प्राप्ति के स्थान को निर्निमेष दृष्टि से देखते सप्ताह बिता दिया। इसीलिए स्थान का नाम 'अनिमिस-चेतिय' (=अनिमेष चैत्य) हो गया।

तब (बज्र-)आसन और खड़े होने के स्थान के बीच की भूमि को चंक्रमण-भूमि बना, पूर्व से पश्चिम को रतन भर चौड़े, रत्न-चंक्रमण पर चंक्रमण करते हुए सप्ताह बिताया। उस स्थान का नाम 'रत्न-चंक्रमण चेतिय' पड़ा।

चौथे सप्ताह में, देवताओं ने बोधि से पश्चिमोत्तर दिशा में रत्न-घर बनाया। वहीं (शास्ता ने) आसन पर बैठ, अभिधर्म-पिटक को—विशेष रूप से अनन्त क्रम वाले **समन्त पट्ठान**[1] को विचारते हुए सप्ताह बिताया। इस विषय में आभिधर्मिकों का कथन है—"रत्नघर रत्नमय-गृह का नाम नहीं है; बल्कि (अभिधर्म के) सात प्रकरणों का संग्रह-स्थान ही रत्न-घर है।" चूँकि यहाँ दोनों ही अर्थ ठीक लग जाते हैं, इसलिए दोनों ही अर्थ ग्रहण करने चाहिए।' उसके बाद उस स्थान का नाम 'रत्नघर-चेतिय' पड़ा।

(२) अजपाल बर्गद के नीचे

इस प्रकार बोधि-वृक्ष के ही समीप चार सप्ताह बिता कर, पाँचवें सप्ताह (भगवान्) बोधि-वृक्ष से (चलकर) जहाँ **अजपाल बर्गद** (=न्यग्रोध) है, वहाँ चले गये। वहाँ भी धर्म पर विचार करते तथा विमुक्ति-सुख का आनन्द लेते ही बैठे रहे। उस समय देवपुत्र मार ने इतने समय तक (शास्ता का) पीछा करके, मौका ढूँढ़ते हुए भी, इनमें कोई दोष न देख, सोचा—'अब यह मेरे अधिकार से बाहिर हो गये'। और खिन्न हो, महामार्ग पर बैठे बैठे सोलह बातों का ख्याल कर, पृथ्वी पर सोलह रेखाएँ खैंचीं। "मैंने इसकी तरह दान पारमिता पूरी नहीं की; इसीलिए मैं इसके जैसा नहीं हुआ" यह (सोच) एक रेखा खींची। वैसे ही "मैंने इसकी तरह शील-पारमिता, नैष्क्रम्य-पारमिता, प्रज्ञा-पारमिता, वीर्य-पारमिता, शान्ति-पारमिता, सत्य-पारमिता, अधिष्ठान-पारमिता, मैत्री

[1] अभिधर्म-पिटक का एक ग्रन्थ।

पारमिता, उपेक्षा-पारमिता पूरी नहीं की; इसीलिए मैं इस जैसा नहीं हुआ" (सोच) दसवीं रेखा खींची। "मैंने इसकी तरह (श्रद्धा इन्द्रिय आदि) इन्द्रियों की उन्नत अनुन्नत अवस्था सम्बन्धी असाधारण ज्ञान की प्राप्ति के आश्रय भूत दस पारमिताओं की पूर्ति नहीं की; इसलिए मैं इस जैसा नहीं हुआ" (सोच) ग्यारहवीं रेखा खैंची। वैसे ही 'मैंने इसकी तरह असाधारण आशय-अनुशय ज्ञान, पा महाकरुणा समापत्ति (=ध्यान) ज्ञान, यमक-प्रातिहार्य ज्ञान; अनावरण-ज्ञान तथा सर्वज्ञता ज्ञान की प्राप्ति के आश्रय दस पारमिताओं की पूर्ति नहीं की। इसीलिए मैं इस जैसा नहीं हुआ" (सोच) सोलहवीं रेखा खींची। इस प्रकार, इन कारणों से (देवपुत्र मार) महामार्ग पर सोलह लकीरें खैंचते बैठा रहा।

उस समय तृष्णा, अरति तथा रगा (=राग) नामक मार की (तीनों) कन्याओं ने "हमारा पिता दिखाई नहीं दे रहा है, वह इस समय कहाँ है" (सोच) ढूँढ़ते हुए उसे खिन्न-चित्त भूमि कुरेदते (=लिखते) देखा। उन्होंने पिता के समीप जा पूछा—"तात ! आप किस लिए दुःखी तथा खिन्न-चित्त हैं ?"

"अम्मा ! यह महा-श्रमण मेरे अधिकार से बाहिर हो गया। इतने समय तक देखते रहते भी इसके छिद्र नहीं देख सका। इसीसे मैं दुखी तथा खिन्नचित्त हूँ" "यदि ऐसा है, तो सोच मत करो। हम इसे अपने वश में करके ले आयेंगी।"

"अम्मा ! इसे कोई वश में नहीं कर सकता। यह पुरुष अचल श्रद्धा में प्रतिष्ठित है।"

"तात ! हम स्त्रियाँ हैं। हम उसे अभी राग आदि के पाश में बाँध कर ले आयेंगी। आप चिन्ता न करें" (यह) कह भगवान् के पास जा उन्होंने पूछा ! "श्रमण ! हमें अपने चरणों की सेवा करने दो।"

भगवान् ने न उनके कथन को सुना, न आँख खोल कर (उनकी ओर) देखा। वह अनुपम, उपाधिक्षीण (=निर्वाण) में रत हो, विमुक्तचित्त, विवेक (=एकान्त) सुख का अनुभव करते बैठे रहे। तब मारकन्याओं ने सोचा— "पुरुषों की रुचि भिन्न भिन्न होती है। किसी को कन्यायें प्रिय लगती हैं, किसी को नव तरुणियाँ और किसी को बीच की आयु की मध्यवयस्कायें और किसी को प्रौढ़ायें। (आओ) हम इसे भिन्न भिन्न प्रकार से प्रलोभन दें।" तब उन्होंने सौ सौ रूप धारण किये। कुमारी बनीं, अप्रसूता हुईं, एक बार प्रसूता, दो बार प्रसूता, मध्यवयस्का तथा प्रौढ़ा स्त्रियें बन बन कर छ बार भगवान् के पास आ

कर पूछा—"श्रमण ! हमें अपने चरणों की सेवा करने दो !" भगवान् ने उस (कथन) को भी मन में नहीं किया। वह उस अनुपम, उपाधिक्षीण (=निर्वाण) में रत, विमुक्त-चित्त ही रहे।

(इस विषय में) कोई कोई आचार्य्य कहते हैं—"उन्हें बूढ़ी स्त्रियों के स्वरूप में देख, भगवान् ने अधिष्ठान किया; कि यह खण्डित दन्त और श्वेत केशा हो जायें" किन्तु यह (कथन) ग्रहण करने योग्य नहीं है, क्योंकि बुद्ध इस प्रकार का अधिष्ठान नहीं करते। हाँ, भगवान् ने, "तुम जाओ। काहे यह सब प्रयत्न करती हो ? जो विरागी नहीं हैं उन लोगों के सन्मुख यह सब करना चाहिए। तथागत का राग नष्ट हो गया, द्वेष (=क्रोध) नष्ट हो गया; मोह नष्ट हो गया" कह अपनी चित्तशुद्धि के विषय में कहा :—

"जिसके जय को पराजय में बदला नहीं जा सकता, जिसके जीते (राग, द्वेष, मोह फिर) नहीं लौट सकते; उस बे-निशान (अपद=स्थान-रहित), अनन्तदर्शी बुद्ध को किस रास्ते पा सकोगे ? जाल रचने वाली जिसकी विषय रूपी तृष्णा कहीं भी ले जाने लायक नहीं रह गई; उस अपद, अनन्त दर्शी बुद्ध को किस रास्ते से पा सकोगे ?

इन धर्म-पद के बुद्ध-वग्ग (१४) में आई दो गाथाओं को कह धर्मोपदेश किया। तब वे मार-कन्यायें हमारे पिता ने सत्य ही कहा था, "अर्हत् सुगत को राग (के बन्धन) में लाना आसान नहीं।" (सोच) पिता के पास चली गईं। भगवान् भी सप्ताह बिता कर वहाँ से मुचलिन्द वृक्ष के नीचे चले गये।

(३) मुचलिन्द वृक्ष के नीचे

उस समय सप्ताह भर की बदली उत्पन्न हो गई। सर्दी आदि से बचने के लिए, नाग राज मुचलिन्द ने फन तान सात गेंडुरी बनाईं। उसमें गन्धकुटी में बाधारहित विचरने की तरह, विमुक्ति सुख का आनन्द लेते हुए, (भगवान् ने) सप्ताह बिताया फिर राजायतन (—वृक्ष) के पास पहुँच, वहाँ भी विमुक्ति सुख का आनन्द लेते हुए बैठे रहे। इस प्रकार यह सात सप्ताह पूरे हुए। इन सात सप्ताहों में (भगवान्) ने न मुख धोया, न शरीर-शुद्धि की, न भोजन ही किया। (सब समय) (सारे समय को) ध्यान-सुख, मार्ग-सुख और फल (—प्राप्ति के) सुख में ही व्यतीत किया।

तब सात सप्ताहों के बीतने पर, उनचासवें दिन शास्ता को मुँह धोने की इच्छा हुई। देवेन्द्र शक्र ने हर्रे लाकर दी। शास्ता ने उसे खाया। उससे उन्हें शौच (=शरीर शुद्धि) हुआ। तब शक्र ने ही नागलता की दातुन (दन्तकाष्ठ) और मुख धोने के लिए पानी ला दिया। बुद्ध उस दातुन को कर, अनोतत्त-दह (=सरोवर) पर पानी से मुँह धो, फिर राजायतन के नीचे बैठे।

(४) धर्म-प्रचार

उस समय **तपस्सु** और **भल्लिक** नामक दो व्यापारी, पाँच सौ गाड़ियों के साथ **उत्कल**[१] देश से पश्चिम-देश (=मध्य देश) को जा रहे थे। उनके ज्ञाति-सम्बन्धी, देवताओं ने गाड़ियाँ रोक बुद्ध के लिए आहार तैयार करने के लिए उन्हें उत्साहित किया। उन्होंने जाकर, सत्तू और पूए (=मधुपिण्ड) ले, शास्ता के पास जा, खड़े हो कर प्रार्थना की, "भन्ते! भगवान्। कृपा कर इस आहार को ग्रहण करें।"

(सुजाता के) खीर के ग्रहण करने के दिन ही भगवान् के पात्र अन्तर्धान हो गये थे। इसलिए भगवान् ने सोचा—'तथागत हाथ में तो आहार ग्रहण नहीं करते; मैं किस (बरतन) में आहार ग्रहण करूँ?" तब उनके विचार को जान कर चारों दिशाओं के चारों महाराजा इन्द्र नील-मणि के बने पात्र को ले आये। भगवान् ने उन्हें अस्वीकार कर दिया। फिर मूँगे वर्ण के पाषाण के चार पात्र ले आये। चारों देवपुत्रों पर अनुकम्पा करने के लिए भगवान् ने चारों पात्रों को ले, एक दूसरे के ऊपर रख अधिष्ठान किया कि वह एक हो जायें। चारों पात्र मुख द्वार पर प्रकट (चार) रेखाओं वाले हो, बिचले (पात्र) के परिमाण के एक पात्र बन गये। भगवान् ने उस मूल्यवान् पत्थर के पात्र में आहार ग्रहण किया। भोजन करके (दान) अनुमोदन किया। दोनों भाई बुद्ध तथा धर्म की शरण जाने से दो वचन के **उपासक**[२] हुए। तब उनमें से एक के 'भन्ते! (पूजा) के लिए कुछ दें' कहने पर, भगवान् ने सिर पर दाहने हाथ

[१] उड़ीसा।

[२] संघ के न होने से वह बुद्ध और धर्म दो को ही शरण गए।

को फेर कर (अपने कुछ) बालों (=केश) को दिया। उन्होंने अपने नगर में पहुँच, उस केश को भीतर रख, (ऊपर से) चैत्य बनवाया।

सम्यक सम्बुद्ध भी वहाँ से उठ, अजपाल न्यग्रोध के पास जा, वहाँ न्यग्रोध (वृक्ष) के नीचे बैठे। तब वहाँ बैठते ही उनके मन में अपने अनुभूत धर्म की गम्भीरता का विचार उत्पन्न हुआ (सब) बुद्धों के अभ्यस्त "इस धर्म का मैंने अनुभव किया है...' (इस प्रकार) दूसरों को धर्मोपदेश देने की अनिच्छा का विचार (=वितर्क) उत्पन्न हुआ। तब सहम्पति ब्रह्मा ने "अरे! लोक नाश हो जायगा, अरे! लोक विनाश हो जायगा" कहते, दस सहस्र चक्रवालों से शक्र-सुयाम—सन्तुषित-सुनिर्मित–वशवर्ती-महाब्रह्माओं को ले कर, शास्ता के पास जा, "भन्ते! भगवान्! धर्मोपदेश करें। सुगत! धर्मोपदेश करें" इत्यादि क्रम से धर्मोपदेश करने की प्रार्थना की।

(५) बनारस (सारनाथ)

शास्ता उसे प्रतिज्ञा दे, सोचने लगे, "मैं पहले किसे धर्मोपदेश करूँ?" "इस धर्म को आलार-कालाम शीघ्र ही जान लेगा" सोच कर देखा, तो पता लगा कि उसे मरे एक सप्ताह हो गया। तब उद्दक के बारे में ख्याल आया। मालूम हुआ, वह भी (उसी) रात को मर गया। (तब) सोचा—"पञ्चवर्गीय भिक्षुओं ने मेरा बहुत उपकार किया है।" पञ्चवर्गीय भिक्षुओं के बारे में प्रश्न हुआ, 'वह इस समय कहाँ हैं?' सोचते हुए, **बाराणसी (बनारस) के मृगदाव**[1] में (विहरते हैं) जान; वहाँ जाकर धर्मचक्र प्रवर्तित करने का विचरा किया।

कुछ दिन तक बोधिमण्ड के आस पास ही भिक्षाचार कर विहार करते रहे। आषाढ़ पूर्णिमा के दिन बनारस पहुँचने के विचार से, चतुर्दशी को प्रातःकाल, तड़के ही (=समय) पात्र चीवर ले, अठारह योजन के मार्ग पर चल पड़े। रास्ते में उपक नामक **आजीवक**[2] को देख कर, उसे अपने 'बुद्ध' होने की बात कह, उसी दिन शाम के समय ऋषिपतन पहुँचे।

[1] **वर्तमान सारनाथ, बनारस।**

[2] **उस समय के नग्न साधुओं का एक सम्प्रदाय**

पञ्चवर्गीय-भिक्षुओं ने तथागत को दूर से आते देख निश्चय किया—"आयुष्मानो ! यह श्रमण गौतम वस्तुओं के अधिक लाभ के लिए मार्ग-भ्रष्ट हो परिपूर्ण शरीर, मोटी इन्द्रियों वाला, सुवर्ण-वर्ण हो कर आ रहा है। हम उसे अभिवादन आदि न करेंगे। लेकिन महाकुल-प्रसूत होने से यह आसन का अधिकारी है; अतः हम इसके लिए खाली आसन बिछा देंगे।"

भगवान् ने देवों सहित (सारे) लोक के चित्त की बात जान सकने वाले ज्ञान से सोच कर उन (पंचवर्गीयों) के विचार को जान लिया। तब उन्होंने समान रूप से सब देव मनुष्यों तक पहुँचने वाले मैत्री-पूर्णचित्त को, विशेष रूप से पंचवर्गीयों की ओर फेरा। भगवान् के मैत्री-चित्त से स्पृष्ट हो, तथागत के समीप आते आते वह अपने निश्चय पर दृढ़ न रह सके और उन्होंने अभिवादन प्रत्युत्थान आदि सब कृत्यों को किया। लेकिन 'सम्बुद्धत्व प्राप्ति' का उन्हें ज्ञान न था; इसलिए वह (तथागत को) केवल नाम लेकर अथवा 'आवुसो' (=आयुष्मान्) कह कर सम्बोधन करते थे।

(६) प्रथम-उपदेश : धर्मचक्र प्रवर्तन

तब भगवान् ने उन्हें "भिक्षुओ ! तथागत को नाम से अथवा 'आवुस' कह कर मत पुकारो। भिक्षुओ ! तथागत अर्हत् हैं, सम्यक् सम्बुद्ध हैं" कह, अपने बुद्ध होने को प्रगट किया। बिछे श्रेष्ठ बुद्धासन पर बैठ, उत्तराषाढ़ नक्षत्र (आषाढ़ी पूर्णिमा के दिन) अठारह करोड़ ब्रह्माओं से घिरे हुए पञ्चवर्गीय स्थविरों को सम्बोधित कर **धर्म चक्र प्रवर्तन सूत्र**[1] का उपदेश किया। उनमें से स्थविर अञ्ञा-कौण्डिन्य उपदेशानुसार ज्ञान का विकास करते हुए, सूत्र की समाप्ति पर अठारह करोड़ ब्रह्माओं सहित स्रोतआपत्ति फल में स्थित हुए। तब बुद्ध वर्षा-काल के लिए वहीं ठहर गये। अगले दिन वप्प स्थविर को उपदेश करते विहार में ही बैठे रहे। शेष चार जने भिक्षा माँगने गये। वप्प स्थविर पूर्वाह्न में ही स्रोतआपत्ति फल को प्राप्त हुए। इसी क्रम से अगले दिन भद्दिय स्थविर, फिर अगले दिन महानाम स्थविर, फिर अगले दिन अश्वजित् महा स्थविर—सब को स्रोतआपत्ति फल में स्थित कर, पक्ष के पाँचवें दिन, पाँचों जनों को एकत्र

[1] संयुक्त नि० ५५ : २ : १ विनय महावग्ग (महाक्खंधक)

कर अनत्त-लक्षण सूत्र का उपदेश किया। देशना की समाप्ति पर पाँचों स्थविर अर्हत्-फल में स्थित हुए।

तब शास्ता ने यश कुल-पुत्र की योग्यता (=उपनिस्सय) देख, उसी रात विरक्त हुए, घर छोड़ कर निकले (यश) को, "यश! आ।" कह बुलाया। उसी रात को उसे स्रोतआपत्ति-फल, (और) अगले दिन अर्हत्-फल में प्रतिष्ठित कर, उसके और भी चौवन (५४) मित्रों को "भिक्षुओ! आओ"—वचन द्वारा प्रव्रज्या दे कर 'अर्हत्व' प्राप्त कराया।

(७) उरुवेला की ओर

इस प्रकार लोक में इकसठ अर्हत् हो गये। वर्षा-वास की समाप्ति पर शास्ता ने **'प्रवारणा'**[1] कर, **"भिक्षुओ! चारिका करो ...**"[2] (कह) भिक्षुओं को साठ दिशाओं में भेज, स्वयं उरुवेल को जाते हुए, मार्ग में कप्पासिय वन-संड में तीस भद्रवर्गीय कुमारों को दीक्षित (=विनीत) किया। उन (कुमारों) में जो सब से पिछला था, वह **स्रोतापन्न** जो सर्वश्रेष्ठ था वह **अनागामी** हुआ। उन सब को भी "भिक्षुओ! आओ।" वचन से ही प्रव्रजित कर, (भिन्न भिन्न) दिशाओं में भेज, स्वयं उरुवेल पहुँच (वहाँ) तीन सहस्र पाँच सौ प्रातिहार्य (=चमत्कार) दिखा, सहस्रों जटिलों सहित उरुवेल काश्यप आदि तीन जटिल भाइयों को विनीत कर 'भिक्षुओ! आओ'—वचन से ही (उन्हें भी) प्रव्रजित कर **गया-शीर्ष**[3] पर बैठ, **आदिप्त-पर्याय (—सूत्र)**[4] के उपदेश से (उन्हें) अर्हत्-भाव में प्रतिष्ठित कराया। फिर उन सहस्र अर्हतों के साथ (राजा) बिम्बिसार को दी हुई प्रतिज्ञा को पूरा करने के लिए **राजगृह नगर**[5] के समीप स्थित लट्ठि-वन-उद्यान में पहुँचे।

(८) राजा बिम्बिसार का बौद्ध होना

राजा अपने माली के मुँह से बुद्ध के आने की बात सुन, बारह नहुत[6] (=नियुत) ब्राह्मण-गृहपतियों के साथ, बुद्ध के पास पहुँचे। उनके चक्र से अंकित

[1] वर्षा-समाप्ति पर विदायगी। [2] महावग्ग (महाखंधक)।
[3] गया सीस, गया का ब्रह्मयोनि पर्वत है। [4] संयुक्त नि० ४३:३:६।
[5] मगध की राजधानी। [6] नहुत=दस हजार।

तल वाले, सुनहले वस्त्र के चँदवे के समान प्रभा-पुंज प्रसारित करने वाले, चरणों में सिर से प्रणाम कर, परिषद् सहित एक ओर बैठ गया। तब उन ब्राह्मण-गृहपतियों के मन में यह (शंका) हुई—'क्या उरुवेल-काश्यप महाश्रमण (गौतम) का शिष्य है अथवा महाश्रमण उरुवेल काश्यप का (शिष्य) ? भगवान् ने अपने चित्त से उनके चित्त के वितर्क को जान (उरुवेल काश्यप) स्थविर को 'गाथा' में कहा :—

"उरुवेल-वासी ! तपः कृशों के उपदेशक ! क्या देख कर (तुमने) आग छोड़ी ? काश्यप ! तुम से यह बात पूछता हूँ, तुम्हारा अग्नि-होत्र कैसे छूटा ?"

स्थविर ने भगवान् का अभिप्राय समझ कर कहा :—"**रूप; शब्द, रस, काम-भोग, तथा स्त्रियाँ ये सब यज्ञ से (मिलती हैं), ऐसा कहते हैं। लेकिन (उक्त) उपाधियाँ मल हैं, यह जान कर, विरक्त चित्त हो, मैं ने यज्ञ करना तथा हवन करना छोड़ दिया।**"

इस गाथा को कह अपने शिष्य-भाव के प्रकाशनार्थ, तथागत के चरणों में शिर रख, "भन्ते ! भगवान् ! आप मेरे गुरु (=शास्ता) हैं, मैं आपका शिष्य हूँ" कह, आकाश में एक-ताल,. दो-ताल-तीन-ताल......सात-ताल ऊँचे तक, सात बार चढ़ उतर कर, तथागत को प्रणाम कर, एक ओर बैठ गया। इस प्रकार के चमत्कार को देख, लोग कहने लगे "अहो बुद्ध ! महाप्रतापी हैं; जिन तथागत ने इस प्रकार के दुराग्रही, अपने को अर्हत् समझने वाले उरुवेल काश्यप को भी उसके मत रूपी जाल को काट कर, दीक्षित किया ! भगवान् ने "न केवल अभी मैंने उरुवेल-काश्यप का दमन किया है, अतीत-काल में भी किया है।" कह, तथा इस अर्थ को स्पष्ट करने के लिए **महानारद काश्यप जातक**[1] कह, चार आर्य्य सत्यों का प्रकाश किया। ग्यारह नहुत (ब्राह्मण-गृहपतियों) सहित मगध-नरेश (बिम्बिसार) स्रोतआपत्तिफल में प्रतिष्ठित हुए। एक नहुत उपासक हुए।

बुद्ध के पास बैठे ही बैठे राजा (बालक-पन में अपने मन में उठी) **पाँच**

---

[1] जातक (५४४)

इच्छाओं[१] को कह, त्रिशरण ग्रहण कर, अगले दिन के लिए निमन्त्रण दे, आसन से उठ, भगवान् की प्रदक्षिणा कर चला गया। अगले दिन, जिन्होंने तथागत को देखा था, वे भी, और जिन्होंने नहीं देखा था, वे भी—सभी अठारह करोड़ राजगृह-निवासी, तथागत को देखने की इच्छा से प्रातःकाल ही राजगृह से **यष्टि-वन**[२] को गये। तीन गव्यूति मार्ग (भी) पर्य्याप्त नहीं था। सारा यष्टि-वन उद्यान हमेशा भरा रहता था। जन समूह भगवान् के सुन्दर स्वरूप को देखते तृप्त नहीं होते थे। यह रूप का प्रकरण (=वर्ण-भूमि) है। ऐसे स्थान पर लक्षण-अनुव्यञ्जनादि के विस्तार के साथ तथागत के शरीर के सारे सौन्दर्य का वर्णन करना चाहिए।

इस प्रकार बुद्ध (दस बल) के सुन्दर शरीर के दर्शन के लिए आने वाले जन-समूह से उद्यान के और मार्ग के निरन्तर भरे रहने से एक भिक्षु को भी बाहिर निकलने का अवकाश नहीं रहा। उस दिन भगवान् को निराहार रह जाने की सम्भावना थी। ऐसा न होने देने के लिए, शक्र का आसन गर्म हुआ। देवेन्द्र ने विचार करके, (आसन गर्म होने के) कारण को जाना; और ब्राह्मण तरुण (=माणवक) का रूप धारण कर, बुद्ध-धर्म-संघ की स्तुति करते हुए, बुद्ध (दस-वल धारी) के सामने उतर देव-बल से अपने लिए जगह कर गाथा बना कहा :—

अनासक्त (=विप्रमुक्त) संयमयुक्त पुराने जटाधारियों (=जटिलों) के साथ (=सिंगी-निकशा) तप्त सुवर्ण (सुवर्ण सदृश) संयमी (=दमित) भगवान् राजगृह में प्रवेश कर रहे हैं।

मुक्त, विप्रमुक्त, पुराने जटिलों के साथ तप्त सुवर्ण से रूपवान् मुक्त भगवान् राजगृह में प्रवेश कर रहे हैं।

उत्तीर्ण (=पार-प्राप्त) विप्रमुक्त, पुराने जटिलों से युक्त, तप्त सुवर्ण जैसे रूपवान् उत्तीर्ण भगवान् राजगृह में प्रवेश कर रहे हैं।

[१] 'क्या ही अच्छा होता, यदि मैं राज्यभिषिक्त होता' आदि पाँच इच्छाएँ (महावग्ग)।

[२] राजगृह नगर के समीपवर्ती जठियांब (लट्ठिवन उद्यान)।

दस-वास (वाले); दस-बल (-धारी), दस धर्मों के ज्ञाता, दस गुणों से युक्त, सहस्र अर्हतों के साथ भगवान् राजगृह में प्रवेश कर रहे हैं।"

उक्त गाथाओं से बुद्ध का गुणानुवर्णन करते हुए (देवेन्द्र) आगे आगे चल रहे थे। लोगों ने ब्राह्मण तरुण (माणवक) के रूप की सुन्दरता देख 'यह माणवक अत्यन्त सुन्दर है, हमने इसे पहले नहीं देखा' सोच, पूछा :—"यह माणवक कहाँ से (आया) है ? किस का है ?" इसे सुन माणवक ने यह गाथा कही :—

'लोक में जो धीर हैं, सर्वत्र संयत हैं, अर्हत् हैं, सुगत हैं; अद्वितीय बुद्ध हैं—मैं उनका सेवक (परिचारक) हूँ।

एक सहस्र भिक्षुओं के साथ बुद्ध (=शास्ता) ने, शक्र द्वारा बनाये गये मार्ग से राजगृह में प्रवेश किया। राजा ने बुद्ध-प्रमुख भिक्षु-संघ को भोजन (=महादान) दे (प्रार्थना की)—"भन्ते ! मैं बुद्ध-धर्म—संघ (=त्रिरत्न) के बिना न रह सकूँगा। समय, बे समय, भगवान् के पास आऊँगा। यष्ठि (=लट्ठि)-वन उद्यान बहुत दूर है। लेकिन हमारा वेणुवन उद्यान अधिक दूर नहीं है। वहाँ आना जाना सहज है। बुद्ध के योग्य निवासस्थान है। भगवान् ! आप उसे स्वीकार करें।" (कह) सोने की झारी में, पुष्प गन्ध से सुवासित, मणि के रंग जल को ले कर वेणुवन उद्यान का दान करते हुए, बुद्ध (=दशबल) के हाथ में जल डाला। उसी आराम की स्वीकृति से बुद्ध धर्म (=शासन) ने (लोक में) जड़ पकड़ी—(इसीलिए) पृथ्वी काँपी। जम्बूद्वीप में वेणुवन को छोड़ और किसी निवास (=शयनासन) के ग्रहण करने के समय पृथ्वी नहीं काँपी। सिंहल (ताम्रपर्णी) में भी महाविहार[1] के अतिरिक्त, और किसी शयनासन के ग्रहण करते वक्त पृथ्वी नहीं काँपी। (भगवान्) वेणुवन को ग्रहण कर, राजा (के दान) का अनुमोदन कर, आसन से उठ, भिक्षुसंघ सहित वेणुवन को चले गये।

(९) सारि-पुत्र और मौद्गल्यायन की प्रव्रज्या

उस समय अमृत की खोज में लगे हुए सारिपुत्र मौद्गल्यायन—दो परि-

[1] सिंहल-द्वीप में महास्थविर महेन्द्र को प्रदत्त प्रथम विहार

व्राजक राजगृह के समीप रहते थे। उनमें से (एक) सारिपुत्र ने अश्वजित् स्थविर को भिक्षा-चार करते देखा। वह प्रसन्न-चित्त हो, उनका सत्सङ्ग कर उनसे 'जो हेतुओं से उत्पन्न धर्म हैं...... (=ये धम्मा हेतुप्पभवा...)'[1] गाथा को सुन स्रोतआपत्ति फल में प्रतिष्ठित हुए। उन्होंने अपने मित्र मौद्गल्यायन परिव्राजक को भी वह गाथा कही। वह भी स्रोतआपत्ति-फल में प्रतिष्ठित हुए। वह दोनों ही (अपने पूर्व आचार्य) सञ्जय से भेंट कर, अपनी मंडली के साथ शास्ता के पास जा प्रव्रजित हुए। उनमें से महामौद्गल्यायन (एक) सप्ताह में ही अर्हत्व को प्राप्त हुए। सारिपुत्र पन्द्रह दिन में। शास्ता ने उन दोनों को प्रधान शिष्य (=अग्र-श्रावक) बनाया। सारिपुत्र स्थविर ने जिस दिन अर्हत् पद प्राप्त किया, उसी दिन (बुद्ध) शिष्यों का सम्मेलन किया गया।

(१०) शुद्धोदन का संदेश

तथागत के उसी वेणुवन उद्यान में विहार करते समय, शुद्धोदन महाराज ने सुना—"मेरे पुत्र ने छः वर्ष तक दुष्कर तपस्या कर, बुद्ध के उत्तम पद को प्राप्त किया है। वह धर्म-उपदेश का प्रारम्भ (=धर्मचक्रप्रवर्तन) कर, राजगृह के समीप वेणुवन में विहार करता है"। फिर एक मंत्री (=अमात्य) को बुला कर कहा :—"अरे! आओ, तुम एक हज़ार आदमियों को साथ ले, राजगृह जाकर मेरे वचन से, मेरे पुत्र को कहो—'आपके पिता महाराज शुद्धोदन (आपका) दर्शन करना चाहते हैं', कह और मेरे पुत्र को (बुलाकर) ले कर आओ।"

"अच्छा देव!" कह उसने राजा के वचन को शिरोधार्य किया। फिर वह एक हज़ार आदमियों को साथ ले, शीघ्र ही साठ योजन रास्ते को पार कर (राजगृह) पहुँचा। बुद्ध (उस समय) (भिक्षु, भिक्षुणी, उपासक, उपासिका) चार प्रकार की परिषद् के बीच बैठ, धर्म उपदेश कर रहे थे। उसी समय वह विहार में प्रविष्ट हुआ। उसने 'राजा का भेजा सन्देशा अभी पड़ा रहे' सोच परिषद् के अन्त में खड़े खड़े शास्ता का धर्म उपदेश सुना;

---

[1] ये धम्मा हेतुप्पभवा तेसं हेतुं तथागतो आह! तेसं च यो निरोधो, एवं वादी महा समणो।

और खड़े ही खड़े हज़ार आदमियों सहित अर्हत् पद प्राप्त कर उसने प्रव्रज्या माँगी। भगवान् ने 'भिक्षुओ ! आओ' कह हाथ पसारा। उसी समय वे सब योगबल से पात्र-चीवर-धारी हो गये। सौ वर्ष के स्थविर (=बुद्धभिक्षु) जैसे हो गये।

'अर्हत् पद प्राप्त होने पर आर्य-लोग मध्यस्थ भाव को प्राप्त हो जाते हैं', इसलिए उसने राजा के भेजे सन्देश को नहीं कहा। राजा ने 'न गया हुआ (अमात्य) ही लौटता है, न कोई समाचार ही सुनाई देता है' सोच; 'अरे ! आ, तू जा' कह, उसी प्रकार से दूसरा अमात्य भेजा। वह भी जा कर, पूर्व प्रकार से परिषद् सहित अर्हत्-पद को प्राप्त हो चुप रह गया। राजा ने इसी प्रकार हज़ार हज़ार मनुष्यों के साथ नौ अमात्य भेजे। सब अपना अपना (आत्मोन्नति का) काम समाप्त कर, चुप्पी साध, वहीं विहरने लगे। कोई लौट कर समाचार भी कहने वाला न मिलने से, राजा सोचने लगा—"इतने आदमियों ने मेरे प्रति स्नेह का भाव रखते हुए भी कोई समाचार तक नहीं दिया, तो अब कौन मेरे वचन को करेगा ?" (इस प्रकार सोचते हुए) सारी राजकीय परिषद् पर विचार करते हुए, उसने **काल उदायी** को देखा। वह राजा का सर्वार्थसाधक, (प्राइवेट सेक्रेटरी) आन्तरिक, अतिविश्वासी अमात्य था। वह बोधिसत्त्व के साथ एक ही दिन पैदा हुआ था (और) साथ का धूली-खेला मित्र था। राजा ने उसे बुलाया तात ! काल-उदायी ! मैं अपने पुत्र को देखना चाहता हूँ, नौ हज़ार आदमियों को भेजा। एक आदमी भी आ कर समाचार (=शासन) भी कहने वाला नहीं है। शरीर का कोई ठिकाना नहीं। मैं जीते जी पुत्र को देख लेना चाहता हूँ। क्या मेरे पुत्र को मुझे दिखा सकोगे ?"

"देव ! दिखा सकूँगा, यदि साधु बनने (=प्रव्रज्या लेने) की आज्ञा मिले।"

"तात ! तू प्रव्रजित (हो) या अप्रव्रजित, मेरे पुत्र को लाकर दिखा।"

"देव ! अच्छा" (कह) वह राजा का सन्देश (=शासन) ले, राजगृह गया और बुद्ध (=शास्ता) के धर्म उपदेश के समय सभा (परिषद्) के अन्त में खड़ा हो, धर्म सुन, साथियों (=परिवार) सहित अर्हत्फल को प्राप्त हो "भिक्षु ! आओ" के वचन से साधु (=प्रव्रजित) हुआ।

भगवान् ने (=शास्ता) बुद्ध हो कर पहला वर्षावास ऋषिपतन में किया। वर्षावास समाप्ति पर प्रवारणा कर, उरुवेला में जा, वहाँ तीन

मास रह, तीनों जटाधारी (=जटिल) भाइयों को रास्ते पर ला, एक हज़ार भिक्षुओं के साथ, पौष मास की पूर्णिमा को राजगृह जा, (वहाँ) दो मास रहे। इतने में बनारस से चले पाँच मास बीत गये। सारा हेमन्त-ऋतु समाप्त हो गया। उदायी स्थविर, आने के दिन से सात-आठ दिन बिता, फाल्गुण की पूर्णिमासी को सोचने लगे—हेमन्त बीत गया। बसन्त आ गया। मनुष्यों ने खेत (सस्य आदि) काट कर, सामने के स्थानों पर रास्ता छोड़ दिया है। पृथ्वी हरित तृण से आच्छादित है। वन-खण्ड फूलों से लदे हैं। रास्ते जाने लायक हो गये हैं। यह बुद्ध (=दश-बल) के लिए अपने सम्बन्धियों (=जाति) को मिलने (=संग्रह करने) का (यह ठीक) समय है। (यह सोच) भगवान् के पास जा कर बोले—

"भदन्त इस समय वृक्ष पत्ते छोड़ फलने के लिए (नये पत्तों से) अंगार-वाले (जैसे) हो गये हैं। उनकी चमक अग्नि-शिखा सी है। महावीर! यह शाक्यों (=भगीरथों भगीरसों[1]) (के संग्रह करने) का समय है।

न बहुत शीत है, न बहुत उष्ण है, न भोजन की बहुत कठिनाई है। भूमि हरियाली से हरित है। महामुनि! यह (चलने का) समय है,"

(इत्यादि) साठ गाथाओं द्वारा बुद्ध (=दश-बल) से (अपने) कुल के नगर को जाने के लिए यात्रा की स्तुति की। भगवान् (=शास्ता) ने पूछा—
"उदायी! क्या है, जो (तुम) मधुर स्वर से यात्रा की स्तुति कर रहे हो?"

"भन्ते! आपके पिता महाराज शुद्धोदन (आपका) दर्शन करना चाहते हैं। (आप) जातिवालों का संग्रह करें।"

"उदायी! अच्छा? मैं जाति वालों का संग्रह करूँगा; भिक्षु-संघ को कहो कि यात्रा की तैयारी (=व्रत) करें।"

"अच्छा भन्ते!" (कह) स्थविर ने (भिक्षु-संघ को) कहा।

(११) कपिलवस्तु-गमन

भगवान् दस हज़ार अंग-मगध वासी कुल-पुत्रों तथा दस हज़ार कपिलवस्तु वासी कुल-पुत्रों; सब बीस हज़ार अर्हत् भिक्षुओं के साथ राजगृह से निकल कर,

---

[1] शब्द अस्पष्ट है।

प्रति दिन योजन भर चलते थे। राजगृह से साठ योजन (दूर) कपिलवस्तु दो मास में पहुँचने की इच्छा से धीमी चारिका से चलते थे। स्थविर भी भगवान् के चल पड़ने की बात को राजा से कहने की इच्छा से आकाश मार्ग से जा राजा के निवास स्थान पर प्रकट हुए। राजा ने स्थविर को देख प्रसन्न-चित्त हो, (उन्हें) वहुमूल्य आसन पर बिठा, अपने लिए तैयार किये गये, नाना प्रकार के स्वादु भोजन से पात्र भर कर दिया। स्थविर ने उठ कर चलने का सा ढंग किया। "बैठ कर, भोजन करें" (राजा ने कहा) "महाराज! मैं भगवान् (=शास्ता) के पास जा कर भोजन करूँगा" (स्थविर ने उत्तर दिया)।

"शास्ता कहाँ हैं?"

"महाराज! बीस हज़ार भिक्षुओं सहित वह तुम्हारे देखने के लिए चल पड़े हैं।"

राजा ने प्रसन्न-चित्त हो कहा:—"आप इस भोजन को ग्रहण करें और जब तक मेरा पुत्र यहाँ नहीं पहुँचता, तब तक उसके लिए यहीं से भिक्षा (=पिण्ड-पात) ले जायें।" स्थविर ने स्वीकार किया। राजा ने स्थविर को (भोजन) परोस कर दिया, और (भिक्षा-पात्र) में सुगन्धित चूर्ण लगा, उसे उत्तम भोजन से भर 'इसे तथागत को दें' कह, पात्र स्थविर के हाथ में दिया। स्थविर ने सब के सामने ही, पात्र को आकाश में फेंक दिया; और अपने आप भी आकाश में उड़ भिक्षा (=पिण्डपात) लाकर भगवान् (=शास्ता) के हाथ में दी। भगवान् (=शास्ता) ने वह आहार ग्रहण किया। इस प्रकार स्थविर प्रति दिन (आहार) लाते थे।

यात्रा में भगवान् (शास्ता) ने राजा की ही भिक्षा (=पिण्डपात) ग्रहण की। स्थविर ने भी प्रतिदिन भोजन करने के बाद "भगवान्! आज इतना चले आये, भगवान्! आज इतना चले आये" (कह) भगवान् के दर्शन से पहले ही बुद्ध के गुणों की कथा से सारे राजपरिवार में बुद्ध (=शास्ता) के प्रति श्रद्धा पैदा कर दी। इसीलिए भगवान् ने 'भिक्षुओ! मेरे गृहस्थों का मन-प्रसन्न करने वाले (=कुलप्रसादक) शिष्य (=श्रावक) भिक्षुओं में काल-उदायी सर्वश्रेष्ठ है" (कह) उसे ऊँचा (=अग्र) स्थान दिया है।

शाक्य भी भगवान् के पहुँचने पर, 'अपनी जाति के (सर्व)श्रेष्ठ (पुरुष) के दर्शन की इच्छा से एकत्रित हुए; और 'अपनी सभा में' भगवान् के ठहराने

के लिए स्थान पर विचार किया। उन्होंने न्यग्रोध (नामक) शाक्य के आराम को रमणीय जान, वहाँ सब प्रकार से सफाई कराई। अगवानी के लिए पहले गन्ध, पुष्प हाथ में ले, सब अलङ्कारों से अलंकृत, नगर के छोटे छोटे लड़कों तथा लड़कियों को भेज फिर राजकुमारों और राजकुमारियों को भेजा। उनके बाद स्वयं गन्ध, पुष्प, चूर्ण आदि से भगवान् की पूजा करते, (उन्हें) न्यग्रोधाराम लिवा ले गये। वहाँ बीस हज़ार अर्हतों के साथ (जा कर) भगवान्, बिछे श्रेष्ठ बुद्ध के आसन पर बैठे। शाक्य अभिमानी स्वभाव के थे। उन्होंने 'सिद्धार्थ-कुमार हमसे छोटा है, हमारा कनिष्ठ है, हमारा भानजा है, हमारा पुत्र है, हमारा नाती है', सोच छोटे छोटे राजकुमारों को कहा—"तुम प्रणाम करो। हम तुम्हारे पीछे बैठेंगे।" उनके इस प्रकार (बिना प्रणाम किये ही) बैठे रहने पर, भगवान् ने उनके मन की बात जान बिचारा—ज्ञाति-सम्बन्धी मुझे प्रणाम नहीं कर रहे हैं। अच्छा तो मैं उनसे प्रणाम कराऊँगा" और अभिज्ञा के सहारे ध्याना-वस्थित हो, आकाश में चढ़, उनके सिर पर पैर की धूली बखेरते हुए से, गण्डम्ब वृक्ष के नीचे किये गये यमक नामक दिव्य-प्रदर्शन (यमक-प्रातिहार्य) जैसी प्रातिहार्य की।

राजा ने इस आश्चर्य को देख कर कहा—'भगवान्! मैं उत्पन्न होने के दिन, तुम्हें काल देवल की वन्दना के लिए ले गया था; उस समय (तुम्हारे) चरणों को उलट कर ब्राह्मण के सिर में लगे देख, मैंने तुम्हारी वन्दना की। वह मेरी प्रथम वन्दना (थी)। फिर खेत बोने के उत्सव के दिन, जामुन की छाया में सुन्दर शय्या पर बैठे रहने के समय, दिन ढल जाने पर भी जामुन के वृक्ष की छाया का बना रहना देख कर भी (मैंने तुम्हारे) चरणों में वन्दना की थी। वह मेरी दूसरी वन्दना (थी)। अब पहले कभी न देखी गई यह प्राति-हार्य, देख कर भी, मैं तुम्हारे चरणों की वन्दना करता हूँ। यह मेरी तीसरी वन्दना है। राजा के वन्दना करने पर, एक शाक्य भी ऐसी नहीं बचा, जो बिना वन्दना किये रहा हो। सभी ने वन्दना की। इस प्रकार भगवान् ज्ञाति-सम्बन्धियों से प्रणाम करवा, आकाश से उतर बिछे आसन पर बैठे। भगवान् के बैठने पर ज्ञाति-सम्बन्धियों का समूह अत्यन्त प्रसन्न (=शिखर-प्राप्त) हो सभी एकाग्र चित्त हो बैठे।

तब महामेघ ने कमल-वर्षा (=पुष्कर-वर्षा) आरम्भ की। ताम्बे के रंग

का पानी, नीचे, शब्द करता हुआ बहने लगा। भीगने की इच्छा वाले भीगते थे, जो नहीं भीगना चाहते थे, उनके शरीर पर बूँद मात्र भी न गिरती थी। यह देख सभी चकित हुए, और कहने लगे—अहो! आश्चर्य! अहो! अद्भुत!

बुद्ध ने कहा कि यहाँ केवल अभी मेरे वंश के समागम के समय ही वर्षा नहीं बरसी पहले भी वह बरसी है" और इस अर्थ को स्पष्ट करने के लिए, **महावेस्सन्तर-जातक**[1] कही। धर्म उपदेश सुन, सभी उठ, प्रणाम कर चले गये। न राजा ने, न राजा के महामात्य ने, और न दूसरे किसी ने भी कहा कि भगवान्! कल हमारी भिक्षा ग्रहण करें।

(१२) सम्बन्धियों से मिलन

अगले दिन बीस हजार भिक्षुओं सहित बुद्ध (=शास्ता) ने कपिलवस्तु में भिक्षाटन के लिए प्रवेश किया। (वहाँ) न किसी ने उन्हें भोजन के लिए निमन्त्रित ही किया, न किसी ने पात्र ही ग्रहण किया। भगवान् ने **इन्द्रकील**[2] पर खड़े हो सोचा—"पूर्व के बुद्धों ने (अपने) कुल के नगर में कैसे भिक्षाटन किया? क्या बीच के घरों को छोड़ कर (सिर्फ) बड़े बड़े आदमियों के ही घर गये, अथवा एक ओर से सब के घर?" फिर देखा कि एक बुद्ध ने भी बीच बीच में घर छोड़ कर भिक्षाटन नहीं किया है, (फिर) निश्चय किया—"मेरा भी (कुल) अब यही (बुद्धों का) कुल है, इसलिए मुझे अपना यह कुल धर्म ग्रहण करना चाहिए। ऐसा करने से भविष्य में मेरे शिष्य (=श्रावक) मेरा ही अनुकरण करते (हुए) भिक्षाचार के व्रत को पूरा करेंगे।" ऐसा (सोच), छोर के घर से ही, एक ओर से भिक्षाचार आरम्भ किया।

"आर्य सिद्धार्थकुमार भिक्षाचार कर रहे हैं" यह (सुन) लोग दुतल्ले, तितल्ले प्रासादों पर से खिड़कियाँ खोल देखने लगे।

राहुल-माता देवी ने भी—'आर्यपुत्र इसी नगर में राजाओं के बड़े भारी ठाट से सोने की पालकी आदि में (चढ़कर) घूमे, और आज (इसी नगर में)

[1] जातक (५४७)
[2] किले के द्वार के बाहर खड़ा खम्भा।

वह शिर-दाढ़ी मुंडा, काषाय वस्त्र पहिन, कपाल (=खपड़ा) हाथ में ले, भिक्षाचार कर रहे हैं ! क्या (यह) शोभा देता है' कह, खिड़की खोल कर देखा कि परम वैराग्य से उज्ज्वल (बुद्ध का) शरीर नगर की सड़कों को प्रभासित कर रहा है। चारों ओर व्याम भर प्रभा वाली, बत्तीस महापुरुष लक्षणों और अस्सी अनुव्यञ्जनों से अलंकृत, अनुपम बुद्ध शोभा से शोभायमान भगवान् को देखा और (उसका) शिर से पाँव तक (इस प्रकार) आठ नरसिंह गाथाओं में वर्णन किया—

"चिकने, काले, कोमल, घुंघरवाले केश हैं; सूर्य्य सदृश निर्मल तलवाला ललाट है, सुन्दर, ऊँची, कोमल, लम्बी नासिका है; नरसिंह अपने रश्मि-जाल को फैला रहे हैं"

इत्यादि फिर (जा कर) राजा से कहा—"आपका पुत्र भिक्षाचार कर रहा है।"

राजा घबराया हुआ, हाथ से धोती सँभालते, जल्दी जल्दी निकल कर, वेग से जा, भगवान् के सामने खड़ा हो बोला—"भन्ते ! हमें क्यों लजवाते हो ? किस लिए भिक्षाटन करते हो ? क्या यह प्रगट करते हो कि इतने भिक्षुओं के लिए (हमारे यहाँ) भोजन नहीं मिलता ?"

"महाराज ! हमारे वंश का यही आचार है।"

"भन्ते ! निश्चय से हम लोगों का वंश **महा सम्मत** (=मनु) का क्षत्रिय वंश है ? इस वंश में एक क्षत्रिय भी तो कभी भिक्षाचारी नहीं हुआ।"

"महाराज ! वह राज-वंश तो आपका वंश है। हमारा वंश तो दीपङ्कर-कौण्डिन्य......काश्यप (आदि) का बुद्ध-वंश है। और दूसरे अनेक सहस्र बुद्ध भिक्षाचारी (रहे हैं); भिक्षाचार से ही जीविका चलाते रहे हैं।" उसी समय सड़क में खड़े ही खड़े यह गाथा कही :—

"उद्योगी आलसी न बने, सुचरित धर्म का आचरण करे, धर्माचारी (पुरुष इस लोक में भी और परलोक में भी सुख-पूर्वक सोता है।"

गाथा की समाप्ति पर राजा स्रोतापत्ति-फल में स्थित हुआ। (फिर) :—

"सुचरित कर्म का आचरण करे, दुश्चरित कर्म (=धर्म) का आचरण न करे। धर्मचारी (पुरुष) इस लोक और परलोक में सुख पूर्वक सोता है।" इस गाथा को सुन कर राजा **सकृदागामी** फल में प्रतिष्ठित हुआ। **महाधम्मपाल**

जातक[1] को सुन कर अनागामी फल में प्रतिष्ठित हुआ। अन्त में मृत्यु के समय, श्वेत छत्र के नीचे, सुन्दर शय्या पर लेटे ही लेटे अर्हत्पद को प्राप्त हुआ। राजा को अरण्यवास कर योगाभ्यास आदि प्रयत्न नहीं करना पड़ा। (उसने) स्रोत-आपत्ति-फल का साक्षात्कार कर, भगवान् का पात्र ले, मण्डली सहित भगवान् को महल पर ले जाकर, उत्तम खाद्य भोज्य परोसे। भोजन के बाद एक राहुल-माता को छोड़, शेष सभी रनिवास ने आ आ कर भगवान् की वन्दना की। वह परिजन द्वारा—'जाओ, आर्यपुत्र की वन्दना करो' कहने पर 'यदि मेरे में गुण है, तो आर्यपुत्र स्वयं मेरे पास आयेंगे; आने पर ही वन्दना करूँगी' कह न गई।

भगवान् राजा को पात्र दे, दो प्रधान शिष्यों (=सारिपुत्र, मौद्गल्यायन) के साथ, राजकुमारी के शयनागार (=स्त्री गर्भ) में जा "राजकन्या को यथारुचि वन्दना करने देना, कुछ न बोलना" कह बिछे आसन पर बैठे। उसने जल्दी से आ पैर पकड़ कर, शिर को पैरों पर रख, अपनी इच्छानुसार वन्दना की। राजा ने भगवान् के प्रति राजकन्या के स्नेह-सत्कार आदि गुण को कहा—"भन्ते! मेरी बेटी आपके काषाय-वस्त्र पहिनने को सुन कर, तभी से काषाय-धारिणी हो गई। आपके एक बार भोजन करने को सुन, एकाहारिणी हो गई। आपके ऊँचे पलङ्ग के छोड़ने की बात सुन, तख्ते पर सोने लगी। आपके माला, गन्ध आदि से विरत होने की बात सुन, माला गन्ध आदि से विरत हो गई। अपने पीहर वालों के 'हम तुम्हारी सेवा सुश्रूषा करेंगे' ऐसा पत्र भेजने पर एक सम्बन्धी को भी नहीं देखती! भगवान्! मेरी बेटी ऐसी गुणवती है।"

"महाराज! इसमें (कुछ) आश्चर्य नहीं, इस समय तो आपकी सुरक्षा में रह, परिपक्व ज्ञान के साथ राजकन्या ने अपनी रक्षा की है। पहले तो बिना किसी रक्षा के, अपरिपक्व ज्ञान रखते भी, पर्वत के नीचे विचरते समय अपनी रक्षा की थी" कह 'चन्द किन्नर जातक'[2] सुना, बुद्ध आसन से उठ कर चले गये।

दूसरे दिन (नन्द) राजकुमार का अभिषेक, गृहप्रवेश, विवाह—ये तीन मंगल-उत्सव थे। उस दिन, भगवान् नन्द के घर जाकर, उसे प्रव्रजित करने

[1] जातक (४४७)। [2] जातक (४८५)।

की इच्छा से नन्दकुमार के हाथ में पात्र दे मंगल कह, आसन से उठ कर चल पड़े। (नन्द की नव वधू) जनपद-कल्याणी ने कुमार को पीछे जाते देखा पर, "आर्य पुत्र ! जल्दी आइयो" कह गर्दन बढ़ा कर देखने लगी। राजकुमार भी (संकोचवश) भगवान् को 'पात्र ग्रहण कीजिये' न कह, विहार (तक) चला गया। उसकी (अपनी) इच्छा न रहने पर भी भगवान् ने उसे प्रव्रजित किया। इस प्रकार भगवान् ने कपिलपुर जाने के तीसरे दिन नन्द[1] को साधु बनाया।

(१३) पुत्र को दाय-भाग

सातवें दिन राहुल-माता ने (राहुल) कुमार को अलंकृत कर, भगवान् के पास यह कह कर भेजा, "तात ! देख ! बीस हज़ार साधुओं श्रमणों के मध्य में (जो वह) सुनहले उत्तम रूप वाले साधु (=श्रमण) हैं वही तेरे पिता हैं। उनके पास बहुत से खजाने थे; जो उनके (घर से) निकलने के बाद से नहीं दिखाई देते। जा, उनसे वरासत माँग। (उनसे कह) "तात ! मैं (राज-) कुमार हूँ। अभिषेक प्राप्त करके चक्रवर्ती (-राजा) बनना चाहता हूँ। मुझे धन चाहिए। धन दें। पुत्र पिता की सम्पत्ति का स्वामी होता है।" कुमार भगवान् के पास जा, पिता का स्नेह पा प्रसन्न-चित्त हो, "श्रमण ! तेरी छाया सुखमय है" कह और भी अपने अनुकूल (कुछ कुछ) कहता खड़ा रहा।

भगवान् भोजन के बाद (दान का) महत्त्व कह आसन से उठ कर चले गये ! कुमार भी, 'श्रमण ! मुझे दायज दें। श्रमण ! मुझे दायज दें।' कहता भगवान् के पीछे पीछे हो लिया। भगवान् ने कुमार को नहीं लौटाया। परिजन भी उसे भगवान् के साथ जाने से न रोक सके। इस प्रकार वह भगवान् के साथ आराम तक चला गया। भगवान् ने सोचा—"यह पिता के पास के जिस धन को माँगता है, वह (धन) सांसारिक है, नाशवान है। क्यों न मैं इसे बोधिमण्ड में मिला अपना सात प्रकार का आर्य-धन[2] दूँ। इसे अलौकिक वरासत का स्वामी बनाऊँ (ऐसा सोच) आयुष्मान सारिपुत्र को कहा—"सारि-

[1] सिद्धार्थ की मौसी और सौतेली माँ महागोतमी प्रजापती का पुत्र।

[2] श्रद्धा, शील (=सदाचार) लज्जा, निन्दा-भय, (बहु-) श्रुत होना, त्याग तथा प्रज्ञा।

पुत्र! तो लो राहुल-कुमार को साधु बनाओ।" राहुल-कुमार के साधु होने पर राजा को अत्यन्त दुःख हुआ। उस दुःख को न सह सकने के कारण राजा ने (उसे) भगवान से निवेदन कर, वर माँगा—"अच्छा भन्ते! आर्य (भिक्षु लोग) माता पिता की आज्ञा के बिना (उनके) पुत्र को प्रव्रजित न करें" भगवान ने राजा को वह वर दिया।

फिर एक दिन (भगवान्) राज-महल में प्रातःकाल के भोजन के लिए गये। (भोजन) कर चुकने पर, एक ओर बैठे राजा ने कहा—"भन्ते! आपके दुष्कर तपस्या करने के समय, एक देवता ने मेरे पास आ कर कहा कि तुम्हारा पुत्र मर गया। उसके वचन पर न विश्वास करके उसके वचन का खण्डन करते हुए मैंने कहा' "मेरा पुत्र बुद्ध-पद प्राप्ति किये बिना मर नहीं सकता"।

ऐसा कहने पर, भगवान् ने कहा, "जब तुमने उस समय में, हड्डियाँ दिखा कर, 'तुम्हारा पुत्र मर गया' कहने पर विश्वास नहीं किया, तो अब क्या विश्वास करोगे?" इसके अर्थ को स्पष्ट करने के लिए (भगवान् ने) **महाधम्मपाल जातक**[1] कहा। कथा की समाप्ति पर राजा अनागमिफल में स्थित हुआ।

(१४) अनाथपिण्डिक का दान

इस प्रकार पिता को तीन फलों में स्थापित कर, भिक्षुसंघ सहित भगवान् (कपिलवस्तु से चल कर) फिर एक दिन राजगृह जा सीतवन में ठहरे। (उस) समय, अनाथपिण्डिक गृहपति पाँच सौ गाड़ियों में माल भर, राजगृह जा अपने प्रिय मित्र सेठ के घर ठहरा था। वहाँ उसने भगवान् बुद्ध के उत्पन्न होने की बात सुनी। फिर अत्यन्त प्रातःकाल (उठा और) देवताओं के प्रताप से खुले द्वार से बुद्ध के पास पहुँचा। धर्मोपदेश सुन, स्रोतापत्ति-फल में प्रतिष्ठित हो, दूसरे दिन भिक्षु-संघ सहित बुद्ध को महादान दे, श्रावस्ती आने के लिए भगवान् (=शास्ता) से वचन लिया।

(अनाथपिण्डिक ने) रास्ते में पैंतालीस योजन तक लाख लाख खर्च करके, योजन योजन पर विहार बनवाये। अट्ठारह करोड़ अशर्फी (=सुवर्ण) बिछा कर जेतवन मोल ले, उसने मकान बनवाना आरम्भ किया। (वहाँ) बीच में

---

[1] जातक (४४७)।

दश-बल बुद्ध की गन्धकुटी बनवाई। उसके इर्द गिर्द अस्सी महास्थविरों के पृथक् पृथक् निवास, एक दीवार-दो दीवार-वाली, हंस के आकार की लम्बी शालायें, मण्डप तथा दूसरे बाकी शयनासन, पुष्करिणियाँ, टहलान (=चंक्रमण), रात्रि के स्थान और दिन के स्थान बनवाये। (इस प्रकार) अट्ठारह करोड़ के खर्च[१] से रमणीय स्थान में सुन्दर विहार बनवा, भगवान् के लिवा लाने के लिए दूत भेजा। भगवान् (=शास्ता) दूत का सन्देश सुन, महान् भिक्षु-संघ के साथ राजगृह से निकल क्रमशः श्रावस्ती नगर में पहुँचे।

महासेठ भी विहार-पूजा की तैयारी (पहले ही से) कर चुका था। उसने तथागत के जेतवन में प्रवेश करने के दिन, सब अलंकारों से अलंकृत पाँच सौ कुमारों के साथ, सब अलंकारों से प्रतिमण्डित (अपने) पुत्र को आगे भेजा। अपने साथियों सहित वह, पाँच रंग की चमकती हुई, पाँच सौ पताकायें ले कर बुद्ध के आगे आगे चला। उसके पीछे महासुभद्रा और चूळसुभद्रा (नाम की) सेठ की दो बेटियाँ, पाँच सौ कुमारियों के साथ, पूर्ण-घट ले कर निकलीं। उनके पीछे सब अलंकारों से अलंकृत सेठ की देवी (=भार्या) पाँच सौ स्त्रियों के साथ, भरा थाल लेकर निकली। उसके बाद सफेद वस्त्र धारण किये स्यंव सेठ वैसे ही श्वेत वस्त्र धारण किये अन्य पाँच सौ सेठों को साथ ले, भगवान् की अगवानी के लिए चला।

यह उपासक मण्डली आगे जा रही थी। (पीछे पीछे) भगवान् महाभिक्षु-संघ से घिरे हुए, जेतवन को अपनी सुनहरी शरीर-प्रभा से रञ्जित करते हुए, अनन्त बुद्ध-लीला और अतुलनीय बुद्ध शोभा के साथ जेतवन में प्रविष्ट हुए। तव अनाथपिण्डिक ने उन्हें पूछा—"भन्ते! मैं इस विहार के विषय में कैसे क्या करूँ?"

"गृहपति! यह विहार आये हुए तथा न आये हुए भिक्षु-संघ को दान कर दे।"

'अच्छा भन्ते!' कह महासेठ ने सोने की झारी ले, बुद्ध के हाथ पर (दान का) जल डाल, "मैं यह जेतवन विहार सव दिशा और सब काल (आगत अना-

[१] श्रेष्ठी नगर का अवैतनिक पदाधिकारी होता था। वह धनिक व्यापारियों में से बनाया जाता था।

गत चतुर्दिश) के बुद्ध-प्रमुख भिक्षुसंघ को देता हूँ कह प्रदान किया। शास्ता ने विहार को स्वीकार कर दान की प्रशंसा करते कहा :—

"यह गर्मी सर्दी से, हिंस्र जन्तुओं से, रेंगने वाले (=सर्पादि) जानवरों से, मच्छरों से, बूँदा बाँदी से, वर्षा से और घोर हवा-धूप से रक्षा करता है। यह आश्रय के लिए, सुख के लिए, ध्यान के लिए और योगाभ्यास के लिए (उपयोगी है) इसीलिए बुद्ध ने विहार-दान को श्रेष्ठ-दान (=अग्रदान) कह, उसकी प्रशंसा की है। अपनी भलाई चाहने वाले पुरुष को चाहिए कि सुन्दर विहार बनवाये और उनमें बहु-श्रुतों को निवास कराये और प्रसन्न-चित्त उन सरल चित्त वालों को, अन्न-पान वस्त्र तथा निवास (-शयनासन) प्रदान करे। तब (ऐसा करने पर) वे सब दुःखों के नाश करने वाले, धर्म का उपदेश करते हैं, जिसे जान कर वह मलरहित (=अनाश्रव) परिनिर्वाण को प्राप्त होगा"

इस प्रकार विहार-दान का माहात्म्य कहा।

दूसरे दिन से अनाथपिण्डिक ने विहार-पूजोत्सव आरम्भ किया। विशाखा का प्रासाद का पूजोत्सव चार महीने में समाप्त हुआ। लेकिन अनाथपिण्डिक का विहार-पूजोत्सव नौ महीनों में समाप्त हुआ था। विहार पूजोत्सव में भी अठारह करोड़ ही खर्च हुए। इस प्रकार (उसने) उस विहार ही में चौवन करोड़ धन का दान किया।

पूर्व में भगवान **विपस्सी** के समय, **पुन्नवसुमित्र** नामक सेठ ने सोने की ईंटों को सिरे से सिरे लगा कर, (उससे भूमि) खरीद कर, उसी स्थान में योजन भर का संघाराम बनवाया था। भगवान् **शिखि** के समय **श्रीवर्द्ध** नामक सेठ ने सोने के फलकों को फैला कर (भूमि) खरीद कर, उसी स्थान पर तीन गव्यूति (६ मील) भर का संघाराम बनवाया था। भगवान् **विश्वभू** (=वेस्सभू) के समय **स्वस्ति** (=सोत्थि) नामक सेठ ने सोने के हस्ति-पदों के फैलाव से खरीद कर, उसी स्थान पर आधे-योजन भर का संघाराम बनवाया था। भगवान् **ककुसन्ध** के समय **अच्युत** नामक सेठ ने सोने की ईंटों के फैलाव से खरीद कर, उसी स्थान पर गव्यूति (२ मील) भर का संघाराम बनवाया। भगवान् **को-नागमन** के समय **उग्र** नामक सेठ ने सोने के कच्छुओं के फैलाव से खरीद कर, उसी स्थान पर, आधे गव्यूति (एक मील) का संघाराम बनवाया। भगवान् **काश्यप** के समय में **सुमङ्गल** नामक सेठ ने सोने की ईंटों के फैलाव से खरीद

कर, उसी स्थान पर सोलह करीष तक का संघाराम बनवाया। लेकिन हमारे भगवान् के समय **अनाथपिण्डक** सेठ ने करोड़ों कार्षापणों के फैलाव से खरीद कर, उसी स्थान पर आठ करीष[1] भर में संघाराम बनवाया। यह स्थान सभी बुद्धों से अपरित्यक्त स्थान है। इस प्रकार बोधिमण्ड में सर्वज्ञता-प्राप्ति से महापरिनिर्वाण-मञ्च तक, जिस जिस स्थान पर भगवान् रहे, यह सब 'सन्तिके-निदान' है।

इसीके सम्बन्ध से (आगे) सब जातकों का वर्णन करेंगे।

जातकट्ठकथा की निदान-कथा समाप्त

---

[1] एक करीष=४ अम्मण। चार अम्मण बीज बोने की जगह।

पहला परिच्छेद

१. अपण्णक वर्ग

१. अपण्णक जातक

अप्पणक (इत्यादि)—यह धर्म-कथा भगवान् ने **श्रावस्ती** के **जेतवन** महा-विहार में रहते समय कही। किस के कारण यह कथा कही गई? एक सेठ के पाँच सौ तैर्थिक मित्रों के कारण।

क. वर्तमान कथा

एक दिन **अनाथपिण्डिक** सेठ, अपने पाँच सौ **अन्य-तीर्थिक**[1] मित्रों को साथ ले, बहुत सा गन्ध, माला, लेप, तेल, मधु, मक्खन, वस्त्र-आच्छादन आदि लिवाकर, जेतवन गया। (वहाँ) भगवान् की वन्दना कर, माला आदि से पूजा कर, भिक्षु-संघ को भेषज तथा वस्त्र आदि प्रदान कर, बैठने के सम्बन्ध के **छः दोषों**[2] को छोड़, एक ओर बैठ गया। वे दूसरे मत के शिष्य भी तथागत की वन्दना कर, शास्ता के पूर्ण चन्द्र की शोभा से शोभित मुख, लक्षण और अनुलक्षणों (अनुव्यञ्जनों) से मण्डित, तथा चारों ओर चार हाथ (=व्याम) की दूरी तक प्रभा से प्रकाशित सुन्दर शरीर (=ब्रह्म काय)—जिससे समय समय पर जोड़ा जोड़ा होकर घनी बुद्ध-किरणें निकलती थीं—को देखते, **अनाथपिण्डिक** के समीप ही बैठ गये।

[1] किसी अन्य पन्थ के अनुयायी।

[2] अत्यन्त समीप, अत्यन्त दूर जिधर से हवा आती हो उधर, ऊँचे स्थान पर, बिल्कुल सामने तथा बिल्कुल पीछे हो कर बैठना—ये बैठने के छः दोष हैं।

तब बुद्ध ने उन्हें, मनःशिलातल पर सिंह-नाद करते तरुण सिंह की तरह, या वर्षा के गरजते मेघ की तरह, या आकाश-गङ्गा के अवतरण की तरह, या रत्नों की माला गूंधते हुए की तरह, आठ बातों से युक्त, श्रवण-योग्य, कमनीय और उत्तम स्वर से नाना प्रकार की विचित्र धर्म-कथायें कहीं। उन्होंने बुद्ध के उपदेश सुन, प्रसन्न चित्त हो, उठ कर बुद्ध की वन्दना की; और दूसरे मतों की शरण छोड़ बुद्ध की शरण ग्रहण की। उस दिन से आरम्भ करके, वे नित्य-प्रति, **अनाथपिण्डिक** के साथ, गन्ध माला आदि हाथ में ले, विहार जा कर धर्म सुनते, दान देते, सदाचार (=शील) रखते तथा व्रत (=उपोसथ-कर्म) करते थे।

दूसरे दिन भगवान् **श्रावस्ती** से **राजगृह** चले गये। बुद्ध (=तथागत) के जाने पर, वे अन्य-तीर्थिक श्रावक तथागत की शरण छोड़, फिर दूसरे मतों की शरण ग्रहण कर, अपने पहले स्थान पर ही चले गये। भगवान् सात आठ मास बिता कर फिर जेतवन लौट आये। अनाथपिण्डिक फिर उन्हें (साथ) ले जा कर, बुद्ध के पास जा गन्ध आदि से पूजा तथा प्रणाम कर, एक ओर बैठा। वे (तैर्थिक) भी भगवान् की वन्दना कर, एक ओर बैठ गये। तब (अनाथपिण्डिक ने) बुद्ध (=तथागत), से, (उनके) चारिका पर चले जाने के समय, उन (तैर्थिकों) के (तथागत की) शरण छोड़, फिर दूसरे मतों की शरण ग्रहण करके, अपने पहले स्थान पर चले जाने की बात कही।

भगवान् ने अनन्त (=अप्रमाण) करोड़ कल्पों तक निरन्तर वाणी सम्बन्धी सदाचार को पालन करने के प्रताप से, दिव्य सुगन्धों से सुगन्धित, नाना प्रकार की सुगन्धियों से भरे रत्न-करण्ड को खोलते हुए की तरह, अपने मुख-पद्म को खोल कर, मधुर स्वर से पूछा—"उपासको! क्या तुम सचमुच **तीन-शरणों**[1] को छोड़ कर दूसरे मत की शरण चले गये थे?"

उन्होंने छिपा न सकने के कारण कहा—"भगवान्! सच (है)।"

तब बुद्ध ने कहा—'उपासको! नीचे **अवीचि** नामक नरक से ऊपर **भवाग्र** नामक सर्वोपरि देव-लोक तक जितनी अप्रमाण लोक-धातुयें हैं, उनमें (कहीं

[1] बुद्ध, धर्म, और संघ की शरण।

भी) सदाचार (=शील) आदि गुणों में बुद्ध के समान भी कोई नहीं, बढ़ कर तो कहाँ से होगा?' 'भिक्षुओ! (पैर) या बे पैर वाले जितने भी प्राणी हैं बुद्ध (=तथागत) उनमें सर्वश्रेष्ठ कहे जाते हैं[1]। 'इस लोक या पर-लोक में जितने भी धन हैं......तथागत......', 'शुद्ध-चित्तों में श्रेष्ठ (=अग्र) ......' इत्यादि सूत्रों में प्रकाशित तीनों रत्न (=बुद्ध, धर्म और संघ) के गुण प्रकाशित किये। "इस प्रकार के गुणों से युक्त तीनों रत्नों की शरण जाने वाले उपासक वा उपासिका नरक आदि में पैदा नहीं होते। (वे) नरक के जन्म से बच कर, देव-लोक में उत्पन्न हो, महासम्पत्ति भोगते हैं। इसलिए तुम लोगों ने इस प्रकार की शरण को छोड़ कर, दूसरे मतों की शरण ग्रहण करके, अनुचित किया है।"

त्रिरत्न को मोक्ष(-दायक) और उत्तम मान कर (उनकी) शरण जाने वालों का नरक आदि में जन्म न लेना—यह दिखाने के लिए, यह सूत्र[2] उद्धृत करना चाहिए :—

"जो बुद्ध की शरण गये हैं, वे नरक नहीं जायेंगे। मनुष्य-देह को छोड़ कर, वे देव-लोक में पहुँचेंगे॥"

"जो धर्म की शरण गये हैं, वे नरक नहीं जायेंगे। मनुष्य-देह को छोड़ कर, वह देव-लोक में पहुँचेंगे॥"

"जो संघ की शरण गये हैं, वह नरक नहीं जायेंगे। मनुष्य-लोक को छोड़ कर, वे देव-लोक में पहुँचेंगे।"

भयभीत हो मनुष्य पर्वत, वन, आराम (=उद्यान), वृक्ष, चैत्य आदि, अनेक स्थानों (को देवता मान उन)की शरण लेते हैं। किन्तु ये शरण मङ्गल दायक नहीं, ये शरण उत्तम नहीं, क्योंकि इन शरणों को ग्रहण करने से, सब दुःखों से छुटकारा नहीं मिलता।

जो बुद्धधर्म तथा संघ की शरण जाते हैं; जिन्होंने चारों आर्य सत्यों को भली प्रकार प्रज्ञा से देखा है। (वे चार आर्य सत्य हैं—) (१) दुःख, (२)

[1] इतिवुत्तक।
[2] संयुक्त निकाय, महासमय सूत्र।

दुःख की उत्पत्ति, (३) दुःख का नाश और (४) दुःखनाशक आर्य अष्टांगिक मार्ग। ये हैं मङ्गलप्रद शरण, ये हैं उत्तम शरण, इन शरणों को पा कर (मनुष्य) सारे दुःखों से छूट जाता है ॥"[1]

शास्ता ने केवल उन्हें इतना ही धर्मोपदेश नहीं किया; बल्कि यह भी कहा—"उपासको! **बुद्धानुस्मृति कर्मस्थान** (=योगाभ्यास के लिए मन का विषय), **धर्मानुस्मृति कर्मस्थान, संघानुस्मृति कर्मस्थान, श्रोतआपत्ति मार्ग, श्रोतआपत्ति फल, सकृदागामी मार्ग, सकृदागामी फल, अनागामी मार्ग, अनागामी फल, अर्हत्-मार्ग तथा अर्हत् फल,** का दायक होता है। (और उस) क्रम से भी धर्मोपदेश कर (अन्त में कहा—) "इस प्रकार की शरण छोड़ कर तुमने अनुचित किया।"

बुद्धानुस्मृति श्रोतापत्ति मार्ग आदि को देते हैं; यह "भिक्षुओ! एक धर्म (=बात) के अभ्यास करने से, बढ़ती करने से, सम्पूर्ण निर्वेद=विराग, निरोध, उपशमन, अभिज्ञा, सम्बोधि (=परमज्ञान) तथा निर्वाण की प्राप्ति होती है। कौन सा है वह एक धर्म? बुद्धानुस्मृति[2]" आदि सूत्रों से प्रतिपादित करना चाहिए। इस प्रकार भगवान् ने नाना प्रकार से उपासकों को उपदेश दे कहा—"उपासको! पूर्व (काल) में भी मनुष्यों ने (एक बार) तर्क-वितर्क से अयोग्य शरण को शरण समझ ग्रहण किया, और भूतों (=अमनुष्यों) वाले मरुभूमि (=कान्तार) में जा भूतों (=यक्षों) के ग्रास हो बर्बाद हुए। लेकिन उसी मरुभूमि में निर्दोष (=अपण्णक) शरण को अनुकूलता के साथ सम्पूर्ण रूप से ग्रहण करने वाले मनुष्य कल्याण (=स्वस्तीभाव) को प्राप्त हुए।" यह कह (तथागत) चुप हो गये।

तब **अनाथपिण्डिक** गृहपति आसन से उठ, भगवान् की वन्दना तथा प्रशंसा कर, (दोनों) हाथों को जोड़, सिर पर रख, इस प्रकार बोला—"भन्ते! इन उपासकों का इस समय उत्तम शरण को छोड़ वितर्क के पीछे चलना तो हमें मालूम है; लेकिन पूर्व समय में भूतों वाली मरुभूमि में वितर्क के पीछे चलने

[1] **धम्मपद, बुद्धवग्ग।**

[2] **अंगुत्तर निकाय, एकक निपात।**

वालों का बर्बाद होना, और निर्दोष-गहनी (=अपण्णक-ग्राह) ग्रहण करने वालों का कल्याण प्राप्त करना—यह (बात) हमें मालूम नहीं। वह आपको ही मालूम है। भगवान्! अच्छा हो, यदि आप हमें इस बात को आकाश में उदय हुए पूर्ण चन्द्रमा की भाँति प्रकट करें।"

तब भगवान् ने 'गृहपति! मैंने अनन्त (=अप्रमाण) समय तक दस पारमिताओं को पूरा करके, लोगों के संशय निवारण के लिए, बुद्ध (=सर्वज्ञता) का ज्ञान प्राप्त किया है। सोने के पात्र (=नालिका) में सिंह के तैल डालने की भाँति अच्छी तरह ध्यान देकर सुनो' कह, सेठ को सचेत कर, बादलों को फाड़ कर निकलते चन्द्रमा की तरह, पूर्व जन्म की छिपी बात को प्रकट किया :—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में **काशी** देश के **बनारस** (=बाराणसी) नगर में **ब्रह्मदत्त**[1] नामक राजा राज्य करता था। उस समय बोधिसत्त्व ने (एक) बंजारे (=**सत्थवाह**) के घर में जन्म ग्रहण किया था। क्रमशः सयाने हो, वह पाँच सौ गाड़ियाँ ले, व्यापार करते हुए विचरते थे। वह कभी **पूर्व-देश** से **अपरान्त** देश जाते थे, कभी अपरान्त से पूर्व।

बनारस ही में (एक) और भी बंजारे का पुत्र था, लेकिन वह मूर्ख, जड़ और भोंदू था। उस समय बोधिसत्त्व ने बनारस से बहुत सा मूल्यवान् सौदा पाँच सौ गाड़ियों पर लाद, चलने की तैयारी की थी। उस मूर्ख बंजारे के पुत्र ने उसी प्रकार, पाँच सौ गाड़ियाँ लाद, चलने की तैयारी की थी। बोधिसत्त्व ने सोचा यदि यह मूर्ख मेरे साथ साथ जायगा तो एक ही रास्ते से एक हज़ार गाड़ियों के जाने पर रास्ता काफी न होगा, आदमियों के लिए लकड़ी-पानी तथा बैलों के लिए घास-चारा मिलना कठिन हो जायगा। इसलिए या तो उसे आगे जाना चाहिये या मुझे।

तब उस आदमी को बुला, यह बात कह कर पूछा :—हम दोनों एक साथ इकट्ठे नहीं जा सकते तुम आगे जाओगे या पीछे?

[1] जातकों में काशी के राजा ब्रह्मदत्त का बहुत उल्लेख है।

उसने सोचा 'आगे जाने में मुझे बहुत लाभ है। बिना बिगाड़े (=अभिन्न) रास्ते से जाऊँगा, बैल अछूते तृण खायेंगे, मनुष्यों को तेमन बनाने के लिए अछूते पत्ते मिलेंगे, शान्त (निर्मल) पानी प्राप्त होगा; और मन माने दाम पर सौदा बेचूँगा।' (यह सोच कर) उसने कहा :—"सौम्य! मैं ही आगे जाऊँगा।'

बोधिसत्त्व ने पीछे जाने में बहुत लाभ देखे। उन्होंने सोचा :—'यह आगे आगे जा कर विषम स्थानों को सम करेगा, मैं उसके गये रास्ते से चलूँगा। आगे जाने वाले बैल पकी कड़ी घास खा लेंगे; इस प्रकार मेरे बैल नये मधुर तृणों को खायेंगे। पत्ते तोड़ लिये गये स्थानों पर, नये उत्पन्न पत्ते, साग भाजी के लिए मधुर होंगे। यह लोग जहाँ पानी नहीं है, ऐसे स्थानों को खोद कर पानी निकालेंगे, सो दूसरों के खोदे हुए कुओं (गढ़ों) से हम पानी पीयेंगे। (वस्तुओं का) मूल्य निश्चित करना वैसा ही है जैसा मनुष्यों की जान लेना होता है। मैं पीछे जा कर इनके निश्चित किये गये मूल्य से सौदा बेचूँगा।" इतने लाभ देख कर उन्होंने कहा :—सौम्य! तुम आगे जाओ।"

"अच्छा! सौम्य!" कह, वह मूर्ख बंजारा गाड़ियों को जोत (नगर से) निकला। वह क्रमशः मनुष्यों की वस्तियाँ पार कर कान्तार (=मरुभूमि) के प्रवेश-स्थान पर पहुँचा।

कान्तार पाँच प्रकार के होते हैं :—"चोरों का कान्तार, व्याल (=हिंसक जन्तुओं) का कान्तार, भूतों का कान्तार, निर्जल (=निरुदक) और अल्प-भक्ष कान्तार।"

जिस मार्ग पर चोरों का दखल हो, वह चोर-कान्तार (कहा जाता है)। सिंह आदि व्यालों से अधिकृत मार्ग व्याल-कान्तार; जहाँ स्नान करने वा पीने के लिए पानी न मिले वह निरुदक कान्तार; भूतों (=अमनुष्यों) वाला मार्ग अमनुष्य कान्तार, और खाने पीने के लायक कंद मूल आदि से शून्य मार्ग अल्प-भक्ष कान्तार। इन पाँच प्रकार के कान्तारों में से वह कान्तार निरुदक-कान्तार तथा अमनुष्य-कान्तार था। इसलिए यह बंजारे का लड़का गाड़ियों में बड़े बड़े मटके रखवा, (उन्हें) पानी से भरवा कर (उस) साठ योजन के कान्तार में चला।

कान्तार के बीच में पहुँचने पर, कान्तार में रहने वाले दैत्य ने सोचा कि

यदि मैं इनके साथ के पानी को फेंकवा दूँ, तो (इनके) दुर्बल हो जाने पर मैं इन सब को खा सकूँगा। (यह सोच) उसने बिल्कुल सफेद रंग के तरुण बैलों को मनोरम रथ (=यान) में जुतवाया, धनुष-तरकस-ढाल (आदि) हथियार (=आयुध) हाथ में लिये। फिर नीले और सफेद कमलों (की माला को) धारण कर, गीले केश, गीले वस्त्र, दस बारह दैत्यों को साथ ले एक बड़े राजा (=ईश्वर पुरुष) की तरह उस रथ में बैठ कीचड़ में डूबे हुए पहियों के साथ रास्ते पर हो लिया। उसके आगे पीछे चलने वाले, उसके सेवक (=परिचारक) भी, भीगे केश, भीगे वस्त्र, नीले सफेद कमलों की मालायें धारण किये हुए, लाल सफेद कमलों के गुच्छे लिये, पानी तथा कीचड़ की बूँदें टपकाते हुए, और भिस की जड़ें खाते हुए (साथ) चले। जब सामने की हवा चलती थी, तो बंजारा रथ में बैठ, नौकरों (=परिचारकों) के साथ धूली को हटाते हुए आगे आगे चलता था; जब पीछे की हवा चलती थी, तब उसी प्रकार पीछे पीछे चलता था। उस समय तो सामने की हवा थी। इसलिए बंजारा आगे आगे जा रहा था।

दैत्य ने उस बंजारे को आता देख, अपने रथ को रास्ते से एक ओर कर के पूछा—कहाँ जाते हैं? (फिर) कुशल-क्षेम की बातचीत की।

बंजारे ने भी अपने रथ को रास्ते से एक ओर हटा, (अन्य) गाड़ियों को जाने का रास्ता दे, एक ओर खड़े खड़े उस दैत्य से कहा—"जी! हम बनारस से आते हैं" और पूछा—"यह जो आप उत्पल-कुमुद धारण किये, पद्म-पुण्डरीक हाथ में लिये, कीचड़ से सने और पानी की बूँदें चुवाते और भिस की जड़ें खाते आ रहे हैं; सो क्या आप लोगों के आने के रास्ते में वर्षा हो रही है, (वहाँ) उत्पल आदि से ढके सरोवर हैं?"

उसकी बात सुन कर दैत्य बोला—'मित्र! यह क्या कहते हो? सामने यह जो हरे रंग की बन-पाँती दिखाई देती है, उससे आगे के सारे जंगल में मूसलाधार वर्षा हो रही है। पहाड़ की दरारें भरी हुई हैं। जगह जगह पर पद्म आदि से पूर्ण जलाशय हैं।" फिर आगे पीछे जाती गाड़ियों की ओर, इशारा करके पूछा—"यह गाड़ियाँ ले कर कहाँ जा रहे हो?"

"अमुक देश को।"

"इस इस गाड़ी में क्या क्या सौदा है?"

"यह (सौदा) है, और यह (सौदा) है।"

"पिछली गाड़ी बहुत भारी मालूम हो रही है। उसमें क्या सौदा है?"

"उसमें पानी है।"

"अभी जो पानी साथ लाये, सो तो अच्छा किया। लेकिन अब यहाँ से आगे पानी की आवश्यकता नहीं। आगे बहुत पानी है। मटकों को फोड़, पानी फेंक सुख से जाओ।"

इस प्रकार की बातचीत कर "आप जाइये, हमें देर होती है" कह, कुछ दूर जा कर, उनकी आँख से ओझल हो, (दैत्य) अपने नगर को ही चला गया।

उस मूर्ख बंजारे ने अपनी मूर्खता के कारण दैत्य की बात मान, मटके फुड़वा, चुल्लू भर भी पानी बाकी न रख, सभी (पानी) फिकवा गाड़ियाँ हँकवाई। आगे (रास्ते में) ज़रा सा भी पानी न था। आदमी पानी बिना पीड़ित होने लगे। उन्होंने सूर्यास्त तक चलते रह कर, (शाम को) बैलों को खोल, गाड़ियों का घेरा बना खड़ा कर, बैलों को गाड़ियों के पहियों से बाँधा। न बैलों को पानी मिला, न मनुष्यों को भोजन (=यवागू-भात)। दुर्बल मनुष्य जहाँ तहाँ पड़ कर सो रहे। रात होने पर दैत्यों के नगर से (वह) दैत्य आये (और) सब बैलों तथा मनुष्यों को मार, उनका मांस खा, हड्डियाँ (वहीं) छोड़ कर चले गये। इस प्रकार (उस) मूर्ख बंजारे के पुत्र (की मूर्खता) के कारण, वह सब नाश को प्राप्त हुए। उनकी हाथों आदि की हड्डियाँ इधर उधर बिखर गईं; (किन्तु) पाँच सौ गाड़ियाँ जैसी की तैसी खड़ी रहीं।

उस मूर्ख बंजारे के पुत्र के चले जाने के मास आध-मास बाद, बोधिसत्त्व भी पाँच सौ गाड़ियों के साथ नगर से निकले; और क्रमशः कान्तार के मुख पर पहुँचे। वहाँ उन्होंने पानी के मटकों में बहुत सा पानी भर लिया (और) अपने तम्बुओं में ढँढोरा पीट, आदमियों को एकत्रित कर कहा—"बिना मुझे पूछे, एक चुल्लू भर पानी भी काम में न लाना। जंगल में विषैले-वृक्ष भी होते हैं। (इस लिए) किसी ऐसे पत्ते, फूल या फल को, जिसे पहले न खाया हो, बिना मुझ से पूछे कोई न खाये।"

इस प्रकार आदमियों को ताकीद कर, पाँच सौ गाड़ियों के साथ मरुभूमि (=कान्तार) की ओर बढ़े।

उस मरुभूमि के मध्य में पहुँचने पर, उस दैत्य ने पहले ही की भाँति अपने

को बोधिसत्त्व के मार्ग में प्रकट किया। बोधिसत्त्व ने उसे देखते ही पहचान लिया (और सोचा)—"इस मरुभूमि में जल नहीं है। इसका नाम ही निर्जल-कान्तार है। यह (पुरुष) निर्भय है। इसकी आँखें लाल हैं। (और) इसकी छाया तक दिखाई नहीं पड़ती। निस्सन्देह इसने आगे गये मूर्ख बंजारे के पुत्र का सब पानी फिंकवा, उन्हें पीड़ित कर, उसे मंडली सहित खा लिया होगा। लेकिन यह मेरी पंडिताई (=बुद्धि) तथा चतुराई (=उपाय-कुशलता) को नहीं जानता।" फिर उससे कहा—"तुम जाओ। हम व्यापारी लोग बिना दूसरा पानी देखे, (साथ) लाये पानी को नहीं फेंकते। जहाँ दूसरा पानी दिखाई देगा, वहाँ इस पानी को फेंक गाड़ियों को हलका कर चल देंगे।"

दैत्य थोड़ी दूर जा कर, अन्तर्धान हो अपने नगर को चला गया। दैत्य के चले जाने पर आदमियों ने बोधिसत्त्व से पूछा—"आर्य! यह मनुष्य 'यह हरे रंग वाली बन पाँती दिखाई देती है। उसके आगे मूसलाधार वर्षा बरस रही है' कहते हुए, उत्पल-कुमुद आदि की मालायें (धारण किये हुए), पद्म-पुण्डरीक के गुच्छे को (हाथ में) लिये भिस की जड़ खाते, भीगे वस्त्र, भीगे-सीस, पानी की बूँदें चूते हुए, आये हैं। इसलिए (क्यों न) हम पानी को फेंक, गाड़ियों को हलकी कर, जल्दी जल्दी चलें।"

बोधिसत्त्व ने उनकी बात न सुन, गाड़ियों को रुकवा, सब मनुष्यों को एकत्रित करवा, (उनसे) पूछा—"क्या तुम में से किसी ने इस कान्तार में तालाब अथवा पुष्करिणी होने की बात पहले कभी सुनी?"

"आर्य! नहीं! यही सुना है कि यह कान्तार निर्जल-कान्तार है।"

"अब कुछ मनुष्य कहते हैं कि इस हरे रंग की बन-पाँती के उस पार वर्षा होती है। (अच्छा, तो) वर्षा की हवा कितनी दूर तक चलती है?"

"आर्य! योजन भर।"

"क्या किसी एक (जने) के शरीर को भी वर्षा की हवा लग रही है?"

"आर्य! नहीं।"

"बादल का सिरा (=मेघ सीस) कितनी दूर तक दिखाई देता है?"

"आर्य! योजन भर।"

"क्या किसी को एक भी बादल दिखाई दे रहा है।"

"आर्य! नहीं।"

"बिजली कितनी दूर तक दिखाई देती है ?"

"आर्य ! चार पाँच योजन तक।"

"क्या किसी को बिजली का प्रकाश दिखाई पड़ा है ?"

"आर्य ! नहीं।"

"बादल की गर्ज कितनी दूर तक सुनाई देती है ?"

"आर्य ! एक दो योजन भर।"

"क्या किसी को बादल की गर्ज सुनाई दी है ?"

"आर्य ! नहीं।"

"यह मनुष्य नहीं, यह दैत्य (थे)। (वह) हमारा पानी फिंकवा कर, दुर्बल कर, (हमें) खाने के विचार से आये होंगे। आगे जाने वाला मूर्ख बंजारे का पुत्र चतुर (=उपाय-कुशल) नहीं था। इन्होंने अवश्य पानी फिंकवा, पीड़ा दे, उसे खा लिया होगा। उसकी पाँच सौ गाड़ियाँ जैसी की तैसी भरी खड़ी होंगी। आज हम उन्हें देखेंगे। चुल्लू भर पानी भी विना फेंके (गाड़ियों को) हाँको" (कह) हँकवाया।

फिर जाते हुए, उन्हों (=बोधिसत्त्व) ने जैसी की तैसी भरी हुई पाँच सौ गाड़ियाँ, तथा बैलों और आदमियों के हाथों आदि की हड्डियों को इधर उधर बिखरा देख, गाड़ियाँ खुलवा दीं। गाड़ियों के इर्द गिर्द घेरे में तम्बू तनवा दिन रहते ही आदमियों और बैलों को शाम का भोजन खिलवा, मनुष्यों के (घेरे के) बीच में बैलों को बँधवा-सुलवा स्वयं सर्दारों (बलनायकों) सहित हाथ में खड्ग ले, रात्रि के तीनों याम पहरा देते, खड़े ही खड़े सवेरा कर बैलों को खिला, कमज़ोर गाड़ियों को छोड़, (उनकी जगह) मज़बूत को ले, कम मोल का सौदा छोड़ (उसकी जगह) अधिक दाम वाले सौदे को लाद, जहाँ जाना था, उस स्थान पर चले गये। सामान को दुगुने-तिगुने मोल पर बेंच, सारी मंडली को (साथ) ले फिर (सानंद) अपने नगर को लौट आये।

यह कथा कह कर बुद्ध (शास्ता) ने कहा—गृहपति ! इस प्रकार पूर्व काल में वितर्क के पीछे चलने वाले सर्वनाश को प्राप्त हुए; लेकिन यथार्थ-ग्राही लोग दैत्यों के हाथ से बच कर, सकुशल इच्छित स्थान पर जा, फिर अपने स्थान पर लौट आये।

इस प्रकार इन दो कथाओं को मिला, पूर्वापर कथा सम्बन्ध छोड़, सम्बुद्ध

हो जाने पर इस यथार्थ (=अपण्णक)-धर्म-उपदेश के सम्बन्ध में यह गाथा कही—

अपण्णकं ठानमेके दुतियं आहु तक्किका ।
एतदञ्ञाय मेधावी तं गण्हे यदपण्णकं ॥

['कुछ (पंडित) लोग यथार्थ (=अपण्णक) बात (=स्थान) कह रहे हैं; तार्किक लोग दूसरी (अयथार्थ)। यह जान कर बुद्धिमान् पुरुष, जो यथार्थ है, उसे ग्रहण करें'।]

इसमें जो **'अपण्णक'** (शब्द) है, उसका अर्थ है=ऐकांतिक, अविरोधी नैर्याणिक (=निर्वाण को प्राप्त करने वाला)। **ठान** (=स्थान) का मतलब है, बात या कारण। 'कारण' को 'स्थान' इसलिए कहते हैं, क्योंकि 'फल' उस कारण के अधीन हो कर ठहरता है। 'स्थान को स्थान, अस्थान को अस्थान समझ कर'[1] इत्यादि में 'स्थान' का जो भावार्थ है (=प्रयोग) है, उसे भी जानना चाहिये। यहाँ 'अपण्णक ठान' इन दो शब्दों का मतलब है, सारे हितों सुखों का दाता, पंडितों द्वारा आचरित जो एकांतिक कारण है, यथार्थ कारण है, नैर्याणिक-कारण है। संक्षेप रूप से यह (अर्थ) है। विस्तार से तो (बुद्ध, धर्म, संघ इन) तीन की शरण जाना, (गृहस्थों को) पाँच शील (=सदाचार), (साधुओं को) दस शील (पालन करना), प्रातिमोक्ष (=भिक्षु-नियमों) से (अपनी) रक्षा करना (=संवर), इन्द्रिय-संयम, शुद्ध जीविका रखना, विहित वस्तुओं (=प्रत्ययों) का सेवन, सभी चारों प्रकार की शुद्धता वाला शील, इन्द्रियों का संयम (=गुप्त द्वारता), भोजन की (उचित) मात्रा का ज्ञान, जागरूक रहना, ध्यान, विदर्शना, अभिञ्ञा, समापत्ति (=समाधि), आर्य (अष्टांगिक) मार्ग, आर्य-फल-यह सब अपण्णक बातें (=स्थान) अपण्णक रास्ता (प्रतिपदा), नैर्याणिक रास्ता (हैं) यह अर्थ है। क्योंकि यह **'अपण्णक-प्रतिपदा'** नैर्याणिक प्रतिपदा का ही

[1] अंगुत्तर अट्ठान पाली ।

नाम है, इसीलिए भगवान् ने अपण्णक-प्रतिपदा का उपदेश देते हुए यह सूत्र[1] कहा है—

"भिक्षुओ ! तीन धर्मों (=बातों) से युक्त भिक्षु अपण्णक (=यथार्थ) प्रतिपदा में लग कर, अपने चित्त के मलों के विनाश के लिए प्रयत्नशील होता है। कौन से तीन धर्मों से ? भिक्षुओ ! भिक्षु इन्द्रियों को वश में रखता है, भोजन की (उचित) मात्रा का जानकार होता है। सचेत रहता है। भिक्षुओ ! भिक्षु कैसे इन्द्रियों को वश में रखता है ? भिक्षुओ ! जब भिक्षु रूप (=स्थूल वस्तुओं) को देख कर, उसके आकार (=निमित्त) को ग्रहण नहीं करता......इस प्रकार भिक्षुओ ! भिक्षु इन्द्रियों को वश में रखता है। भिक्षुओ ! भिक्षु कैसे भोजन की (उचित) मात्रा का जानकार होता है ? भिक्षुओ ! जब भिक्षु सोच-समझ कर आहार ग्रहण करता है, न तो मस्ती के लिये, न अभिमान के लिये......। इस प्रकार भिक्षुओ ! भिक्षु भोजन की (उचित) मात्रा का जानकार होता है। भिक्षुओ ! भिक्षु कैसे सचेत (=जागरूक) रहता है ? भिक्षुओ ! भिक्षु दिन में टहलना और बैठना......। इस प्रकार भिक्षुओ ! सचेत होता है।"

इस सूत्र में तीन ही धर्म कहे गए हैं। लेकिन यह अपण्णक-प्रतिपदा अर्हत्-फल की प्राप्ति तक रहती है। यहाँ अर्हत-फल भी फल-समाधि तथा उपाधि-रहित-निर्वाण को प्राप्ति के मार्ग (=प्रतिपदा) का ही नाम है।

कुछ (=एके) इस शब्द का मतलब है पण्डितजन। अमुक पण्डितजन, इस प्रकार का कोई नियम नहीं। लेकिन यहाँ पर 'एक' शब्द का प्रयोग मंडली सहित बोधिसत्त्व के ही लिए जानना चाहिये। तार्किक लोगों ने दूसरा ही कहा है (=**दुतियं आहु तक्किका**)—दूसरा अर्थात् पहले कहे गये अपण्णक स्थान, नैर्याणिक-कारण से भिन्न (=दूसरा) तर्क के पीछे चलना, अनैर्याणिक कारण। तार्किकों ने कहा (=आहु तक्किका) इसे यहाँ पहले शब्द (= दुतियं) से मिला कर पढ़ना चाहिये। अपण्णक स्थान=अविरोधी बात=नैर्याणिक बात-को-बोधिसत्त्व आदि कुछ बुद्धिमान् (=पण्डित) मनुष्यों ने ग्रहण किया।

[1] अंगुत्तर निकाय, तिक निपात।

लेकिन जिन्होंने मूर्ख बंजारे को अपना मुखिया बनाया वह तर्क-ग्राही (=दलील-बाज़) थे; उन्होंने दूसरी अयथार्थ, अनैकांतिक, अनैर्याणिक बात स्वीकार की। उनमें से जिन्होंने अपण्णक स्थान को ग्रहण किया, उन्होंने शुद्ध मार्ग (=शुक्ल-मार्ग) का अनुगमन किया। जिन्होंने दूसरे 'आगे जल अवश्य होगा' इस प्रकार की दलील-बाज़ी (=तर्क-ग्राह) से युक्त अनैर्याणिक बात को माना, उन्होंने अशुद्ध (=कृष्ण) मार्ग का अनुगमन किया। इसमें जो शुक्ल-मार्ग है वह उन्नति का मार्ग है, जो कृष्ण-मार्ग है वह अवनति का मार्ग। इसलिए जिन्होंने शुक्ल-मार्ग का ग्रहण किया, उनकी अवनति न हो कर, वह सुखी हुए; लेकिन जिन्होंने कृष्ण-मार्ग का अनुसरण किया, वे अवनत हो दुःख को प्राप्त हुए।"

इस प्रकार भगवान् ने **अनाथपिण्डिक** गृहपति को उक्त बात कह कर, आगे यूँ कहा—"यह जान कर मेधावी पुरुष जो यथार्थ है, उसे ग्रहण करे।" इसमें "एतदञ्ञाय मेधावी" का अर्थ है—मेधा कही जाने वाली विशुद्ध, उत्तम, प्रज्ञा से युक्त कुलपुत्र, इस अपण्णक और सपण्णक, तर्क-ग्राह तथा अतर्क-ग्राह कहे जाने वाले दोनों स्थानों में गुण-दोष, लाभ-हानि, अर्थ-अनर्थ जान कर। 'तं गण्हे यदपण्णकं' का अर्थ है, जो सम्पूर्ण रूप से शुक्ल-मार्ग है, उन्नति-मार्ग कहा जाने वाला नैर्याणिक-कारण है, उसीको ग्रहण करे। किस लिए? पूर्ण रूप से शुक्ल-मार्ग होने के कारण। लेकिन दूसरे को ग्रहण न करे। किस लिए? अनैकांतिक (=असम्पूर्ण) होने के कारण। यह अपण्णक-प्रतिपदा सब **बुद्धों, प्रत्येक बुद्धों,** और **श्रावकों** (=बुद्ध-पुत्रों) की प्रतिपदा है। सभी बुद्ध इस अपण्णक-प्रतिपदा (=मार्ग) का अनुसरण करके ही दृढ़ पराक्रम से पारमितायें पूरी कर बोधि (-वृक्ष) के नीचे बुद्ध पद को प्राप्त होते हैं, प्रत्येक-बुद्ध प्रत्येक-बुद्ध-पद को प्राप्त होते हैं; बुद्ध-पुत्र श्रावक-पारमिता-ज्ञान को साक्षात् करते हैं। इस प्रकार भगवान् ने उन उपासकों को तीन **कुल-सम्पत्तियाँ**[1], **छः कामावचर स्वर्ग**[2] और ब्रह्म-लोक सम्पत्तियाँ दे कर भी अन्त में अर्हत्-मार्ग को देने वाली

[1] **क्षत्रिय, ब्राह्मण तथा वैश्य।**

[2] **चातुर्महाराजिक, त्रयस्त्रिंश, याम, तुषित, निर्माण-रति तथा परनिर्मित वश-वर्ति।**

अपण्णक प्रतिपदा, तथा चार दुर्गतियों (=अपायों) और पाँच नीच-कुलों[1] में जन्म देने वाली सपण्णक प्रतिपदा इस प्रकार यथार्थ (=अपण्णक) धर्म का उपदेश कर, चारों आर्य सत्यों को, सोलह प्रकार से प्रकाशित किया। चारों सत्यों (के प्रकाशित करने के) के अन्त में, वह सब पाँच सौ उपासक श्रोत-आपन्न हो गये।

बुद्ध ने इस धर्म-उपदेश को दिखला कर, दो कथाएँ कह, तुलना कर, जातक का सारांश निकाला।

उस समय का मूर्ख बंजारा **देवदत्त** था। उसकी मण्डली **देवदत्त** की मण्डली थी। (इस समय की) बुद्ध की मण्डली, बुद्धिमान् (=पण्डित) बंजारे की मण्डली थी। और बुद्धिमान् बंजारा तो मैं ही था। (यह कह) भगवान् ने धर्म-उपदेश समाप्त किया।

२. वण्णुपथ जातक

"**अकिलासुनो**" इत्यादि यह धर्म-कथा भगवान् ने **श्रावस्ती** में विहार करते समय कही। किस के लिए? एक शिथिल-प्रयत्न भिक्षु के लिए।

क. वर्तमान कथा

बुद्ध के **श्रावस्ती** में विहार करते समय एक श्रावस्ती-निवासी कुल-पुत्र (=संभ्रान्त तरुण) ने जेतवन जा कर बुद्ध (=शास्ता) के पास जा धर्म-उपदेश सुना; और प्रसन्न-चित्त (हो) इन्द्रिय-सम्बन्धी सुखों (=कामों) में दोष देख, साधु हो, भिक्षु-दीक्षा (=उपसम्पदा) ग्रहण की। पाँच-वर्ष बीत

[1] (१) बाँस का काम करने वाले, (२) नैषाद, (=मल्लाह), (३) रथ-कार, (४) मेहतर, (५) चाण्डाल।

जाने पर दो **मात्रिकायें**[1] और **विदर्शना-क्रम** को सीख, बुद्ध से अपने चित्त के अनुकूल योगक्रिया (=कर्मस्थान) ग्रहण की। फिर एक जंगल में प्रविष्ट हो, वर्षावास के तीन महीने तक साधना में लगे रहने पर भी **अवभास-मात्र**[2] वा निमित्त-मात्र भी न उत्पन्न कर सका।

तब उसके मन में यह विचार हुआ—"बुद्ध ने चार प्रकार के व्यक्ति कहे हैं। मैं शायद चौथी प्रकार का—पदपरम—व्यक्ति होऊँगा। मालूम होता है मैं इस जन्म में मार्ग या फल कुछ नहीं प्राप्त कर सकूँगा। तो फिर मैं जंगल में रह कर ही क्या करूँगा? (इसलिए) बुद्ध के पास जा, उनके अति सुन्दर शरीर को देखते तथा (उनके) मधुर धर्मोपदेश को सुनते हुए विचरूँगा।" (यह सोच) फिर **जेतवन** वापिस चला गया।

तब परिचितों तथा मित्रों ने उससे पूछा—"आयुष्मान्! तू योगाभ्यास (=श्रमणधर्म) करने के लिए भगवान् (=शास्ता) से योगविधि (=कर्मस्थान) ले कर गया था; लेकिन अब लौट कर संघ के साथ घूम रहा है। क्या तेरे साधु होने (=प्रव्रज्या) का उद्देश्य पूरा हो गया है? क्या तू जन्म-ग्रहण से मुक्त हो गया है?"

"आयुष्मानो! मैंने मार्ग या फल नहीं प्राप्त किया। यह सोच, कि (शायद) मैं इसके योग्य नहीं हूँ; मैं अभ्यास को छोड़ चला आया हूँ।"

"आयुष्मान्! दृढ़ पराक्रमी-उपदेशक के धर्म (=शासन) में साधु बन कर तू ने, जो प्रयत्न करना छोड़ दिया, वह उचित नहीं किया। आ तुझे तथागत के पास ले चलें" कह, उसे शास्ता के पास लिवा ले गये।

शास्ता ने उसे देख कर कहा—"भिक्षुओ! तुम इस अनिच्छुक भिक्षु को ले कर आये हो। इस भिक्षु ने क्या (अपराध) किया है?"

"भन्ते! यह भिक्षु ऐसे उबारने वाले (=नैर्याणिक) धर्म में साधु बन, योगाभ्यास (=श्रमण-धर्म) करते करते उस प्रयत्न को छोड़ कर, लौट आया है।"

[1] भिक्षु-प्रातिमोक्ष तथा भिक्षुणी-प्रातिमोक्ष

[2] ध्यान के विषय (=object) का अवभास अथवा साकार रूप दिखाई देना।

तब भगवान् ने उससे पूछा—"क्या सचमुच भिक्षु! तूने प्रयत्न ढीला कर दिया।"

"हाँ सचमुच! भगवान्!"

"भिक्षु! ऐसे धर्म में साधु हो तू अपने को 'अल्पेच्छ', 'सन्तुष्ट', 'एकान्त-प्रिय' वा 'प्रयत्नवान्' न बना, क्यों आलसी भिक्षु प्रकट कर रहा है? क्या तू पूर्व-जन्म में उद्योगपरायण नहीं था? (पूर्व जन्म में) तेरे अकेले के उद्योग से मरुभूमि में पाँच सौ गाड़ियों के आदमी और बैल पानी पाकर सुखी हुए थे। अब तू किस लिए हिम्मत हार रहा है?"

वह भिक्षु (भगवान् की) इस बात से सँभल गया।

यह बात सुन कर भिक्षुओं ने भगवान् से प्रार्थना की—"भन्ते! इस समय इस भिक्षु का हिम्मत-हार बैठना तो प्रकट है, लेकिन पूर्व-जन्म में इस अकेले के प्रयत्न से मरुभूमि में बैलों और मनुष्यों का पानी पाकर सुखी होना हमें मालूम नहीं। वह आपके बुद्धत्त्व (=सर्वज्ञता) के ज्ञान को ही प्रकट है। हमें भी वह बात (=कारण) कहिये।"

"तो भिक्षुओ! सुनो।" (कह) भगवान् ने उस भिक्षु को ध्यान दिला (उस) पूर्व-जन्म की अज्ञात बात को प्रकट किया—

ख. अतीत कथा

पूर्व काल में **काशी** देश के **बनारस** नगर में, **ब्रह्मदत्त** (राजा) के राज्य करते समय, बोधिसत्त्व वंजारे के कुल में पैदा हुए; सयाना होने पर पाँच सौ गाड़ियों के साथ वह व्यापार करने लगे। वह एक दिन साठ योजन वाली मरु-भमि में जा रहे थे। उस कान्तार का रेत इतना बारीक था कि मुट्ठी में लेने पर हाथ में नहीं ठहरता था। सूर्योदय के समय से (ही) भौर की आग की तरह (इतना) गर्म हो जाता था कि उस पर चला नहीं जाता था। इसलिए उस कान्तार को पार करने वाले, लकड़ी, पानी, तिल, चावल सब को गाड़ियों पर लाद, रात को ही चलते थे। (वह) उषा (अरुणोदय) के समय गाड़ियों को घेरे में खड़ी कर, उन पर मण्डप तनवा, समय रहते ही भोजन समाप्त कर, छाया में बैठे बैठे दिन बिताते थे। सूर्यास्त होने पर शाम का भोजन खा कर, भूमि के

ठंडी होने पर, गाड़ियों को जुतवा चल देते थे। यह यात्रा समुद्र-यात्रा जैसी होती थी। (उसमें भी) दिशा प्रदर्शक (=**थल नियामक**) की ज़रूरत रहती थी। वह दिशा-प्रदर्शक तारों को देख कर, क़ाफ़िले को (कान्तार से) पार उतारता था।

वह बंजारा भी, उस समय, इसी ढंग से, उस कान्तार में जा रहा था। उन्सठ योजन पार कर लेने पर, यह सोच कि, अब एक ही रात में हम मरु-भूमि से बहार हो जायेंगे, शाम को भोजन कर, सब लकड़ी पानी फेंकवा गाड़ियाँ जुतवा चल पड़ा। दिशा-प्रदर्शक (ुरुष) अगली गाड़ी पर आसन (कुर्सी) बिछवा, आकाश में तारों को देखता, 'इधर हाँको उधर हाँको', कहता हुआ लेटा था। इतनी दूर तक न सोया रहने के कारण, थक कर, उसे नींद आ गई। बैलों ने लौट कर, जिस रास्ते से वह आये थे, उसी (रास्ते) को ग्रहण कर लिया; और उसे पता नहीं लगा। बैल सारी रात चलते रहे। दिशा-प्रदर्शक ने अरुणोदय के समय उठ कर, तारों को देख कर, 'गाड़ियों को लौटाओ, लौटाओ'। कहा। गाड़िओं को लौटा कर क्रमशः रास्ते पर लाते ही लाते अरुणोदय हो गया।

आदमियों ने (पहचान लिया)—'यह तो हमारा कल के पड़ाव का स्थान है।" (फिर सोचने लगे)—हमारा लकड़ी पानी खतम हो गया। इसलिए अब हमारा नाश है।—गाड़ियों को खोल, घेरे में खड़ा कर, ऊपर से मण्डप तान, चिन्ता के मारे वे अपनी अपनी गाड़ी के नीचे लेट रहे।

बोधिसत्त्व ने 'मेरे हिम्मत हारने पर सभी नाश को प्राप्त होंगे' (सोच), प्रातःकाल ठंडे ठंडे समय में ही घूमते हुए एक दूब-घास के पौदे को देख कर विचारा—'यह पौदे नीचे पानी की नमी के ही कारण उगे होंगे', (और) कुदाली मँगवा, वह जगह खुदवाने लगे। (लोगों ने) साठ हाथ तक खोदा। इतने खोदने पर (उनकी) कुदाली नीचे एक पत्थर से टकराई। (पत्थर से) टकराते ही सब ने हिम्मत हार दी। लेकिन बोथिधसत्त्व ने सोचा—"इस पत्थर के नीचे पानी होना चाहिये।" (यह सोच) नीचे उतर, पत्थर पर खड़े हो, झुक कर, कान लगा, शब्द पर ध्यान दिया। नीचे पानी के बहने का शब्द सुन, ऊपर आ, अपने छोटे सेवक से कहा—"तात! यदि तू ने हिम्मत छोड़ दी, तो हम सब नष्ट हो जायेंगे। तू बिना हिम्मत छोड़े, इस हथौड़े (=अयकूट) को ले, गढ़े में उतर कर, इस पत्थर को तोड़।"

उसने बोधिसत्त्व की बात मान ली; और सब के हिम्मत छोड़ देने पर भी हिम्मत न हार, नीचे उतर कर पत्थर पर चोट की। पत्थर बीच से टूट कर, नीचे गिर पानी के सोते के बीच में पड़ा। (वहाँ से) ताड़ के तने जितनी (ऊँची) पानी की धारा निकली। सब ने पानी पी, स्नान कर, पुराने धुरे (=अक्ष) और जुए फाड़, खिचड़ी-भात पका कर खाया। बैलों को भी खिलाया। (फिर) सूर्यास्त होने पर, पानी के गढ़े के पास ध्वजा गाड़, इच्छित स्थान को गये। वहाँ उन्होंने सौदे को बेच, दुगुणा, चार गुणा मुनाफ़ा उठाया; और फिर अपने निवास स्थान को लौट आये।

वहाँ अपनी आयु भर जी कर, कर्मानुसार गति को प्राप्त हुए। बोधिसत्त्व भी दान आदि पुण्य-कर्म करके पर-लोक सिधारे। बुद्ध (=सम्यक्सम्बुद्ध) ने बुद्ध-पद प्राप्त कर लेने पर (ही) यह कथा कह, इस गाथा को कहा था—

अकिलासुनो वण्णुपथे खणन्ता,
उदङ्गणे तत्थ पपं अविन्दुं।
एवं मुनी विरियबलूपपन्नो,
अकिलासु विन्दे हृदयस्स सन्तिं॥

[प्रयत्नशील लोगों ने वालू के मार्ग में खोद कर पानी पाया। इसी प्रकार वीर्य्य-बल से युक्त मुनि प्रयत्नशील हो हृदय की शान्ति को प्राप्त करे।]

इसमें **अकिलासुनो** का अर्थ है, आलस्यरहित वा प्रयत्नशील। **वण्णुपथे**, वण्णु कहते हैं बालू को, सो इसका अर्थ है बालू का मार्ग। **खणन्ता**=भूमि को खोदता हुआ। **उदङ्गणे**, इस में उद् जो है, सो निपात है, **अङ्गण**=मनुष्यों के घूमने का स्थान=खुला प्रदेश। **तत्थ**=उस बालू मार्ग में। **पपं अविन्दुं** का अर्थ है पानी को पाया। पिया जाने से पानी को **पपा** कहते हैं या बहने वाला (-जल) आप, पपा अर्थात् महाजल। **एवं** शब्द उपमा का द्योतक है। **मुनी** =मौन कहते हैं ज्ञान को, अथवा काय-मौन आदि में से किसी एक से युक्त व्यक्ति को मुनी कहते हैं। लेकिन इस मुनी के, **'अगारिय-मुनी' 'अनगारिय-मुनि', 'सेख मुनि', 'असेखमुनि', 'पच्चेकमुनि', 'मुनि-मुनि'**—इस प्रकार के कई

भेद हैं। सो अगारिय (=आगारिक)-मुनि, जिसने गृहस्थ रहते मार्ग-फल को प्राप्त कर लिया है, जो धर्म (=शासन) का ज्ञाता है। अनगारिय (=अनागारिक)मुनि, जो उक्त प्रकार से ही मार्ग-फल को प्राप्त है, लेकिन साधु है। सेख (=शैक्ष्य) मुनि का अर्थ है सात शैक्ष (=श्रोतापन्न से अर्हत्-मार्ग प्राप्त तक) पच्चेक (=प्रत्येक)-मुनि का अर्थ है 'प्रत्येक-सम्बुद्ध'। मुनि-मुनि=वुद्ध (=सम्यक्सम्बुद्ध)। संक्षेप में यहाँ इन सबसे मौनेय्य (=मौन) नामक प्रज्ञा से मुक्त मुनी समझना चाहिये। **विरियबलूपपन्नो** का अर्थ है वीर्य्य (= (=हिम्मत) से तथा शरीर-वल और ज्ञान-बल से युक्त। **अकिलासु**= आलस्य रहित। 'चाहे चमड़ा, नस और हड्डी ही बाकी रह जाये चाहे शरीर में सारा मांस और खून सूख जाए'—इस प्रकार के चारों अङ्गों से सम्पूर्ण वीर्य्य से युक्त=आलस्य-रहित (कहा जाता है)। **विन्दे हदयस्स सन्ति** का अर्थ है चित्त तथा हृदय की शीतलता का कारण होने से 'शान्ति' कहे जाने वाले ध्यान-विदर्शना-अभिज्ञा-अर्हत्व-मार्ग ज्ञान नामक आर्य-धर्म को प्राप्त करता है।

भगवान् ने, "भिक्षुओ ! आलसी मनुष्य दुःख से जीवन विताता है, पाप, बुरे कर्म (=अकुशल धर्म) से युक्त होता है, महान हित को खो देता है। (लेकिन) भिक्षुओ ! प्रयत्नशील (मनुष्य) सुख से जीवन बिताता है। पाप, बुराइयों (=अकुशल धर्मों) से रहित होता है, सच्चे हित की पूर्ति करता है। भिक्षुओ ! ढील करने से उत्तम (=अग्रपद) की प्राप्ति नहीं होती[1]"—इस प्रकार अनेक सूत्रों में आलसी के जीवन का दुःखमय होना और प्रयत्न-शील के जीवन का सुखमय होना वतलाया है। यहाँ भी आग्रह-रहित, प्रयत्न शील विदर्शक को उद्योग द्वारा होने वाले सुखमय जीवन को दिखाते हुए कहा है— "इस प्रकार उद्योग बल से युक्त, मुनी निरालस हो चित्त की शान्ति प्राप्त करे"। (इसीलिए) यह कहा गया "जिस प्रकार उन व्यापारियों ने निरालस (हो) बालुका पथ में भी खोद कर जल पा लिया। इसी प्रकार इस धर्म (-शासन) में

[1] संयुक्त-निकाय, दस-बल सूत्र।

भी निरालस हो प्रयत्न करने वाला पण्डित-भिक्षु इस ध्यान आदि भेद से कही गई हृदय की शान्ति को प्राप्त करता है। इसलिए भिक्षु ! (जब) पूर्व-जन्म में तू ने (केवल) पानी के लिये प्रयत्न किया, तो अब इस प्रकार के उबारने वाले (=नैर्याणिक) धर्म (=शासन) में मार्ग-फल की प्राप्ति के लिये क्यों हिम्मत हारता है ?' इस प्रकार धर्मोपदेश के बाद (भगवान् ने) चारों (आर्य-सत्यों) की व्याख्या (=प्रकाशन) की। सत्यों की व्याख्या समाप्त होने पर वह हिम्मत हारा भिक्षु अर्हत्व (नामक) उत्तम-फल में प्रतिष्ठित हुआ।

शास्ता ने दोनों कथाऐं सुना, तुलना कर, जातक का सारांश दिखाया—"उस समय हिम्मत न हार कर पाषाण को तोड़ कर, जन-समूह को पानी देने वाला (मेरा) छोटा-सेवक (चूळुपस्थायक) यही हिम्मत हारा भिक्षु था। बाकी मंडली आज की बुद्ध-मंडली थी। प्रधान बंजारा तो मैं (स्वयं) ही था" कह (धर्म-)उपदेश समाप्त किया।

३. सेरिवाणिज जातक

'इध चेहि नं विरावेसि'—इस धर्म उपदेश को भी भगवान् ने **श्रावस्ती** में रहते हुए एक हिम्मत हारे भिक्षु के ही सम्वन्ध में कहा था।

क. वर्तमान कथा

पूर्वोक्त प्रकार से ही भिक्षुओं द्वारा (बुद्ध के सम्मुख) लाए जाने पर बुद्ध (=शास्ता) ने उससे कहा—"भिक्षु ! इस प्रकार के मार्ग-फल-दायक धर्म (=शासन) में साधु हो कर भी (यदि) तू हिम्मत हार बैठेगा, तो तू उसी प्रकार चिन्ता को प्राप्त होगा, जैसे लाख के मूल्य की सोने की थाली गँवा कर

सेरि नामक बनिया।" भिक्षुओं ने भगवान् से उस बात के स्पष्ट करने की प्रार्थना की। भगवान् ने पूर्व-जन्म की अज्ञात बात (इस प्रकार) प्रकट की—

ख. अतीत कथा

अब से पाँच कल्प पूर्व बोधिसत्त्व **सेरिव** नामक देश में फेरी करने वाले बनिए (के रूप में पैदा) हुए थे। वह सेरिव नामक एक (दूसरे) फेरी करने वाले लोभी बनिये के साथ **नील वाहिनी** नामक नदी पार कर, **अन्धपुर** नामक नगर में गया। (दोनों ने) नगर की गलियों को आपस में बाँट लिया। बोधिसत्त्व अपने हिस्से की गलियों में सौदा बेचते; दूसरा बनिया अपने हिस्से की गलियों में।

उस समय नगर के एक सेठ का परिवार दरिद्र हो गया था। उसके ज्ञाति-सम्बन्धी और (उसका) धन नष्ट हो गया। (उस परिवार में) बाकी रह गई थी अपनी दादी के साथ एक लड़की। दोनों जने दूसरों की नौकरी-चाकरी (=मजदूरी) करके पेट पालते थे। लेकिन, उनके घर में पहले महासेठ के उपयोग में आने वाली दूसरे (साधारण) बरतनों में फेंकी हुई एक सोने की थाली थी। चिरकाल से उपयोग में न आने के कारण वह मैली हो गई थी। वह (दोनों) इतना भी नहीं जानती थीं कि यह सोने की थाली है। उस समय वह लोभी बनिया "(हीरे) मोती लो, (हीरे) मोती लो" (कहता) घूमता हुआ, उस घर के सामने आया। लड़की ने उसे देख कर अपनी दादी से कहा—

"अम्मा! मुझे एक कण्ठा ले दो।"

"अम्मा! हम दरिद्र क्या देकर लेंगे।"

"हमारे पास यह थाली जो है, यह हमारे किसी काम की नहीं है, इसे दे कर ले लें।"

उसने व्यापारी को बुला कर, आसन पर बिठा, वह थाली दे कर कहा—"आर्य! इस (थाली) को लेकर, अपनी बहन को कुछ दे दो।"

व्यापारी ने थाली हाथ में ले, सोने की थाली होगी (सोच) उलट कर, थाली की पीठ पर सूई से रेखा खींची। 'सोने की है' जान, "इनसे मुफ्त में ही थाली लेनी चाहिये" (सोच) कहा, "यह कितने दाम की होगी? यह तो आधे

मास के मूल्य की भी नहीं है" (कह) थाली को भूमि पर फेंक, आसन से उठ कर चला गया।

(अपने में तै पाये नियम के अनुसार) एक के गली में हो आने पर, दूसरा उस गली में प्रवेश करता था। उस (बनिये) के बाद बोधिसत्त्व उस गली में प्रविष्ट हो '(हीरे) मोती लो, (हीरे) मोती लो' कहते घूमते हुए उसी द्वार पर पहुँचे। उस लड़की ने फिर उसी प्रकार अपनी दादी को कहा। दादी ने पूछा—"अम्मा! पहला आया व्यापारी थाली को ज़मीन पर पटक कर चला गया, अब क्या देकर 'कण्ठा' लें?" लड़की ने उत्तर दिया—"अम्मा! वह व्यापारी कठोर-भाषी था, लेकिन यह सौम्य मूर्ति तथा मृदुभाषी है। आशा है कि यह थाली को ले लेगा।"

"अच्छा! तो पुकार।"

उसने उसे बुलाया। उसके घर में प्रवेश कर बैठने पर, (उन्होंने उसे) वह थाली दी।

उसने 'थाली सोने की है' जान, कहा—"अम्मा! यह थाली लाख के मूल्य की है। थाली के मूल्य का सामान मेरे पास नहीं।"

"आर्य! पहले आया व्यापारी, यह **आधे मासे** के मूल्य की भी नहीं है, कह पृथ्वी पर पटक कर चला गया था। यह (अब) तेरे ही पुण्य (के प्रताप) से सोने की थाली हो गई होगी। हम इसे तुझे देते हैं। (इसके बदले में) हमें कुछ ही देकर, इसे ले जाइये।"

बोधिसत्त्व के हाथ में उस समय पाँच सौ **कार्षापण** और पाँच सौ के मूल्य का सौदा था। वह सब दे कर, 'मुझे यह तराजू, थैली, और आठ **कार्षापण** दें' माँग लेकर चले गये। और शीघ्र ही नदी के किनारे पहुँच, **मल्लाह** को आठ **कार्षापण** दे, नाव पर चढ़ चले।

तब लोभी बनिये ने फिर उनके घर जा कर कहा—"लाओ वह थाली, मैं तुम्हें कुछ दे ही दूँ।"

लड़की ने उसे गाली देते हुए कहा—"तू हमारी लाख के मूल्य की थाली को **आधे मासे** के मूल्य की भी नहीं बताता था। लेकिन तेरे स्वामी जैसा एक धर्मात्मा व्यापारी, हमें (एक) हज़ार दे कर उसे ले गया।"

यह सुन 'मैंने लाख के मूल्य की सोने की थाली गँवा दी, उसने मेरी बड़ी

हानि की' (सोच) अत्यन्त व्याकुल (=शोकग्रस्त) हो उठा। उसकी स्मृति ठिकाने न रही, और वह पागल (=संज्ञा हीन) सा हो गया। उसने अपने हाथ के **कार्षापण** और सौदे को घर के दरवाज़े पर बखेर दिया। जो कुछ पहने-ओढ़े था, उसे भी उतार दिया, और वह तराजू की डण्डी की मुँगरी बना, बोधिसत्त्व के पीछे पीछे भागा। नदी के किनारे पहुँच, बोधिसत्त्व को (नाव में) जाते देख, मल्लाह से कहा—"ओ! मल्लाह! मल्लाह! नाव को लौटाओ" बोधिसत्त्व ने "नाव को मत लौटाओ" कह मना किया।

उस बनिये को बोधिसत्त्व को निकल जाते देख, अत्यन्त शोक हुआ। उस का हृदय गर्म हो गया। और मुँह से खून निकल पड़ा, तथा हृदय (सूखे) कीचड़ की तरह फट गया। (इस प्रकार वह) बोधिसत्त्व के प्रति शत्रुता का भाव मन में रख, उसी क्षण मर गया।

बोधिसत्त्व के प्रति **देवदत्त** का यह पहला डाह हुआ। बोधिसत्त्व (भी) दान आदि पुण्य करके कर्मानुसार गति को प्राप्त हुए।

सम्यक् सम्बुद्ध ने यह धर्मोपदेश कह, सम्बुद्ध होने ही की अवस्था में यह गाथा कही—

इध चेहि नं विराधेसि सद्धम्मस्स नियामतं।
चिरं त्वं अनुतपेस्ससि सेरिवा यं व वाणिजो॥

[यदि तू सद्धर्म के नियम को नहीं प्राप्त करता, तो तू सेरिवा बनिये की तरह दुःख को प्राप्त होगा]

इसमें '**इध चेहि नं विराधेसि सद्धम्मस्स नियामतं**' का अर्थ है कि इस धर्म में जो अधिक से अधिक सात जन्म ग्रहण करने के ही नियम वाला स्रोत-आपत्ति मार्ग है, उसे यदि तू प्राप्त नहीं करे, हिम्मत हार दे, तो यह नहीं मिलता। '**चिरं त्वं अनुतपेस्ससि**' का अर्थ है, ऐसा होने पर चिरकाल तक सोच करते हुए, रोते हुए, तपेगा अथवा हिम्मत हार देने के कारण, आर्य-मार्ग न पाने के कारण, (तू) चिर काल तक नरक आदि में उत्पन्न हो, नाना प्रकार के दुःखों को भोगेगा, संतप्त-परि-तप्त होगा, क्लेश को प्राप्त होगा। कैसे? **सेरिवा यं व वाणिजो।" सेरिवा**—यह नाम है। **यं** **वा** का अर्थ है जैसे। यह कहा गया है कि "जिस प्रकार पूर्व-

समय में **सेरिवा** नामक व्यापारी लाख के मूल्य की सोने की थाली पाकर, उसकी प्राप्ति के लिये प्रयत्न न करके, उसे गँवा कर, (पीछे) अफ़सोस को प्राप्त हुआ। उसी प्रकार तू भी इस धर्म में, तैयार की गई सोने की थाली के सदृश, आर्य-मार्ग को प्रयत्न की ढिलाई के कारण न प्राप्त करके, उससे भ्रष्ट हो, चिरकाल तक अनुताप को प्राप्त करेगा। लेकिन यदि प्रयत्न नहीं छोड़ेगा, तो जैसे बुद्धिमान् व्यापारी ने सोने की थाली पाई, वैसे ही (तू भी) मेरे धर्म (=शासन) में नौ प्रकार के अलौकिक (=लोकोत्तर) धर्मों को प्राप्त करेगा।

इस प्रकार बुद्ध (=शास्ता) ने अर्हत्व-प्राप्ति को सर्वोच्च स्थान दे, यह धर्म उपदेश कर चारों (आर्य-)सत्यों की व्याख्या की। सत्यों की व्याख्या समाप्त होने पर, वह हिम्मत हारा भिक्षु अर्हत्व (नामक) सर्वोत्तम (=अग्र) फल में स्थित हुआ। बुद्ध ने भी दोनों कथाएँ सुना, तुलना कर, जातक का सारांश निकाला।

'उस समय का मूर्ख व्यापारी **देवदत्त** था; और बुद्धिमान् व्यापारी तो मैं ही था', कह उपदेश समाप्त किया।

४. चुल्लसेट्ठि जातक

"अप्पकेनापि मेधावी"—यह धर्म-उपदेश भगवान् ने राजगृह के पास स्थित **जीवक के आम्रवन** में विहार करते समय **चूल पन्थक** स्थविर को उद्देश करके कहा।

क. वर्तमान कथा

यहाँ पहले **चुल्लपन्थक** की उत्पत्ति कहनी चाहिये—**राजगृह** में **एक धन** सेठ की लड़की का अपने नौकर से सम्बन्ध था। दूसरों से अपने इस कर्म को

छिपाने के लिये उसने डर से नौकर से कहा—"अब हम यहाँ नहीं रह सकते। यदि मेरे माता पिता इस दोष को जान लेंगे, तो मेरे टुकड़े टुकड़े कर देंगे। चलो हम विदेश निकल चलें।"

(तब वे) दोनों हाथ में ही ले चलने योग्य कीमती कीमती (सारवान्) चीज़ ले (नगर के) प्रधान द्वार से बाहर हो किसी अपरिचित स्थान में रहने की इच्छा से निकल भागे। उनके एक ही स्थान पर इकट्ठे रहते समय, दोनों के सहवास से (लड़की को) गर्भ हो गया। गर्भ के परिपक्व होने पर उस (लड़की) ने स्वामी से सलाह की—"गर्भ परिपक्व हो गया। जिस स्थान में जाति-सम्बन्धी नहीं हों वैसे स्थान पर प्रसव होने पर हम दोनों को बहुत कष्ट होगा। चलो पिता के घर चलें।"

वह 'आज चलें, कल चलें' करते करते दिन बिताने लगा। लड़की सोचने लगी—'यह मूर्ख अपने अपराध के भारीपन के कारण जाने से डरता है। माता पिता हर तरह से हितैषी होते हैं। चाहे यह जाए, या न जाए, मुझे जाना चाहिए।' फिर पति के घर से बाहर गये रहते वक्त घर के सामान को ठीक ठाक कर दिया। अपने पिता के घर चलने की बात पड़ोसियों को कह, रास्ते पर चल पड़ी। तब उस आदमी ने घर लौट कर, स्त्री को न देख, पड़ोसियों से पूछा। पिता के घर जाने की बात सुन, जल्दी जल्दी अनुगमन करते जा, उसे मार्ग में पाया। उस स्थान पर उसे प्रसव हो चुका था "भद्रे! क्या हुआ?" उसने पूछा। "स्वामी! एक पुत्र हुआ है। अब क्या करना चाहिये? जिस मतलब के लिये हम पिता के घर जा रहे थे, वह काम रास्ते में ही हो गया। अब वहाँ जाकर क्या करेंगे? चलो लौटें।"

फिर दोनों एक राय हो वापिस लौटे। उस बच्चे के पन्थ में पैदा होने के कारण उसका नाम पन्थक रक्खा गया।

कुछ समय बाद उसे दूसरा गर्भ हो गया। (पहले की भाँति यहाँ भी सारी कथा समझनी चाहिये)।

पन्थ (=मार्ग) में ही उत्पन्न होने के कारण, पहले उत्पन्न हुए (बालक) का नाम महापन्थक और दूसरे का चुल्लपन्थक कर दिया गया। दोनों बच्चों को लेकर, वह अपने निवास स्थान पर लौट आये। पन्थक बच्चों ने दूसरे बच्चों को 'चाचा, नाना, नानी' कहते सुनकर माता से पूछा—"दूसरे बच्चे, 'चाचा,

नाना, नानी' कहते हैं; माँ! क्या हमारे नातेदार नहीं हैं ?"

"हाँ तात! यहाँ तुम्हारे नातेदार नहीं हैं; लेकिन राजगृह नगर में धन सेठी नाम के (तुम्हारे) नाना हैं; वहाँ तुम्हारे बहुत से नातेदार हैं।"

"अम्मा, वहाँ हम किस लिये नहीं जाते हैं ?"

उसने पुत्र को अपने न जाने का कारण कह, पुत्रों के बार बार कहने पर स्वामी से कहा—"यह बच्चे बहुत दुःखी हो रहे हैं। क्या माता पिता हमें देख कर (हमारा) मांस थोड़े ही खा लेंगे? आओ! इन बच्चों को पिता का घर दिखला दें।"

"मैं सामने न जा (=खड़ा हो) सकूँगा। हाँ! तुझे वहाँ ले जाऊँगा।"

"आर्य! अच्छा जैसे भी हो बच्चों को पितृ-कुल दिखलाना है।"

दोनों जने बच्चों को ले कर, क्रमशः राजगृह पहुँचे। नगर-द्वार पर एक शाला में ठहरे। माता पिता के पास सन्देश भेजा—"बच्चों की माँ (अपने) दो बच्चों को लेकर आई है।"

उन्होंने वह सन्देश सुन कर कहला भेजा—"संसार में जन्म-मरण के चक्कर में घूमते हुए (ऐसा) कोई नहीं, जो (कभी न कभी) पुत्र या पुत्री न बना हो। उन दोनों ने हमारा बड़ा अपराध किया है। इसलिये वह हमारी आँखों के सामने नहीं खड़े हो सकते। इतना धन लेकर वह दोनों (किसी) सुख की जगह जाकर रहें; लेकिन बच्चों को यहाँ छोड़ जायें।"

सेठ की कन्या ने माता पिता के भेजे धन को लिया, और बच्चों को आये हुए दूतों के साथ भेज दिया। वच्चे, (अपने) नाना के कुल में पलने लगे।

उन दोनों में से चुल्लपन्थक तो (अभी) बहुत छोटा था, लेकिन महापन्थक (अपने) नाना के साथ बुद्ध का धर्म-उपदेश सुनने जाता था। नित्य भगवान् (शास्ता) के सम्मुख (जाकर) धर्मोपदेश सुनने से, उसका मन साधु बनने को चाहा। उसने नाना से कहा—"यदि आप आज्ञा दें, तो मैं भिक्षु बनूँ।"

"तात! क्या कहा? मेरे लिये, सारे लोक की प्रव्रज्या से बढ़कर, तेरी प्रव्रज्या श्रेष्ठ है। यदि निभ सके तो तात! साधु बन जा।" (कह) स्वीकार कर बुद्ध के पास गया। बुद्ध ने पूछा—"क्यों महासेठ! क्या पुत्र मिला है?"

"हाँ भन्ते! यह बालक मेरा नाती है, कहता है कि आपके पास साधु बनूँगा।"

बुद्ध ने एक पिण्डपातिक[1] भिक्षु को बालक को प्रव्रजित करने की आज्ञा दी। स्थविर ने उस (बालक) को त्वच्-पञ्चक[2] कर्मस्थान कह प्रव्रजित किया।

उसने बुद्ध के बहुत से उपदेश सीख (बीस) वर्ष की अवस्था में ही[3] उपसम्पदा प्राप्त की। उपसम्पन्न होने पर भली प्रकार मन देकर अभ्यास करते हुए अर्हत्व को प्राप्त हुआ। ध्यान-सुख और मार्ग-सुख से समय व्यतीत करते उसने सोचा—'क्या मैं यह सुख चुल्लपन्थक को भी दे सकता हूँ?' फिर नाना सेठ के पास जा कर कहा—"महासेठ ! यदि तुम्हें स्वीकार हो, तो मैं इस बालक को प्रव्रजित करूँ ?"

"भन्ते ! प्रव्रजित करें।"

स्थविर ने चुल्लपन्थक बच्चे को प्रव्रजित कर, दस शीलों में स्थापित किया। चुल्लपन्थक सामणेर प्रव्रजित होते ही मन्द-बुद्धि हो गया।

"पदुमं यथा कोकनदं सुगन्धं
पातो सिया फुल्लमवीतगन्धं,
अङ्गीरसं पस्स विरोचमानं
तपन्तमादिच्चमिवन्तलिक्खे।"

("जैसे लाल कमल या सुगन्धित कोकनद आकाश में प्रकाशमान् सूर्य को देख सुगन्धित और प्रफुल्लित होता है, उसी प्रकार आकाश में तपने वाले सूर्य के सदृश प्रकाशयुक्त अंगिरस गोत्रीय (—बुद्ध) को देखो।")

इस एक गाथा को चार महीनों में भी न सीख सका। यह भिक्षु (पूर्व में) **काश्यप सम्यक् सम्बुद्ध** के समय प्रव्रजित हुआ था। (अपने) बुद्धिमान् (होने के अभिमान में) एक मन्द-बुद्धि भिक्षु के पाँती (=बुद्ध-वचन) सीखने के समय उसका मजाक उड़ाया। उस परिहास से उस भिक्षु को इतनी लज्जा आई

[1] पिण्डपातिक—भिक्षा पर ही निर्भर रहने वाले।

[2] भिक्षु (=श्रामणेर) की प्रव्रज्या के समय केस, लोम, नख, दन्त तथा त्वच्, इन पाँच शब्दों का सांकेतिक उपदेश।

[3] बीस वर्ष से कम आयु रहने पर, कोई भी भिक्षु उपसम्पन्न नहीं हो सकता।

कि वह भिक्षु न पाठ ही याद कर सका, न स्वाध्याय ही कर सका। उसी कर्म के फल से (इस जन्म में) वह भिक्षु प्रव्रजित होते ही मन्दबुद्धि हो गया। याद किये पद को वह अगले पद के सीखते समय भूल जाता था। उस समय एक ही गाथा को कण्ठस्थ करने का प्रयत्न करते उसे चार महीने बीत गये। तब उसे **महापन्थक** ने कहा—"पन्थक! तू इस धर्म (=शासन) के योग्य नहीं है। चार महीने में एक गाथा भी तू नहीं सीख सका; तो प्रव्रज्या का उद्देश्य किस प्रकार पूरा करेगा? निकल यहाँ से"—(कह) विहार से निकाल दिया।

बुद्ध शासन के प्रति स्नेह से **चुल्लपन्थक** गृहस्थ न होना चाहते थे। **महापन्थक** उस समय भोजन-प्रबन्धक (=**भत्त उद्देसक**) थे। (एक दिन) **कौमार-भृत्य जीवक**[1] वहुत गन्धमाला सहित अपने आम्रवन में गया, (वहाँ) बुद्ध की पूजा कर उसने धर्मोपदेश सुना। आसन से उठ, बुद्ध को प्रणाम कर, **महापन्थक** के पास जाकर पूछा—"भन्ते! (आजकल) भगवान् के साथ कितने भिक्षु हैं।"

"पाँच सौ भिक्षु हैं।"

"भन्ते! बुद्ध सहित पाँचों सौ भिक्षुओं के साथ कल आप मेरे घर पर भिक्षा ग्रहण करें।" स्थविर ने उत्तर दिया—

"उपासक! चुल्लपन्थक नामक (भिक्षु) मन्द-बुद्धि है, मूढ़ है, उसे छोड़ शेष सब का निमन्त्रण स्वीकार करता हूँ।"

चुल्लपन्थक ने सोचा—"स्थविर इतने भिक्षुओं का निमन्त्रण स्वीकार करते हैं; किन्तु मुझे बाहर रख कर, स्वीकार करते हैं। निस्सन्देह मेरे भाई का मन मेरी ओर बिगड़ा हुआ है। अब मुझे इस शासन (में रहने) से क्या (लाभ)? गृहस्थ हो कर दान आदि पुण्य करते जीवन व्यतीत करूँगा।"

सो वह एक दिन प्रातः ही गृहस्थ बनने की इच्छा से चल दिया। बुद्ध ने प्रातःकाल ही लोक के बारे में विचार करते, (अपने दिव्य-ज्ञान से) इस बात को जान लिया; और चुल्लपन्थक से भी पहले, उसके जाने के मार्ग के बरामदे में जाकर टहलने लगे। चुल्लपन्थक ने घर से निकल कर, बुद्ध को देख,

[1] बुद्ध का समकालीन प्रसिद्ध वैद्य।

(उनके) पास जा वन्दना की। बुद्ध ने पूछा—"चुल्लपन्थक! इस समय तू कहाँ जा रहा है।"

"भन्ते! मेरे भाई ने मुझे निकाल दिया है, इसलिये मैं गृहस्थ होने जा रहा हूँ।"

"चुल्लपन्थक! तू मेरे आधीन (=पास) प्रव्रजित हुआ है। यदि भाई ने निकाल दिया, तो तू मेरे पास क्यों नहीं आया? आ, गृहस्थ हो कर क्या करेगा? मेरे समीप रहना।" (कह) **चुल्लपन्थक** को ले कर **गन्धकुटी** के दरवाजे में बिठा कर कहा—"**चुल्लपन्थक** पूर्व दिशा की ओर मुंह करके इस कपड़े के टुकड़े पर '**रजो हरणं रजो हरणं**' कह, परिमार्जन करते हुए यहीं (बैठे) रहना।" (और फिर) ऋद्धि-बल से निर्मित कपड़े का एक परिशुद्ध टुकड़ा, उसे देकर, (उचित) समय की सूचना मिलने पर (स्वयं) भिक्षुसंघ सहित जीवक के घर जा कर बिछे आसन पर बैठे।

चुल्लपन्थक भी सूर्य की ओर देखते, तथा उस वस्त्र के टुकड़े से '**रजो हरणं रजो हरणं**' कह पोंछते बैठा रहा। पोंछते पोंछते उसका वह वस्त्र का टुकड़ा मैला हो गया। तब वह सोचने लगा—"यह वस्त्र का टुकड़ा अति परिशुद्ध (था), लेकिन इस शरीर के कारण, अपने पूर्व-स्वरूप को छोड़ इस प्रकार मैला हो गया।" (यह सोच) उसने "सभी संस्कार अनित्य हैं" का ख्याल कर, संस्कारों के क्षय और व्यय पर विचार करते हुए विदर्शना-भावना (=समाधि) बढ़ाई।

बुद्ध ने '**चुल्लपन्थक** का चित्त विदर्शना-भावना पर आरूढ़ हुआ' जान, '**चुल्लपन्थक**! तू यह ही मत सोच कि यह वस्त्र का टुकड़ा रज (=धूलि, मैल) से रञ्जित हो गया। तेरे अपने अन्दर जो राग आदि मैल हैं, उनको दूर कर।" कह, सामने बैठ प्रकाश फैलाते हुए से दिखाई देते हुए हो कर यह गाथायें कहीं—

> **"रागो रजो न च पन रेणु वुच्चति**
> **रागस्सेतं अधिवचनं रजोति,**
> **एतं रजं विप्पजहित्व भिक्खवो**
> **विहरन्ति ते विगतरजस्स सासने ॥**

दोसो रजो न च पन रेणु वुच्चति
दोसस्सेतं अधिवचनं रजोति,
एतं रजं विप्पजहित्व भिक्खवो
विहरन्ति ते विगतरजस्स सासने"।
मोहो रजो न च पन रेणु वुच्चति
मोहस्सेतं अधिवचनं रजोति,
एतं रजं विपज्जहित्व भिक्खवो
विहरन्ति ते विगतरजस्स सासने"।

"राग को (असल) रज (=धूलि) कहते हैं, न कि रेणु को। रज राग का पर्य्यायवाची शब्द है। भिक्षु इस रज से मुक्त हो कर रज-रहित के शासन में विचरते हैं।

द्वेष (=क्रोध) को रज कहते हैं, न कि रेणु को। रज द्वेष का पर्य्यायवाची शब्द है। भिक्षु इस रज से मुक्त हो कर रज-रहित के शासन में विचरते हैं।

मोह को रज कहते हैं, न कि रेणु को। रज मोह का पर्य्यायवाची शब्द है। भिक्षु इस रज से मुक्त हो कर, मोह-रहित के शासन में विचरते हैं।"

गाथाओं की समाप्ति पर **चुल्लपन्थक** को **प्रति सम्भिदा**—ज्ञान के सहित अर्हत्व प्राप्त हुआ; और **प्रति-सम्भिदा-ज्ञान** के साथ ही साथ **तीनों पिटकों** का भी ज्ञान हो गया।

उसने पूर्व (-जन्म) में राजा हो, नगर की प्रदक्षिणा करते हुए, माथे से पसीना गिरने पर, शुद्ध वस्त्र से माथे को पोंछा। वस्त्र मैला हो गया 'इस शरीर के कारण इस प्रकार का परिशुद्ध वस्त्र अपने पूर्व-स्वरूप को छोड़ मैला हो गया' सोच उसे, **'सब संस्कार (=निर्माण) अनित्य हैं'**[1]—ऐसी अनित्य-बुद्धि हुई। इसी कारण से (इस जन्म में भी) उस (की अर्हत्व-प्राप्ति) का साधन (=प्रत्यय) 'रजो हरणं' ही हुआ!

कौमारभृत्य जीवक बुद्ध के लिये दक्षिणा का जल लाया। बुद्ध ने 'जीवक! (अभी) विहार में भिक्षु है' कह हाथ से पात्र ढक दिया। महापन्थक ने कहा—

[1] **अनिच्चा वत संखारा।**

"भन्ते ! (अब) विहार में (और) भिक्षु नहीं है।"

शास्ता ने कहा—"जीवक ! है।"

जीवक ने आदमी भेजा, 'भणे ! जाओ, देखो तो विहार में भिक्षु है या नहीं ?'

उस समय चुल्लपन्थक ने, "मेरा भाई 'विहार में भिक्षु नहीं है' कहता है, सो उसे विहार में भिक्षुओं का होना दिखाऊँगा"—सोच, सारे आम्रवन को भिक्षुओं से भर दिया। कुछ भिक्षु चीवर-कर्म (चीवर का सीना) कर रहे थे। कुछ भिक्षु चीवर रँग रहे थे। कुछ मिल कर पाठ कर रहे थे। इस प्रकार एक दूसरे से भिन्न हज़ारों भिक्षु बना दिये। उस आदमी ने बहुत से भिक्षुओं को देख, लौट कर जीवक से कहा—"आर्य ! सारा आम्रवन भिक्षुओं से भरा पड़ा है।" उस समय चुल्लपन्थक स्थविर—

"सहस्सक्खत्तुं अत्तानं निम्मिनित्वान पन्थको,
निसीदम्बवने रम्मे याव कालप्पवेदना" ॥

[चुल्लपन्थक अपने को भिन्न भिन्न हज़ार प्रकार का बना, (भोजन के) समय की सूचना मिलने तक रमणीय आम्रवन में बैठे रहे।]

तब बुद्ध ने उस पुरुष से कहा—"विहार जाकर कहो कि शास्ता चुल्लपन्थक को बुलाते हैं।"

उसके जाकर वैसा कहने पर, सहस्रों मुखों से "मैं चुल्लपन्थक, मैं चुल्लपन्थक", की (आवाज) उठी।

आदमी ने लौट कर कहा—"भन्ते ! सब चुल्लपन्थक ही हैं।"

"अच्छा ! तू जाकर, जो पहले बोले मैं चुल्लपन्थक हूँ, उसका हाथ पकड़ लेना। बाकी सब अन्तर्धान हो जायेंगे।"

उस (आदमी) ने वैसा ही किया। उसी समय हज़ार के हज़ार भिक्षु अन्तर्धान हो गये। स्थविर आदमी के साथ आये। बुद्ध ने भोजन के बाद जीवक को बुला कर कहा—"जीवक ! चुल्लपन्थक का पात्र ग्रहण कर। चुल्लपन्थक तुझे (दान-) अनुमोदन करेगा।"

जीवक ने वैसा ही किया। स्थविर ने सिंहनाद करते हुए तरुण-सिंह की तरह **तीनों पिटकों** का सारांश निकाल कर अनुमोदन किया।

बुद्ध भिक्षु-संघ के साथ आसन से उठ, विहार में गये। वहाँ भिक्षुओं ने (अपना माध्यान्हिक) सन्मान प्रदर्शित किया। फिर आसन से उठ कर (भगवान् ने) गन्धकुटी के सामने खड़े हो, भिक्षुसंघ को सुगतोपदेश (=बुद्धोपदेश) दे, **कर्मस्थान**[1] बता, भिक्षुसंघ को उत्साहित कर, सुगन्धित गन्धकुटी में प्रवेश कर दाहिनी करवट लेट सिंह-शय्या से शयन किया। तब शाम को, धर्म-सभा में, भिक्षु इधर उधर से एकत्र हुए। लाल वानात की कनात पसारते से, बैठ कर, वह बुद्धता के गुण को वर्णन कर रहे थे—"आयुष्मानो! महापन्थक ने चुल्लपन्थक की प्रवृत्ति (=अध्यास) न जानी; और (यह चार महीनों में एक भी गाथा कण्ठस्थ न कर सका, इसलिये, मूढ़ है सोच विहार से निकाल दिया। लेकिन सम्यक् सम्बुद्ध ने अतुलनीय धर्मराज होने के कारण, प्रातःकाल और मध्यान्ह के भोजन के समय के भीतर ही उसे प्रतिसम्भिदा-ज्ञान सहित अर्हत्व प्रदान कर दिया; और प्रति-सम्भिदा-ज्ञान के साथ ही उसे त्रिपिटक (का ज्ञान) भी आ गया। अहो ! बुद्धों के बल की महानता !"

तब भगवान् ने यह जान कि धर्म-सभा में इस प्रकार की बातचीत हो रही है, सोचा कि आज मुझे भी वहाँ जाना चाहिए। उन्होंने बुद्ध-शय्या से उठ सुरक्त संघाटी धारण की; विजली के सदृश (चमकदार) पट्टी (=काय बंधन) को बाँधा; लाल बानात (कम्बल) सदृश अपने महा-चीवर को पहना; और फिर सुगन्धित गन्धकुटी से निकले। मस्त हाथी का पीछा करने वाले सिंह के समान, अनन्त बुद्ध-लीला के साथ, वह धर्म-सभा में पहुँचे। (वहाँ सभा में जाकर) अलंकृत मण्डप के बीच में अच्छी तरह विछाये श्रेष्ठ बुद्धासन पर चढ़, छः वर्ण की बुद्ध-किरणें फैलाते, समुद्र-गर्भ को प्रकाशित करने वाले, युगन्धर पर्वत के शिखर पर स्थित बाल-सूर्य्य की भाँति, आसन के बीच में विराजमान् हुए। सम्यक् सम्बुद्ध के आते ही भिक्षु संघ बातचीत छोड़ चुप हो गया। शास्ता ने मृदु, मैत्रीपूर्ण चित्त से परिषद् को देख कर सोचा—"यह परिषद् अति सुन्दर लगती है। किसी एक में भी हाथ की चञ्चलता नहीं; पाँव की चञ्चलता नहीं; खाँसने का शब्द वा छींकने का शब्द नहीं। सभी बुद्ध का

[1] **योग विधियाँ।**

गौरव करने वाले हैं। सभी बुद्ध के तेज से प्रभावित हैं। मेरे आयु-कल्प तक भी चुपके रहने पर, यह पहले बोलना आरम्भ न करेंगे। मुझे ही बातचीत आरम्भ करने का विषय ढूँढ़ना चाहिए।" अपने ही प्रथम बोलने का निश्चय कर, भगवान् ने मधुर ब्रह्म-स्वर से भिक्षुओं को आमन्त्रित कर पूछा—"भिक्षुओ! इस समय किस बातचीत में लगे थे? इस समय क्या कथा चल रही थी?"

"भन्ते! यहाँ हम कोई और फजूल (=तिरश्चीन-कथा) बात नहीं कर रहे थे। हम यहाँ बैठे आपका गुणानुवाद ही कर रहे थे, कि "आयुष्मानो! महापन्थक ने चुल्लपन्थक की प्रवृत्ति......अहो! बुद्धों के बल की महानता!!!"

शास्ता ने भिक्षुओं की बात सुनकर कहा—"भिक्षुओ! इसी जन्म में चुल्लपन्थक ने मेरे कारण धर्म में महानता (नहीं) प्राप्त की है, पूर्व जन्म में भी मेरे कारण उसने भोगों (=ऐश्वर्य्य) में महानता प्राप्त की थी।"

भिक्षुओं ने भगवान् से, उस बात को प्रकट करने की प्रार्थना की। तब भगवान् ने पूर्व-जन्म की छिपी हुई बात को प्रकट किया—

ख. अतीत कथा

पूर्व काल में, **काशी** राष्ट्र के, **वाराणसी** (नगर) में ब्रह्मदत्त (राजा) के राज्य करते समय, बोधिसत्त्व एक सेठ परिवार में उत्पन्न हुए थे। वयस्क होने पर **श्रेष्ठी**[1] (=सेठी) का पद पा **चुल्लसेठी** नाम से प्रसिद्ध हुए। वह पण्डित थे, =व्यक्त थे, सब लक्षणों के जानकार थे। एक दिन उन्होंने राजा की सेवा में जाते समय गली में एक मरे चूहे को देखा। उसी समय नक्षत्र का विचार करके कहा—बुद्धिमान (चक्षुमान्) कुलपुत्र इस चूहे को ले जाकर, (अपने) परिवार का पालन कर सकता है; अथवा जीविकोपार्जन के पेशे (=कर्मान्त) में लगा सकता है।

एक दरिद्र कुलपुत्र ने श्रेष्ठी की बात सुन, "यह बिना जाने नहीं कह रहा

[1] उस समय का एक राजकीय पद जो कि नगर के अधिक धनी पुरुष को मिलता था।

है" (सोच) उस चूहे को एक दुकान पर ले जा बिल्ली के (खाने के) लिये दे डाला। उसके लिए उसे एक **काकणी** (=कार्षापण का आठवाँ हिस्सा) मिली। उस **काकणी** से उसने गुड़ खरीदा। फिर एक बरतन में पानी ले जंगल से आते हुए मालियों को देख, उन्हें थोड़ा थोड़ा गुड़ और पानी देने लगा। उन्होंने उसे एक एक मुट्ठी फूल दिये। अगले दिन वह उन फूलों को बेच कर प्राप्त किये मूल्य से, फिर गुड़ और पानी का घड़ा ले कर, पुष्प-उद्यान में ही चला गया। मालियों ने उसे आधे चुने पुष्प-वृक्ष दे दिये।

थोड़े समय में इस उपाय से उसने आठ **कार्षापण** प्राप्त कर लिये। एक दिन ऐसा हुआ कि आँधी आई; और हवा से राज्योद्यान में बहुत सी सूखी लकड़ी, शाखायें और पत्ते गिर पड़े। माली नहीं जानता था कि उनको कैसे हटवाये। उसने आकर माली से कहा—"यदि यह लकड़ी-पत्ते मुझे दो, तो मैं इन सब को यहाँ से उठवा ले जाऊँ।" "आर्य! ले जाओ।" (कह) उसने स्वीकार कर लिया। तब वह **चुल्ल-अन्तेवासिक** (=छोटा शिष्य) छोटे लड़कों के खेलने की जगह पर गया। उन्हें (थोड़ा थोड़ा) गुड़ दे, थोड़ी ही देर में लकड़ी-पत्ते उठवाकर उद्यान के द्वार पर ढेर लगवा लिया। उस समय राजकीय कुम्हार राज-परिवार के वर्तनों को पकाने के लिए लकड़ी ढूँढ़ रहा था। राजोद्यान के द्वार पर जा उसने उन (लकड़ी-पत्तों) को देखा। उन्हें खरीद लिया। उस दिन **चुल्ल-अन्तेवासिक** को लकड़ी के बेचने से सोलह **कार्षापण** और चाटी तथा दूसरे पाँच वर्तन मिले। (इस प्रकार) धीरे धीरे उसके पास चौबीस कार्षापण हो गये। उसने सोचा 'मेरे लिये यह एक (अच्छा) ढंग है।' वह नगर-द्वार के समीप एक पानी की चाटी रख पाँच सौ घसियारों (=तृण-हारकों) को पानी पिलाने लगा। वे पूछने लगे "सौम्य, तू ने हमारा बहुत उपकार किया है। हम तेरे लिये क्या करें?"

"काम पड़ने पर कहूँगा (करना)"—कह, इधर उधर घूमते हुए, उसने **स्थलपथकर्मिक** (स्थल-मार्ग के कर्मचारी)[1] से और जल-मार्ग के कर्मचारी[1] (=**जलपथकम्मिक**) से मित्रता कर ली।

[1] **उस समय के राज-पदाधिकारी।**

(एक दिन) **स्थलपथकर्मिक** ने उससे कहा—"कल इस नगर में, घोड़ों का व्यापारी, पाँच सौ घोड़े ले कर आने वाला है।" उसने उसकी बात सुन घसियारों से कहा—"आज मुझे (सब जने) एक एक घास की पूली (=तृण-कलाप) दो, और मेरा घास न बिकने तक, अपना घास न बेचो।" उन्होंने 'अच्छा' कह स्वीकार किया और घास के पाँच सौ पूले लाकर, उसके घर पर डाल दिये। घोड़ों के व्यापारी ने सारे नगर में (ढूँढ़ा)। किसी दूसरी जगह घोड़ों के लिये उसे चारा न मिला। (अन्त में) उसे एक सहस्र देकर, उसने (वह) घास खरीदी।

कुछ दिन बाद, उसके जलपथकर्मिक मित्र ने कहा कि घाट (=**पत्तन-बन्दरगाह**) पर बड़ी नाव आई है। उसने सोचा 'यह एक (अच्छा) मौका है' और आठ कार्षापण में सब सामान से सुसज्जित एक रथ किराये पर लिया। बड़ी सजधज के साथ नाव के घाट पर जा, नाविक को एक अँगूठी पेशगी दे (उससे) थोड़ी दूर पर, क़नात तनवा, (भीतर) बैठ, आदमियों से कह दिया "जब बाहर से व्यापारी आयें, तो उन्हें तीन पहरों से लिवा कर सूचित करना।"

"नाव आई है" सुन, **बाराणसी** के सौ व्यापारी सामान खरीदने के लिए आये। 'यहाँ से तुम्हें सामान नहीं मिल सकता, अमुक स्थान के महान् व्यापारी ने पेशगी दी है', सुन, वह उसके पास आये। सेवकों ने पूर्व आज्ञा के अनुसार उन्हें तीन पहरों में से लिवा कर सूचना दी।

वे व्यापारी सौ थे। उनमें से प्रत्येक ने एक एक सहस्र देकर, उसे नाव में भागीदार बनाया। फिर एक एक सहस्र देकर, अपने अपने हिस्से (=के माल) को छुड़ा लिया। (इस प्रकार) चुल्ल-अन्तेवासिक दो लाख ले बाराणसी आया। कृतज्ञता प्रकट करने की इच्छा से वह एक लाख साथ ले चुल्लसेठी के पास गया। श्रेष्ठी ने पूछा—"तात ! क्या करके तू ने यह धन कमाया।"

उसने कहा—"आपके ही बताये उपाय से चार महीने के अन्दर यह धन कमाया।" और मरे चूहे से आरम्भ करके सब कहानी कह डाली। चुल्लक-महासेठी ने 'इस प्रकार के तरुण को किसी दूसरे के पास छोड़ना अच्छा नहीं'; सोच उसे अपनी तरुण कन्या दे सारे परिवार का मालिक बना दिया।

श्रेष्ठी की मृत्यु के बाद, उसे उस नगर के श्रेष्ठी का पद प्राप्त हुआ। बोधिसत्त्व भी कर्मानुसार परलोक सिधारे। सम्यक् सम्बुद्ध ने यह धर्मोपदेश

कह, बुद्ध होने की अवस्था में यह गाथा कही—

अप्पकेनापि मेधावी पाभतेन विचक्खणो,
समुट्ठापेति अत्तानं अणुं अग्गिं व सन्धमं ।

[(चतुर) मेधावी (पुरुष) थोड़ी सी भी आग को फूँक मारकर बढ़ा लेने की तरह, थोड़े से भी मूलधन से अपने को उन्नत कर लेता है ।]

इसमें '**अप्पकेनापि**' का अर्थ है थोड़े से भी =परिमित से भी। **मेधावी**= प्रज्ञावान् । **पाभतेन**=सामान का मूल्य । **विचक्खणो**=व्यवहार-कुशल । **समुट्ठापेति अत्तानं** का अर्थ है बहुत सा धन तथा यश कमा कर, उसपर अपने को प्रतिष्ठित करता है। कैसे ? **अणुं अग्गिं व सन्धमं,** जैसे बुद्धिमान् आदमी थोड़ी सी आग को भी क्रम से गोबर का चूरा आदि डाल कर, तथा मुँह से फूंक मारकर उठा लेता है, बढ़ा लेता है, बड़ा अग्नि-पुञ्ज बना लेता है। उसी प्रकार बुद्धिमान् मनुष्य थोड़ा भी मूल प्राप्त कर, नाना (प्रकार के) उपायों से धन और यश की वृद्धि करता है, और वृद्धि कर, उसपर अपने को प्रतिष्ठित करता है अथवा उस महान् धन और यश से अपने को उठाता है, प्रसिद्ध करता है, मशहूर करता है।"—यह अर्थ है।

इस प्रकार भगवान् ने, "भिक्षुओ ! इस जन्म में चुल्लपन्थक ने मेरे कारण धर्म में धर्म की महानता को प्राप्त किया, और पूर्व जन्म में मेरे कारण भोगों (=ऐश्वर्य) की महानता तथा यश की महानता को प्राप्त किया" कह, इस धर्मोपदेश को स्पष्ट कर, दोनों कहानियाँ सुना, तुलना करके जातक का सारांश निकाल दिखाया—"उस समय का **चुल्लअन्तेवासिक** (यही) **चुल्लपन्थक** था; और **चुल्लकमहासेट्ठी** तो मैं (स्वयं) ही था" कह देशना समाप्त की।

५. तण्डुलनालि जातक

'**किमग्घति तण्डुलनालिका,** तण्डुल-नालि का क्या मूल्य है ? यह (उपदेश) बुद्ध ने **जेतवन** में विहार करते समय **लाल-उदायी** स्थविर को उद्देश करके कहा।

क. वर्तमान कथा

उस समय **मल्लपुत्र** आयुष्मान् **दब्ब** संघ के भोजन-प्रबन्धक (=भत्तुद्दे-सक) थे। जब प्रातःकाल वह भोजन की **शलाकायें**[1] बाँटते तो लाल-उदायी स्थविर को, किसी दिन अच्छा भोजन मिलता, किसी दिन खराब। जिस दिन उन्हें खराब भोजन मिलता, वह भोजन की शलाकायें बाँटने के स्थान पर गड़बड़ करते; और कहते 'क्या दब्ब ही शलाका देना जानता है, हम नहीं जानते'। उसके शलाका की जगह पर गड़बड़ करने से उसे ही शलाकाओं की डलिया दे दी गई, "हन्त ! लो तुम ही शलाकायें बाँटो।" उस दिन से वह ही संघ को (भोजन की) शलाकायें बाँटने लगा। बाँटते समय वह न जानता था—यह अच्छे भोजन (की शलाका) है और यह खराब भोजन (की शलाका) है। यह भी न जानता था—अमुक वर्ष की[2] आयु तक के भिक्षुओं को अच्छा भात दिया जा चुका है, और अमुक-वर्ष की आयु तक के भिक्षुओं को खराब। 'अमुक-वर्षों' की सीमा (=ठितिका) करते हुए भी 'अमुक-वर्ष-तक की सीमा की जा चुकी है'—का ख्याल न रखता था। भिक्षुओं के स्थान के बारे में, 'इस स्थान पर,

[1] गृहस्थों की ओर से परिमित आदमियों का निमंत्रण होने पर भिक्षुओं के चुनने में पेंसिल जैसी लकड़ी की शलाकाओं का वितरण होता था।

[2] भिक्षुओं की आयु उनकी उपसम्पदा से गिनी जाती है।

इस (आयु)-सीमा तक के भिक्षु ठहरें', इस स्थान पर, इस सीमा तक के भिक्षु ठहरें, करके पृथ्वी या दीवार पर रेखा खींचता था। अगले दिन शलाका की जगह में भिक्षु (पहले दिन से) कम हो जाते वा अधिक हो जाते। उनके कम होने पर रेखा नीचे हो जाती, अधिक होने पर ऊपर। वह सीमा (=ठितिका) का ख्याल न कर, रेखा के चिन्ह के अनुसार शलाका बाँटता। तब उसे भिक्षु कहते—"आयुष्मान् लालउदायी ! रेखा चाहे ऊपर हो, चाहे नीचे, लेकिन अच्छे भोजन मिल चुकने की सीमा अमुक-वर्ष के भिक्षुओं तक है, और खराब-भोजन मिल चुकने की सीमा अमुक-वर्ष के भिक्षुओं तक।" (लाल-उदायी) खीझ कर उत्तर देता—"यदि ऐसा है, तो यह रेखा यहाँ किस लिए है ? मैं तुम्हारा विश्वास थोड़े ही करूँगा। मैं (तो) इस लकीर का विश्वास करूँगा।"

तब नए भिक्षुओं ने और श्रामणेरों ने उसे, "(आयुष्मान् ! लालउदायी) तेरे शलाका बाँटने पर भिक्षुओं के लाभ की हानि होती है। तू बाँटने के योग्य नहीं। यहाँ से निकल" कह, शलाका-बाँटने की जगह से निकाल दिया। उस समय शलाका की जगह पर बड़ा कोलाहल हुआ।

उसे सुन बुद्ध ने **आनन्द** स्थविर से पूछा—"**आनन्द** ! शलाका की जगह में बड़ा कोलाहल है। यह क्या शोर है ?" स्थविर ने तथागत को वह बात बताई।

शास्ता ने कहा—"आनन्द ! अपनी मूर्खता से **लालउदायी** न केवल इस जन्म में दूसरों के लाभ की हानि कर रहा है; वल्कि (इसने) पहले भी ऐसा किया है।" स्थविर ने इस बात को स्पष्ट करने के लिये प्रार्थना की। भगवान् ने पू ं-जन्म की गुप्त बात प्रकट की—

ख. अतीत कथा

"पूर्व समय में, **काशी** राष्ट्र के **बाराणसी** (नगर) में **ब्रह्मदत्त** (नामक) राजा राज्य करते थे। उस समय हमारे वोधिसत्त्व उस (राजा) के **अर्घ-कारक** (=मूल्य निश्चित करने वाले appraiser of the prices) थे। (वे) हाथी, घोड़े, मणि, सुवर्ण आदि का मूल्य (निश्चित) करते और मूल्य

करवा चीज़ के मालिकों को चीज़ का उचित मूल्य दिलवाते थे। लेकिन राजा लोभी था, उसने लोभी-स्वभाव होने के कारण सोचा—"यदि यह अर्घकारक मूल्य (निश्चित) करता रहा, तो थोड़े ही समय में मेरे घर का धन नष्ट हो जायेगा। (इसलिए) किसी दूसरे को अर्घकारक रक्खूँगा।" उसने खिड़की खोल कर राजांगन में देखते हुए, एक लोभी, मूर्ख, गँवार आदमी को वहाँ से जाते देख कर सोचा—"यह मेरा दाम लगाने का काम कर सकेगा।" और फिर उसे बुला कर पूछा—"अरे! क्या तू हमारा दाम लगाने का काम कर सकेगा?"

"देव! कर सकता हूँ"। राजा ने अपने धन की रक्षा करने के लिए उस मूर्ख आदमी को अर्घ-कारक के पद पर स्थापित किया। उस समय से वह मूर्ख अर्घ-कारक हाथी, घोड़े आदि का दाम लगाते वक्त, दाम को घटा कर जैसा मन में आता, वैसा कहता था। उसके उस पद पर प्रतिष्ठित होने के कारण, जो कुछ वह कहता, वही चीज़ों का मूल्य होता।

उस समय एक सरहद्दी (=**उत्तरापथक**) घोड़े का व्यापारी पाँच सौ घोड़े लेकर आया। राजा ने उस आदमी को बुलवाकर घोड़ों का दाम लगवाया। उसने पाँच सौ घोड़ों का दाम एक **तण्डुल नालिका** किया और फिर "घोड़ों के व्यापारी को एक तण्डुल नालिका दे दो" कह, घोड़ों को (राजकीय) अश्व-शाला में भिजवा दिया। घोड़े के व्यापारी ने पुराने **अर्घ-कारक** के पास जा, उसे समाचार सुना कर पूछा, कि अब क्या करना चाहिए?

उसने उत्तर दिया—"उस आदमी को रिशवत देकर, उससे कहो—कि हमारे घोड़ों का मूल्य एक तण्डुल-नालिका है; यह तो हमें मालूम हो गया, अब हम यह जानना चाहते हैं कि आपसे जो तण्डुल-नालिका मिली है, उसका क्या मूल्य है? क्या आप राजा के सम्मुख खड़े हो कर, कह सकेंगे कि तण्डुल-नालिका का क्या मूल्य है? यदि कहे कि 'कह सकता हूँ' तो उसे राजा के पास लेकर आओ। मैं भी वहाँ आऊँगा।"

घोड़ों के व्यापारी ने "अच्छा" कह बोधिसत्त्व के वचन को स्वीकार कर, **अर्घ-कारक** को रिशवत दे, वह बात कही। उसने रिशवत पाकर उत्तर दिया—"हाँ, तण्डुल-नालिका का मोल करा सकता हूँ।" "तो राज-कुल चलें" कह, उसे ले, राजा के पास आये। बोधिसत्त्व तथा दूसरे बहुत से अमात्य भी आ गये।

घोड़ों के व्यापारी ने राजा को प्रणाम करके कहा—"देव ! यह तो मैंने जाना कि पाँच सौ घोड़ों का मूल्य एक तण्डुल-नालिका है, अब अर्घ-कारक से पूछें कि एक तण्डुल-नालिका का क्या मूल्य है ?"

राजा ने रहस्य न जानने के कारण पूछा—'अरे अर्घकारक ! पाँच सौ घोड़ों का क्या मूल्य है ?"

"देव ! तण्डुल-नालिका।"

"अरे ! पाँच सौ घोड़ों का तो मूल्य तण्डुल-नालिका है, उस तण्डुल-नालिका का क्या मूल्य है ?" उस मूर्ख ने उत्तर दिया—'तण्डुल-नालिका का मूल्य है भीतर-बाहर (=सब) वाराणसी।"

राजा का पक्ष लेकर, उसने पहले तो घोड़ों का मूल्य एक तण्डुल-नालिका (स्थिर किया) अब घोड़ों के व्यापारी से रिशवत लेकर, उस तण्डुल-नालिका का मूल्य अन्दर-बाहर (=सब) **वाराणसी** किया।

"किमग्घति तण्डुलनालिकाय
अस्सान मूलाय वदेहि राज !
बाराणसिं सन्तरबाहिरन्तं
अयमग्घति तण्डुलनालिका।।"

[राजन् ! घोड़ों की कीमत, इस तण्डुल-नालिका का क्या मूल्य है ? इस तण्डुल-नालिका का मूल्य अन्दर-बाहर सहित (सारी) वाराणसी है]

उस समय **वाराणसी** का शहर पनाह (प्राकार) **बारह योजन** का था, (और) उसके अन्दर-बाहर तो **तीन सौ योजन** का देश (=राष्ट्र) था। सो, उस मूर्ख ने अन्दर और बाहर सहित इतनी बड़ी वाराणसी को तण्डुल-नालिका का मूल्य बताया।

इसे सुन अमात्य ताली पीट कर हँसते हुए कहने लगे—"हम आज तक यही समझते रहे कि पृथ्वी और राज्य अमूल्य (होते) हैं। (लेकिन आज मालूम हुआ) कि इतने बड़े राज्य सहित वाराणसी का मूल्य एक तण्डुल-नालिका मात्र है। अहो ! मूल्य करने वाले की प्रज्ञा ! इतने समय तक यह अर्घ-कारक कहाँ (छिपे) रहे। हमारा राजा ही (इनके) योग्य नहीं है।"

उस समय राजा ने लज्जित हो, उस मूर्ख को निकाल, बोधिसत्त्व को ही

अर्घ-कारक का पद दिया। (समय आने पर) बोधिसत्त्व भी कर्मानुसार (परलोक को) गये।

शास्ता ने इस धर्म-उपदेश की कहानी कह कर, तुलना कर, जातक का सारांश निकाल दिखाया—"उस समय का गँवार, मूर्ख अर्घकारक (आज कल यह) लालउदायी है। बुद्धिमान् अर्घकारक तो मैं (स्वयं) ही था" कह धर्म-देशना समाप्त की।

६. देवधम्म जातक

"**हिरि ओत्तप्प सम्पन्ना**=लज्जा और भय से युक्त" यह (धर्मदेशना) भगवान् ने **जेतवन** में विहार करते समय, एक बहुत सामान रखने वाले भिक्षु को लेकर कही।

क. वर्तमान कथा

उसने प्रव्रजित होने से पहले अपने लिए परिवेण, अग्निशाला, भाण्डागार बनवा कर उस भाण्डागार को घी-चावल आदि से भर कर प्रव्रज्या ग्रहण की। फिर प्रव्रजित होने पर, वह अपने नौकरों को बुलवा (उनसे) यथारुचि भोजन पकवा कर खाता था। उसके पास सामान बहुत था। रात को दूसरा ओढ़न-बिछावन होता था, दिन को दूसरा। वह विहार के एक सिरे पर बसता था।

एक दिन वह चीवर, बिछौने आदि को निकाल कर परिवेण में फैला कर सुखवा रहा था। उसी समय, जनपद (=देश) के बहुत से भिक्षु शयनासन देखते घूमते हुए (उस) परिवेण में पहुँचे। वे चीवर आदि देख पूछने लगे—"यह किसके हैं?" उसने उत्तर दिया, "आवुसो! ये मेरे हैं।"

"आवुस! यह भी चीवर, यह भी चीवर, यह भी ओढ़न, यह भी ओढ़न, यह भी बिछावन, यह भी बिछावन—यह सब तुम्हारे हैं?"

"हाँ ! ये सब मेरे हैं ।"

"आवुस ! भगवान् ने (अधिक से अधिक) तीन चीवरों (के रखने) की आज्ञा दी है । इस प्रकार के निर्लोभी बुद्ध के धर्म में साधु हो कर (भी) तू इतना सामान रखता है ?" 'चल, तुझे भगवान् के पास ले चलें' कह उसे शास्ता के पास ले गये ?

शास्ता ने देख कर पूछा—"भिक्षुओ ! क्यों जबरदस्ती इस भिक्षु को ले कर आये हो ?"

"भन्ते ! यह भिक्षु बहुत भाण्ड बटोरे है, बहुत सामान रक्खे है ।"

"भिक्षु ! क्या तू सचमुच बहुत सामान रखता है ?"

"भगवान् ! हाँ, सचमुच ।"

"भिक्षु ! तू किस लिए, बहु-भाण्डिक हो गया ? क्या मैं निर्लोभता, संतोष. . .एकान्त-चिन्तन और अभ्यास की प्रशंसा नहीं करता ?"

शास्ता की इस बात को सुन वह भिक्षु क्रुद्ध हो, "तो अच्छा ! अब से मैं इस तरह रहूँगा" कह, ऊपर पहने चीवर को उतार, सभा के बीच में केवल एक चीवर (=अन्तरवासक) धारी हो कर खड़ा हो गया ।

तब शास्ता ने उसे सँभालते हुए पूछा—'भिक्षु ! क्या तू ने जल-राक्षस के जन्म में लज्जा तथा निन्दा-भय के साथ विहार करते हुए बारह वर्ष नहीं विताये ? तो फिर अब इस गौरव-पूर्ण बुद्ध धर्म में प्रव्रजित होकर तू किस लिए चार प्रकार की परिषद् के बीच में पहने हुए चीवर को छोड़, लज्जा-भय त्याग खड़ा है ?"

वह शास्ता के वचन को सुन, लज्जा तथा निन्दा-भय से युक्त हो, उस चीवर को पहन, शास्ता को प्रणाम कर, एक ओर बैठ गया । भिक्षुओं ने भगवान् से उस बात के प्रकट करने की प्रार्थना की । भगवान् ने पूर्व-जन्म की छिपी हुई बात प्रकट की—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में **काशी** देश में, **बाराणसी** (बनारस) में **ब्रह्मदत्त** राजा था । उस समय बोधिसत्त्व ने उस (राजा) की पटरानी की कोख से जन्म ग्रहण किया ।

नाम-करण के दिन उसका नाम **महिंसास** कुमार रक्खा। उसके खेल-कूद करते, राजा को एक और भी पुत्र हुआ, जिसका नाम **चन्द्रकुमार** रक्खा गया; लेकिन उसके खेल-कूद करते समय ही उसकी माता (बोधिसत्त्व-माता) मर गई। राजा ने दूसरी पटरानी बनाई। वह राजा की प्रिया तथा अनुकूल थी। राजा के सहवास से उसे एक पुत्र पैदा हुआ, जिसका नाम **सूर्य्य-कुमार** रक्खा गया। राजा ने पुत्र को देख, सन्तुष्ट हो, कहा—"भद्रे ! तेरे पुत्र को वर देता हूँ।" देवी ने 'इच्छा होने पर ग्रहण करूँगी' कह वर को अमानत रक्खा। (फिर) पुत्र के सयाने होने पर उसने राजा से कहा—"आपने पुत्र-जन्म के समय मुझे वर दिया था, अब मेरे पुत्र को राज्य दीजिये।"

'प्रज्वलित अग्निपुञ्ज के समान चमकते मेरे दो पुत्र हैं, (उन्हें छोड़ कर) तेरे पुत्र को राज्य नहीं दे सकता'—कह राजा ने इन्कार किया। लेकिन रानी को बार बार याचना करते देख, राजा ने सोचा, 'यह मेरे पुत्रों का बुरा भी सोच सकती है।' (इसलिये) पुत्रों को बुला कर कहा—"तात ! मैंने **सूर्य्यकुमार** के उत्पन्न होने के समय वर दिया था। अब उसकी माता राज्य माँगती है। मैं उसको नहीं देना चाहता। लेकिन स्त्री-जाति पापिन होती है, वह तुम्हारी बुराई भी सोच सकती है। इसलिए अभी तुम जंगल में चले जाओ, मेरे मरने पर आकर अपने कुल के आधीन (इस) नगर में राज्य करना।" (यह कह) रोते कुमारों के सिरों को चूम, (उन्हें जङ्गल में) भेज दिया।

पिता को प्रणाम कर उन्हें राज-प्रासाद से उतरते समय देख, **सूर्य्य-कुमार** को भी बात मालूम हो गई। 'मैं भी भाइयों के साथ जाऊँगा' (सोच) वह भी उनके साथ निकल पड़ा।

वह हिमालय में प्रविष्ट हुए। बोधिसत्त्व ने मार्ग से हट, वृक्ष के नीचे बैठ, सूर्य्यकुमार को बुला कर कहा—"तात ! सूर्य्य ! इस तालाव पर जाओ, वहाँ नहा, पानी पी, हमारे पीने के लिये भी कमल के पत्ते में पानी ले आओ। उस तालाव को **कुबेर** (=वैश्रवण) ने एक जल-राक्षस को दिया था; और कुबेर ने उस (राक्षस) को कह रक्खा था कि **देव-धर्म** जानने वालों को छोड़, अन्य जो कोई इस तालाव में उतरेंगे, वे (सब) तेरे आहार होंगे; (तालाब में) न उतरने वाले तेरे आहार नहीं होंगे।"

तब से वह राक्षस, जो उस तालाब में उतरते, उनसे **देवधर्म** पूछता।

जो न जानते, उनको खा जाता। **सूर्य्यकुमार** उस तालाब पर पहुँचा। बिना सोचे विचारे ही, उसमें उतरा। राक्षस ने उसे पकड़ कर पूछा—"तुझे **देवधर्म** मालूम है ?"

उसने उत्तर दिया—"हाँ जानता हूँ। **चाँद सूर्य्य** देव-धर्म हैं।"

"तू देव-धर्मों को नहीं जानता" (कह) उसने पानी में प्रवेश कर, उसे अपने वासस्थान पर ले जाकर रक्खा। बोधिसत्त्व ने उसे देर करता देख, **चन्द्र-कुमार** को भेजा। राक्षस ने उसे भी पकड़ कर पूछा—'तुझे देव-धर्म मालूम है ?' "हाँ जानता हूँ। चारों दिशायें देव-धर्म हैं।" राक्षस ने 'तू देव-धर्म को नहीं जानता' कह उसे भी पकड़ कर वहीं रक्खा।

उसके भी देर करने पर "कोई आफत पड़ी" सोच, **बोधिसत्त्व** अपने आप वहाँ पहुँच, दोनों (जनों) के उतरने के पद-चिन्ह देख, "यह तालाब राक्षस के अधिकार में होगा" (सोच) तलवार निकाल, (तीर-)कमान ले खड़े हो गये। जल-राक्षस ने बोधिसत्त्व को पानी में उतरते न देख जंगल में काम करने वाले मनुष्य का रूप धारण कर, बोधिसत्त्व से पूछा—"महाशय! रास्ते के थके तुम किस लिए इस तालाब में उतर, नहा, (पानी) पी, भिसें खा, फूल को धारण कर सुख पूर्वक (आगे) नहीं जाते ?"

बोधिसत्त्व ने उसे देख, सोचा, "यह वही यक्ष होगा" (और) यह जान कर पूछा—"क्या तू ने मेरे भाइयों को पकड़ रक्खा है ?"

"हाँ, मैंने (पकड़ रक्खा है)।"

"किस कारण से ?"

"इस तालाब में उतरने वालों पर मुझे अधिकार है।"

"क्या सब पर अधिकार है ?"

"जो देव-धर्म जानते हैं, उन्हें छोड़ बाकी सब पर अधिकार है ?"

"क्या तू देव-धर्म (जानना) चाहता है ? यदि चाहता है, तो मैं तुझ से देव-धर्म कहूँगा।"

"तो कहें, मैं देव-धर्मों को सुनूँगा।"

"मैं देव-धर्मों को कहने के लिए तैयार हूँ, लेकिन मेरा शरीर साफ नहीं है।"

यक्ष ने बोधिसत्त्व को नहलाया, भोजन करवाया, पानी पिलाया, फूल धारण कराया, सुगन्धियों का लेप कराया, फिर अलंकृत मण्डप के बीच आसन

प्रदान किया। बोधिसत्त्व ने आसन पर बैठ, यक्ष को पैरों में बिठा, 'तो, देवधर्मों को ध्यान-पूर्वक कान देकर सुनो' कह, इस गाथा को कहा—

हिरिओत्तप्पसम्पन्ना सुक्कधम्मसमाहिता,
सन्तो सप्पुरिसा लोके देव-धम्माति वुच्चेर ॥

[लज्जा और निन्दा-भय से युक्त, शुभ-कर्मों से युक्त (लोगों) को शान्त और सत्पुरुष देव-धर्म कहते हैं।]

यहाँ **हिरि ओत्तप्पसम्पन्ना** का अर्थ है हिरि (=लज्जा) और ओत्तप्प (=निन्दा-भय) से युक्त। इन (दो शब्दों) में, कायिक दुराचार आदि में जो लज्जा मानना है, वह हिरि (=ह्री) है। 'हिरि' लज्जा का ही पर्य्याय-वाची शब्द है। और उन्हीं (=कायिक दुराचार आदि) से जो तपना है, वह 'ओत्तप्प' है; पाप से उद्विग्न होने का यह पर्य्यायवाची शब्द है। सो हिरि (=लज्जा) अपने (अन्दर) से उत्पन्न होती है; ओत्तप्प (=निन्दा-भय) बाहरी (कारणों) से। हिरि का स्वामी (=आधिपत्य) खुद है; किन्तु ओत्तप्प का स्वामी लोक। हिरि में लज्जा का भाव रहता है; ओत्तप्प में निन्दा-भय का भाव। हिरि का लक्षण है (आत्म-)गौरव (आदि) का भाव, ओत्तप्प का लक्षण है दुष्कर्म (=वद्य) करने में भयभीत होना। सो (पुरुष) अपने (अन्दर) से उत्पन्न होने वाली 'हिरि' को चार कारणों से उत्पन्न करता है—जात (=जाति) का विचार करके, आयु का विचार करके, वीरता का विचार करके, तथा (अपनी) बहु-श्रुतता (=पाण्डित्य) का विचार करके। सो कैसे? (प्राणि-हिंसा आदि) पाप-कर्म (ऊँची) जात वालों का काम नहीं; यह **केवट** आदि नीच जातियों का काम है। वैसी (ऊँची) जात वाले को ऐसा कर्म करना अनुचित है—इस प्रकार जात का विचार कर प्राण-हिंसा आदि पापकर्म के न करते हुए, **हिरि** उत्पन्न करता है। पाप-कर्म बच्चों का काम है; सयाने पुरुष के लिए ऐसा करना अनुचित है; इस प्रकार आयु का विचार कर, प्राणि-हिंसा आदि पाप को न करते हुए, **हिरि** उत्पन्न करता है। पाप-कर्म दुर्बलों का काम है, मेरे जैसे वीर (पुरुष) को इस प्रकार का कर्म करना अनुचित है; इस प्रकार वीरता (=शूरभाव) का विचार कर प्राणि-हिंसा आदि पाप-कर्म को न करते हुए, **हिरि** उत्पन्न करता है। पाप-कर्म (करना) अन्धे-मूर्खों का काम है; पण्डितों का काम नहीं। (मेरे)

जैसे पण्डित, बहुश्रुत को इस प्रकार का कर्म करना अनुचित है। इस प्रकार बहुश्रुत-भाव का विचार कर, प्राणि-हिंसा आदि पाप-कर्म को न करते हुए, हिरि उत्पन्न करता है। इसी प्रकार अपने से उत्पन्न होने वाली 'हिरि' को चार कारणों से उत्पन्न कर, और उस हिरि को अपने चित्त में स्थापित कर, पाप-कर्म नहीं करता। इस प्रकार हिरि अपने (अन्दर) से उत्पन्न होने वाली होती है।

ओत्तप्प कैसे बाहर (के कारणों) से उत्पन्न होने वाला है? 'यदि तू पाप-कर्म करेगा, तो चारों प्रकार की सभा (=परिषद्) में निन्दा का भागी होगा—

"गरहिस्सन्ति तं विञ्ञू असुचिं नागरिको यथा
विवज्जितो सीलवन्तेहि कथं भिक्खु! करिस्ससि॥"

[विज्ञ लोग तेरी उसी प्रकार निन्दा करेंगे, जैसे नागरिक (लोग) गन्दगी की। सच्चरित्र भिक्षुओं द्वारा (अकेला) छोड़ दिये जाने पर, हे भिक्षु! तू कैसे करेगा?]

इस प्रकार विचार करने से बाहर (के कारणों) से उत्पन्न ओत्तप्प (=निन्दा-भय) के मारे, पाप-कर्म नहीं करता। इस प्रकार ओत्तप्प बाहर (के कारणों) से उत्पन्न होने वाला है।

हिरि (=लज्जा) का स्वामित्व कैसे अपने आप है? जब एक कुल-पुत्र अपने को अधिपति (=प्रधान), ज्येष्ठ मान कर सोचता है, मेरे जैसे श्रद्धा से प्रव्रजित, बहुश्रुत, धुताङ्ग[1] रखने वाले को पाप-कर्म करना अनुचित है, (और) यह सोच पाप-कर्म से बचा रहता है। इस प्रकार हिरि का स्वामी अपने आप है। इसीलिए भगवान् ने कहा है—"वह अपने को ही स्वामी करके, अकुशल को छोड़ता है, कुशल (=अच्छे) कर्म का अभ्यास करता है। सदोष को छोड़ता है, निर्दोष कर्म का अभ्यास करता है। अपने आपको पवित्र बनाये रखता है।[2]" ओत्तप्प का स्वामी लोक कैसे है? यहाँ एक कुल-पुत्र लोक को ही स्वामी (=अधिपति), ज्येष्ठ करके, पाप-कर्म से बचता है। जैसे कहा

[1] **अवधूतों के नियम, आरण्यक, पिण्डपातिक, पांसुकूलिक आदि होना।**
[2] **अंगुत्तर-निकाय, तिक निपात।**

है—"यह लोक-समूह महान् है। इस लोक-समूह में (ऐसे) श्रमण-ब्राह्मण हैं, जो ऋद्धिमान् हैं; दिव्यचक्षु (वाले) हैं, दूसरों के चित्त की बात जान लेने वाले हैं। वे (अपने) दूर से भी देख लेते हैं, और स्वयं पास होने पर भी नहीं दिखाई देते। वे (अपने) चित्त से, (दूसरों के) चित्त को जान लेते हैं। वे मुझे जान लेंगे (और कहेंगे), 'भो! देखते हो। इस श्रद्धा-पूर्वक घर से बेघर (हो), प्रव्रजित हुए कुल-पुत्र को, जो पाप बुरे-कर्मों से युक्त हो, विहरता है।" (और) ऐसे देवता भी हैं, जो ऋद्धि-मान् हैं, दिव्य-चक्षु (वाले) हैं, दूसरों के चित्त की बात जान लेने वाले हैं। वे तो दूर से भी देख लेते हैं, और स्वयं पास होने पर भी दिखाई नहीं देते। वे (अपने) चित्त से, (दूसरों के) चित्त को जान लेते हैं। वे मुझे जान लेंगे, (और कहेंगे)—"भो! देखते हो। इस श्रद्धा पूर्वक घर से बेघर (हो) प्रव्रजित हुए कुल-पुत्र को, जो पाप बुरे कर्मों से युक्त हो, विहरता है।" (इस प्रकार) वह लोक को ही स्वामी (=अधिपति) मान कर बुराइयों को छोड़ता है, भलाइयों का अभ्यास करता है, सदोष को छोड़ता है, निर्दोष-कर्म का अभ्यास करता है, अपने आपको पवित्र बनाये रखता है।[1] इस प्रकार ओत्तप्प का स्वामी लोक है।

'**हिरि** में लज्जा का भाव रहता है, **ओत्तप्प** में निन्दा-भय'—सो, यहाँ लज्जा का अर्थ है, लज्जा का आकार-प्रकार। इस भाव से जो युक्त हो, उसे हिरि (कहते हैं)। भय का अर्थ है नरक-भय, इस भाव से जो युक्त है, वह ओत्तप्प। ये दोनों (हिरि और ओत्तप्प) ही पाप के त्याग में कारण होते हैं। जैसे पाखाना-पेशाब करता हुआ कोई कुल-पुत्र, शरम खाने के योग्य किसी को देख कर, लज्जा करने लगे, शरम खाये; इसी प्रकार अपने-आप में लज्जा का भाव उत्पन्न होने पर, (व्यक्ति) पाप-कर्म नहीं करता। कोई नरक-गामी होने के भय से डर कर पाप नहीं करता। यहाँ यह उपमा है—'जैसे लोहे के दो गोलों में, एक शीतल हो, लेकिन मल लगा हुआ, दूसरा ऊष्ण अङ्गार-वर्ण। (उन दोनों में से) बुद्धिमान (आदमी) शीतल को मल लगा रहने के कारण घृणा के मारे नहीं ग्रहण करता, दूसरे को जलने के भय से। सो शीतल (गोले) के मल लगे

[1] अंगुत्तर निकाय, तिक निपात।

रहने के कारण, घृणा के मारे न ग्रहण करने की तरह अपने-आप में लज्जा उत्पन्न होने से पाप-कर्म का न करना, और ऊष्ण (गोले) के जलने के भय से, न ग्रहण करने की तरह, नरक के भय से पाप का न करना', जानना चाहिये।

ह्री। (=हिरि) का लक्षण है (आत्म-)गौरव (आदि) का भाव; **ओत्तप्प** का लक्षण है दुष्कर्म करने में भयभीत होना—ये दोनों भी पाप-कर्म के त्याग में ही कारण होते हैं। एक व्यक्ति अपनी जाति (=जात) की महानता का विचार कर, अपने शास्ता की महानता का विचार कर, अपनी विरासत की महानता का विचार कर, अपने गुरुभाइयों (=सब्रह्मचारियों) की महानता का विचार कर; (इन) चार कारणों से गौरव स्वभाव वाली ह्री को उत्पन्न कर पाप-कर्म से बचता है। दूसरा व्यक्ति आत्म-निन्दा के भय से, पर-निन्दा के भय से, दण्ड के भय से, दुर्गति के भय से—(इन) चार कारणों से दुष्कर्म करने में भय रूपी ओत्तप्प को उत्पन्न कर पाप-कर्म नहीं करता। यहाँ जाति की महानता आदि के विचार, तथा आत्म-निन्दा आदि के भय विस्तार से कहने चाहियें। इनका विस्तार **अंगुत्तर निकाय की अट्ठकथा** में आया है।

सुक्कधम्मसमाहिता (शुक्लधर्मसमाहित) का अर्थ है, इन हिरि तथा ओत्तप्प से ही आरम्भ करके, जितनी भी आचरणीय भलाइयाँ हैं, वे सब शुक्ल धर्म हैं; और वे संक्षेप में **चातुर्भूमिक लौकिक** तथा **लोकोत्तर** धर्म हैं—इन धर्मों से समाहित=समन्नागत=युक्त। **सन्तो सप्पुरिसा लोके**—काय-कर्मादि के शान्त होने से शान्त, कृतज्ञता=कृतवेदिता के कारण शोभायमान् पुरुष, सत्पुरुष। लोक—**संस्कार-लोक, सत्व (=प्राणि) लोक, ओकास (=स्थान) लोक, स्कन्ध-लोक, आयतन-लोक, धातु-लोक**—ये अनेक प्रकार के लोक हैं। सो 'एक लोक—सब सत्वों की स्थिति आहार पर निर्भर है....अट्ठारह लोक, अट्ठारह धातु-लोक',—इसमें संस्कार-लोक कहा गया है। **स्कन्ध-लोक** आदि सब उसके अन्तर्गत आ ही गये। यही लोक, परलोक, देव-लोक, मनुष्य-लोक आदि में सत्त्व-लोक कहा गया है—

यावता चन्दिमसुरिया परिहरन्ति दिसाभन्ति विरोचना,
ताव सहस्सधा लोको एत्थ ते वत्तति वसो ॥

[जहाँ तक चन्द्रमा तथा सूर्य्य घूमते हैं, प्रकाश से दिशाओं को प्रकाशित

करते हैं; वहाँ तक सहस्र (चक्रवाल) लोक हैं; और इस सारे लोक पर तेरा वश है ।]

इस गाथा में ओकास-लोक का वर्णन किया गया है। इनमें यहाँ मतलब है सत्व-लोक से। सत्व लोक में ही (जो) इस प्रकार के सत्पुरुष होते हैं, वे **देव-धम्माति वुच्चरे,** (=वे देव-धर्म कहलाते हैं)। इनमें देव तीन प्रकार के होते हैं—**सम्मुति-देव, उत्पत्ति-देव** और **विशुद्धि-देव**। **महासम्मत** के समय से लेकर, लोग (जिन जिन) राजा राजकुमार आदि को देव कह (करके) बुलाते हैं (=सम्मत करते हैं), **वे सम्मुति-देव**। देव-लोक में उत्पन्न हुए देव, उत्पत्ति-देव। क्षीणास्रव (=अर्हत्) **विशुद्धि-देव**। ऐसा कहा भी गया है—"सम्मुति-देव हैं राजा, महारानियाँ, (राज-)कुमार। उत्पत्ति-देव हैं भूमि के देवों से आरम्भ करके ऊपर के देवों तक। विशुद्धि-देव हैं बुद्ध, प्रत्येक-बुद्ध, क्षीणाश्रव।" इन देवों के धर्म हैं देव-धर्म। **वुच्च** का अर्थ है कहलाते हैं। हिरि तथा ओत्तप्प—यह दोनों कुशल-धर्मों के मल हैं। कुशल(-कर्म) रूपी सम्पत्ति से देव-लोक में उत्पत्ति होने से, और विशुद्धता का कारण होने से, कारण के अर्थ में ही, तीन प्रकार के देवों के धर्म, **देव-धर्म**। उन देव-धर्मों से युक्त मनुष्य भी देव-धर्म हैं। इसलिये व्यक्ति की ओर संकेत करके उपदेश किये गये इस धर्मोपदेश में, इन धर्मों का उपदेश करते हुए कहा है, **"सन्तो सप्पुरिसा लोके देव-धम्माति वुच्चरे।"**

यक्ष इस धर्म-देशना को सुन प्रसन्न हुआ, और बोधिसत्त्व से बोला, "पण्डित ! मैं तुम पर प्रसन्न हुआ हूँ। एक भाई को (लौटा) देता हूँ। (बोलो) किस (भाई) को लाऊँ ?"

"छोटे भाई को लाओ।"

"पण्डित ! तू देव-धर्मों को केवल जानता भर है, उनके अनुसार आचरण नहीं करता।"

"कैसे (=किस कारण से) ?"

"क्योंकि तू ज्येष्ठ (भाई) को छोड़, उसके छोटे भाई को मँगवा कर ज्येष्ठ का गौरव नहीं रखता है।"

"यक्ष ! मैं देव-धर्मों को जानता हूँ, और उनके अनुसार आचरण करता हूँ। इसी (भाई) के कारण, हमने इस वन में प्रवेश किया। इसीके कारण, हमारे पिता से इसकी माँ ने राज्य माँगा। हमारे पिता ने उसे वर न दिया, (लेकिन) हमारी रक्षा के लिए, हमें वनवास की आज्ञा दी। (सो) इस कुमार को विना लिये यदि हम लौटेंगे; तो—"इसे जंगल में एक यक्ष ने खा लिया"—यह वात कहने पर भी कोई विश्वास न करेगा। इसलिए मैं, निन्दा के भय से भय-भीत, इसीको माँगता हूँ।

"साधु, साधु पण्डित ! तू देव-धर्मों को जानता है, और उनके अनुसार आचरण भी करता है" कह, यक्ष ने बोधिसत्त्व को साधु (-वाद) दे, (उसके) दोनों भाई लाकर, (उसे) दे दिये।

तव बोधिसत्त्व ने उसे कहा—"सौम्य ! तू अपने पूर्व के पाप-कर्म के कारण, दूसरों का रक्त-मांस खाने वाले यक्ष की योनि में उत्पन्न हुआ। अब फिर भी पाप-कर्म ही करता है। यह पाप-कर्म नरक आदि से छूटने न देगा। (इसलिए) अब से तू पाप-कर्म को छोड़ कर पुण्य (=कुशल) कर्म कर।" (इस प्रकार) बोधिसत्त्व, उस यक्ष को दमन कर सके। उस यक्ष का दमन कर, उसी यक्ष की रक्षा में वहीं रहने लगे।

एक दिन नक्षत्र देख, पिता के मरने की वात जान, यक्ष को साथ ले, वे **बाराणसी** पहुँचे। फिर राज्य को ग्रहण कर, **चन्द्रकुमार** को उप-राज और **सूर्य्य-कुमार** को सेनापति का स्थान दिया। यक्ष के लिए एक रमणीय स्थान पर, मन्दिर (=आयतन) बनवा दिया, और ऐसा (प्रबन्ध) कर दिया, जिससे उसे श्रेष्ठ माला, श्रेष्ठ पुष्प, और श्रेष्ठ भोजन मिलता रहे। धर्मानुसार राज्य करके वह कर्मानुसार (परलोक) को गये।

शास्ता ने इस धर्म-उपदेश को ला कर, (आर्य-)सत्यों को प्रकाशित किया। आर्य-सत्यों के प्रकाशन के अन्त में, उसने भिक्षुओं को **स्रोत आपत्ति-फल** में प्रतिष्ठित किया। सम्यक्-सम्बुद्ध ने दोनों कथाएँ कह कर, तुलना कर, जातक का सारांश निकाल दिखाया।

उस समय का उदक-राक्षस, (इस समय का) बहु-भाण्डिक भिक्षु है। **सूर्य्य-कुमार** (इस समय का) **आनन्द, चन्द्र-कुमार** (इस समय का) **सारिपुत्र,** और **महिसांस-कुमार** नामक ज्येष्ठ भ्राता तो मैं ही था।

७. कट्ठहारि जातक

"पुत्तो त्याहं महाराज. . ." यह गाथा, शास्ता ने **जेतवन** में विहार करते हुए **वासभ खत्तिय (क्षत्रिया)** की कथा के सम्बन्ध में कही। **वासभ-खत्तिया** की कथा वारहवें **परिच्छेद** (निपात) में **भद्दसाल जातक**[1] में आयेगी।

क. वर्त्तमान कथा

महानाम शाक्य को **नागमुण्डा** नामक दासी की कोख से लड़की उत्पन्न हुई। (पीछे वह) कोसल-नरेश की पटरानी हुई। उससे राजा को पुत्र हुआ। लेकिन राजा ने उसका पूर्व में दासी होना जान, उसको तथा उसके पुत्र **विडूडभ** को भी स्थान से च्युत कर दिया। दोनों घर के भीतर ही रहते। शास्ता ने उस बात का पता पा, पाँच सौ भिक्षुओं के साथ, प्रातःकाल ही राजा के निवास-स्थान पर जा, बिछे आसन पर बैठकर पूछा—"महाराज! वासभ खत्तिया कहाँ है?" राजा ने (उसके सम्बन्ध में) उक्त बात कही।
"महाराज! वासभ खत्तिया किसकी लड़की है?"

"भन्ते! महानाम की।"

"और (यहाँ) आकर, वह किसे प्राप्त हुई?"

"भन्ते! मुझे"

"महाराज! यह राजा की लड़की, राजा को प्राप्त हुई, राजा से ही इसे पुत्र हुआ; सो वह पुत्र किस लिए पिता के राज्य का अधिकारी नहीं? पूर्व समय में राजाओं ने लकड़हारिनी के मुहूर्त भर के सहवास से, उसकी कोख से उत्पन्न पुत्र को भी राज्य दिया है।"

[1] भद्दसाल जातक (४६५)

राजा ने भगवान् से, उस बात को स्पष्ट कर, कहने की प्रार्थना की। भगवान् ने पूर्व जन्म की छिपी हुई बात प्रकट की—

ख. अतीत कथा

"पूर्व समय में, **बाराणसी** में, **ब्रह्मदत्त** राजा बड़े समारोह के साथ उद्यान गया। वह वहाँ पुष्प-फलों की चाह से घूम रहा था; उसी समय उद्यान के वन-षण्ड में गा गा कर लकड़ी चुनती एक स्त्री को देख, उसपर आसक्त हो, उसने उससे सहवास किया। उसी क्षण, बोधिसत्त्व ने उसकी कोख में प्रवेश किया। उसकी कोख, वज्र से भरी गई की तरह, भारी हो गई। उसने गर्भ स्थापित हुआ जान, (राजा से) कहा—"देव ! मुझे गर्भ हो गया है।" राजा ने अँगुली की अँगूठी देकर कहा—"यदि लड़की हो, तो इस (अँगूठी) को फेंककर, (अपनी) लड़की को पालना। यदि लड़का हो, तो अँगूठी के साथ, उसे मेरे पास लाना"। इतना कहकर, वह चला गया। गर्भ-परिपक्व होने पर, उसने बोधिसत्त्व को जन्म दिया। बोधिसत्त्व के इधर उधर दौड़-भाग कर क्रीड़ा भूमि में खेलते समय, कोई कोई (उसके सम्बन्ध में) कहते थे, "बिना-बाप-के ने हमें मारा"। इसे सुन, बोधिसत्त्व ने माता के पास जाकर पूछा—"माँ, मेरा पिता कौन है ?"

"तात ! तू **बाराणसी**-नरेश का पुत्र है।"

"अम्मा ! क्या इसका कोई साक्षी (=सबूत) है ?"

"तात ! राजा 'यदि लड़की हो, तो इस अँगूठी को फेंककर, (अपनी) लड़की को पालना, यदि लड़का हो, तो अँगूठी के साथ, उसे मेरे पास लाना,' कह, यह अँगूठी दे गया है।"

"अम्मा ! यदि ऐसा है, तो मुझे क्यों पिता के पास नहीं ले चलती ?"

उसने पुत्र का विचार जान, राज-द्वार पर जा, राजा को कहला भेजा, और राजा के बुलवाने पर, राजा को प्रणाम कर कहा—"देव ! यह तुम्हारा पुत्र है।"

राजा ने पहचानते हुए भी, सभा में लज्जा के मारे, कहा—"यह मेरा पुत्र नहीं है।"

"देव ! यह तुम्हारी अँगूठी है, इसे पहचानेंगे ?"

"यह अँगूठी भी मेरी नहीं है ।"

"देव ! तो अब मेरे पास **सत्य क्रिया**[1] के अतिरिक्त कोई दूसरा साक्षी नहीं है । 'यदि यह बालक आप से पैदा हुआ है, तो आकाश में ठहरे, नहीं तो भूमि पर गिरकर मर जाये' कह, उसने बोधिसत्त्व को पैरों से पकड़, आकाश में फेंक दिया । बोधिसत्त्व ने आकाश में पालथी मार, बैठ, मधुर स्वर से पितृ-धर्म (=पिता का कर्तव्य) कहते हुए, यह गाथा कही—

पुत्तो त्याहं महाराज ! त्वं मं पोस जनाधिप !
अञ्ञेपि देवो पोसेति किंच देवो सकं पजं ।

[महाराज ! तुम्हारा पुत्र हूँ । जनाधिप ! तुम मेरा पालन करो । देव ! तुम तो औरों का भी पालन करते हो, (फिर) अपनी सन्तान की (तो बात ही) क्या ?]

इसमें **पुत्तो त्याहं** का मतलब है, मैं तुम्हारा पुत्र हूँ । पुत्र होते हैं चार प्रकार के—**आत्मज, क्षेत्रज, अन्तेवासिक** तथा **दिन्नक** (=दत्तक) । अपने हेतु (शरीर) से जो उत्पन्न हुआ हो, वह **आत्मज**, शयनासन पर, पलंग पर, छाती पर;—इस प्रकार के स्थानों पर जो (दूसरे से) उत्पन्न हुआ, वह **क्षेत्रज**; अपने पास रहकर शिल्प (=विद्या) सीखने वाला **अन्तेवासिक**, तथा पालने-पोसने के लिए दिया गया (बालक) **दिन्नक**। यहाँ पुत्र शब्द का प्रयोग आत्मज के अर्थ में है । चारों प्रकार की **संग्रह-वस्तुओं**[2] से जो प्रजा का रञ्जन करे, वह राजा; फिर महान् राजा, सो महाराज, आमन्त्रित करने के लिए ही **महाराज !** कहा गया है । **त्वं मं पोस जनाधिप** का अर्थ है, हे जनाधिप ! हे महाजन(-समूह) में ज्येष्ठतम ! आप मेरा पोषण करें, भरण करें, वृद्धि करें । **अञ्ञेपि देवो पोसेति** का अर्थ है कि देव अन्य अनेक हाथी-पालक,

[1] सत्य किरिया, सत्य और पुण्य की शपथ ।

[2] दान, प्रिय-वाणी, लोक-हित का आचरण तथा समानता ।

अश्व-पालक आदि मनुष्यों तथा हाथी घोड़े आदि प्राणियों का पालन करते हैं। **किञ्च देवो सकं पजं** में किञ्च (=और क्या) शब्द निन्दार्थक तथा अनुग्रहार्थक निपात है। 'देव, अपनी सन्तान, मुझ अपन पुत्र की पालना नहीं करते' कहकर निन्दा भी की गई है; और 'अन्य बहुत जनों का पालन करते हैं' कहकर अनुग्रह (का भाव भी जाग्रत) किया गया है। इस प्रकार बोधिसत्त्व ने निन्दा करते हुए, तथा अनुग्रह (का भाव जाग्रत) करते हुए कहा—"किञ्च देवो सकं पजं [=अपनी सन्तान की (तो बात ही) क्या ?]।

राजा ने बोधिसत्त्व को आकाश में बैठे, इस प्रकार धर्मोपदेश करते सुन हाथ पसार कर कहा—"तात ! आ ! मैं ही पालन करूँगा। मैं ही पालन करूँगा।" (और भी लोगों ने) सहस्रों हाथ फैलाये। बोधिसत्त्व, और किसी के हाथ में न उतर कर, राजा के ही हाथ में उतर, उसकी गोद में बैठे। राजा ने उन्हें उप-राजा बना, उनकी माता को पटरानी (=अग्र-महिषी) बनाया। पिता के मरने पर वह काष्ठवाहन राजा के नाम से धर्म-पूर्वक राज्य का सञ्चालन कर (अपने) कर्मानुसार परलोक को गया।

शास्ता ने कोसल-नरेश का यह धर्मोपदेश ला दोनों कहानियाँ कह, तुलना करके जातक कथा का सारांश निकाल दिखाया। उस समय की माता, (अब की) महामाया थी, पिता (अब का) शुद्धोदन राजा था और काष्ठवाहन-राजा तो मैं ही था।

८. गामणी जातक

अपि अतरमानानं—यह गाथा शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय, एक उद्योग हीन (=आलसी) भिक्षु के सम्बन्ध में कही। इस जातक की

वर्तमान-कथा[1] तथा अतीत-कथा;[1] दोनों ग्यारहवें परिच्छेद के संवर-जातक[2] में आयेंगी। उस जातक में तथा इसमें कहानी समान ही है, हाँ गाथा का भेद है।

बोधिसत्त्व के उपदेश को मानकर, सौ भाइयों में सबसे छोटा होने पर भी ग्रामणी कुमार, सौ भाइयों के बीच, श्वेतछत्र के नीचे, सिंहासनासीन हुआ। अपने यश रूपी धन पर विचार करते हुए, 'मेरा यह यश रूपी धन, मुझे अपने आचार्य से मिला है, सोच, सन्तुष्ट-चित्त हो, यह उदान (=हर्ष से प्रेरित कथन) कहा—

अपि अतरमानानं फलासाव समिज्झति,
विपक्क ब्रह्मचरियोस्मि एवं जानाहि गामणी॥

[जल्द-बाज़ी न करने वालों की विशेष-फल की आशा पूर्ण होती है। गामणी! तू ऐसा जान कि मैं पूर्ण ब्रह्मचारी हूँ।]

इसमें जो **अपि** है, सो केवल निपात-मात्र है। **अतरमानानं** का मतलब है पण्डितों के उपदेश को मानकर, जल्द-बाज़ी से काम न ले, ढंग (=उपाय कौशल) से काम करनेवालों की। **फलासाव समिज्झति** का अर्थ है—इच्छित फल की जो आशा है, वह उस फल की प्राप्ति होने से पूरी होती ही है। अथवा **फलासा**=आशा-फल; इच्छानुसार फल की प्राप्ति होती ही है, यह अर्थ है। **विपक्कब्रह्मचरियोस्मि** चारों संग्रह-वस्तुयें श्रेष्ठ-चर्या होने से ब्रह्म-चर्या (कही गई हैं)। और क्योंकि वह यश रूपी धन की प्राप्ति का मूल-कारण हैं, इसलिए यश रूपी धन की प्राप्ति हुई रहने से (ब्रह्म-चर्य) का परिपक्व (=विपक्व) होना कहा गया है। और जो उसके यश की उत्पत्ति हुई है, वह भी श्रेष्ठता के कारण 'ब्रह्मचर्य' (कहा जा सकता है)। इसीलिए कहा है—

[1] पच्चुप्पन्न वत्थु तथा अतीत-वत्थु।

[2] संवर जातक (४६२) ग्यारहवें परिच्छेद की इस कथा से ग्रामणी जातक की गाथा की संगति नहीं बैठती। मालूम होता है। असली ग्रामणी जातक लुप्त हो गई है।

विपक्कब्रह्मचरियोस्मि। एवं जानाहि गामणी—कहीं कहीं ग्रामिक पुरुष को; और कहीं कहीं ग्राम में जो बड़ा हो, उसे भी ग्रामणी कहा गया है। लेकिन यहाँ (अपने को) सब जनों में श्रेष्ठ समझ अपनी ही ओर इशारा कर, अपने को सम्बोधन करके उदान कहा है—"भो ग्रामणी ! तू इस बात को इस प्रकार जान। यह जो सौ भाइयों का अतिक्रमण करके, तुझे इस महाराज्य की प्राप्ति हुई है, सो यह आचार्य्य (की कृपा) से हुई है।" उसकी राज्य प्राप्ति के बाद सात आठ दिन व्यतीत होने पर, उसके सभी भाई अपने अपने निवास स्थान को चले गये। ग्रामणी-राजा धर्मानुकूल राज्य का सञ्चालन कर, कर्मानुसार परलोक को प्राप्त हुआ।

शास्ता ने इस धर्म-उपदेश को ला, दिखाकर, (आर्य-)सत्यों को प्रकाशित किया। (आर्य-)सत्यों के प्रकाशन के अन्त में, (वह) आलसी भिक्खु अर्हत्-पद में प्रतिष्ठित हुआ। शास्ता ने दोनों कहानियाँ कह, मेल तुलनाकर, जातक का सारांश निकाल दिखाया।

६. मखादेव जातक

उत्तमङ्गरुहा मय्हं......इस गाथा को शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय, महानिष्क्रमण के बारे में कहा। वह (=महाभिनिष्क्रमण) पहले निदान-कथा में कहा ही जा चुका है।

क. वर्त्तमान कथा

उस समय भिक्षु बैठे बुद्ध के गृहत्याग (=अभिनिष्क्रमण) की प्रशंसा कर रहे थे। शास्ता ने धर्म-सभा में आ बुद्धासन पर बैठ, भिक्षुओं को सम्बोधित किया—"भिक्षुओ ! बैठे क्या बात-चीत कर रहे हो ?"

"भन्ते ! और कोई बात-चीत नहीं, बैठे आपके अभिनिष्क्रमण की ही प्रशंसा कर रहे हैं।"

"भिक्षुओ ! तथागत ने केवल अब ही अभिनिष्क्रमण नहीं किया; पहले भी अभिनिष्क्रमण किया है।"

भिक्षुओं ने भगवान् से इस बात को स्पष्ट करने की प्रार्थना की। भगवान् ने पूर्व-जन्म की छिपी हुई बात प्रकट की—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में विदेह राष्ट्र (की) मिथिला (नामक नगरी) में, मखादेव नाम का धार्मिक राजा हुआ। वह चौरासी हज़ार वर्ष तक बाल-क्रीड़ा (खेल कूद) में लगा रहा। उसके बाद उपराजा और फिर महाराजा हुआ। चिरकाल के बाद (उसने), एक दिन (अपने) नाई (कप्पक) से कहा—"सौम्य कप्पक ! जब तुझे मेरे सिर में सफ़ेद (बाल) दिखाई दें, तो मुझे कहना।" नाई ने कितने ही समय बाद एक दिन राजा के सुरमे के रंग के (=काले) केशों में केवल एक सफेद (बाल) देखकर राजा से निवेदन किया—"देव ! आपके (सिर में) एक सफेद (बाल) (दिखाई) दे हा है।"

"तो सौम्य ! उस सफेद (बाल) को उखाड़कर मेरी हथेली पर रक्खो।"

ऐसा कहने पर, (नाई ने उस बाल को) सोने की चिमटी से उखाड़कर राजा की हथेली पर रख दिया। उस समय भी राजा की चौरासी हज़ार वर्ष की आयु शेष थी; लेकिन फिर भी सफेद (बाल) को देखते ही, जैसे यमराज आकर समीप खड़ा हो गया हो, (अथवा) आग लगी कुटिया में दाखिल हुआ हो, उसका चित्त, उद्विग्न हो उठा। वह सोचने लगा—"मूर्ख मखादेव ! सफेद (बाल) के उगने तक भी तू इन (चित्त के मैलों) का परित्याग न कर सका।" उसके इस प्रकार सफेद (बाल) की उत्पत्ति पर बार बार विचार करने से, (उसका) हृदय गर्म हो उठा। शरीर से पसीना चूने लगा। वस्त्र भीगकर उतारने योग्य हो गये। उस ने 'आज ही मुझे निकलकर प्रव्रजित होना चाहिए (का निश्चय कर), नाई को लाख (मुद्रा) आमदनी के गाँव देकर ज्येष्ठ-पुत्र को बुलाकर कहा—"तात ! मेरे सिर में सफेद (बाल) उग आया है।

मैं बढ़ा हो गया हूँ। (अभी तक) मैं ने मानुषिक भोगों का उपभोग किया है, अब मैं दिव्य भोगों की खोज करूँगा। (यह) मेरा गृहत्याग (=निष्क्रमण) का समय है। (अब) तू इस राज्य को सँभाल। मैं प्रव्रजित हो, मखादेव-आम्र-उद्यान में रहते हुए योगाभ्यास (=श्रमण-धर्म) करूँगा।"

इस प्रकार उसने जब इस प्रव्रज्या के लेने की इच्छा प्रकट की, तो अमात्यों ने आकर उसे पूछा—"देव! आपके प्रव्रजित होने का क्या कारण है?" राजा ने सफेद (बाल) को हाथ में लेकर, अमात्यों से यह गाथा कही—

उत्तमङ्गरुहा मय्हं इमे जाता वयोहरा,
पातुभूता देवदूता पब्बज्जासमयो मम॥

[यह मेरी आयु का हरण करनेवाले मेरे सिर के बाल पैदा हो गए हैं। यह देव-दूत प्रादुर्भूत हुए हैं। यह मेरी प्रव्रज्या का समय है।]

यहाँ **उत्तमङ्गरुहा** का अर्थ है केश। हाथ पाँव आदि अङ्गों में उत्तम-अङ्ग (=सिर) में उत्पन्न होने के कारण, केश, उत्तमङ्गरुहा कहलाते हैं। **इमे जाता वयोहरा**, अर्थात् तात! देखो, सफेद (बाल) होने से, यह तीनों प्रकार की आयु के हरण करनेवाले (हैं), (इसलिए) **इमे जाता वयोहरा। पातुभूता**=उत्पन्न हुए। **देवदूता**, देव कहते हैं मृत्यु को, उसके दूत, सो देवदूत। सिर में सफेद (बालों) के उत्पन्न होने पर (मनुष्य अपने को) यमराज (=मृत्यु-राज) के समीप खड़ा सा समझता है, इसलिए सफेद (बाल) मृत्यु-देव के दूत कहलाते हैं। देवताओं जैसे दूत, इस अर्थ में भी देव-दूत। जिस प्रकार अलंकृत-सजे हुए देवता के, आकाश में खड़े होकर 'अमुक दिन मरेगा' कहने से वह (मरण) वैसे ही होता है, इसी प्रकार सिर में सफेद (बाल) का उगना भी देवता की भविष्यद्वाणी के सदृश ही होता है। इसलिए सफेद (केश) देव सदृश दूत कहलाते हैं। विशुद्धि-देवों के दूत, इस अर्थ में भी देव-दूत। सभी बोधिसत्त्व बूढ़े, व्याधिग्रस्त, मृत तथा प्रव्रजित को देख कर ही वैराग्य को प्राप्त हो, निकल कर प्रव्रजित होते हैं। जैसे कहा है—

जिण्णं च दिस्वा दुखितं च व्याधितं
मतञ्च दिस्वा गतमायुसङ्खयं

कासाव वत्थं पब्बज्जितञ्च दिस्वा
तस्मा अहं पब्बजितोम्हि राजा ।।

[जीर्ण (=बूढ़े) दुःखित=व्याधित को देखकर, आयुक्षय-प्राप्त=मृत को देखकर, (तथा) काषाय वस्त्र धारी प्रव्रजित को देखकर, हे राजन् ! मैं प्रव्रजित हुआ हूँ ।]

इस प्रकार सफेद (केश) विशुद्धि-देवों के दूत होने से देव-दूत कहलाते हैं। **पब्बज्जासमयो मम,** स्पष्ट करता है कि यह मेरे लिए गृहस्थ से निकलने के कारण 'प्रव्रज्या' कहे जाने वाले, साधु-भेस धारण करने का समय है।

यह (सब) कहकर, वह उसी दिन राज्य छोड़, ऋषि-प्रव्रज्या के अनुसार प्रव्रजित हुआ और उसी मखादेव-आम्र-वन में विचरते हुए, चौरासी हज़ार वर्ष तक चारों ब्रह्मविहारों[1] की भावना करते ध्यानावस्था को बिना छोड़े मरकर, ब्रह्म-लोक में उत्पन्न हो, फिर वहाँ से मिथिला ही में निमि नामक राजा (के रूप में) उत्पन्न हुआ; और उसने नष्ट होते हुए अपने वंश को सँभाला ! फिर वहीं आम्रवन में प्रव्रजित हो, ब्रह्मविहारों की भावना कर, फिर ब्रह्मलोक ही में उत्पन्न हुआ।

शास्ता ने भी, "भिक्षुओ ! तथागत ने केवल इसी जन्म में महाभिनिष्क्रमण नहीं किया, पहले भी अभिनिष्क्रमण किया है।"

इस धर्म-उपदेश को लाकर, दिखाकर, चारों (आर्य-)सत्यों को प्रकाशित किया। (उस समय) कोई स्रोतापन्न हुए। कोई सकृदागामी। कोई अनागामी।

इस प्रकार भगवान् ने इन दो कहानियों को कहकर, तुलना करके जातक का सारांश निकाल दिखाया। उस समय का नाई (अबका) आनन्द था, पुत्र (अबका) राहुल था। और मखादेव राजा तो मैं ही था।

[1] मैत्री-भावना, करुणा-भावना, मुदिता-भावना तथा उपेक्षा-भावना।

१०. सुखविहारी जातक

'यञ्च अञ्ञे न रक्खन्ति—' यह गाथा, बुद्ध ने अनूपिय नगर के समीप स्थित अनूपिय आम्र-वन में विहार करते समय सुख पूर्वक विहार करनेवाले भद्दिय स्थविर के बारे में कही।

क. वर्त्तमान कथा

सुख पूर्वक विहार करनेवाले भद्दिय स्थविर छ क्षत्रियों तथा सातवें उपाली की प्रव्रज्या के समय, प्रव्रजित हुए थे। उन (सात) में से भद्दिय स्थविर किम्बिल स्थविर, भृगु स्थविर तथा उपालि स्थविर अर्हत्व पद को प्राप्त हुए। आनन्द स्थविर स्रोतापन्न हुए। अनरुद्ध स्थविर दिव्य-चक्षु के लाभी हुए। देवदत्त ध्यान के लाभी हुए। अनूपिय नगर तक छओं क्षत्रियों की कथा खण्डहाल जातक[1] में आयेगी। आयुष्मान् भद्दिय राज करने के समय, अपनी हिफ़ाजत के लिए, पहरेदारों तथा और भी कई प्रकार की आरक्षा के साथ रहते थे। महल के ऊपरले तल्ले पर, बड़े पलंग पर लेटते समय भी, अपने भय-भीत होने की बात स्मरण कर, तथा अब अर्हत्पद प्राप्त कर लेने पर जङ्गल आदि में, जहाँ तहाँ विचरते हुए भी, अपने को निर्भय देख, प्रसन्नता से कहते थे—"अहो! सुख! अहो! सुख।"

इसे सुन भिक्षुओं ने भगवान् से कहा कि—

"आयुष्मान् भद्दिय अपना अर्हत् होना (—अञ्ञं) कह रहे हैं।"[2]

[1] खण्डहाल जातक (५४२)

[2] चुल्लवग्ग में भद्दिय का 'गृह-सुख' को याद करना लिखा है।

भगवान् ने कहा, "भिक्षुओ ! भद्दिय, केवल अब ही सुख पूर्वक विहार करनेवाला नहीं है, यह पहले भी सुख पूर्वक ही विहार करनेवाला था।" भिक्षुओं ने भगवान् से, उस बात के स्पष्ट करने की प्रार्थना की। भगवान् ने पूर्व-जन्म की छिपी हुई बात प्रकट की—

ख. अतीत कथा

पूर्व-समय बाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय, बोधिसत्त्व ने (एक) प्रसिद्ध, महान् कुल में ब्राह्मण हो, जन्म लिया था। भोगों (=कामों) में लिप्त रहने के दुष्परिणाम (=आदीनव) और वैराग्य (निष्क्रमण) में लाभ देखकर, भोगों को छोड़, हिमवन्त में प्रवेश कर, वह ऋषि-प्रव्रज्या के अनुसार प्रव्रजित हुए। उन्होंने आठ समापत्तियों को प्राप्त किया। इनके अनुयायी अनेक थे; पाँच सौ तो तपस्वी थे। इन्होंने वर्षा-काल आने पर हिमवन्त से निकल, तपस्वियों के गण सहित, ग्राम, नगर (=निगम) आदि में घूमते हुए, बाराणसी पहुँच राजा के आश्रित, राज-उद्यान में वर्षा-वास किया। वहाँ वर्षा के चारों मास रहकर, राजा से (चलने के लिए) पूछा। राजा ने प्रार्थना की—"भन्ते आप वृद्ध हैं। आपको हिमवन्त से क्या ? शिष्यों को हिमवन्त भेजकर, आप यहीं रहें।'

बोधिसत्त्व ने अपने प्रधान शिष्य को पाँच सौ तपस्वी सौंपकर कहा— "जा। तू इनके साथ हिमवन्त में रह। मैं यहीं रहूँगा।" (इस प्रकार) उनको चलता कर, आप वहीं रहने लगे। इनका, वह प्रधान शिष्य राज-प्रव्रजित था। उसने बड़े भारी राज्य को छोड़, प्रव्रजित हो कसिण-परिकर्म (=योग-अभ्यास) कर, आठ समापत्तियाँ प्राप्त की थीं। हिमवन्त में तपस्वियों के साथ रहते रहते एक दिन, उसने (अपने) आचार्य्य को देखने की इच्छा से तपस्वियों को बुलाकर कहा—'तुम उत्कण्ठा रहित हो, यहीं रहो। मैं आचार्य्य की वन्दना करके लौटूंगा'। और आचार्य्य के पास जाकर, प्रणाम कर, कुशल-क्षेम पूछ, एक चटाई फैलाकर, उसपर आचार्य्य के समीप ही लेट रहा।

उस समय राजा तपस्वी को देखने की इच्छा से उद्यान में जाकर, प्रणाम कर, एक ओर बैठ रहा। शिष्य-तपस्वी राजा को देखकर भी (अपने स्थान से)

नहीं उठा। लेटा ही लेटा 'अहो ! सुख ! अहो ! सुख'—इस प्रकार का उदान (=प्रीति-वाक्य) कहता रहा। राजा ने 'यह तपस्वी मुझे देखकर भी नहीं उठा है' (सोच) असन्तुष्ट हो बोधिसत्त्व से कहा—"भन्ते ! मालूम होता है, इस तपस्वी को पेट भर खाने को मिला है। तभी तो 'उदान' कहता हुआ सुख-पूर्वक लेटा है।" "महाराज ! पहले, यह तपस्वी भी तुम्हारे सदृश एक राजा था। सो 'मैंने राज्य-श्री का आनन्द लूटते कितने ही शस्त्रधारी पहरेदार मेरी रक्षा करते हैं, तो भी, इस प्रकार का सुख अनुभव नहीं किया' (सोच) यह अपने प्रव्रज्या-सुख के बारे में इस प्रकार का उदान कह रहा है।"

यह कह बोधिसत्त्व ने राजा को धर्म-कथा कहने के लिए, यह गाथा कही—

यञ्च अञ्ञे न रक्खन्ति यो च अञ्ञे न रक्खति,
स वे राज ! सुखं सेति कामेसु अनपेक्खवा ॥

[जिसकी न दूसरे रक्षा करते हैं, और जो न दूसरों की रक्षा करता है; राजन् ! वही भोगों (=कामों) में अपेक्षा-रहित व्यक्ति सुख से सोता है।]

यञ्च अञ्ञे न रक्खन्ति का अर्थ है, जिस व्यक्ति की दूसरे बहुत से व्यक्ति आरक्षा नहीं करते। **यो च अञ्ञे न रक्खति** का अर्थ है, जो अकेला व्यक्ति, मैं राज्य का सञ्चालन करूँ, (सोच) दूसरे बहुत से व्यक्तियों की आरक्षा (हिफ़ाजत) नहीं करता है। **स वे राज ! सुखं सेति** का अर्थ है, महाराज ! वह अकेला, अद्वितीय, प्रविविक्त (=एकान्तसेवी) व्यक्ति, शारीरिक तथा मानसिक सुख से समन्वित हो सोता है। यह तो देशना (=पालि) का शब्दशः अर्थ हुआ। नहीं तो, इस प्रकार का व्यक्ति सुख से केवल सोता ही नहीं है, वह सुख से चलता है, ठहरता है, बैठता है, सोता है—अर्थात् सब अवस्थाओं (=ईर्य्यापथों) में वह सुखी ही रहता है। **कामेसु अनपेक्खवा**=वस्तु-कामना तथा किलेस (=पापेच्छा)-कामना में आसक्ति-रहित हो, जिसके छन्द=राग का नाश हो गया है जो तृष्णा-रहित है 'हे राजन् ! इस प्रकार का व्यक्ति सब शारीरिक अवस्थाओं में सुख से विहार करता है।

राजा धर्म-देशना (=धर्मोपदेश) सुन, सन्तुष्ट-चित्त हो, प्रणाम कर, (अपने) निवास-स्थान पर गया। और (वह) शिष्य भी आचार्य्य को प्रणाम कर **हिमवन्त** को चला गया। लेकिन **बोधिसत्त्व** वहीं विहार करते हुए, ध्यानावस्थित रह, काल करके **ब्रह्म-लोक** में उत्पन्न हुए।

शास्ता ने इस धर्म-उपदेश को ला, दिखा, दोनों कहानियों को कह, तुलनाकर, जातक का सारांश निकाल दिखाया। उस समय (का) शिष्य, **भद्दिय** स्थविर था, और गण-शास्ता तो मैं ही था।

पहला परिच्छेद

२. सील वर्ग

११. लक्खण जातक

'होति सीलवतं अत्थो'—इस गाथा को, राज-गृह के समीप **वेळुवन** में विहार करते हुए (बुद्ध ने), **देवदत्त** के बारे में कहा।

क. वर्तमान कथा

देवदत्त का (भगवान् को) मारने का प्रयत्न करने तक का वृत्तान्त **खण्डहाल जातक**[1] में; **धनपाल** (हाथी) के भेजने तक का वृत्तान्त **चुल्लहंसजातक**[2] में, तथा पृथ्वी में प्रवेश करने तक का वृत्तान्त सोलहवें परिच्छेद में **समुद्दवाणिज जातक**[3] में आयेगा।

एक समय देवदत्त ने भगवान् से **पाँच बातें**[4] (=वत्थु) स्वीकार करने की प्रार्थना की। उन (पाँच बातों) के अस्वीकृत होने पर, वह सङ्घ में फूट पैदा कर, पाँच सौ भिक्षुओं को साथ ले **गया-सीस** में रहने लगा। (समय बीतने पर) उन भिक्षुओं को कुछ अकल आई। यह जानकर, बुद्ध ने (अपने दोनों प्रधान शिष्यों, को कहा—

"**सारिपुत्त** ! तुम्हारे साथी पाँच सौ भिक्षु, **देवदत्त** के मत को पसन्द कर उसके साथ चले गये, लेकिन अब उनको अकल आ गई है। तुम बहुत से

---

[1] ५४२ जातक। [2] ५३३ जातक। [3] ४६६ जातक।

[4] सभी भिक्षु आजीवन आरण्य-वासी; वृक्षों के नीचे रहनेवाले (=घर में न रहें); पंसु-कूलिक (=गुदड़ी धारी); पिण्डपातिक (=भिक्षा पर ही जीवित रहना) तथा शाकाहारी (=अमांस भोजी) हों।

भिक्षुओं के साथ वहाँ जाओ, और उन्हें धर्मोपदेश द्वारा मार्ग-फल का बोध करवा, साथ ले आओ।" तब वह वैसे ही (गयासीस) गये; और उन्हें धर्मोपदेश द्वारा मार्ग-फल का अवबोध करवा, फिर एक दिन अरुणोदय के समय उन भिक्षुओं को साथ लेकर, वेलुवन चले आये। आकर, सारिपुत्र स्थविर भगवान् को प्रणाम कर एक ओर खड़े हुए। तब भिक्षुओं ने स्थविर की प्रशंसा करते हुए, भगवान् से कहा—

"भन्ते! हमारे ज्येष्ठ-भ्राता, धर्मसेनापति (सारिपुत्र) पाँच सौ भिक्षुओं के बीच में आते कैसे सुन्दर लगते हैं; लेकिन देवदत्त तो अनुयायियों (=परिवार) के बिना रह गया।"

"भिक्षुओ! जाति-संघ के बीच में आते हुए सारिपुत्र, केवल अब ही सुन्दर नहीं लगते हैं, पहले भी वह शोभा देते थे, और देवदत्त, केवल अब ही बे-जमाती (गण-रहित) नहीं हुआ, पहले भी हुआ है।"

भिक्षुओं ने भगवान् से उस बात को प्रकट करने की प्रार्थना की। भगवान् ने पूर्व-जन्म की छिपी हुई बात प्रगट की—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में मगध देश के राजगृह नगर में, कोई मगध-नरेश राज्य करते थे। उस समय बोधिसत्त्व ने मृग की योनि में जन्म ग्रहण किया था। बड़े होकर वह (एक) हज़ार मृगों के दल के साथ, जंगल में वास करते थे। उनके लक्षण और काल नाम के दो पुत्र थे। उन्होंने अपने बूढ़ा होने पर, "तात! मैं अब बूढ़ा हो गया, अब तुम इस मृग-गण को सँभालो" कह एक एक पुत्र को पाँच पाँच सौ मृग सौंप दिये। उस समय से, वह दोनों जने मृग-गण को लेकर घूमने लगे। मगध देश में खेती के दिनों में, खेती पकने के समय, जंगल में मृगों को खतरा होता था। खेती-खानेवाले मृगों को मारने के लिए लोग जहाँ तहाँ गढ़े खोदते, काँटे लगाते, पत्थर-यन्त्रों (=गुलेल) को सँवारते, कूट-पाश आदि बन्धन फैलाते थे, (जिसमें) बहुत से मृग मारे जाते। बोधिसत्त्व ने खेती पकने का समय जान, पुत्रों को बुलवाकर कहा—"यह खेती पकने का समय है। (इस समय) बहुत से मृग मारे जाते हैं। हम बड़े (लोग) तो जिस

किसी ढंग से एक ही स्थान पर (रहते) दिन काट लेंगे, लेकिन तुम अपने अपने मृग-गणको लेकर, जगल में, पर्वत में जाओ; और (वहाँ रह) खेती कटने के समय (लौट) आना।"

वे पिता के वचन को 'अच्छा' (कह), अपने अनुयायियों सहित निकल पड़े। उनके जाने के मार्ग में रहने (वाले) मनुष्य, "इस समय मृग पर्वतों पर चढ़ते हैं, इस समय पर्वतों से उतरते हैं" जानते थे और जहाँ तहाँ छिपने योग्य जगहों पर छिप कर वे बहुत से मृगों को मार डालते थे। काल (नामक) मृग अपनी मूढ़ता के कारण, यह जाने योग्य समय है (अथवा) यह नहीं जाने योग्य समय है, न समझ, मृग-गण को ले पूर्वाण्ह के समय भी, सायंकाल के समय भी, रात्रि के समय भी, (तथा) प्रातःकाल के समय भी ग्राम-द्वार के पास से ही निकलता था। जहाँ तहाँ प्रगट ही खड़े, अथवा छिपे रह मनुष्य बहुत से मृगों को मार डालते। इस प्रकार अपनी मूढ़ता के काण (उसने) बहुत से मृगों को मरवा कर, बहुत थोड़े से ही मृगों के साथ आरण्य में प्रवेश किया। लेकिन पण्डित =व्यक्त, उपायकुशल लक्षण (नामक) मृग, 'इस समय जाना चाहिए, इस समय नहीं जाना चाहिए' जानता था। वह न ग्राम-द्वार से जाता, न दिन में जाता, न रात्रि (=शाम) के समय जाता, न प्रातःकाल के समय जाता; मृग-गण को लेकर केवल आधी-रात के समय जाता। इसलिए वह एक भी मृग का नाश बिना होने दिये ही जंगल में प्रविष्ट हुआ। वहाँ चार महीने रहकर वे (मृग) खेत कट जाने पर, पर्वत से उतरे। काल मृग, लौटते समय भी, पहली ही तरह से (लौटकर) बाकी मृगों को भी मरवा कर अकेला ही (वापिस) आया। लेकिन लक्षण मृग की मंडली का एक भी मृग नष्ट न हुआ और अपने पाँच सौ मृगों के साथ, माता पिता के पास (वापिस) आया। बोधिसत्त्व ने दोनों पुत्रों को आता देख, मृग-गण से बात चीत करते हुए यह गाथा कही—

> होति सीलवतं अत्थो पटिसन्थार वुत्तिनं,
> लक्खणं पस्स आयन्तं ञातिसंघ पुरक्खतं;
> अथ पस्ससि मं कालं सुविहीनं च ञातिहि॥

[(सदाचारी) और श्रेष्ठ जीवन व्यतीत करने वालों की उन्नति होती

है। ञाति-संघ के आगे आगे आते हुए लक्षण को देखो और ञाति-संघ से रहित (अकेले) आते हुए इस काल को (तो) तुम देखते ही हो।)]

यहाँ सीलवंतं का अर्थ है, शुक्ल-शील से युक्त; आचार-युक्त (=सदाचारी)। अर्थ=उन्नति। 'पटिसन्थार वुत्तिनं' धम्म-पटिसन्थार तथा आमिष-पटिसन्थार—इन दोनों की वृत्ति को कहते हैं पटिसन्थार-वुत्ति। सो उन पटिसन्थारवृत्ति वालों का पाप निवारण सम्बन्धी उपदेश=अनुशासन रूपी पटिसन्थार (=बात-चीत) ही धर्म-पटिसन्थार है। गोचर-लाभ, गिलानुपट्ठाक (=रोगी की सेवा), धार्मिक रक्षा के रूप में सम्बन्धी पटिसन्थार ही आमिष-पटिसन्थार कहा जाता है। ऐसा कहा गया है कि इन दोनों पटिसन्थारों में जो स्थित हैं; सदाचारी हैं, पण्डित हैं; उनकी उन्नति होती है। अब उस उन्नति को दिखाने के लिए, जैसे पुत्र माता को बुलाता हो वैसे 'लक्खणं पस्स' आदि कहा। संक्षेप में इसका अर्थ है—(सदा-)आचार-पटिसन्थार युक्त, एक मृग को भी बिना खोये, बिरादरी के साथ आगे आते हुए अपने पुत्र को देखो, और उसी (सदा-) आचार-पटिसन्थार सम्पत्ति से रहित, मूढ़, एक भी जाति-भाई को बिना बचाये, सभी नातेदारों से रहित, अकेले आनेवाले इस काल मृग को देखो (अथ पस्ससिमं कालं)। इस प्रकार पुत्र की प्रशंसा करते हुए बोधिसत्त्व आयु-भर (जीवित) रहकर कर्मानुसार परलोक सिधारे।

बुद्ध ने भी 'भिक्षुओ! ञाति-संघ भाइयों के साथ आता हुआ सारिपुत्र केवल अब ही सुन्दर नहीं लगता, पहले भी शोभा देता था। और देवदत्त केवल अब ही गण से रहित नहीं हुआ, पहले भी हुआ है'—इस धर्म देशना को दिखा, दोनों कहानियों को जोड़, तुलनाकर, जातक का सारांश निकाल दिखाया।

उस समय का काल मृग (अब का) देवदत्त था और उसकी परिषद् भी देव-दत्त परिषद् ही थी। लक्षण मृग सारिपुत्र है। लेकिन उसकी मण्डली बुद्ध की मण्डली ही है। माता, (अब की) राहुल-माता हुई। और पिता तो मैं ही था।

१२. निग्रोध मृग जातक

"निग्रोधमेव सेवेय्य..." यह गाथा, बुद्ध ने जेतवन में विहार करते समय, कुमार काश्यप स्थविर की माता के बारे में कही।

क. वर्त्तमान कथा

वह राजगृह नगर के (एक) महासम्पत्तिशाली सेठ की लड़की थी। अति स्वच्छ-विचार (=ऊँचे कुशल-मूल), परिमार्जित-संस्कार, अन्तिम-शरीर वाली (उस लड़की) के हृदय में मुक्त होने की इच्छा वैसेही प्रज्वलित हो रही थी, जैसे घड़े के अन्दर प्रदीप। जब से होश सँभाला, तभी से उसका मन गृहस्थ में न लगता था। उसने प्रव्रजित होने की इच्छा से माता पिता से कहा—"अम्मा-तात! मेरा मन घर में नहीं लगता। मैं (मोक्ष की ओर) ले जानेवाले बुद्ध-धर्म में प्रव्रजित होना चाहती हूँ। आप मुझे प्रव्रजित करायें।"

"अम्म! क्या कहती है? यह धनी कुल, और तू हमारी अकेली लड़की! तू प्रव्रजित नहीं हो सकती।"

माता-पिता से बार-बार प्रार्थना करने पर भी, प्रव्रज्या की आज्ञा न मिलने पर, वह सोचने लगी—"अच्छा (= हो)। पति-कुल जाकर, स्वामी को मनाकर प्रव्रजित होऊँगी।" फिर आयु-प्राप्त होने पर, पति-कुल जाकर, पति को देवता बना, शीलवान्, सदाचारिणी (=कल्याण धर्मा) हो गृहस्थ में रहने लगी। उनके सहवास से उसकी कोख में गर्भ प्रतिष्ठित हो गया। (लेकिन) उसको गर्भ के प्रतिष्ठित होने का पता नहीं लगा।

उस समय उस नगर में उत्सव (=नक्षत्र) की घोषणा हुई। सब नगर-वासी उत्सव मनाने लगे। नगर देव-नगर की भाँति अलंकृत किया गया। लेकिन उसने, इस प्रकार के विशाल उत्सव के रहने पर भी, न अपने शरीर

पर (चन्दनादि का) लेप किया, न उसे अलंकृत किया। स्वाभाविक वेष में ही घूमती रही।

उसके स्वामी ने उससे पूछा—"भद्रे! सारा नगर (तो) उत्सव मना रहा है, तू अपने को क्यों नहीं सजा रही है?"

"आर्य्य! यह शरीर बत्तीस प्रकार की गन्दगियों से[1] भरा है, इसे अलंकृत करने से ही क्या? यह शरीर न तो देव का बनाया हुआ है, न ब्रह्म का बनाया हुआ है, न स्वर्णमय है, न मणिमय, न हरिचन्दनमय है, न ही पुण्डरीक, कमल, उत्पल (आदि) के गर्भ से उत्पन्न हुआ है, न अमृतौषधि से पूर्ण है। (यह) गन्दगी में पैदा हुआ, माता-पिता (के संयोग) से अस्तित्व में आया है। अनित्यता, मालिश तथा मर्दन की आवश्यकता होना, टूटना, ध्वस्त होना—यही इसका स्वभाव है। यह श्मशान को बढ़ानेवाला है, तृष्णा से उत्पन्न है। शोकों का निदान है। विलाप का कारण है। सब रोगों का आलय है। (दण्ड-)कर्मों का भोगनेवाला है। अन्दर से गन्दा है; बाहर नित्य (गन्दगी) चूती रहती है। कीड़ों का निवासस्थान (=आवास) है। श्मशान का यात्री है। मरना (ही) इसका अन्त है। (यह शरीर) सब लोगों की दृष्टि में रहता हुआ भी—

अट्ठी नहारु संयुत्तो तचमंस विलेपनो,
छविया कायो पटिच्छन्नो यथाभूतं न दिस्सति॥
अन्तपूरो उदरपूरो यकपेलस्स वत्थिनो,
हदयस्स पप्फासस्स वक्कस्स पिहकस्स च।
सिंघाणिकाय खेलस्स, सेदस्स, मेदस्स च
लोहितस्स, लसिकाय, पित्तस्स च वसाय च॥
अथस्स नवहि सोतेहि असुचि सवति सब्बदा
अक्खिम्हा अक्खिगूथको, कण्णम्हा कण्णगूथको॥
सिंघाणिका च नासातो मुखेन वमति एकदा
पित्तं सेम्हं च वमति कायम्हा सेदजल्लिका॥

[1] केस, रोम, नख, दाँत, त्वच् आदि (देखो सतीपट्ठान सुक्त, मज्झिम निकाय)।

अथस्स सुसिरं सीसं मत्थलुङ्गेन पूरितं,
सुभतो नं मञ्जति बालो अविज्जाय पुरक्खतो[1] ॥
अनंतादीनवो कायो विसरुक्ख समूपमो,
आवासो सब्बरोगानं पुञ्जो दुक्खस्स केवलो ॥
सचे इमस्स कायस्स अन्तो बाहिरतो सिया।
दण्डं नूनगहेत्वान काके सोणे च वारये ॥
दुग्गन्धो असुची कायो कुणपो उक्करूपमो,
निन्दितो चक्खूभूतेहि कायो बालाभिनन्दितो ॥

[यह हड्डी और नसों का संयोग है, ऊपर से त्वच् और मांस का लेप है, और उसके ऊपर चमड़ी से ढका है। (इसलिए इस शरीर का) यथार्थ स्वरूप नहीं दिखाई देता। (यह) आँतों, आमाशय, यकृत्-पेल, उदरस्थ (वस्ती), हृदय, फुफ्फुस, वृक्क, प्लीहा (पिहक) सींढ़, थूक, पसीना, वर (मेद), रक्त, लसिका[2] पित्त और चर्वी (वस)—इन सबसे भरा हुआ है। इसके नौ स्रोतों से सदा गन्दगी बहती है—आँखों से आँख का मैल, कानों से कान का मैल, नाक से सींढ। कभी कभी मुंह से उल्टी, पित्त और कफ की भी, शरीर से पसीना (=स्वेद जल)। इसका छिद्रों वाला शीस मत्थलुङ्ग[3] से भरा है। अविद्या से घिरे हुए लोगों को यह (शरीर) आकर्षक (=शुभ) मालूम होता है। यह विष-वृक्ष सदृश शरीर अनेक दोषों (=आदिनव) से युक्त है। सब रोगों का घर है। केवल दुःख का ढेर है। यदि (किसी तरह से) इस शरीर के अन्दर का हिस्सा बाहर आ जाये, तो निश्चय से डण्डा लेकर कौओं और कुत्तों को हटाना पड़े। (इसीलिए) पंडितों (=चक्षुभूत) ने इस दुर्गन्ध-युक्त, अशुचि-पूर्ण कचवर-सदृश, गन्दे शरीर की निन्दा की है। बाल (मूर्ख) ही इस पर रीझते हैं (=प्रशंसा करते हैं।)]

[1] विजय सुत्त (सुत्त निपात)।
[2] केहुनी आदि जोड़ों में स्थित तरल पदार्थ।
[3] खोपड़ी के भीतर का गूदा।

"आर्य पुत्र ! इस शरीर को अलंकृत करके क्या करूँगी ? इस शरीर का अलंकृत करना क्या वैसा ही नहीं है जैसा गन्दगी भरे घड़े के बाहर चित्र बनाना ?" सेठ-पुत्र ने उसके इस वचन को सुनकर कहा—"भद्रे ! यदि तू इस शरीर में इतने दोष देखती है, तो प्रव्रजित क्यों नहीं होती ?" "आर्य पुत्र ! यदि मुझे प्रव्रज्या मिले, तो मैं आज ही प्रव्रजित होऊँ।" सेठ-पुत्र ने 'अच्छा' मैं तुझे प्रव्रजित कराऊँगा, कह, महा-दान दे, महासत्कार कर, बहुत सी साथनों (परिवार) के साथ, उसे भिक्षुणी-विहार में ले जाकर, वहाँ देवदत्त के पक्ष की भिक्षुणियों के पास प्रव्रजित कराया। वह प्रव्रज्या प्राप्त कर, संकल्प पूर्ण होने के कारण सन्तुष्ट हुई। तब उसके गर्भ के परिपक्व होने से, उसकी इन्द्रियों (=आकार-प्रकार) का परिवर्तन (=अन्यथा होना); हाथ पैर तथा पीठ का भारीपन, तथा पेट (=उदर पटल) का मोटापन देखकर, भिक्षुणियों ने पूछा—"आर्ये ! तू गर्भिणी सी प्रतीत होती है। सो यह क्या है ?"

"आर्ये ! मैं इसे नहीं जानती कि यह क्या है, लेकिन मेरा शील (=सदाचार) परिपूर्ण है।"

तब उन भिक्षुणियों ने उसे देवदत्त के पास ले जाकर, देवदत्त से पूछा—"आर्य ! इस कुलपुत्री ने बड़ी कठिनाई से (अपने) स्वामी को मना कर प्रव्रज्या प्राप्त की। लेकिन अब इसे गर्भ दिखाई देता है। हम नहीं जानतीं कि यह गर्भ इसे गृहस्थ रहते समय से ही है, अथवा प्रव्रजित होने पर रहा है ? अब हम क्या करें ?" देवदत्त ने बुद्ध न होने के कारण, तथा क्षान्ति मैत्री और दया का भी अभाव होने के कारण, सोचा "मुझे चाहिए कि मैं इसका चीवर उतरवा दूँ (=अपप्रव्रजित करा दूँ), नहीं तो (लोग) मेरी यह कहकर निन्दा करेंगे कि देवदत्त के पक्ष की एक भिक्षुणी कोख में गर्भ लिये फिरती है और देवदत्त उसकी उपेक्षा करता है।"

तब उसने बिना सोचे विचारे, पत्थर के रोड़े को उलटाने की तरह कहा—"जाओ, इसे अप्रव्रजित कर दो।" वे, उसका वचन सुन, उठ, प्रणाम कर विहार (=उपाश्रय) चली गईं।

तब इस कम आयु की भिक्षुणी ने दूसरियों से कहा—"आर्ये ! न तो देवदत्त स्थविर 'बुद्ध' हैं, न ही मैं उनकी अनुयायी होकर प्रव्रजित हुई हूँ। मैं, जो

लोकाग्र, सम्यक् सम्बुद्ध हैं, उनकी अनुयायी हो प्रव्रजित हुई हूँ। और यह 'प्रव्रज्या' मुझे बड़ी कठिनाई से मिली है, सो मेरी इस (प्रव्रज्या) का लोप मत करो। आओ, मुझे (साथ) लेकर, शास्ता के पास जेतवन चलो।" वे उसे साथ ले, राजगृह से पैंतालीस योजन मार्ग क्रम से चलकर, जेतवन पहुँचीं। बुद्ध को प्रणाम कर, उन्होंने वह बात निवेदित की। शास्ता ने सोचा—"यद्यपि इसको गृहस्थ के समय ही गर्भ रहा है, लेकिन फिर भी तैर्थिकों को यह कहने को हो जायगा कि श्रमण गौतम, देवदत्त द्वारा छोड़ी (भिक्षुणी) को साथ लिये फिरता है। इसलिए इस कथा को शान्त करने के लिए, राजा सहित परिषद् के बीच में, इस अधिकरण (=मुकद्दमे) का फैसला होना चाहिए।"

फिर एक दिन, कोशल-नरेश, प्रसेनजित्, बड़े अनाथपिण्डक, छोटे अनाथपिण्डक, महाउपासिका विशाखा, तथा अन्य प्रसिद्ध प्रसिद्ध महाकुलों को बुलवाकर, सायंकाल के समय चारों प्रकार की परिषद् के एकत्र होने पर, उपाली स्थविर को सम्बोधित किया—"जाओ! चारों प्रकार की परिषद् के बीच में इस तरुण भिक्षुणी के कर्म की परीक्षा करो।"

"भन्ते! अच्छा" कह, स्थविर ने परिषद् के बीच में जाकर, अपने आसन पर बैठ, राजा के आगे उपासिका विशाखा को बुलवाकर, (उसे) यह अधिकरण सौंपा—"विशाखे! इस तरुणी ने अमुक महीने, अमुक दिन प्रव्रज्या ग्रहण की है। तू जाकर, इसका गर्भ प्रव्रज्या से पूर्व का है, अथवा पीछे का; इसे यथार्थ जान।"

उपासिका ने 'अच्छा' कह, इसे स्वीकार कर, कनात तनवा दी। और कनात के अन्दर तरुण भिक्षुणी के हाथ, पाँव, नाभी तथा उदर तक देखकर, महीने और दिनों का विचार कर, ठीक से जान लिया, कि गृहस्थ रहते यह गर्भ ठहरा। फिर स्थविर के पास जाकर, यह बात निवेदित की। स्थविर ने चारों प्रकार की परिषद् के बीच में उस भिक्षुणी को बरी किया। वह बरी होकर भिक्षु-संघ तथा शास्ता को प्रणाम कर, भिक्षुणियों के साथ ही भिक्षुणी-विहार को गई। गर्भ के परिपाक होने पर उसने ऐसे महाप्रतापी, पुत्र को जन्म दिया जिसने पद्मोत्तर (बुद्ध) के चरणों में प्रार्थना की थी।

तब एक दिन राजा ने भिक्षुणियों के विहार के समीप से जाते हुए, बालक

की आवाज़ सुनकर मन्त्रियों से पूछा। अमात्यों ने मालूम कर उसे कहा—"देव ! उस तरुण भिक्षुणी के पुत्र हुआ है। यह उसकी आवाज़ है।"

"भणे ! भिक्षुणियों को बच्चों के पालन पोषण में कठिनाई होती है, इसलिए इस (बालक) को हम पालेंगे" (कह) राजा ने उस बच्चे को नटी स्त्रियों को दिलवा कर, (राज-)कुमार की तरह पालन करवाया। नामग्रहण के दिन, उसका नाम काश्यप रक्खा। (राज-)कुमार की तरह पालन होने से, वह कुमार-काश्यप नाम से प्रसिद्ध हुआ। वह सात वर्ष की आयु में शास्ता के पास प्रव्रजित हुआ। (बीस वर्ष की) आयु पूरी होने पर उपसम्पदा प्राप्त कर, समय बीतने पर सुन्दर धर्मोपदेशक हुआ। शास्ता ने 'भिक्षुओ! मेरे सुन्दर (=चित्र) धर्म-कथित श्रावकों में **कुमार-काश्यप** सर्व-श्रेष्ठ है"[1] (कह) उसे सर्व-श्रेष्ठ पद दिया। आगे चलकर, वम्मिक सूत्र[2] सुनने पर, उसने अर्हत्-पद प्राप्त किया। उसकी भिक्षुणी माता ने भी विदर्शना-भावना (=योगाभ्यास) द्वारा अग्र-फल (=अर्हत्व) प्राप्त किया। कुमार-काश्यप स्थविर, बुद्धों के शासन रूपी आकाश में पूर्ण-चन्द्र की भाँति प्रकाशित हुए।

एक दिन **तथागत**, भिक्षाटन से लौटकर, भोजन करने के बाद, भिक्षुओं को उपदेश दे **गन्धकुटी** में प्रविष्ट हुए। भिक्षु उपदेश ग्रहण कर, अपने अपने रात-दिन रहने के स्थानों में दिन बिता कर, शाम के समय धर्म-सभा में एकत्रित हो, "आवुसो ! देवदत्त ने 'बुद्ध' न होने के कारण, तथा क्षमा, मैत्री और दया का अभाव होने के कारण, **कुमार काश्यप** स्थविर और स्थविरी को क्षण में नष्ट कर दिया। लेकिन सम्यक् सम्बुद्ध ने, धर्म-राज होने के कारण, तथ क्षमा, मैत्री और दया रूपी सम्पत्ति से युक्त होने के कारण, उन दोनों को आश्रय दिया' कहते हुए, बैठे बुद्ध-गुणों की प्रशंसा कर रहे थे।

शास्ता ने बुद्ध-लीला से धर्म-सभा में आ, बिछे आसन पर बैठकर पूछा, "भिक्षुओ ! इस समय बैठे क्या बात-चीत कर रहे थे ?"

सभी ने उत्तर दिया, "भन्ते ! आप ही की गुण-कथा (कहने) में लगे थे।"

[1] **अंगुत्तर निकाय, एतदग्ग वग्ग।**

[2] **मज्झिम निकाय।**

"भिक्षुओ ! तथागत केवल अब ही, इन दोनों के आश्रय (-दाता) तथा सहारा नहीं हुए, पहले भी हुए हैं।"

भिक्षुओं ने भगवान् से उस बात को प्रगट करने की प्रार्थना की। भगवान् ने पूर्व-जन्म की छिपी हुई बात प्रगट की—

ख. अतीत कथा

"पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय, बोधिसत्त्व ने मृग की योनि में जन्म ग्रहण किया। वह माता की कोख से निकलते ही सोने के रंग का था। उसकी आँखें मणि की गोलियों के सदृश, उसके सींग रजन-वर्ण के (उसका) मुंह लाल रंग के दुशाल की राशि के सदृश, हाथ पैर के सिरों पर जैसे लाख लगी हो, और उसकी पूंछ चमरी (गाय) की सी थी। लेकिन उसका शरीर घोड़े के बच्चे जितना बड़ा था। वह पाँच सौ मृगों के साथ जंगल में रहता था। और उसका नाम था निग्रोध मृग-राज। वहाँ से थोड़ी ही दूर पर (=अविदूर) पाँच सौ मृगों के साथ, एक दूसरा भी शाख-मृग रहता था। वह भी सुनहरे ही रंग का था।

उस समय वनारस का राजा मृगों का वध करने पर तुला हुआ था। बिना मांस के वह खाता ही न था। मनुष्यों के काम छुड़ा, सारे निगमों तथा जनपदों के लोगों को इकट्ठा करवा, प्रतिदिन शिकार के लिए जाता था। मनुष्यों ने सोचा—"यह राजा (प्रतिदिन) हमारा काम छुड़वाता है। क्यों न हम उद्यान में घास (=निवाप) बो, पानी रख, बहुत से मृगों को उद्यान में दाखिल करा, द्वार बन्द कर, राजा को सौंप दें ?" उन सब ने उद्यान में मृगों के लिए घास और तृण बो दिया, पानी रख दिया। फिर वे दरवाजे लगाकर, नगर के मनुष्यों के सहित, मुद्गर आदि नाना प्रकार के हथियार हाथ में ले, जंगल में घुसे, मृगों को ढूंढ़ते हुए, "(घेरे के) बीच में आये मृगों को पकड़ेंगे सोच, योजन भर स्थान को घेर, (उस घेरे को) कम करते हुए, निग्रोध मृग तथा शाखा मृग के निवास,-स्थानों को बीच में घेर लिया। फिर, उस मृग यूथ को देख, वृक्ष, गुल्म आदि तथा भूमि को मुद्गरों से पीटते हुए, मृगों के झुण्ड को छिपी छिपी जगहों से निकाला और तलवार, शक्ति, धनुष आदि आयुधों को निकाल, कोलाहल करते

हुए, उस झुंड को उद्यान में दाखिल कर, द्वार को बन्द कर, राजा के पास जा, कहा—'देव ! लगातार शिकार के लिए जाने से हमारे काम की हानि होती है। हमने जंगल से मृगों को लाकर (उनसे) आपका उद्यान भर दिया। अब से आप उनका मांस खायें'। फिर राजा से आज्ञा माँग चले गये।

राजा ने उनकी बात सुन, उद्यान में जा, मृगों को देखते हुए, (उनमें) दो सुनहरी मृगों को देख, उन्हें अभय-दान दिया। उस दिन से लगाकर, कभी वह स्वयं जाकर, एक मृग को मार लाता, कभी उसका रसोइया ही जाकर मृग को मार लाता। मृग धनुष को देखते ही मरने के भय से डरकर भागते। दो तीन चोटें खाकर दुःखित होते, जख्मी (=रोगी) होते और मर भी जाते। मृग यूथ ने यह बात बोधिसत्त्व से कही। उसने शाख मृग को बुलवा कर कहा—'सौम्य ! मृग बहुत नष्ट हो रहे हैं। यदि मरना अवश्य ही है, तो अब से मृग तीर से न बेधे जायें। गर्दन काटने की जगह (धर्म-गण्डिक स्थान) पर मृगों की बारी बँध जावे। एक दिन मेरी परिषद् (मंडली) में से एक की बारी हो एक दिन तेरी मंडली में से एक की। जिसकी बारी आवे, वह मृग **धर्म-गण्डिका** पर जाकर, सिर रखकर पड़ रहे। इस प्रकार मृग जख्मी न होंगे।"

उसने 'अच्छा' कह स्वीकार किया। उस समय से जिसकी बारी आती, वह मृग जाकर, धर्म-गण्डिका पर सीस रखकर पड़ रहता। रसोइया आकर, वहाँ पड़े को लेकर, जाता।

एक दिन शाख-मृग की टोली में एक गर्भिणी हिरणी की बारी आई। उसने शाख-मृग के पास जाकर कहा—"स्वामी ! मैं गर्भिणी हूँ। पुत्र पैदा होने पर, हम दो जने बारी बारी से जायेंगे ! आज मेरी जगह किसी और को भेज दो।" उसने उत्तर दिया, "मैं तेरी जगह, किसी दूसरे को नहीं भेज सकता जो तुझ पर पड़ी है, उसे तू ही जान। जा।"

उसके दया न दिखाने पर, वह बोधिसत्त्व के पास गई, और जाकर वही बात कही। वह उस (हिरणी) की बात सुन, 'अच्छा तू जा, मैं तेरी बारी टाल दूँगा' कह, स्वयं जाकर **धर्म-गण्डिका** पर सिर रखकर लेट रहा। रसोइये ने उसे देख, 'अभय-प्राप्त मृग-राज गण्डिका पर पड़ा है, क्या कारण है ?' (सोच) जल्दी से जाकर राजा से कहा। राजा ने उसी समय रथ पर चढ़, बहुत से जन-समूह (=परिवार) के साथ आकर, बोधिसत्त्व को देखकर पूछा—

"सौम्यमृगराज ! क्या मैंने तुझे अभय-दान नहीं दिया ? यहाँ तू किस लिए पड़ा है ?"

"महाराज ! गर्भिणी हिरणी ने आकर कहा कि मेरी बारी किसी दूसरे पर डाल दो। मैं एक का मरण-दुख किसी दूसरे पर न डाल सकता था। इसलिए अपना जीवन उसे देकर, और उसका मरना अपने ऊपर लेने के लिए, मैं यहाँ आकर पड़ा हूँ। महाराज ! इसमें और कोई दूसरी शंका न करें।"

राजा ने कहा—"स्वामी ! स्वर्ण-वर्ण मृग-राज ! मैंने तेरे सदृश क्षमा, मैत्री और दया से युक्त मनुष्यों में भी किसी को इससे पहले नहीं देखा। इसलिए मैं तुझ पर प्रसन्न हूँ। उठ, तुझे और उसको—दोनों को अभय देता हूँ।"

"महाराज ! हम दोनों को अभय मिलने पर बाकी क्या करेंगे ?"

"स्वामी ! बाकियों को भी अभय देता हूँ।"

"महाराज ! इस प्रकार केवल उद्यान के ही मृगों को अभय मिलेगी। बाकी क्या करेंगे ?"

"स्वामी ! उनको भी अभय देता हूँ।"

"महाराज ! मृग तो अभय प्राप्त करें, बाकी चतुष्पाद (=चौपाये) क्या करेंगे ?"

"स्वामी ! उनको भी अभय देता हूँ।"

"महाराज ! चतुष्पाद तो अभय प्राप्त करें, बाकी पक्षी (=द्विज) क्या करेंगे ?"

"स्वामी ! उनको भी अभय देता हूँ।"

"महाराज ! पक्षी तो अभय प्राप्त करें, बाकी जल में रहनेवाले जन्तु (=मच्छ) क्या करेंगे ?"

"स्वामी ! उनको भी अभय देता हूँ।"

इस प्रकार महा-सत्व (=बोधिसत्व) राजा से सब सत्वों के लिए अभय की याचना कर, उठकर, राजा को पाँच शीलों में प्रतिष्ठित कर, "महाराज ! धर्माचरण करो। न्याय करो माता पिता, पुत्र पुत्री, ब्राह्मण-गृहपति, निगम तथा जनपद के लोग, (सब के साथ) धर्म का व्यवहार = उचित व्यवहार करने से शरीर छूटने पर, मरने के बाद, सुगति, स्वर्ग लोक को प्राप्त होंगे।" —इस प्रकार राजा को बुद्ध-लीला से धर्मोपदेश दे, कई दिन उद्यान में रह,

मृगों के झुंड के साथ, अरण्य में चला गया। उस हिरणी ने भी पुष्प सदृश पुत्र को जन्म दिया। वह खेलता खेलता शाख-मृग के पास चला जाता। उसकी माता उसे वहाँ जाता देख, 'पुत्र ! अब से उस के पास ना जाकर (केवल) निग्रोध (-मृग) के पास ही जाना' कह उपदेश देती हुई, यह गाथा कहती—

निग्रोधमेव सेवेय्य न साखमुपसंवसे,
नीग्रोधस्मि मतं सेय्यो यञ्चे साखस्मि जीवितं ॥

[निग्रोध की ही सेवा करे। साख के समीप न जाये। साख (के आश्रय) में जीने की अपेक्षा निग्रोध (के आश्रय) में मरना श्रेयस्कार है]।

निग्रोधमेव सेवेय्य का अर्थ है कि तात ! तू, अथवा अपना हित चाहनेवाला अन्य कोई निग्रोध की ही सेवा करे=भजे=पास रहे। **न साखमुपसंवसे** का अर्थ है कि साख-मृग के पास न रहे, पास जाकर न रहे, उसके आश्रय में रह कर जीविका न चलाए। **निग्रोधस्मि मतं सेय्यो** का अर्थ है कि निग्रोध राजा के चरणों में मरना भी श्रेष्ठ है; अच्छा है, उत्तम है। **यञ्चे साखस्मि जीवितं** का अर्थ है कि साख(-मृग)के पास जो जीना है, वह श्रेष्ठ नहीं है, अच्छा नहीं है, उत्तम नहीं है।

उसके बाद से अभय-प्राप्त मृग मनुष्यों के खेत खाने लगे। मनुष्य 'यह अभय-प्राप्त मृग हैं' (सोच) न उन्हें मारते थे, न भगाते थे। उन्होंने राजाङ्गण में इकट्ठे हो, राजा से इसकी शिकायत की। राजा ने उत्तर दिया—"मैंने प्रसन्न चित्त हो, उस श्रेष्ठ निग्रोध मृग को वर दिया है। मैं राज्य छोड़ दूँगा, लेकिन उस प्रतिज्ञा को नहीं छोड़ूँगा। जाओ, मेरे राज्य में किसी को मृग मारने की छुट्टी नहीं है।"

निग्रोध मृग ने उस समाचार को सुन, मृगों के समूह को एकत्र कर, "अब से दूसरों के खेत न खाये जायें" (कह) मृगों को (खेत खाने से) रोक मनुष्यों को कहलवाया कि अब से लगाकर खेती करनेवाले खेती की रक्षा के लिए बाड न बाँधें। (केवल) खेत को घेर करके पत्तों की झण्डी (=निशानी) बाँध दें। उस समय से खेतों में पत्तों की निशानी बाँधने की प्रथा आरम्भ हुई। उसके बाद से कोई भी मृग पत्तों की निशानी को न लाँघता। (क्योंकि) बोधि-

सत्त्व ने उनको ऐसा करने का उपदेश दिया था। इस प्रकार मृग यूथ को उपदेश दे, बोधिसत्त्व ग्रायु पर्य्यन्त जीवित रह, कर्मानुसार (परलोक) सिधारे। राजा भी बोधिसत्त्व के उपदेशानुसार पुण्य कर्म करके, कर्मानुसार (परलोक)को सिधारा।

शास्ता ने, 'भिक्षुग्रो ! मैं केवल ग्रब ही इस स्थविरी तथा **कुमार-काश्यप** का ग्राश्रय(-दाता) नहीं हुग्रा हूँ; पहले भी ग्राश्रय(-दाता) रहा हूँ,—इस धर्म देशना को लाकर, चार ग्रार्य-सत्य रूपी धर्म-देशना कर, दोनों कहानियाँ कह, मेल मिलाकर, जातक का सारांश निकाल दिखाया।

उस समय का साख-मृग (ग्रब का) **देवदत्त** था। उसकी परिषद् (=टोली) भी देवदत्त-परिषद् थी। हिरणी (ग्रबकी) थेरी (=स्थविरी) हुई। पुत्र (ग्रबके) **कुमार-काश्यप**। राजा (ग्रबके) **ग्रानन्द** (स्थविर)। लेकिन निग्रोध मृगराज तो मैं ही था।

१३. कण्डिन जातक

"**धिरत्थु कण्डिनं सल्लं**"—यह गाथा, बुद्ध ने **जेतवन** में विहार करते समय, पूर्व-भार्य्या के लोभ के बारे में कही।

वह (कथा) ग्राठवें परिच्छेद के **इन्द्रिय-जातक**[1] में ग्रायेगी।

क. वर्तमान कथा

भगवान् ने उस भिक्षु को कहा—'भिक्षु ! पूर्व समय में भी तू इस स्त्री (-जाति) के कारण, प्राणों से हाथ धो, बिना ग्राट के ग्रङ्गारों पर पकाया गया

---

[1] ४२३ जातक।

था।" भिक्षुओं ने भगवान् से उस बात को प्रकट करने की प्रार्थना की। भगवान ने पूर्व-जन्म की छिपी हुई बात प्रगट की—

अब आगे 'भिक्षुओं की प्रार्थना करना' तथा 'पूर्व-जन्म की छिपी बात होना' न कहकर केवल अतीत की बात कही—इतना ही कहेंगे। केवल इतना कहने पर भी 'प्रार्थना करना' तथा बादलों के गर्भ से चन्द्रमा के निकलने की तरह, 'पूर्व-जन्म की छिपी बात का प्रकट होना'—यह सब पूर्वोक्त प्रकार से ही जोड़कर समझना चाहिए।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में मगध राष्ट्र के राजगृह (नगर) में मगध-नरेश राज्य करते थे। मगध वासियों को खेती के समय मृगों से बड़ी हानि होती। वे (मृग) जंगल में पर्वतों पर जाते। सो, एक जंगली पर्वत-निवासी मृग, एक ग्राम वासिनी हरिणी के साथ संवास (=मेल) के कारण, उन मृगों के पर्वत से नीचे (=ग्रामान्त) उतरने के समय, उस हरिणी पर आसक्त हो उन (मृगों) के साथ नीचे उतर आया। उस (हरिणी) ने उससे पूछा, "आर्य तू पर्वतवासी मूर्ख मृग सा कौन है! ग्राम आशङ्का तथा भय का स्थान है। (तू) हमारे साथ मत उतर।" लेकिन वह उस (हरिणी) पर आसक्त रहने के कारण नहीं लौटा और साथ ही गया।

मगध वासी, 'इस समय मृगों का पर्वत से उतरने का समय है' जान छिपे हुए स्थानों में (छिप कर) रहते। उन दोनों के आने के मार्ग पर भी, एक शिकारी, एक छिपे स्थान पर खड़ा था। हरिणी (=मृगपोतिका) ने, मनुष्य-गन्ध सूँघ कर, 'एक शिकारी खड़ा होगा' सोच, उस बाल (=मूर्ख) मृग को आगे कर पीछे पीछे हो ली। शिकारी ने एक ही बाण के प्रहार से, उस मृग को वहीं गिरा दिया। हरिणी, आहत जान, छलांग मार कर, हवा की गति से भाग गई। शिकारी छिपे स्थान (=कोठे) से निकल, मृग को काट कर, अग्नि जलाकर, बिना लाट के अङ्गारों पर मधुर मांस को पका, खा कर, पानी पी, रक्त की बूँदें चूते शेष मांस को बहँगी पर रख, बच्चों को सन्तुष्ट करने के लिए घर ले गया।

उस समय बोधिसत्व ने उस जंगल में देवता होकर जन्म लिया था।

उन्होंने उस घटना को देख, (सोचा), यह मूर्ख-मृग न तो माता के लिए मरा न पिता के लिए, (यह मरा तो) कामुकता के लिए। कामुकता के कारण प्राणी सुगति से (गिर कर) हाथों का कटना आदि दुर्गति, पाँच प्रकार के बन्धनादि (तथा) नाना प्रकार के दुःख को प्राप्त होते हैं। दूसरों को मरने का दुःख देना भी, इस लोक में निन्दनीय ही है। जिस देश पर स्त्री न्यायाधीश (=विचारक) होती है, अनुशासन करती है, वह स्त्री की अधीनता में रहनेवाला देश भी निन्दनीय ही है। इस प्रकार एक गाथा से तीन निन्दनीय वस्तुओं को दिखाकर, वनदेवताओं को 'साधुकार' देकर गन्धपुष्पादि से पूजा करने के समय मधुर स्वर से उस वन-षण्ड को उन्नादित करते हुए, इस गाथा से धर्मोपदेश दिया—

धिरत्थु कण्डिनं सल्लं पुरिसं गाळ्हवेधिनं,
धिरत्थु तं जनपदं यत्थित्थी परिनायिका;
ते चापि धिक्किता सत्ता ये इत्थीनं वसं गता ॥

[कण्डेवाले तीर से, ज़ोर से वेधनेवाले मनुष्य को धिक्कार है। जिस जन-पद का स्त्रियाँ सञ्चालन करती हैं, उस जन-पद को धिक्कार है। जो सत्त्व (=प्राणी) स्त्रियों के वशीभूत हो जाते हैं, उन प्राणियों को धिक्कार है।]

धिरत्थु गरहा=निन्दा के अर्थ में 'निपात' है। सो इसे यहाँ त्रास और उद्वेग के कारण गर्हा-वाचक समझना चाहिए। त्रसित और उद्विग्न-चित्त होकर ही बोधिसत्व ने इस प्रकार कहा। 'कण्डा' जिसको है, सो कण्डी, उसको (=नं) कण्डी को। उस 'कण्ड' को प्रवेश होने के अर्थ में शल्य कहते हैं। इसलिए कण्डिनं सल्लं का अर्थ है सल्लं कण्डिनं। अथवा शल्य वाला होने के कारण शल्य, और शल्य वड़ा भारी ज़ख्म करके, ज़ोर का प्रहार देता तेज़ी से बींधता है, इसलिए 'गाळ्ह-वेधी'। उस गाळ्ह-वेधी को गाळ्ह-वेधिनं। नाना प्रकार के कण्डे, कुमुद (=कंवल) के पत्ते के आकार के तल (=नोक) वाले, सीधे जाने वाले शल्य से युक्त पुरुष को—गाळ्हवेधिनं पुरिसं धिरत्थु—धिक्कार है।

परिनायिका का अर्थ है स्वामिनी (=ईश्वरा); संविधान (=प्रबन्ध)

करनेवाली। 'धिक्किता' का अर्थ है गर्हिता। शेष, यहाँ स्पष्ट ही है। इससे आगे, इतना भी न कहकर, जो जो अस्पष्ट है, उसीकी व्याख्या करेंगे। इस प्रकार एक गाथा में तीन निन्दित-चीजें दिखाकर, बोधिसत्व ने वन को उन्नादित करते हुए बुद्ध की भाँति (बुद्ध लीला से) धर्मोपदेश किया।

बुद्ध ने इस धर्मोपदेश को लाकर (आर्य-)सत्यों को प्रकाशित किया। (आर्य-)सत्यों (के प्रकाशित होने) की समाप्ति पर उत्कण्ठित भिक्षु स्रोतापत्तिफल में प्रतिष्ठित हुआ। शास्ता ने दोनों कथायें कह, मेल मिला, जातक का सारांश निकाल दिखाया। इससे आगे 'दोनों कथायें कहकर'—यह शब्द विना कहे, केवल 'मेल मिलाकर' (=अनुसन्धिघटेत्वा)—इतना ही कहेंगे। लेकिन बिना कहने पर भी, उसे, पूर्वोक्त प्रकार से ही ग्रहण करना चाहिए।

उस समय का पर्वतवासी मृग (अब का) उत्कण्ठित-भिक्षु था। मृग पोतिका (अब की) पूर्व-भार्य्या थी। कामुकता में दोष दिखाकर, उपदेश करनेवाला देवता तो मैं ही था।

१४. वातमिग जातक

"न किरत्थि रसेहि पापियो"—यह गाथा, शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय चुल्लपिण्डपातिक-तिष्य स्थविर के वारे में कही।

क. वर्तमान कथा

शास्ता के राजगृह के समीप वेलुवन में विहार करते समय, एक महा सम्पत्तिशाली सेठ-कुल के तिष्य-कुमार नामक पुत्र ने, एक दिन वेलुवन जा, शास्ता की धर्म-देशना सुन, प्रव्रजित होने की इच्छा से, प्रव्रज्या की याचना की।

माता पिता की आज्ञा न मिलने पर, रट्ठपाल स्थविर[1] की तरह सप्ताह भर भूखे रह, माता पिता से आज्ञा ले, बुद्ध के पास प्रव्रज्या ग्रहण की। बुद्ध उसे प्रव्रजित करने के बाद, कोई आधे महीने तक वेणुवन में विहार कर, जेतवन को चले गये। वहाँ वह कुल-पुत्र तेरह धुताङ्ग व्रतों को ग्रहण कर, श्रावस्ती में क्रम से[2] भिक्षा माँगते हुए, समय विताने लगा। चुल्लपिण्डपातिक तिस्स स्थविर का नाम लेने पर, वह बुद्ध मत में वैसे ही प्रगट=प्रसिद्ध था, जैसे आकाश तल पर चन्द्रमा। उस समय राजगृह में उत्सव (=नक्षत्र-क्रीड़ा) था। स्थविर के माता पिता, उन सब आभरणों को, जिन्हें स्थविर गृहस्थ में रहते पहनते थे, चाँदी की डलिया में रख, (उसे) अपनी छाती पर रख, 'अन्य उत्सवों (=नक्षत्र-क्रीड़ाओं) के मौके पर हमारा पुत्र इन इन आभूषणों से अलंकृत होकर मेले में जाता था। अब हमारे उस अकेले पुत्र को, लेकर श्रमण गौतम श्रावस्ती चला गया। इस समय वह कहाँ बैठा होगा, कहाँ खड़ा होगा कहते रोते थे। एक वेश्या ने उसके घर जाकर, सेठानी को रोते देख पूछा—"आर्य्ये! क्यों रोती हो?"

उसने सब बात कह दी।

"आर्ये! आर्य-पुत्र को क्या क्या प्यारा लगता था?"

"अमुक अमुक (चीजें)।"

"यदि तुम, इस घर का सब ऐश्वर्य मुझे दो, तो मैं आर्य-पुत्र को ले आऊँगी।"

सेठानी ने 'अच्छा' कह, स्वीकार कर, खर्चा दे, वहुत से अनुयायियों के साथ उसे यह कहकर भेजा, "जा, अपने बल से मेरे पुत्र को ला।"

तब वह परदे वाली गाड़ी में बैठ, श्रावस्ती पहुँची। (वहाँ) जिस गली में स्थविर भिक्षा माँगने जाया करते थे उसमें घर लिया। फिर सेठ के नौकरों को स्थविर की आँख से ओझल रख, अपने ही आदमियों के साथ स्थविर के भिक्षा के लिए आने के समय, पहले कड़छी भर, फिर कटोरा भर (भिक्षा) देने लगी। (इस प्रकार) रस-तृष्णा से बाँध धीरे धीरे घर के भीतर बिठा कर

[1] दखो मज्झिम निकाय सुत्त ८२ (३३०)

[2] एक सिरे से, सभी घरों से।

भिक्षा देती थी। जब उसने (स्थविर को) अपने वश में हुआ जाना; (तो एक दिन) रोगी होने का बहाना कर, वह घर के अन्दर जा लेटी। स्थविर भिक्षा के समय, क्रम से भिक्षा माँगते हुए गृह-द्वार पर आये। नौकर-चाकरों ने स्थविर का पात्र ग्रहण कर उन्हें घर में बिठाया।

स्थविर ने बैठते ही पूछा—"उपासिका कहाँ है?"

"भन्ते! रोगी है, आपका दर्शन करना चाहती है।"

"रस-तृष्णा में बँधे होने से वह अपनी प्रतिज्ञा (=व्रतसमादान) तोड़ कर, उसके लेटे रहने की जगह चले गये। उसने अपने आने का (असली) कारण कह, उनके चित्त को लुभा लिया। फिर उसने रस-तृष्णा में बाँध उनका चीवर उतरवा दिया, और अपने वश में कर, गाड़ी में बिठा, बहुत से लोगों के साथ राजगृह चली गई। वह बात प्रसिद्ध हो गई। धर्म सभा में बैठे हुए भिक्षुओं ने कहना आरम्भ किया कि एक वेश्या चुल्ल **पिण्डपतिक तिस्स थेर** को रस-तृष्णा में बाँधकर (साथ) ले गई। बुद्ध ने धर्मसभा में जा, अलंकृत आसन पर बैठ, पूछा—"भिक्षुओ! क्या बात चल रही है"? उन्होंने वह समाचार कहा। भगवान् ने "भिक्षुओ! यह भिक्षु केवल अब ही रस-तृष्णा में बँधकर, उसके वशीभूत नहीं हुआ, पहले भी हुआ है," कह, अतीत की बात कही—

ख. अतीत कथा

"पूर्व-समय में **बाराणसी** में राजा **ब्रह्मदत्त** का (एक) **सञ्जय** नामक माली था। एक शीघ्रगामी मृग (वात-मृग) उस उद्यान में आता, (लेकिन) **सञ्जय** को देख कर भाग जाता। सञ्जय उसको डराकर निकालता था। वह बार बार आकर उद्यान में ही चरता था। माली प्रति दिन उद्यान से नाना प्रकार के फल-फूल राजा के पास ले जाता था। एक दिन राजा ने उससे पूछा—"सौम्य! उद्यानपाल! उद्यान में कोई आश्चर्य (की चीज़) देखते हो?"

"देव! और तो कुछ नहीं देखता, हाँ यह देखता हूँ कि एक शीघ्र-गामी-मृग आकर उद्यान में चरता है।"

"क्या, उसे पकड़ सकोगे?"

"यदि थोड़ा मधु मिले, तो उसे यहाँ राज-निवास के अन्दर भी ला सकूँगा।"

राजा ने उसे मधु दिलवा दिया। उसने मधु ले, उद्यान में जाकर, शीघ्रगामी-मृग के चरने की जगह (कुछ) तिनकों को मधु से माख (=चुपड़) दिया। मृग आकर, मधु लगे तिनकों को खाकर, रस-तृष्णा से बँधा हुआ, किसी दूसरी जगह न जा, उद्यान में ही आता था। माली ने, उसके मधु-लिप्त तृण में लुब्ध हो जाने पर, धीरे धीरे अपने को प्रगट किया।

उसने उसे देख, कुछ दिन तक भाग कर, फिर फिर देखने से विश्वास पैदा कर, धीरे धीरे माली के हाथ में रक्खे तृणों को भी खाना आरम्भ कर दिया। माली ने उसका 'विश्वास जीत लिया' जान, राज-भवन तक सड़क पर चटाइयाँ बिछवाईं। जहाँ तहाँ (पत्तों की) डालियाँ गिरवाईं। '(तब वह) मधु के कुप्पे को कन्धे पर लटका, तृणों की पूली को बगल में दबा, मधु से माखे तृण मृग के आगे आगे बखेरते राज-भवन के अन्दर चला गया। मृग के अन्दर दाखिल होने पर द्वार बन्द कर लिये गये। मृग मनुष्यों को देखकर, काँपता हुआ, मरने से भयभीत (राज-)भवन के आङ्गण में इधर उधर भागने लगा। राजा ने प्रासाद से उतर, उसे काँपते देख, (सोचा)—वात-मृग मनुष्य दिखाई देने की जगह एक सप्ताह तक नहीं जाता। और जहाँ से डरा दिया जाये, वहाँ तो जन्म-भर नहीं जाता। सो इस प्रकार छिपकर रहनेवाला वात-मृग रस-तृष्णा में बँधकर, अब ऐसी जगह आ गया। भो! लोक में रस-तृष्णा से बढ़कर बुरी चीज़ नहीं है। यह (सोच) इस गाथा से धर्मोपदेश की स्थापना की—

न किरत्थि रसेहि पापियो आवासेहि वा सन्थवेहि वा।
वातमिगं गेहनिस्सितं वसमानेसि रसेहि सञ्जयो॥

[निवासस्थान वा मित्रों के मिलाप की भी आसक्ति रस की आसक्ति से बढ़कर खराब नहीं है। घोर जंगल में रहनेवाले मृग को रस के द्वारा सञ्जय ने वश में कर लिया।]

'किर' तो यों ही 'निपात' है। **रसेहि** का अर्थ है जिह्वा से चखे जानेवाले मीठे, खट्टे आदि। **पापियो**=पापतर (=बहुत बुरी)। **आवासेहि वा सन्थवेहि वा** का अर्थ है दिल लगे हुए रहने के स्थान तथा मित्रों के मिलाप में भी आसक्ति बुरी ही है, लेकिन आसक्ति-पूर्वक परिभोग=आवास से तथा मित्रों के मिलाप से सौगुणा, हज़ारगुणा बुरी है भोजन के रस में आसक्ति; क्योंकि आहार का

सेवन निरन्तर करना होता है, (और) उसके बिना प्राणों की रक्षा नहीं हो सकती। बोधिसत्व ने इस अर्थ को पूर्व अनुश्रुति के अनुसार कहा कि **न करित्थ रसेहि पापियो आवासेहि वा सन्थवेहि वा**। यहाँ उनकी दोष-पूर्णता प्रदर्शित कर वातमिग आदि कहा। गेह निस्सितं[1] का अर्थ है गहन स्थान में रहनेवाला।

भावार्थ यह है—देखो रसों की दोषपूर्णता—सञ्जय (नामक) माली ने अरण्य निवासी वातमृग (=जंगली-मृग) को मधु-रस (के लालच) से, अपने वश में कर लिया। सब ही जगह रस-भोग की आसक्ति के समान दोषपूर्ण=बुरी, दूसरी कोई (चीज़) नहीं। इस प्रकार रस-तृष्णा के दोष कहकर, उस मृग को (फिर) जंगल में ही भेज दिया।

शास्ता ने, 'भिक्षुओ! न केवल अब ही, उस वेश्या ने इसे रस-तृष्णा से बाँधकर, अपने वश में किया है बल्कि पहले भी किया था।' इस धर्म-देशना को ला, मेल मिला, जातक का सारांश निकाल दिखाया।

उस समय (का) सञ्जय यह (अब की) वेश्या थी। वातमृग (अब का) चुल्लपिण्डपातिक था। लेकिन बाराणसी का राजा तो मैं ही था।

१५. खरादिय जातक

"**अट्ठखुरं खरादिये**" यह गाथा, बुद्ध ने जेतवन में विहार करते समय, एक कटुभाषी भिक्षु के सम्बन्ध में कही।

क. वर्तमान कथा

वह कटुभाषी भिक्षु (किसी का) उपदेश न ग्रहण करता था। बुद्ध ने

[1] 'अगेह निस्सितं' पाठ अधिक अच्छा होता।

उस से पूछा—"भिक्षु ! क्या तू सचमुच कटुभाषी (है), (किसी का) उपदेश नहीं ग्रहण करता ?"

"भगवान् ! यह (बात) सच है।"

बुद्ध ने, 'पहले भी तू ने कटुभाषिता के कारण, पण्डितों का उपदेश नहीं ग्रहण किया; और पाश से बँधकर, अपने प्राणों का नाश किया' कह अतीत की कथा सुनाई।

ख. अतीत कथा

"पूर्व समय में, बाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय, बोधिसत्व मृग की योनि में पैदा हो, मृग-गण के साथ जंगल में रहते थे। (एक दिन) उनकी बहन ने उन्हें हरिण-पुत्र दिखाकर कहा—"भाई ! यह तुम्हारा भांजा है। इसे मृग-माया सिखाओ।" यह कह (उसे मृग-पुत्र) सौंपा। उसने भांजे को कहा—अमुक समय पर आकर सीखना। वह कहे हुए समय पर न आया। जैसे एक दिन, उसी प्रकार सात दिनों तक, सात उपदेशों (=आज्ञाओं) का उल्लंघन कर, वह मृग-माया को बिना सीखे ही चरता हुआ पाश में बँध गया। माता ने भाई से आकर पूछा—"क्यों भाई ! तू ने भांजे को मृग-माया सिखा दी थी ?" बोधिसत्व ने, "उस बात न माननेवाले का सोच मत कर। तेरे पुत्र ने मृग-माया नहीं सीखी" कह, अब भी उसे सिखाने का अनिच्छुक ही हो, यह गाथा कही—

अटठखुरं खरादिये ! मिगं वङ्कातिवङ्किनं।
सत्तहि कलाहतिक्कन्तं न तं ओवदितुस्सहे ॥

[हे खरादिये ! वङ्कातिवङ्क, सात कलाओं (=उपदेशों) का उल्लंघन करनेवाले, उस मृग को मेरी उपदेश देने की रुचि (=प्रेरणा) नहीं।]

अटठखुरं; एक एक पाँव में दो दो (खुर) होने से आठ खुर। **खरादिये**; इस नाम से सम्बोधन करता है। **मिगं**—सब (मृगों) के लिए एक शब्द है। **वङ्कातिवङ्किनं**—आरम्भ में टेढ़े, आगे और भी टेढ़े, इस प्रकार वङ्कातिवङ्क (टेढ़े अति टेढ़े); जिसके ऐसे सींग हों; वह वङ्कातिवङ्की, उस (=तं),

वङ्कातिवङ्की को। सत्ताहि कलाहतिक्कन्तं का अर्थ है, उपदेश के सात समयों पर उपदेश का उल्लंघन करने वाला। न तं ओवदितुस्सहे का अर्थ है, इस प्रकार के कटुभाषी मृग को उपदेश देने की मेरी प्रवृत्ति नहीं होती। ऐसे को उपदेश देने का मुझे विचार तक नहीं होता।'—यही स्पष्ट किया है।

सो शिकारी, उस पाश में बँधे हुए कटुभाषी मग को मारकर, मांस लेकर चला गया।

बुद्ध ने भी, 'भिक्षु ! तू केवल अब ही कटुभाषी नहीं है, पहले भी कटुभाषी ही रहा है।'—यह धर्म-देशना ला कर, मेल मिला, जातक का सारांश निकाल दिखाया।

उस समय का भांजा मृग (अब का) कटुभाषी भिक्षु था। बहन (अब की) उत्पल-वर्णा (भिक्षुणी) थी। लेकिन उपदेश देनेवाला मृग तो मैं ही था।

१६. तिपल्लत्थमिग जातक

"मिगंतिपल्लत्थं..." यह गाथा, शास्ता ने कोसम्बी[१] के बदरिकाराम में विहार करते हुए शिक्षा-कामी राहुल स्थविर के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

एक समय, शास्ता के आलवि नगर के पास के अग्गालव चैत्य में विहार करते समय उपासिकायें और भिक्षुणियाँ धर्म सुनने के लिए विहार को जाती थीं।

[१] इलाहाबाद से प्रायः तीस मील पश्चिम, जमुना के बायें किनारे वर्तमान कोसम (जिला इलाहाबाद, यु० प्रा०)।

धर्म-श्रवण दिन में होता था। समय बीतने पर, उपासिकाओं और भिक्षुणियों ने जाना छोड़ दिया। भिक्षु और उपासक ही (धर्म-श्रवणार्थ) रह गये। उसके बाद धर्म-श्रवण रात को होने लगा। धर्म सुनने के बाद स्थविर भिक्षु अपने अपने निवास स्थान को चले जाते थे। दहर (=कम आयु वाले भिक्षु) उपासकों के साथ उपस्थान शाला (=दान-शाला) में सो जाते थे। उन के सो जाने पर, कोई कोई घुर घुर स्वांस खैंचते हुए, दाँतों को कटकटाते हुए सोते। कोई कोई थोड़ी देर सोकर उठ खड़े होते। उस विकार (=विकृति) को देखकर, उन्होंने बुद्ध से निवेदन किया। भगवान् 'जो भिक्षु (किसी) अनुपसम्पन्न के साथ सोये, वह पाचित्तिय (=प्रायश्चित्त करने योग्य दोष) का भागी होता है' शिक्षा-पद की घोषणा (=प्रज्ञप्ति) कर, कोसम्बी को चले गये।

भिक्षुओं ने आयुष्मान् राहुल को कहा—"आयुष्मान् राहुल ! भगवान् ने शिक्षापद की घोषणा कर दी है। अब तू अपने लिए निवासस्थान ढूँढ़।" इससे पहले, भगवान् के प्रति गौरव रहने से, और उस आयुष्मान् राहुल के शिक्षा-कामी होने से, भिक्षु, आयुष्मान् राहुल के अपने निवास-स्थान पर आने पर उसका बड़ा सत्कार करते थे। उसके लिए छोटी सी चारपाई बिछा देते; और सिरहाना करने के लिए चीवर देते थे। लेकिन उस दिन शिक्षा-पद के भय से निवास-स्थान तक नहीं दिया। राहुल-भद्र भी दशबल(-धारी) मेरे पिता हैं, या धर्म सेनापति (=सारिपुत्र) मेरे उपाध्याय हैं, या महामौदगल्यायन मेरे आचार्य्य हैं या आनन्द स्थविर मेरे चाचा हैं (सोच) उनमें से किसी एक के पास न जा दशबल(-धारी) के काम आनेवाले शौचागार में, ब्रह्मविमान में प्रविष्ट होने के सदृश, दाखिल हो, (वहीं) रहा।

बुद्धों के शौचागार का द्वार भली प्रकार बन्द रहता है। भूमि सुगन्धियुक्त होती है, सुगन्धित मालाओं की लड़ियाँ फैली ही होती हैं। तमाम रात दीपक जलता है। लेकिन राहुल-भद्र ने, उस शौच-स्थान (=कुटि) में इन सब चीजों (=सम्पत्ति) के होने के कारण, वहाँ वास नहीं किया; बल्कि भिक्षुओं के 'अब तू अपने स्थान को जा' कहने से, उनके उपदेश का गौरव रखनेवाला, तथा शिक्षा-कामी होने से वहाँ निवास किया। बीच बीच में, भिक्षु भी, उस आयुष्मान् को दूर से आता देख, उसकी परीक्षा लेने के लिए, मुट्ठ वाली झाड़ू अथवा कूड़ा-फेंकने-वाला, बाहर फेंक देते। और उसके आने पर पूछते—"आवुसो !

यह बाहर किसने छोड़ दिये ?" तब किसी के, 'राहुल ! इस मार्ग से गया है' कहने पर, वह 'भन्ते ! मैं यह नहीं जानता हूँ' न कहकर, उन्हें उचित स्थान पर रख, 'भन्ते ! मुझे क्षमा करें' कह क्षमा माँगकर जाता। यह ऐसा शिक्षा-कामी था। इस अपनी शिक्षा-काम्यता के ही कारण, उसने वहाँ निवास किया।

शास्ता ने अरुणोदय से पूर्व ही शौचालय के द्वार पर खड़े होकर खाँसा। उस आयुष्मान् ने भी खाँसा। "यह कौन है ?" "मैं राहुल हूँ" कह, निकलकर प्रणाम किया। "राहुल ! तू यहाँ किस लिए पड़ा है ?" "रहने का स्थान न मिलने के कारण। भन्ते ! भिक्षु पहले मेरा सत्कार (=संग्रह) करते थे, लेकिन अब आपत्ति (=दोषी होने) के भय से मुझे निवास-स्थान नहीं देते। सो मैं "इस स्थान में औरों का दखल नहीं" सोच यहाँ लेटा हूँ।"

भगवान् के मन में 'राहुल की (भी) इस प्रकार लापरवाही कर, भिक्षु, अन्य कुल-पुत्रों को प्रव्रजित कर क्या करेंगे ?' (सोच) धर्म-संवेग उत्पन्न हुआ। सो प्रातःकाल ही, सब भिक्षुओं को एकत्र करवा, भगवान् ने धर्म-सेनापति से पूछा—"सारिपुत्र तुझे मालूम है कि आज (रात) राहुल कहाँ रहा ?" "भन्ते ! नहीं मालूम है।" "सारिपुत्र ! आज राहुल शौचालय (=वच्च कुटि) में रहा है। सारिपुत्र ! तुम राहुल को इस प्रकार छोड़कर, और बालकों को प्रव्रजित कर क्या करोगे ? यह (हाल) रहने पर तो, इस शासन में प्रव्रजित प्रतिष्ठित नहीं होंगे। इससे आगे अनुपसम्पन्न को एक दो दिन, अपने पास रखकर, तीसरे दिन उनका निवासस्थान मालूम कर, उन्हें (वहाँ) बाहर बसाओ"— इस उप-नियम को बनाकर, फिर शिक्षा-पद की घोषणा की।

उस समय धर्म-सभा में बैठे भिक्षु, राहुल की प्रशंसा कर रहे थे। "आयुष्मानो ! देखो ! यह राहुल कितना शिक्षा-कामी है ! 'अपने निवास-स्थान को जा' कहने पर, 'मैं दशबल का पुत्र हूँ। तुम कौन लगते हो शयनासन के। निकलो, तुम ही निकलो।'—इस प्रकार, किसी एक भिक्षु को भी प्रत्युत्तर न दे, शौच-स्थान में जा (सो) रहा।" उनके इस प्रकार कहते समय, शास्ता ने धर्म-सभा में आ, अलंकृत आसन पर बैठ, पूछा—"भिक्षुओ ! इस समय बैठे क्या बात-चीत कर रहे थे ?" "भन्ते ! और कोई बात नहीं; राहुल के शिक्षा-कामी होने की बात।" शास्ता ने, "भिक्षुओ ! राहुल केवल अब ही शिक्षा-कामी नहीं है पूर्व पशु-योनि में भी शिक्षा-कामी ही रहा है" (कह) अतीत की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में राजगृह में एक मगध-नरेश राज्य करते थे। उस समय बोधिसत्व मृग की योनि में उत्पन्न हो, मृग-गण के सहित अरण्य में रहते थे। उनकी बहन ने, अपने पुत्र को उनके पास ले जाकर, कहा—"भाई ! (अपने) इस भांजे को मृग-माया सिखा।" बोधिसत्त्व ने 'अच्छा' कह, स्वीकार कर, कहा—'जा तात ! अमुक समय आकर सीखना।' उसने मामा के बताये हुए समय पर ही, उसके पास जाकर, मृग-माया सीखी। एक दिन जंगल में चरते हुए, उसने, पाश में बँधकर, बँध जाने की चिल्लाहट (=बद्धराव) की। मृग-गण ने दौड़ आकर, उसकी माता को कहा—"तेरा पुत्र पाश में बँध गया।" उसने भाई के पास जाकर पूछा—"भाई ! क्या तेरे भांजे ने मृग-माया सीख रक्खी है ?" बोधिसत्व ने, "तू पुत्र के विषय में कुछ बुरी आशङ्का मत कर, उसने मृग-माया भली प्रकार सीख रक्खी है। वह, अभी हँसता हँसता चला आयगा" कह यह गाथा कही—

मिगं तिपल्लत्थ मनेकमायं,
अटठखुरं अडढ रत्ताव पायिं,
एकेन सोतेन छमास्स सन्तो
छहि कलाहतिभोति भागिणेय्यो ॥

[तीन प्रकार से सोनेवाला, अनेक प्रकार की माया जाननेवाला, अठ खुरों वाला, आधीरात को पानी पीनेवाला, (मेरा) भांजा, एक नासिका-छिद्र को पृथ्वी पर रक्खे स्वांस लेते हुए छः कलाओं से (शिकारी को) धोखा देगा।]

मृग=भांजा मृग। **तिपल्लत्थं**, पल्लत्थ कहते हैं (पालथी को), शयन को। दोनों पासों पर, और गौ के बैठने की तरह सीधा बैठना, इस तरह जिसका तीन प्रकार का आसन (=शयन) हो, वह 'तिपल्लथो'; उस तिपल्लत्थ को, 'तिपल्लत्थं'। **अनेकमायं** का अर्थ है बहुत माया, बहुत धोखा। **अट्ठखुरं** एक एक पैर में दो दो खुर होने से आठ खुर। अडढरत्तावपायिं, का अर्थ है पूर्व-याम के समाप्त होने पर, मध्यम-याम में जंगल से लौटकर पानी के पीने से, 'आधी रात को जल पीता है' करके **अडढरत्तावपायिं**, उस अडढरत्तावपायिं को—

यही अर्थ है। मैंने अपने भांजे मृग को अच्छी प्रकार मृग-माया सिखा दी है। कैसे? **एकेन सोतेन छमास्ससन्तो छहि कलाहतिभोति भागिणेय्यो।** इसका भावार्थ है कि मैंने तेरे पुत्र को इस प्रकार सिखाया है। "ऊपर के एक नासिका-श्रोत की वायु को रोककर, पृथ्वी से लगे हुए, एक निचले नासिका छिद्र से, वहाँ पृथ्वी ही में साँस लेते हुए, छः कलाओं से शिकारी को (अतिभोति =छः प्रकार से अज्भोत्थरति) धोखा देता है। कौन सी छः कलाओं से? चारों पैर पसारकर, एक पासे पर सोने से, खुरों से तिनके और बालू खोदने से, जीभ निकालने से, पेट को फुलाने से, पाखाना-पेशाब करने से, हवा (स्वांस) को रोकने से। दूसरा क्रम—पैरों को अगली ओर पसारने से, शरीर तानने से, दोनों ओर पलटने से, ऊपर उछलने से, नीचे पटकने से,—इन छः कलाओं से धोखा देता है; मर गया है, ऐसा ख्याल पैदा कर धोखा देता है। 'इस प्रकार, उसको मृग-माया सिखाई'—प्रगट किया है। अन्य क्रम—उसको ऐसे सिखाया, जैसे **एकेन सोतेन छमास्ससन्तो छहि कलाह**—दो प्रकार से कहे गये छः छः ढंगों से (कलाहति=कलायिस्सति) शिकारी को धोखा देगा। 'भोति' शब्द से बहन को सम्बोधन किया है। भागिणेय्यो—इस प्रकार छः ढंग से धोखा दे सकनेवाले भांजे का निर्देश करता है।

इस प्रकार बोधिसत्व न, भांजे के सम्यक् मृग-माया सीखे रहने की बात कह बहन को सान्त्वना दी। वह हरिण-बच्चा भी पाश में बँधने पर, बिना हाथ पैर मारे ही, पृथ्वी पर महा-सुख पूर्वक टाँगें फैलाकर, लेट, पैरों के पास स्थान पर खुर-प्रहार से बालू तथा तृणों को उखाड़, पेशाब पाखाना कर, सिर को गिरा, जीभ निकाल, शरीर को मुँह की झाग से भिगो, हवा से पेट को फुला, आँखों को उलट, निचले नासिका-छिद्र से स्वांस लेते हुए, ऊपर के नासिका-छिद्र से स्वाँस लेना रोक, सारे शरीर को कड़ा कर, अपने को मर गये के सदृश दिखाया। नीली मक्खियों ने उसे घेर लिया। जहाँ तहाँ कौवे भी आ जुटे। शिकारी आकर, पेट पर हाथ फेर, 'प्रातःकाल ही फँस गया होगा, अब सड़ चला' (सोच) उसकी बन्धन रस्सी खोल, 'अब इसे यहीं काटकर, इसका मांस ले जाऊँगा" (सोच) आशङ्का रहित हो, डाल-पात लेने लगा। हरिण-बच्चा उठकर, चारों पैरों पर खड़ा हो, शरीर को तान, गर्दन को पसार,

तेज़ वायु से उड़ाये गये बादल की तरह, जल्दी से माता के पास आ गया।

शास्ता ने, 'भिक्षुओ ! राहुल (केवल) अब ही शिक्षा-कामी नहीं है, पहले भी शिक्षा-कामी ही रहा है—इस धर्म-देशना को ला, मेल मिला, जातक का सारांश निकाल दिखाया। उस समय का भांजा-हिरण-बच्चा (अब का) राहुल था। माता (अब की) उत्पल-वर्णा थी। और माया-मृग तो मैं ही था।

१७. मारुत जातक

'काले वा यदि वा जुण्हे. . . .' इस गाथा को शास्ता ने जेतवन में विहरते हुए, दो चिर-प्रव्रजितों (=वृद्ध-प्रव्रजितों) के बारे में कहा।

क. वर्तमान कथा

वे (दोनों) कोशल जनपद के एक अरण्य-वास में रहते थे। एक का नाम था काल स्थविर और दूसरे का जुण्ह स्थविर। एक दिन जुण्ह (स्थविर) ने काल से पूछा—"भन्ते ! काल ! सरदी किस समय पड़ती है ?" उसने उत्तर दिया—"काल (=कृष्ण पक्ष) में पड़ती है।" तब एक दिन काल ने जुण्ह से पूछा—"भन्ते ! जुण्ह ! सरदी किस समय पड़ती है ?" उसने उत्तर दिया—"जुण्ह (=श्वेत पक्ष) में पड़ती है।" वे दोनों अपनी शङ्का का निबटारा न कर सकने के कारण शास्ता के पास गये (और) शास्ता को प्रणाम कर पूछा—"भन्ते ! सरदी किस समय पड़ती है ?" शास्ता ने उनकी कथा सुन "भिक्षुओ ! मैंने पहले भी तुम्हारे इस प्रश्न का उत्तर दिया है; लेकिन पूर्व-जन्म से छिपा रहने के कारण, तुम उस उत्तर का ख्याल नहीं करते" कह, पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में सिंह और व्याघ्र दो मित्र एक पर्वत-भाग की एक ही गुफा में रहते थे। उस समय बोधिसत्व भी ऋषि-प्रव्रज्या के अनुसार प्रव्रजित हो, उसी पर्वत-भाग में रहते थे। एक दिन उन (दोनों) मित्रों का शीत के बारे में विवाद चल पड़ा। व्याघ्र ने कहा—"काल (=कृष्ण पक्ष) में पड़ती है" सिंह ने कहा—"जुण्ह (=श्वेत पक्ष) में।' उन दोनों ने अपनी शंका न निबटा सकने के कारण, बोधिसत्व से पूछा। बोधिसत्व ने यह गाथा कही—

काले वा यदि वा जुण्हे यदा वायति मालुतो,
वातजानि हि सीतानि उभोत्थमपराजिता ॥

[काल-पक्ष में, वा जुण्ह-पक्ष में जब भी वायु (=मारुत) चलती है (सरदी पड़ती है)। शीत, हवा से उत्पन्न होता है। दोनों कथन (=अर्थ) ही ठीक (=अपराजित) हैं।]

काले वा यदि वा जुण्हे का अर्थ है कृष्ण-पक्ष में वा श्वेत-पक्ष में। **यदा वायति मालुतो** का अर्थ है, जिस समय पुरवा आदि हवा चलती है, उस समय सरदी पड़ती है। किस कारण से ? **वातजानि हि सीतानि,** क्योंकि वायु के रहने पर ही शीत होता है, जिसका भावार्थ है कि कृष्ण-पक्ष वा शुक्ल-पक्ष का होना विशेष कारण नहीं। **उभोत्थपराजिता** का अर्थ है कि इस प्रश्न के बारे में तुम दोनों ही ठीक (=अपराजित) हो—इस प्रकार बोधिसत्त्व ने उन मित्रों को समझाया।

शास्ता ने "भिक्षुओ ! मैंने पहले भी तुम्हारे इस प्रश्न क उत्तर दिया है" कह, इस धर्म-देशना को लाकर आर्य (-सत्यों) को प्रकाशित किया। (आर्य-) सत्यों के (प्रकाशन के) अन्त में दोनों स्थविर श्रोतापत्ति फल में प्रतिष्ठित हुए। शास्ता ने मेल मिलाकर, जातक का सारांश निकाल दिखाया। उस समय का व्याघ्र (अब का) काल (स्थविर) था। सिंह (अब का) जुण्ह (स्थविर) था ! प्रश्नोत्तर देनेवाला तपस्वी तो मैं ही था।

१८. मतकभत्त जातक

"**एवं चे सत्ता जानेय्युं—**" इस गाथा को शास्ता ने जेतवन में विहार करते हुए, श्राद्ध (=मतकभत्त) के बारे में कहा।

क. वर्तमान कथा

उस समय मनुष्य बहुत सी भेड़ बकरी आदि को मार, मृत-सम्बन्धियों की याद में श्राद्ध (=मतकभत्त) करते थे। भिक्षुओं ने उन मनुष्यों को वैसा करते देख शास्ता से पूछा—"भन्ते! मनुष्य बहुत से प्राणियों की प्राण-हानि कर श्राद्ध करते हैं (=मृतक-भात देते हैं)। क्या भन्ते! इससे (ऐसा करनेवालों की) उन्नति (हो सकती) है?" शास्ता ने कहा—"भिक्षुओ! श्राद्ध करने के विचार से भी प्राण-हानि करनेवाले की कुछ भी उन्नति नहीं है। पूर्व समय में पण्डितों ने आकाश में बैठ, धर्मोपदेश कर, (प्राण-नाश) के दोष दिखा, सकल **जम्बूद्वीपवासियों** से, इस कर्म को छुड़वा दिया था। अब (वह बात) पूर्व-जन्मों में छिप जाने के कारण, यह (कर्म) फिर प्रादुर्भूत हो गया।" (यह कह) अतीत की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में **बाराणसी** में (राजा) **ब्रह्मदत्त** के राज्य करते समय, एक त्रिवेदज्ञ, दिशा-प्रमुख (=लोक-प्रसिद्ध) आचार्य्य-ब्राह्मण ने श्राद्ध करने के विचार से, एक भेड़ा मँगवा कर, अपने शिष्यों को कहा—तात! इस भेड़े को नदी पर ले जा, नहला, गले में माला डाल, पञ्चाङ्गुलियों (का चिन्ह) दे, सजा कर ले आओ। उन्होंने 'अच्छा' कह, स्वीकार कर, उस (भेड़े) को नदी पर ले जा, (वहाँ) नहला, सजा, नदी के किनारे पर रक्खा। वह भेड़ा, अपने

पूर्व-कर्म का विचार कर, 'ऐसे दुःख से आज मुक्त हो जाऊँगा' सोच हर्षित हो, घड़े के फूटने की तरह, ज़ोर से हँसा और (फिर) 'यह ब्राह्मण मुझे मारकर जिस दुःख को मैंने भोगा है, उसे भोगेगा' सोच, ब्राह्मण के प्रति करुणा का भाव उत्पन्न कर, ज़ोर से रोया। उन ब्रह्मचारियों (=माणवकों) ने उससे पुछा—"सम्म ! भेड़ ! तू ज़ोर (=महाशब्द) से हँसा और रोया ! किस कारण तू हँसा ? और किस कारण रोया ?" "तुम यह बात, मुझे अपने आचार्य्य के पास ले जाकर पूछना।" उन्होंने उसे ले जाकर, यह बात अपने आचार्य्य से जा कही।

आचार्य्य ने उनकी बात सुनकर भेड़े से पूछा—"भेड़ ! तू किस लिए हँसा ? किस लिए रोया ?" भेड़े ने पूर्व-जन्म-स्मरण-ज्ञान से अपने पूर्व-कर्म का स्मरण कर ब्राह्मण को कहा—"हे ब्राह्मण ! पूर्व-जन्म में मैंने तेरे सदृश ही मन्त्रपाठी ब्राह्मण हो, 'श्राद्ध करूँगा' (सोच) एक भेड़ा मारकर (मृतक-भात) दिया। सो, मैंने, उस एक भेड़े को मारने के कारण, एक कम पाँच सौ योनियों में अपना सीस कटवाया। यह मेरा पाँचसौवाँ, अन्तिम जन्म है। आज मैं इस दुख से मुक्त हो जाऊँगा' (सोच) हर्षित हुआ (और) इस कारण से हँसा। और जो रोया ? सो (तो यह सोचकर) कि मैं तो, एक भेड़े के मारने के कारण पाँच सौ जन्मों में (अपना) सीस कटा कर, आज इस दुःख से मुक्त हो जाऊँगा, (लेकिन) यह ब्राह्मण मुझे मारकर, मेरी तरह पाँच सौ जन्मों तक सीस कटाने के दुःख को भोगेगा। सो, तेरे प्रति करुणा से रोया।" "भेड़ ! डर मत। मैं तुझे नहीं मारूँगा।" "ब्राह्मण ! क्या कहते हो ? तुम चाहे मारो, चाहे न मारो, मैं आज मरण दुःख से नहीं छूट सकता।" "भेड़ ! डर मत। मैं तेरी हिफाज़त (=आरक्षा) करता हुआ, तेरे साथ ही साथ घूमूँगा।" "ब्राह्मण ! तेरी हिफाज़त अल्प-मात्र है; मेरा किया हुआ पाप बड़ा भारी है।"

ब्राह्मण, भेड़े को मुक्त कर, 'इस भेड़े को किसीको न मारने दूँगा' (सोच) शिष्यों को ले, भेड़े के साथ ही साथ घूमने लगा। भेड़े ने छूटते ही, एक पत्थर की शिला के पास उगी हुई झाड़ी की ओर गर्दन उठाकर, पत्ते खाने शुरू किये। उसी क्षण, उस पत्थर-शिला पर बिजली पड़ी। उसमें से पत्थर की एक फाँक ने छीज कर, भेड़े की पसारी हुई गर्दन पर गिर, गर्दन काट दी। जन (-समूह) एकत्र हो गया। उस समय बोधिसत्व, उस जगह वृक्ष-देवता हो कर उत्पन्न हुआ था। उसने उन लोगों को देखते ही, (अपनी) दैव-शक्ति से आकाश

में पल्लथी मारकर बैठ, 'अच्छा हो ! यदि ये प्राणी, पाप-कर्म के इस प्रकार के फल को जानकर, प्राण-हानि न करें' (सोच) मधुर स्वर से धर्मोपदेश करते हुए, यह गाथा कही—

एवं चे सत्ता जानेय्युं दुक्खायं जाति सम्भवो,
न पाणो पाणिनं हञ्ञे पाणघाती हि सोचति ॥

[यदि प्राणी, इस बात को समझ ले कि जाति (=जन्म लेना) दुःख है, तो (एक) प्राणी दूसरे प्राणी की हत्या न करे। प्राण-घात करनेवाले को चिन्तित रहना पड़ता है।]

"**एवञ्चे सत्ता जानेय्युं....**" यदि प्राणी इस प्रकार जान लें; कैसे **दुक्खायं जाति सम्भवो** यह जहाँ तहाँ जन्म लेना तथा उत्पन्न (हुए) की क्रम-पूर्वक वृद्धि कहलाने वाला सम्भव (=होना)—यह, जाति, व्याधि, मरण, अप्रिय-सम्प्रयोग, प्रिय-विप्रयोग, हस्त-पाद छेदन आदि दुःखों का कारण होने से दुःख है—यदि इसे जान लें। **न पाणो पाणिनं हञ्ञे** का अर्थ है कि दूसरों का वध करनेवाले का वध होता है, पीड़ा देनेवाले को पीड़ा होती है, इस प्रकार दूसरे जन्म में दुःख भोगना होता है, यदि इसे जान लें तो कोई प्राणी दूसरे प्राणी की हत्या न करे; एक सत्व दूसरे सत्व की हत्या न करे। किस कारण से ? **प्राणघाती हि सोचति** क्योंकि अपने हाथ से मारना दूसरे के हाथ से मरवाना आदि छः कर्मों में से किसी भी एक कर्म से दूसरे की जीवितेन्द्रिय (=प्राण) के नाश करनेवाला प्राण-घाती व्यक्ति, आठ महा-नरकों में, सोलह उस्सद-नरकों में, नाना प्रकार की पशु-योनियों में, प्रेत-योनि में, तथा असुर-योनि में—इन चार प्रकार के अपायों में महा-दुःख का अनुभव करते हुए, दीर्घ काल तक अन्तर-दाह करने वाले शोक से चिन्तित रहता है। अथवा, जैसे यह भेड़ मरने के डर से चिन्तित रहा, वैसे दीर्घ काल तक चिन्तित रहता है—यह जान कर भी कोई प्राणी प्राणियों की हत्या न करे। कोई भी प्राणातिपात (प्राण-घात) का कर्म न करे। लेकिन मोह से मूढ़ हुए, अविद्या से अन्धे हुए (लोग) इन दुष्परिणामों को न देखने के कारण प्राणातिपात करते हैं।

इस प्रकार महासत्व ने निरय (नरक) भय का डर दिखाकर धर्मोपदेश किया। मनुष्य, उस धर्मोपदेश को सुन, निरय से भयभीत हो, प्राणातिपात (जीव-हिंसा) से हटे। बोधिसत्व, उपदेश दे, मनुष्यों को शील (सदाचार) में प्रतिष्ठित कर, (अपने) कर्मानुसार, (परलोक) गये। जन(-समूह) ने भी बोधिसत्त्व के उपदेशानुसार आचरण कर, दान देना आदि पुण्य-कर्म कर, देव-नगर को भर दिया। शास्ता ने इस धर्म-देशना को ला, मेल मिला कर, जातक का सारांश निकाल दिखाया "मैं ही उस समय वृक्ष-देवता था।"

१९. आयाचितभत्त जातक

'**सचे मुञ्चे**....'इस गाथा को, शास्ता ने जेतवन में विहार करते हुए, देवताओं की याचना सम्बन्धी बलिकर्म (=सुक्ख सुक्खना) के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

उस समय (व्यापारी) लोग, व्यापार के लिए जाते समय, प्राणियों को मार, देवताओं की बलि चढ़ा, 'हम (यदि) बिना विघ्न-बाधा के (अपनी) अर्थ-सिद्धि करके लौटें, तो फिर आपको बलि चढ़ायेंगे' कह, सुक्ख सुक्ख (=आयाचना) कर जाते थे। फिर बिना विघ्न-बाधा के अर्थ (=मतलब) पूरा कर, लौट आने पर, 'यह देव-कृपा से हुआ' सोच, बहुत से प्राणियों को मारकर, सुक्ख पूरी करने (=आयाचना) से मुक्त होने के लिए, बलि-कर्म करते। उसे देख भिक्षुओं ने भगवान् से पूछा—भन्ते ! इस (बलि-कर्म) से कुछ मतलब सिद्ध होता है ? भगवान् ने अतीत की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में **काशी**-राष्ट्र के एक गामड़े में, एक कुटुम्बी ने ग्राम-द्वार पर

खड़े न्यग्रोध-वृक्ष के देवता की सुक्ख सुक्ख (=बलि-कर्म की प्रतिज्ञा) कर, बिना विघ्न-बाधा के (वापिस) लौट, बहुत से प्राणियों का बध कर, सुक्ख पूरी करनी चाही। वह वृक्ष के नीचे गया। तब वृक्ष-देवता ने वृक्ष के टहने पर खड़े होकर यह गाथा कही—

सचे मुञ्चे पेच्च मुञ्चे मुच्चमानो हि बज्झति,
न हेवं धीरा मुच्चन्ति, मुत्ति बालस्स बन्धनं।

•[यदि मुक्त होना है, तो आगे (फिर फिर के जन्म) से मुक्त हो, तू तो मुक्त होने का प्रयत्न करता हुआ, और भी बँधता है। धीरा (पण्डित) इस प्रकार मुक्त नहीं होत। बाल (=मूर्ख मनुष्य) का, मुक्ति (का प्रयत्न), और भी, उसके बन्धन (का कारण) होता है।]

सचे मुञ्चे पेच्च मुञ्चे=भो पुरुष! यदि तू मुक्त होवे, यदि मुक्त होने की इच्छा होवे, (तो) **पेच्च मुञ्चे**, तो जैसे परलोक से मुक्त हो सके, वैसे (मुक्त होवे)। **मुच्चमानो हि बज्झति**, लेकिन जैसे तू प्राण-घात कर मुक्त होना चाहता है, वैसे तो मुक्त होने का प्रयत्न करनेवाला पाप-कर्म से बँधता है। **न हेवं धीरा मुच्चन्ति**, जो पण्डित पुरुष हैं वह इस प्रकार जन्म-मरण से मुक्त नहीं होते। क्यों? **एव रूपा हि मुत्ति बालस्स बन्धनं** इस प्रकार प्राणातिपात करके प्राप्त की गई "मुक्ति" मूर्ख का बन्धन ही होती है—इस धर्म का उपदेश किया।

उस समय से आरम्भ करके मनुष्यों ने इस प्रकार के जीव-हिंसा-कर्म से हट धर्मानुसार आचरण कर, देव-नगर की पूर्ति की। शास्ता ने इस धर्म-देशना को ला, मेल मिला, जातक का सारांश निकाल दिखाया। "उस समय, मैं ही वृक्ष-देवता था।"

२०. नलपाण जातक

"**दिस्वा पदमनुत्तिण्णं....**" यह गाथा, शास्ता ने **कोशल** (जनपद) में चारिका करते हुए, **नलक-पान** ग्राम पहुँच, **नलक-पान** पुष्करिणी पर **केतक** वन में विहार करते हुए नलदण्ड (सरकण्डों) के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

उस समय, भिक्षुओं ने **नलक-पाण** पुष्करिणी में नहा कर, सूई-घर (=सूई रखने की नालियाँ) बनाने के लिए, श्रामणेरों से सरकण्डे मँगवा, उन के आर पार छेद देख, शास्ता के पास आकर पूछा—भन्ते! हम ने सूई-घर बनाने के लिए सरकण्डे मँगवाए हैं, वह नीचे से ऊपर तक छिदे हुए हैं। इसका क्या कारण है? शास्ता ने "भिक्षुओ! यह मेरे पुराने अधिष्ठान (=निश्चय) (का फल) है" कह अतीत की कथा कही—

ख. अतीत कथा

"पूर्व समय में वह वन-षण्ड (एक) अरण्य ही था। वहाँ की पुष्करिणी में रहनेवाला एक जल-राक्षस भी (पुष्करिणी में) उतरने वालों को खा जाता था। उस समय बोधिसत्व, रोहित मृग के बच्चे जितने बड़े, कपि-राज हो, अस्सी हज़ार बानरों से घिरे, कपि-सेना के नायक हो अरण्य में रहते थे। उसने वानर-गण को उपदेश दिया—"तात! इस अरण्य में विष-वृक्ष हैं, अमनुष्य-परिगृहीत पुष्करिणियाँ हैं; इसलिए तुम किसी ऐसे फल-फूल को, जिसे पहले न खाया हो खाने के समय, किसी जल को, जिसे पहले न पिया हो पीने के समय मुझे पूछ लेना। वे "अच्छा" (कह) स्वीकार कर, एक दिन ऐसे स्थान पर गये, जहाँ पहले कभी न गये थे। वहाँ दिन में

बहुत देर तक पानी ढूँढ़ते हुए, एक पुष्करिणी को देख, बिना पानी पिये, वहाँ बैठे, बोधिसत्व के आने की प्रतीक्षा करने लगे। बोधिसत्व ने आकर पूछा ! "तात ! क्यों पानी नहीं पीते ?" "आपके आने की प्रतीक्षा कर रहे हैं।" "तात ! अच्छा किया" (कह) बोधिसत्व ने पुष्करिणी के चारों ओर घूमकर, पद-चिन्हों को देखते हुए, (केवल) उतरने के ही चिन्हों को देखा। वापिस चढ़ने (के चिन्हों) को नहीं।

'यह पुष्करिणी, निश्चय-पूर्वक अमनुष्य-परिगृहीत है' जान, उसने कहा—"तात ! तुमने अच्छा किया, जो पानी नहीं पिया। यह पुष्करिणी अमनुष्य-परिगृहीत (ही) है।" जल-राक्षस ने भी यह जान, कि वह (पानी पीने के लिए) नहीं उतर रहे हैं, नीले पेट, सफेद मुँह, और लाल-हाथ-पैर वाला वीभत्स रूप धारण कर, पानी को चीरकर, (बाहर) निकल कहा—"तुम किस लिए बैठे हो ? उतर कर, पानी पीओ ?"

बोधिसत्व ने पूछा—"तू यहाँ पैदा-हुआ जल-राक्षस है ?"

"हाँ ! मैं हूँ।"

"तू ! यहाँ उतरने वालों को हड़प लेता है ?"

"हाँ ! मैं यहाँ उतरने वालों को लेता हूँ। और तो और, मैं पक्षियों तक को नहीं छोड़ता। तुम, सब को भी खाऊँगा।"

"हम तुझे, अपने को खाने नहीं देंगे।"

"और पानी पीओगे ?"

"हाँ ! पानी पीयेंगे, और तेरे वशी-भूत न होंगे।"

तो, कैसे पानी पीओगे ?।"

"क्या तू समझता है कि (पुष्करिणी में) उतर कर पीयेंगे ? हम अस्सी हज़ार के अस्सी हज़ार (पुष्करिणी में) बिना उतरे, एक एक सरकण्डा ले, कंवल की नाली से पानी पीने की तरह, तेरी पुष्करिणी का पानी पीयेंगे ! इस प्रकार, तू हमें न खा सकेगा"—इस अर्थ को जान, शास्ता ने, अभिसम्बुद्ध होने की अवस्था में, इस गाथा के पहले दोनों चरण कहे—

दिस्वा पदमनुत्तिण्णं दिस्वानोतरितं पदं,
नळेन वारिं पिविस्साम नेव मे त्वं वधिस्ससि।

[(पैरों के) नीचे जाने के चिन्ह को देख (और) ऊपर आने के चिन्ह को न देख, हम सरकण्डे से जल पीयेंगे और तू हमें नहीं मारेगा।]

भिक्षुओ ! उस कपि-राज ने उस पुष्करिणी पर चढ़ने का एक भी पद-चिन्ह नहीं देखा। उतरने के पद-चिन्ह को उतरा ही देखा। इस प्रकार चढ़ने के पद-चिन्ह को न देख, और उतरने के पद-चिन्ह को देख 'यह पुष्करिणी निश्चित-रूप से अमनुष्य-परिगृहीता है' जान अपने साथ बात-चीत करनेवाली परिषद् को कहा—**नळेन वारिं पिविस्साम,** जिसका मतलब है कि हम तेरी पुष्करिणी से सरकण्डे से पानी पीयेंगे। और फिर बोधिसत्त्व ने ही कहा—**नेव मं त्वं वधिस्ससि**—इस प्रकार नल से पानी पीते हुए सपरिषद् मुझे तू नहीं मारेगा।

ऐसा कह बोधिसत्व ने एक सरकण्डा मँगवा, पारमिताओं का ध्यान करा, सत्य-किरिया कर, मुख से फूँका। सरकण्डा अन्दर कुछ गाँठ भी बाकी न रख एक सिरे से दूसरे सिरे तक खोखला हो गया। इस प्रकार दूसरे दूसरे सरकण्डे भी मँगवा कर फूँक कर दिये। लेकिन इस प्रकार तो खतम नहीं हो सकते थे। इसलिए यहाँ ऐसे नहीं समझना चाहिए। बोधिसत्व ने अधिष्ठान किया कि इस पुष्करिणी के चारों ओर उगे हुए सब सरकण्डे एक-छिद्र वाले हों जायँ। बोधि-सत्वों का हितचिन्तन महान् होने के कारण उनके अधिष्ठान पूरे होते हैं। तब से उस पुष्करिणी के गिर्द जितने भी सरकण्डे उगे वे सभी एक-छिद्र वाले हुए।

इस कल्प में कल्प-भर तक रहने वाली चार ऋद्धियाँ हैं। कौन सी चार? (१) चाँद कल्प भर खरगोश के चिन्ह वाला रहेगा। (२) **वट्टक जातक**[1] में आग बुझने की जगह इस सारे कल्प भर आग नहीं जलेगी। (३) घटिकार के रहने की जगह इस सारे कल्प भर पानी नहीं बरसेगा[2]। (४) इस पुष्करिणी के गिर्द उगने वाले सरकण्डे, इस सारे कल्प-भर एक-छिद्र वाले ही उगेंगे। यह चार कल्प-भर तक रहने वाली ऋद्धियाँ हैं। बोधिसत्व ऐसा अधिष्ठान करके

[1] **वट्टक जातक (३५)** [2] **घटिकार सुत्त (मज्झिम निकाय)**

एक सरकण्डे लेकर बैठे। वे अस्सी हजार वानर भी एक एक सरकण्डा लेकर पुष्करिणी को घेर कर बैठे। बोधिसत्व के सरकण्डे से खेंच कर पानी पीने के समय उन्होंने भी किनारे पर बैठे ही बैठे पिया। इस प्रकार उनके पानी पीने पर जल-राक्षस कुछ भी न पाकर असन्तुष्ट हो अपने निवास-स्थान को गया। बोधिसत्व भी अपने अनुचरों सहित जंगल में प्रविष्ट हुए।

शास्ता ने 'भिक्षुओ! इन सरकण्डों का एक-छिद्र वाले होना मेरे ही पुराने अधिष्ठान का फल है', कह धर्म-देशना ला, मेल मिला, जातक का सारांश निकाल दिखाया।

उस समय जल-राक्षस देवदत्त था। अस्सी हजार वानर बुद्ध-परिषद्। हाँ, उपाय-कुशल कपिराज मैं ही था।

पहला परिच्छेद

कुरुंग वर्ग

२१. कुरुंगमिग जातक

"जातमेतं कुरुङ्गस्सा....." यह गाथा शास्ता ने, **वेळुवन** में विहार करते समय, **देवदत्त** के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

एक समय धर्मसभा में बैठे भिक्षु, देवदत्त की निन्दा करते हुए कह रहे थे; "आवुसो ! **देवदत्त** ने **तथागत** के मारने के लिए धनुर्धर नियुक्त किये, शिला फेंकी, **धनपालक** (हाथी) को छोड़ा,—इस प्रकार सब तरह से तथागत के वध का प्रयत्न करता है।" बुद्ध ने आकर, बिछे आसन पर बैठ, भिक्षुओं से पूछा—"भिक्षुओ ! इस समय क्या बात-चीत हो रही है ?" "भन्ते ! देवदत्त, आपके वध के लिए प्रयत्न करता है, सो हम बैठे उसकी निन्दा कर रहे हैं।" शास्ता ने "भिक्षुओ ! देवदत्त केवल अब ही मेरे वध का प्रयत्न नहीं कर रहा है, पहले भी किया है, लेकिन (वह) समर्थ नहीं हुआ" कह अतीत की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में **बाराणसी** में (राजा) **ब्रह्मदत्त** के राज्य करने के समय, बोधिसत्व, कुरुङ्गमृग (की जून में उत्पन्न) हो, एक अरण्य में फल खाकर रहते थे। एक बार, वह फलदार सेपण्णि वृक्ष के सेपण्णि फल खाते थे। एक ग्रामीण, अटारी पर से शिकार खेलनेवाला शिकारी, फल-दार वृक्षों के नीचे मृगों के पद-चिन्ह देख, उन वृक्षों के ऊपर अटारी बाँध, उसपर से फल खाने के लिए

आये मृगों को शक्ति (आयुध) से बींध, उनका मांस बेचकर गुजारा करता था। उसने एक दिन, उस वृक्ष के नीचे जा बोधिसत्व के पद-चिन्ह को देखा। उस सेपण्णी-वृक्ष पर अटारी बाँध, प्रातःकाल ही (खाना) खा, शक्ति ले, बन में प्रवेश कर, उस वृक्ष पर चढ़ अटारी पर जा बैठा। बोधिसत्व भी प्रातः-काल ही अपने निवास-स्थान से निकल सेपण्णि फलों को खाने की इच्छा से उस वृक्ष के नीचे एक दम न जा, 'कभी कभी अटारी बाँध शिकार खेलने वाले शिकारी, वृक्षों पर अटारी बाँधते हैं' (सोच) कहीं इस तरह की कुछ गड़बड़ (=उपद्रव) तो नहीं है (सोचते हुए) बाहर ही खड़े रहे। शिकारी ने बोधि-सत्व को न आता जान, अटारी पर बैठे ही बैठे, सेपण्णी-फलों को बोधिसत्त्व के आगे फेंका। बोधिसत्त्व ने 'यह फल आ आ कर मेरे सामने गिरते हैं। शायद ऊपर शिकारी है' (सोच) बार बार ऊपर देखते हुए, शिकारी को देख, न देखे की ही तरह हो, कहा—'हे वृक्ष ! पहले तू लटका कर गिराते हुए की तरह, फलों को सीधे ही गिराता था। लेकिन, आज तूने अपना वृक्ष-स्वभाव छोड़ दिया। सो, जब तूने वृक्ष-स्वभाव छोड़ दिया, तो मैं भी (तुझे छोड़) दूसरे वृक्ष के नीचे जा अपना आहार खोजूंगा।" यह कहकर, यह गाथा कही—

ञातमेतं कुरुङ्गस्स यं त्वं सेपण्णि ! सेय्यसि,
अञ्ञ सेपण्णिं गच्छामि न मे ते रुच्चते फलं।

[हे सेपण्णि ! यह जो तू (मेरे आगे) विशेष रूप से (फल) फेंक रहा है, उससे कुरुङ्ग (मृग) को मालूम हो गया है। इसलिए मैं अब दूसरे सेपण्णि-वृक्ष के नीचे जाऊँगा। मुझे तेरे फल अच्छे नहीं लगते]

ञातं का अर्थ है प्रकट हो गया। **एतं** =यह। **कुरुङ्गस्स**=कुरङ्ग मृग को। **यं त्वं सेपण्णि ! सेय्यसि** का अर्थ है कि हे सेपण्णि-वृक्ष ! यह जो तू (मेरे) आगे आगे फलों को बिखेर कर, श्रेष्ठता=विशेषता धारण कर रहा है, फल-बिखेरने वाला हो रहा है, वह सब कुरङ्ग मृग को मालूम हो गया है। **न मे ते रुच्चते फलं**="इस प्रकार फल देते हुए के, तेरे फल मुझे अच्छे नहीं लगते। तू ठहर ! मैं दूसरी जगह जाता हूँ" कह चला गया।

शिकारी ने अटारी पर बैठे ही बैठे शक्ति फेंक कर कहा—"जा। तू इस बार बच गया।" बोधिसत्व ने रुक कर, खड़े हो कहा—"मैं तो अब जैसे तैसे बच गया, लेकिन तू **आठ महा नरकों**[1] से, सोलह **उस्सदनरकों**[1] से, पाँच प्रकार के बन्धन आदि दण्डों से, नहीं बचेगा।" इतना कह भाग कर, जिधर इच्छा थी, उधर चला गया। शिकारी भी उतर कर, यथारुचि चला गया।

बुद्ध ने, "भिक्षुओ! **देवदत्त** केवल अब ही मेरे वध का प्रयत्न नहीं कर रहा है, पहले भी किया है, लेकिन (वह) सफल नहीं हुआ" कह इस धर्मोपदेश को लाकर, मेल मिला, जातक का सारांश निकाल दिखाया। उस समय अटारी पर से शिकार खेलने वाला शिकारी (अब का) देवदत्त था। (और) कुरुङ्गमृग तो मैं था ही।

२२. कुक्कुर जातक

"**ये कुक्कुरा**..." इस गाथा को शास्ता ने, जेतवन में विहार करते समय, ज्ञाति(-सम्बन्धियों) के बारे में कहा।

क. वर्तमान कथा

वह (कथा) तो बारहवें परिच्छेद के **भद्रसाल-जातक**[2] में आयेगी। यहाँ तो (वर्तमान-)कथा की स्थापना के बाद की अतीत की कथा कही गई है—

[1] सञ्जीव, कालसूत्र, संघात, रौरव, महारौरव, तपन, प्रतापन तथा अवीचि—यह आठ महानरक हैं। इनके अतिरिक्त और भी नरक हैं, जिनमें से कुछ 'उस्सद-नरक' कहलाते हैं।

[2] भद्रसाल जातक (४६५)

ख. अतीत कथा

"पूर्व समय में, (राजा) **ब्रह्मदत्त** के **वाराणसी** में राज्य करने के समय, बोधिसत्व, किसी वैसे कर्म के फलस्वरूप कुत्तों में पैदा हो, सैकड़ों कुत्तों को साथ लिये, महा श्मशान में रहते थे।

एक दिन राजा उजले-घोड़ों वाले, सब अलङ्कारों से अलंकृत रथ पर चढ़, उद्यान में जा, वहाँ दिन भर खेल, सूर्य्यास्त होने पर, (वापिस) नगर में प्रविष्ट हुआ। रथ को, उन्होंने जैसे का तैसा कसा ही, राजाङ्गण में खड़ा कर दिया। रात को वर्षा होने से, वह भीग गया। महल के ऊपर रहने वाले पारिवारिक कुत्ते उतर कर, रथ के चर्म और चमड़े की रस्सी खा गये। अगले दिन राजा को खबर दी गई कि "देव! कुत्तों ने मोरी में से घुसकर, रथ के चर्म और चमड़े की रस्सी खा डाली है।" राजा ने कुत्तों पर क्रोधित हो आज्ञा दी कि "जहाँ-जहाँ कुत्ते दिखाई दें उन्हें मार डालो।" उस समय से कुत्तों पर बड़ी विपत्ति आई। वे जहाँ जहाँ दिखाई दें, वहाँ वहाँ मारे जाते हुए, भाग कर श्मशान में बोधिसत्व के पास पहुँचे। बोधिसत्व ने पूछा—"तुम बहुत सारे इकट्ठे होकर आये हो, क्या कारण है?" उन्होंने उत्तर दिया—"अन्तःपुर में कुत्तों के रथ के चर्म और चमड़े की रस्सी खा लेने से क्रुद्ध हो राजा ने (सभी) कुत्तों के मारने की आज्ञा दी है। बहुत कुत्तों का नाश हो रहा है। महा-भय उत्पन्न हुआ है।" बोधि(-सत्त्व) ने सोचा—"पहरे के स्थान में, बाहर के कुत्तों को तो (ऐसा करने का) मौका नहीं। राज-महल के अन्दर रहने वाले पारिवारिक कुत्तों की ही यह करनी होगी। लेकिन अब चोरों को तो कुछ (दण्ड) नहीं। अचोर मर रहे हैं। क्यों न मैं राजा को (असली) चोर दिखाकर, (अपने) ज्ञाति-संघ को जीवन-दान दिलवाऊँ?" उसने कुत्तों को सान्त्वना दे, "तुम मत डरो। मैं 'अभय-दान' ले आऊँगा। जब तक मैं राजा से मिल (आऊँ), तब तक तुम यहीं रहो।" (कह) पारमिताओं का विचार कर, मैत्री-भावना को आगे कर, अधिष्ठान किया—कि मेरे ऊपर रोड़ा, मुद्गर वा अन्य कोई चीज़ कोई न फेंके। (और यह अधिष्ठान कर) उसने, अकेले ही नगर के अन्दर प्रवेश किया। सो, उसे देखकर, किसी एक जने ने भी, उसपर क्रोध नहीं किया। राजा कुत्तों के वध की आज्ञा देकर, अपने न्यायासन पर बैठा था। बोधिसत्व,

वहीं पहुँच, उछल कर, राजा के आसन के नीचे चले गये। राज-पुरुष उसको निकालने को तैयार हुए। लेकिन, राजा ने रोक दिया। बोधिसत्व ने थोड़ी देर साँस ले, राज्यासन के नीचे से निकल, राजा को प्रणाम कर पूछा—"क्या आप कुत्तों को मरवाते हैं ?" "हाँ ! मैं (मरवाता हूँ)।" "राजन ! उनका क्या अपराध है ?" "उन्होंने मेरे रथ के ऊपर का चमड़ा और चमड़े की रस्सी खा ली।" "मालूम है, किन कुत्तों ने खाई है ?" "नहीं जानता।"

"देव ! 'इन्होंने चर्म खाया है', इसे ठीक से न जान, जहाँ जहाँ (कुत्ते) दिखाई दें, उन सभी को मरवाना उचित नहीं।"

"क्योंकि, रथचर्म को कुत्तों ने खाया था, इसलिए मैंने आज्ञा दे दी कि जहाँ जहाँ (कुत्ते) दिखाई दें, उन सभी को मार डालो।"

"तो, क्या मनुष्य, सभी कुत्तों को मारते हैं ? या ऐसे भी कुत्ते हैं, जो नहीं मारे जाते ?"

"हैं, हमारे घर के कुत्ते नहीं मारे जाते।"

"महाराज ! अभी तो आपने कहा, "क्योंकि, रथचर्म को कुत्तों ने खाया, इसलिए मैंने आज्ञा दे दी कि जहाँ जहाँ (कुत्ते) दिखाई दें, उन सबों को मारो", और अभी आप कहते हैं कि "हमारे घर के कुत्ते मारे नहीं जाते।" ऐसा होने पर, क्या आप पक्षपाती हो, **अगति**[1] को नहीं प्राप्त हो रहे ? अगति को प्राप्त होना अनुचित है। यह राज-धर्म नहीं। राजा को बात की तह में जाने के विषय में तुला की सदृश निष्पक्ष होना चाहिए। सो, घर के कुत्ते तो मारे नहीं जाते, दुर्बल कुत्ते ही मारे जाते हैं। यदि ऐसा है, तो यह सब कुत्तों का घात करना नहीं है, केवल दुर्बल कुत्तों का घात करना है।" यह कह, बोधिसत्व ने मधुरस्वर से, "महाराज ! यह जो आप कर रहे हैं सो (राज-)धर्म नहीं" कहते हुए, यह गाथा कही—

ये कुक्कुरा राजकुलम्हि बद्धा,
कोलेय्यका वण्ण बलूपपन्ना,

[1] छन्द, दोष, भय तथा मूढ़ता के वशीभूत हो अकर्तव्य करना (अँगुत्तर निकाय, चतुक्कनिपात तथा दीघनिकाय, सिगालोवाद सुत्त)।

ते मे न वज्झा मयमस्म वज्झा,
नायं सघच्चा दुब्बलघातिकायं ॥

[जो वर्ण और बल से युक्त, राज-कुल में पले, राज्य-कुल के कुत्ते हैं, सो तो मारे नहीं जाते, (केवल) हम ही मारे जाते हैं। यह (सब) कुत्तों का मारना नहीं है। (केवल) दुर्बल कुत्तों का मारना है]

येकुक्कुरा=जो कुत्ते। जैसे धारोष्ण पेशाब भी गन्दा मूत्र (कहलाता है); उसी दिन पैदा हुआ शृगाल भी पुराना (=जर) शृगाल (कहलाता है); कोमल गडुच (=गलोचि) बेल भी गन्दी-लता (कहलाती है); स्वर्ण-वर्ण काय भी 'गन्दा-शरीर' (कहलाता है); इसी प्रकार सौ वर्ष का कुत्ता भी **कुक्कुर** कहलाता है। इसलिए, बूढ़ों, बड़े बड़े शरीर वालों को भी **'कुक्कुर'** ही कहा गया है। **वद्धा**=वर्धिता (=पले)। **कोलेय्यका**=राजकुल में पैदा हुए, पले। **वण्णबलूपपन्ना'**—शरीर-वर्ण और काय-बल से युक्त। **ते मे न वज्झा**—सो यह स्वामियों वाले, आरक्षा वाले (कुत्ते) बध्य नहीं हैं। **मयमस्म वज्झा** हम, जिनका कोई स्वामी नहीं, कोई हिफाजत करने वाला नहीं; हम ही बध्य हैं। **नायं सघच्चा** सो ऐसा होने पर, तो यह सब (कुत्तों) का मारना नहीं है, **"दुब्बल घातिकायं"** दुर्बलों का घात करने से यह (केवल) दुर्बलों को मारना है। राजाओं को चोरों का निग्रह करना चाहिए, अचोरों का नहीं। लेकिन यहाँ चोरों को तो कुछ नहीं, अचोर मारे जाते हैं। ओह! इस लोक में अनौचित्य होता है। ओह! अधर्म होता है।

राजा ने बोधिसत्त्व के वचन को सुनकर, पूछा—"पण्डित! क्या तुझे मालूम है कि अमुक (कुत्तों) ने रथ-चर्म खाया है?"

"हाँ! जानता हूँ।"

"किन्होंने खाया है?"

"तुम्हारे घर (ही) में रहने वाले कुत्तों ने।"

"यह कैसे मालूम हो, कि उन्होंने खाया है?"

"उनका खाना मैं साबित करूँगा (=दिखाऊँगा)।"

"पण्डित ! दिखा।"

"अपने घर के कुत्तों को मँगवा, थोड़ा मट्ठा और दूब के तिनके मँगवा लें।"

राजा ने वैसा किया। महासत्व ने कहा—इस मट्ठे में, इन तिनकों को मथ-कर, इन कुत्तों को पिलवा दें। राजा ने वैसे करा, मट्ठा पिलवा दिया। जिस ने पिया, उस उस कुत्ते ने चमड़े सहित उल्टी कर दी। राजा ने इसे सर्वज्ञ, बुद्ध के समझाने के समान जान, अति प्रसन्न हो, श्वेत छत्र से बोधिसत्व की पूजा की। बोधिसत्व ने, **"धम्मं चर महाराज ! मातापितुसु खत्तिय** (=महाराज ! हे क्षत्रिय ! माता पिता के प्रति धर्म का व्यवहार करें)" आदि, **तेसकुण जातक**[1] में आई हुई दस धर्माचरण सम्बन्धी गाथाओं से राजा को धर्मोपदेश कर, "महाराज ! अब से आप अप्रमादी (हो) रहें" (कह), राजा को पाँचशीलों में प्रतिष्ठापित कर, श्वेत-छत्र राजा को ही लौटा दिया।

राजा महासत्व (=बोधिसत्व) की धर्म-कथा सुन, सभी प्राणियों को 'अभय-दान' दे, बोधिसत्व-प्रमुख सब कुत्तों के लिए अपने भोजन जैसे ही भोजन के नित्य मिलने का प्रबन्ध कर, बोधिसत्व के उपदेशानुसार आचरण कर, आयु रहते दान आदि पुण्य-कर्म कर, मरने पर देवलोक में उत्पन्न हुआ। कुक्कुरोवाद (=कुत्ते के उपदेश) का दस हज़ार वर्ष (तक प्रभाव) रहा। बोधिसत्व भी, जितनी आयु थी, उतना जीवित रहकर, कर्मानुसार (परलोक) गये।

बुद्ध ने, 'भिक्षुओ ! तथागत केवल अब ही अपने ज्ञाति-सम्बन्धियों का उपकार नहीं करते; पहले भी किया ही है' कह, इस धर्म-देशना को ला मेल मिला, जातक का सारांश निकाल दिखाया। उस समय का राजा (अब का) आनन्द था। शेष सब बुद्ध-परिषद् थी। लेकिन कुक्कुर मैं ही था।

[1] **तेसकुण जातक (५२१)**

२३. भोजाजानीय जातक

"अपि पस्सेन सेमानो. . . ." यह गाथा, शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय, एक प्रयत्न-हीन भिक्षु के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

उस समय शास्ता ने उस भिक्षु को आमन्त्रण कर, 'भिक्षु ! पूर्व समय में पण्डित लोग सामर्थ्य से बाहर के (कार्य) में भी प्रयत्नवान होते थे। चोट खाकर भी, प्रयत्न न छोड़ते थे' कह, अतीत की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में बाराणसी में (राजा) ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय, बोधिसत्त्व, भोजाजानीय नाम के सैन्धव-कुल (सिन्धु पार के घोड़ों के कुल) में उत्पन्न हो, बाराणसी नरेश के, सब अलंकारों से अलंकृत माङ्गलीक अश्व हुए। वह लाख के मूल्य की सोने की थाली ही में नाना प्रकार के श्रेष्ठ रसों से युक्त तीन वर्ष के पुराने चावल का (बना) भोजन खाते थे। चार प्रकार की सुगन्धि से लिपी भूमि पर खड़े होते थे। वह (खड़े होने का) स्थान, लाल कम्बल की कनात से घिरा था। उसके ऊपर, सोने के तारे लगा हुआ कपड़े का चन्दवा (तना) था। चारों ओर सुगन्धित पुष्प-मालायें (लटकती) थीं और सदा सुगन्धित तेल का प्रदीप (जलता) रहता था। ऐसा कोई राजा नहीं है, जो बाराणसी के राज्य की इच्छा न करता हो। एक बार सात राजाओं ने बाराणसी को घेर कर बाराणसी के राजा के पास सन्देश भेजा "या तो हमें राज्य दे दो, अथवा युद्ध करो।" राजा ने अमात्यों को एकत्रित कर, वह समाचार कह, पूछा—"कि तात ! अब क्या करें ?" "(अमात्यों ने उत्तर

दिया) "देव ! पहले तुम्हें युद्ध के लिए नहीं जाना चाहिए। पहले अमुक नाम के अश्वारोह को भेज कर युद्ध कराना चाहिए। उसके असमर्थ रहने पर, (हम) फिर सोचेंगे (=जानेंगे)।" राजा ने उस (अश्वारोह) को बुलवा कर पूछा, "तात ! क्या सात राजाओं के साथ युद्ध कर सकोगे ?" "देव ! यदि मुझे **भोजाजानीय** सिन्धव मिले, तो सात राजा तो क्या, मैं सकल **जम्बूद्वीप** के राजाओं से युद्ध कर सकूँगा।" "तात ! **भोजाजानीय** सिन्धव हो, अथवा कोई और हो, जो अच्छा लगे, उसे लेकर युद्ध करो।"

उसने, 'देव ! अच्छा' कह, राजा को प्रणाम किया। फिर प्रासाद से उतर, सिंधुदेशीय **भोजाजानीय** (घोड़े) को मँगवा, उस पर कवच बाँध, अपने भी सब शस्त्र धारण कर, खड्ग बाँध, सिंधु देशी (=घोड़े) की पीठ पर सवार हुआ। फिर नगर से निकल, बिजली की तरह घूमते हुए, पहले सेना के घेरे को तोड़, एक राजा को जीवित ही पकड़ लिया। फिर नगर को बिना लौटे, (उस राजा को) अपनी सेना को सौंप; फिर जाकर, दूसरे सेना के घेरे को तोड़, दूसरे (राजा) को पकड़ लिया। इस प्रकार उसने पाँच राजाओं को जीवित ही पकड़ लिया। छठे सेना के घेरे को तोड़ कर छठे राजा को पकड़ने के समय **भोजाजानीय** को चोट आ गई। लहू बह रहा था। कड़ी वेदना हो रही थी। अश्वारोह भोजाजानीय को 'चोट लगी' जान, उसे राज-द्वार पर लेटा, साज़ ढीला कर, दूसरे घोड़े को कसने को तैयार हुआ। बोधिसत्त्व ने अत्यन्त सुख के ढंग से लेटे ही लेटे आँखें खोल, अश्वारोह को देख, सोचा—"यह (अश्वारोह) दूसरे घोड़े को कस रहा है। यह घोड़ा, सातवें सेना के घेरे को तोड़, सातवें राजा को न पकड़ सकेगा। मेरा किया कराया (काम) नष्ट हो जायगा। यह अतुलनीय अश्वारोह भी नाश को प्राप्त होगा। राजा भी पराये हाथ चला जायगा। मुझे छोड़, कोई भी दूसरा घोड़ा, सातवें सेना के घेरे को तोड़, सातवें राजा को नहीं पकड़ सकता।" (यह सोच) उसने लेटे ही लेटे अश्वारोह को बुलवा, "मित्र अश्वारोह ! मुझे छोड़, सातवें सेना के घेरे को तोड़, सातवें राजा को पकड़ ला सकने वाला, अन्य कोई घोड़ा नहीं है। मैं अपने किये कराये काम को नष्ट न होने दूँगा। मुझे ही उठा कर, कस।" कह यह गाथा कही—

अपि पस्सेन सेमानो सल्लेहि सल्लली कतो,
सेय्योव वळवा भोज्जो युञ्ज मञ्ञेव सारथि॥

[शल्य से ज़खमी हो गये होने के कारण, एक करवट सोया हुआ भी **भोजाजानीय-अश्व** ही (किसी दूसरे) घोड़े से श्रेष्ठ है। इसलिए हे सारथी ! तू मुझे ही, कस।]

अपि पस्सेन सेमानो=एक पासे पर सोने वाला होता हुआ भी। **सल्लेहि सल्लली कतो,** शल्य से बिधा रहने पर भी। **सेय्योव वळवा भोज्जो,** वळवा कहते हैं सिन्धव-कुल में अनुत्पन्न साधारण अश्व को। **भोज्ज**= भोजाजानीय सिन्धव। इस साधारण घोड़े की अपेक्षा, शल्य से बिधा हुआ भी भोजाजानीय अधिक श्रेष्ठ है=अच्छा है=उत्तम है। **युञ्ज मञ्ञेव सारथि,** क्योंकि जब ऐसा होने पर भी, मैं ही अधिक श्रेष्ठ हूँ, तो हे सारथी ! तू मुझे ही जोड़, मुझे ही कस।"

सवार ने बोधिसत्त्व को उठा, ज़खमों को बाँधा; और अच्छे प्रकार कस कर, उसकी पीठ पर जा बैठा। सातवें सेना के घेरे को तोड़, सातवें राजा को जीवित ही पकड़, लाकर राज-सेना को सौंपा। बोधिसत्त्व को भी राज-द्वार पर लाया गया। राजा, उसके दर्शन करने के लिए बाहर निकला। महा-सत्व ने राजा को कहा—"महाराज ! (इन) सात राजाओं को मारें मत। शपथ करवा कर, छोड़ दें। मुझे और अश्वारोह को जो यश देना है, वह सब अश्वारोह को ही दें। सात राजाओं को पकड़ ला देने वाला योधा नष्ट करने के योग्य नहीं है। आप भी दान दें। शील (=सदाचार) की रक्षा करें। धर्म से और पक्षपात रहित होकर राज्य करें।" इस प्रकार बोधिसत्त्व के राजा को उपदेश कर चुकने पर, बोधिसत्त्व का साज खोल दिया गया। वह, साज के खुलते ही खुलते चल बसा। राजा ने उसका शरीर-कृत्य करवा, अश्वा-रोह को महान् यश दे, सात राजाओं से फिर दुबारा द्रोह न करने की शपथ करवा, उन्हें उन उनके स्थान पर भेज दिया। तदनन्तर, राजा, धर्म से तथा पक्षपात-रहित राज्य करते हुए, आयु समाप्त होने पर, कर्मानुसार, (परलोक को) गया।

बुद्ध ने, 'हे भिक्षु ! पहले समय में पण्डितों ने सामर्थ्य से बाहर (=अनायतन) बात के लिए भी प्रयत्न किया है। इस प्रकार की चोट (=प्रहार) खाकर भी

प्रयत्न को ढीला नहीं छोड़ा। तू, इस प्रकार के नैर्याणिक (=मोक्षदायक) शासन में प्रव्रजित होकर भी, क्यों प्रयत्न ढीला करता है ?" कह चार (आर्य-) सत्यों को प्रकाशित किया। सत्यों का प्रकाशन समाप्त होने पर, प्रयत्न-हीन भिक्षु, अर्हत्व-फल में प्रतिष्ठित हो गया। शास्ता ने इस धर्म-देशना को कह, मेल मिला कर, जातक का सारांश निकाल दिखाया। उस समय का राजा (अब का) आनन्द था। अश्वारोह **सारिपुत्र**, (और) **भोजाजानीय** सिन्धव (-घोड़ा) तो मैं ही था।

२४. आजञ्ञ जातक

"**यदा यदा...**" यह भी गाथा, बुद्ध ने **जेतवन** में विहार करते समय (एक) शिथिल-प्रयत्न भिक्षु के ही बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

शास्ता ने उस भिक्षु को आमन्त्रित कर—"भिक्षु ! पूर्व समय में पण्डितों ने सामर्थ्य से बाहर (बात) के लिए भी, ज़ख्म खा कर भी, प्रयत्न किया है" कह, पूर्व की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में **बाराणसी** में (राजा) **ब्रह्मदत्त** के राज्य करते समय, पूर्वोक्त अनुसार ही, सात राजाओं ने नगर को घेर लिया। एक रथ-सवार योद्धा ने, दो सहोदर-सैन्धव-घोड़ों को रथ में जोत, नगर से निकल, छः सेना के घेरों को तोड़, छः राजाओं को पकड़ा। उस समय (दो अश्वों में से) ज्येष्ठ अश्व पर प्रहार पड़ा। सारथी रथ को जोड़, हाँकता हुआ राज-द्वार पर आया और

ज्येष्ठ-सहोदर को रथ से खोल, साज़ को ढीला कर, एक पासे पर लिटा, दूसरे घोड़े को कसने को तैयार हुआ। बोधिसत्त्व ने उसे देख, पूर्व प्रकार से ही सोच, सारथी को बुलवा, लेटे ही लेटे यह गाथा कही—

यदा यदा यत्थ यदा यत्थ यत्थ यदा यदा
आजञ्ञो कुरुते वेगं हायन्ति तत्थ वाळवा' ॥

[जब जब जहाँ, जब, जहाँ जहाँ, जब जब, आजानीय (घोड़ा) प्रयत्न (=वेग) करता है, उस समय (=वहाँ) साधारण घोड़े (खलुंक-अश्व) रह जाते हैं।]

यदा यदा का अर्थ है कि पूर्वाण्ह समय आदि जिस किसी समय पर। **यत्थ**=जिस स्थान पर, मार्ग में वा संग्राम में। **यदा**=जिस क्षण में। **यत्थ यत्थ**=सात सेना के घेरे के नाम के बहुत से युद्ध-मण्डलों में। **यदा यदा**=जिस जिस समय, प्रहार पड़े रहने के समय, वा न पड़े रहने के समय। **आजञ्ञो कुरुते वेगं** सारथी के चित्त का झुकाव (=अच्छी लगने वाली बात) जानने की सामर्थ्य रखने वाला आजञ्ञो=श्रेष्ठ अश्व, शीघ्रता करता है, प्रयत्न करता है, हिम्मत करता है। **हायन्ति तत्थ वाळवा**=उस वेग (=प्रयत्न) के किये जाते समय, शेष साधारण घोड़े कहे जाने वाले खलुंक अश्व रह जाते हैं (=ह्रास को प्राप्त होते हैं)। इसलिए कहा कि इस रथ में मुझे ही जोत।

सारथी ने बोधिसत्व को उठा, (रथ में) जोत, (उसे) हाँक, सातवें सेना के घेरे को तोड़, सातवें राजा को पकड़ (=ले), रथ को हाँक, राज-द्वार पर सिन्धव-अश्व को खोला। बोधिसत्व एक ही पासे पर लेटे लेटे, पूर्व प्रकार ही राजा को उपदेश दे, मरण को प्राप्त हुए। राजा, उस का शारीरिक-कृत्य करवा, सारथी का सम्मान कर, धर्मानुसार राज्य कर, यथा-कर्म (परलोक) गया।

बुद्ध ने इस धर्म-देशना को कह, चारों (आर्य-सत्यों) को प्रकाशित कर, जातक का सारांश निकाल दिखाया। सत्यों के प्रकाशन की समाप्ति पर, वह भिक्षु अर्हत्व में प्रतिष्ठित हुआ। उस समय राजा (अब के) **आनन्द** स्थविर थे। और अश्व थे सम्यक् सम्बुद्ध।

२५. तित्थ जातक

"**अञ्ञमञ्ञहि तित्थेहि**..." यह गाथा, बुद्ध ने **जेतवन** में विहार करते समय, धर्मसेनापति (=**सारिपुत्र**) के शिष्य, एक सुनार-पुत्र भिक्षु के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

दूसरों के आशय (=चित्तावस्था) का ज्ञान केवल बुद्धों को ही होता है, अन्यों को नहीं। इसलिए **सारिपुत्र** ने, अपने में दूसरों की चित्तावस्था जानने की सामर्थ्य न होने के कारण, अपने साथी के चित्त की अवस्था न जान कर, उसे अशुभ **कर्मस्थान**[1] बताया। उसको वह कर्मस्थान अनुकूल नहीं पड़ा। क्यों? उसने पाँच सौ जन्म तक नियम से सुनार के ही घर में जन्म ग्रहण किया था। सो चिरकाल तक परिशुद्ध सोने को ही देखते रहने का अभ्यास रहने से, अशुभ (कर्मस्थान) उसको अनुकूल नहीं पड़ा। उसने (अभ्यास करते) चार महीने बिता दिये, (लेकिन) वह **निमित्त**[2] मात्र भी पैदा नहीं कर सका। धर्मसेनापति, जब अपने साथी को स्वयं अर्हत्व न दे सके, तो उन्होंने सोचा कि 'यह निश्चय से बुद्ध-वैनेय है, "मैं इसे तथागत के पास ले चलूँगा।" यह सोच, प्रातःकाल ही वह उसे लेकर तथागत के पास गये।

शास्ता ने पूछा, "**सारिपुत्र**! क्यों, एक भिक्षु को लेकर आये हो?" "भन्ते! मैंने इसे **कर्मस्थान** दिया। चार महीनों में यह **निमित्त-मात्र** भी पैदा न कर सका। 'यह बुद्धवैनेय होगा' सोच, मैं इसे आपके पास लेकर आया

[1] शरीर की गन्दगियों का ख्याल कर, योगाभ्यास करना।

[2] शरीर के ३२ हिस्सों में से किसी का भी काल्पनिक आकार।

हूँ ।" "**सारिपुत्र** ! तूने अपने शिष्य को कौन सा **कर्मस्थान** दिया था ?" "भगवान् ! **अशुभ-कर्मस्थान** ।"

"सारिपुत्र ! तेरी (चित्त-)सन्तति में आशयानुशय-ज्ञान नहीं । जा, शाम को आना और अपने शिष्य को साथ ले जाना ।"

इस प्रकार स्थविर को अनुज्ञा कर, शास्ता ने उस भिक्षु को सुन्दर निवास-स्थान और चीवर दिलवा, (फिर) उसे साथ ले, भिक्षाचार के लिए प्रवेश कर, प्रणीत भोजन (=खाद्य-भोज्य) दिलवा, महाभिक्षुसंघ सहित विहार को लौट दिन का समय **गन्धकुटी** में बिताया । शाम को उस भिक्षु को साथ ले, विहार चारिका करते हुए, आम्रवन में, (दिव्य शक्ति से) एक पुष्करिणी; उसमें पद्मों का एक गुच्छा; और उनमें भी एक बड़ा कमल-फूल निर्माण कर, उस भिक्षु को, "भिक्षु ! तू इस फूल को देखते हुए बैठा रह" (कह) बिठा कर, स्वयं **गन्धकुटी** में प्रविष्ट हुए ।

वह भिक्षु, उस फूल को बार बार देखने लगा । भगवान् ने उस फूल को कुम्हला दिया । उसके देखते ही देखते, वह फूल कुम्हला कर कुरूप हो गया । उसके सिरे पर के पत्ते गिरते गिरते थोड़ी ही देर में सब के सब गिर गये । उसके बाद रेणु गिरी । केवल डोडा शेष रह गया । उस भिक्षु को उसे देखते देखते ख्याल आया—"यह पुष्प अभी सुन्दर था, दर्शनीय था । अभी, इसका रंग बदल गया, पत्ते और रेणु गिर पड़े । केवल डोडा रह गया । जब इस प्रकार का यह फूल कुम्हला गया, तो मेरे शरीर को क्या नहीं हो जायगा ?" (यह सोचते सोचते) सभी संस्कारों की अनित्यता का विचार कर, विदर्शना में स्थापित हुआ । शास्ता ने, 'उसका चित्त विदर्शनारूढ़ हो गया' जान, गन्ध-कुटी में बैठे ही बैठे, (अपने) तेज को फैला, यह गाथा कही—

उच्छिन्द सिनेहमत्तनो कुमुदं सारदिकं व पाणिना ,
सन्तिमग्गमेव ब्रूहय निब्बाणं सुगतेन देसितं ॥[1]

[हाथ से शरद ऋतु के कमल की तरह, अपने राग (=स्नेह) की जड़ उखाड़ फेंको। सुगत द्वारा उपदिष्ट निर्वाण रूपी शान्ति-मार्ग में ही उन्नति करो।]

[1] **धम्मपद, महावग्ग** (२८५)

उस भिक्षु ने गाथा के अन्त में अर्हत्व प्राप्त कर, 'मैं सब भवों (=संसार) से मुक्त हो गया हूँ' सोच निम्नलिखित गाथाओं में उदान (=प्रीति-वाक्य) कहा—

सो वुत्थवासो परिपुण्ण मानसो,
खीणासवो अन्तिमदेहधारी,
विसुद्ध सीलो सुसमाहितिन्द्रियो
चन्दो यथा राहुमुखा पमुत्तो।
समोततं मोहमहन्धकारं
विनोदयिं सब्बमलं असेसं,
आलोकमुज्जोतकरो पभङ्करो
सहस्सरंसी विय भानुमा नभे॥

[वह अर्हत वसित-वास, परिपूर्णमानस, क्षीणास्रव, अन्तिमदेहधारी, विशुद्धशील, संयत (=सुसमाहित-)इन्द्रिय, राहु के मुख से मुक्त हुए चन्द्रमा की तरह होता है।

मेरा विस्तृत महा मोहान्धकार नष्ट हो गया। मैंने सारे के सारे मैल को हटा दिया, जैसे प्रभास्वर, आलोक को उत्पन्न करने वाला, सहस्र रश्मी सूर्य्य आकाश में (सब अन्धकार को मिटा देता है)]

इस प्रकार, उदान कह, जाकर भगवान् की वन्दना की। स्थविर भी आ शास्ता को प्रणाम कर, अपने सिष्य को साथ ले गये। यह बात भिक्षुओं में प्रगट हो गई। वे धर्म-सभा में बैठे बैठे, दश-बल(-धारी) बुद्ध का गुणानुवाद करने लगे—"आवुसो! सारिपुत्र-स्थविर **आशयानुशय ज्ञान** न होने के कारण अपने साथी के चित्त की अवस्था नहीं जानते थे। लेकिन शास्ता ने (उसे) जानकर, एक ही दिन में, उस (भिक्षु) को **प्रतिसम्भिदा-ज्ञान** के साथ अर्हत्व दे दिया। ओह! बुद्धों की शक्ति (=महानुभाव)!"

बुद्ध ने आ बिछे आसन पर बैठकर, पूछा—"भिक्षुओ! यहाँ बैठे क्या बात-चीत कर रहे हो?" "भगवान् और कुछ नहीं। आपकी ही, धर्मसेनापति की (अपने) शिष्य के आशयानुशय-ज्ञान की बात-चीत।"

बुद्ध ने, "भिक्षुओ! इसमें कुछ आश्चर्य्य नहीं, यदि इस समय मैं 'बुद्ध'

होकर, उसका आशय जानता हूँ। मैं पहले भी, उसका आशय जानता ही था" कह पूर्व की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में **बाराणसी** में (राजा) **ब्रह्मदत्त** राज्य करता था। बोधिसत्व उस समय, राजा को अर्थ तथा धर्म सम्बन्धी उपदेश देनेवाले थे। उस समय राजा के माङ्गलिक घोड़े के नहाने के स्थान पर एक खलङ्कु घोड़े को नहला लिया। माङ्गलिक अश्व को दूसरे घोड़े द्वारा नहाये गये तीर्थ (=पट्टन) पर उतारने लगे, तो उसने घृणा से उतरना न चाहा। साईस (=अश्वगोपक) ने जाकर राजा से कहा—'देव! माङ्गलिक अश्व तीर्थ पर नहीं उतरना चाहता है।'

राजा ने बोधिसत्व को भेजा, "पण्डित! जाकर मालूम कर कि माङ्गलिक अश्व तीर्थ पर उतारने पर क्यों नहीं उतरता?" बोधिसत्व ने 'देव! अच्छा' कह नदी के तीर पर जाकर, अश्व को देख, उसका निरोगी होना जान सोचा, 'यह किस कारण से इस तीर्थ पर नहीं उतरता?' यह सोचते हुए, उसे सूझा, 'कि यहाँ पहले किसी और को नहलाया होगा। उसीसे यह घृणा करके तीर्थ पर नहीं उतरता।" यह सोच, उसने अश्व-गोपकों से पूछा—"भो! इस तीर्थ पर पहले किसे नहलाया?" "स्वामी! एक दूसरे घोड़े को।" बोधिसत्व ने "यह (माङ्गलिक अश्व) अपनी शुचिता (=पवित्रता) के कारण यहाँ नहाना नहीं चाहता, इसे अन्य तीर्थ पर नहलाना चाहिए"—इस प्रकार उसका आशय जान, उसने अश्व-गोपकों को कहा—"भो अश्वगोपक! घृत-मधु-शक्कर मिला दूध भी बार बार पीने से (=भोजन करने से) तृप्ति हो जाती है। यह अश्व अनेक बार इस तीर्थ पर नहाया है। सो, इसे किसी दूसरे तीर्थ पर उतार कर नहलाओ, और जल पिलाओ।" यह कह, यह गाथा कही—

अञ्ञमञ्ञेहि तित्थेहि अस्सं पायेहि सारथि!
अच्चासनस्स पुरिसो पायासस्स पि तप्पति॥

[हे सारथी! इस घोड़े को किसी दूसरे तीर्थ पर (नहलाओ और) जल पिलाओ। आदमी, खीर भी बहुत खाने से तृप्त हो जाता है।]

अञ्ञमञ्ञेहि=अन्य से, अन्य से। **पायेहि**; यह तो पंक्ति है, अर्थ, नहला और पिला। **अच्चासनस्स** तृतीया (=करणविभक्ति) के अर्थ में षष्ठी। **अति अस्नेन**=बहुत खाने से। **पायासस्सपि तप्पति**; घी आदि से अभि-संस्कृत (=छौंका हुआ) मधुर खीर से भी तृप्ति हो जाती है। धृति (होती है) सुख (होता है); खाने की इच्छा फिर उत्पन्न नहीं होती। इसलिए यह अश्व भी यहाँ (रोज़ रोज़) नियम से नहाने से ऊब गया होगा। इसे दूसरी जगह नहलाओ।

उन्होंने उसका कथन सुन, अश्व को दूसरे तीर्थ पर उतारकर (जल) पिलाया और नहलाया। बोधिसत्व, अश्व के पानी पी कर नहाने के समय राजा के पास चले आये। राजा ने पूछा—"क्यों तात! अश्व ने नहाया वा पिया?" "देव! हाँ।"

"पहले क्यों नहीं (नहाना) चाहता था?"

"इस कारण से", सब कह सुनाया।

राजा 'अहो! बोधिसत्व की पण्डिताई! यह ऐसे पशुओं तक के आशय को जानता है।" सोच, बोधिसत्त्व को बहुत सम्पत्ति दे, आयु समाप्त होने पर, यथा-कर्म (परलोग) सिधारा।

बुद्ध ने, "भिक्षुओ! मैं केवल अब ही, इसका आशय नहीं जानता हूँ। पूर्व में भी जानता था" कह, इस धर्म-देशना को लाकर, मेल मिला, जातक का सारांश निकाल दिखाया। उस समय का माङ्गलिक अश्व, यह (अब का) भिक्षु था। राजा (अब का) आनन्द था। लेकिन पण्डित-अमात्य तो मैं ही था।

२६. महिलामुख जातक

"**पुराण चोरान वचो निसम्म**. . ."यह गाथा, **बुद्ध** ने **वेळुवन** में विहार करते समय, देवदत्त के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

देवदत्त, राजकुमार **अजातशत्रु** को अपने प्रति श्रद्धावान् कर, (अपने लिए) लाभ-सत्कार उत्पन्न करता था। (राज-)कुमार अजातशत्रु, [1]**गया-शीर्ष** में देवदत्त के लिए विहार बनवा, (वहाँ) प्रति दिन, नाना प्रकार के रसों से युक्त, तीन वर्ष के पुराने सुगन्धित चावलों से बने भोजन की पाँच सौ थालियाँ, लिवा जाता था। लाभ-सत्कार (मिलने) के कारण **देवदत्त** के अनुयायियों की संख्या बढ़ गई। देवदत्त (अपने) अनुयायियों के साथ विहार में ही रहता। उस समय, **राजगृह**-निवासी दो मित्रों में से एक तो शास्ता के पास प्रव्रजित हुआ, और दूसरा **देवदत्त** के। वह एक दूसरे को जहाँ तहाँ मिलते (=देखते) और विहार में जाकर भी मिलते।

एक दिन देवदत्त के आश्रय में रहने वाले (मित्र) ने, दूसरे से पूछा—आवुसो! क्या तुम रोज़ रोज़ पसीना बहाते हुए भिक्षा माँगते हो? देवदत्त **गया-शीर्ष** विहार में बैठा ही बैठा, नाना प्रकार के रसों से युक्त सुन्दर भोजन खाता है। क्या इस प्रकार का कोई उपाय नहीं है? तुम किस लिए दुःख भोगते हो? क्या तुम्हारे लिए, यह अच्छा नहीं है कि तुम प्रातःकाल ही **गया-शीर्ष** पर आओ, (वहाँ) जल-पान सहित यागु पी, अट्ठारह प्रकार का खाद्य

[1] **वर्तमान ब्रह्मयोनि पहाड़ (गया)**

खा, नाना रसों से युक्त सुभोजन करो !" बार बार कहने से, वह जाने का इच्छुक हो गया। उस दिन से, वह **गया-शीर्ष** पर जाता, और खाकर समय रहते ही **वेळुवन** लौट आता[१]। इस बात को वह देर तक छिपा कर नहीं रख सका कि वह गया-शीर्ष जाता है, और देवदत्त का जुटाया हुआ भोजन खा कर आता है। थोड़े ही समय में, यह बात प्रगट हो गई। उसके साथियों ने उसे पूछा—"आयुष्मान् ! क्या तुम सचमुच, देवदत्त का जुटाया हुआ भोजन खाते हो ?" "ऐसा, किसने कहा ?।" "अमुक, अमुक (व्यक्ति) ने (कहा)।" "आवुसो ! मैं सचमुच **गया-शीर्ष** जाकर, भोजन करता हूँ। लेकिन मुझे, देवदत्त भोजन नहीं देता, दूसरे ही मनुष्य देते हैं।" "आयुष्मान् ! देवदत्त बुद्धों का विरोधी है, दुश्शील है। (वह) अजातशत्रु को अपने प्रति श्रद्धावान् कर, अधर्म से अपने लिए लाभ-सत्कार उत्पन्न करता है। इस प्रकार के कल्याण-कारी शासन में प्रव्रजित होकर भी तू, देवदत्त का अधर्म से पैदा किया हुआ भोजन ग्रहण करता है। आ, तुझे बुद्ध के पास ले चलें", (कह) वे उसे लेकर धर्म-सभा में पहुँचे।

शास्ता ने देखकर पूछा, "भिक्षुओ ! क्यों इस (आने के) अनिच्छुक भिक्षु को लेकर आये हो ?"

"भन्ते ! हाँ, यह भिक्षु आपके पास प्रव्रजित होकर, देवदत्त द्वारा अधर्म से उत्पन्न भोजन ग्रहण करता है।"

"भिक्षु ! क्या तू सचमुच देवदत्त का अधर्म से कमाया हुआ भोजन ग्रहण करता है ?"

"भन्ते ! देवदत्त, मुझे भोजन नहीं देता, अन्य मनुष्य देते हैं, मैं उसे ही ग्रहण करता हूँ।"

बुद्ध ने, "भिक्षु ! बहाना मत बना। देवदत्त अनाचारी है, दुश्शील है। इधर प्रव्रजित हो, मेरे संघ (=शासन) में रहता हुआ तू कैसे देवदत्त का भोजन ग्रहण करता है ? तू सदा से ऐसा ही संगति-प्रेमी चला आया है। जहाँ जो संगति मिलती है, उसीमें पड़ जाता है।" (कह) पूर्व-समय की कथा कही—

[१] कथाकार को शायद यह मालूम नहीं कि वेळुवन और गयाशीर्ष में कितना अन्तर है ?

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में **बाराणसी** में (राजा) **ब्रह्मदत्त** के राज्य करते समय, बोधिसत्व उसके अमात्य थे। उस समय राजा के **महिलामुख** नाम का एक माङ्गलिक हाथी था, शीलवान् और सदाचार सम्पन्न। किसी को कष्ट नहीं देता था। एक दिन आधीरात के समय, चोरों ने उसकी शाला के समीप आकर, उससे थोड़ी ही दूर पर चोर-मन्त्रणा (=चोरी की बात-चीत) की—"ऐसे सुरंग लगानी चाहिए। ऐसे सेंध लगानी चाहिए। 'सुरंग' और 'सेंध' मार्ग-सदृश हैं, तीर्थ सदृश हैं। उन्हें रुकावट-रहित, बाधा-रहित करके ही सामान चुराना चाहिए। और सामान ले जाते समय (आदमियों को) मारकर ही सामान ले जाना चाहिए। ऐसा करने से कोई उठ (कर पकड़) नहीं सकेगा। चोर को शीलवान् नहीं होना चाहिए। उसे बद-मिज़ाज, कठोर और ज़ोर ज़बरदस्ती करने वाला होना चाहिए।" इस प्रकार आपस में सलाह कर, और एक दूसरे को सिखाकर (वे चोर वहाँ से) गये। इसी तरह फिर एक दिन, फिर एक दिन (करके) बहुत दिन तक वे (चोर) वहाँ आकर मन्त्रणा करते रहे। उस (हाथी) ने उनकी बात-चीत सुन, यह समझ कि यह मुझे सिखा रहे हैं, सोचा कि अब से मुझे बद-मिज़ाज, कठोर और ज़ोर ज़बरदस्ती करने वाला होना चाहिए। सो, वह वैसा ही हो गया। प्रातःकाल ही आये हथवान को सूँड़ में पकड़, ज़मीन पर पटक कर मार डाला। दूसरे को भी, तीसरे को भी, जो जो आता सभी को मार डालता। (लोगों ने) राजा को ख़बर दी कि "'महिला-मुख' उन्मत्त हो गया है। जिसे जिसे देखता है, सब को मार डालता है।" राजा ने बोधिसत्व को भेजा—"पण्डित! जा, मालूम कर, हाथी किस कारण से दुष्ट हो गया है।" बोधिसत्व ने यह देख कि हाथी के शरीर में कोई रोग नहीं है, विचार किया कि किस कारण से यह दुष्ट हो गया? उसे सूझा कि निश्चय से पास में किसी को बात-चीत करते सुन, यह समझ कर कि 'यह मुझे ही सिखा रहे हैं' यह दुष्ट हो गया। यह सोच, उसने हथवानों (=हत्थिगोपके) से पूछा—क्या किसी ने हाथी-शाला के समीप रात को कुछ बात-चीत की थी? "स्वामी! हाँ! चोरों ने आकर बात-चीत की थी।" बोधिसत्व ने जाकर राजा को सूचना दी, "देव!

हाथी के शरीर में और कोई विकार नहीं है। चोरों की बात-चीत सुनकर दुष्ट हो गया है।" "तो अब क्या किया जाना चाहिए?" "सदाचारी (=शीलवान्) श्रमण-ब्राह्मणों को हाथी-शाला में बिठवा, सदाचार सम्बन्धी बात-चीत करवानी चाहिए।" "तो तात! ऐसा करवाओ।" बोधिसत्व न जाकर, सदाचारी श्रमण-ब्राह्मणों को हाथी-शाला में बिठवाकर कहा— "भन्ते! सदाचार सम्बन्धी बात-चीत करें।" उन्होंने हाथी से कुछ ही दूर बैठकर सदाचार सम्बन्धी बात-चीत की—"किसी को तंग नहीं करना चाहिए। किसी को मारना नहीं चाहिए। सदाचारी (होकर) तथा शान्ति-मैत्री और करुणा से युक्त होकर रहना चाहिए।" उसने इसे सुन, सोचा, कि यह मुझे ही सिखा रहे हैं। इसलिए अब से मुझे सदाचारी होकर रहना चाहिए। और वह सदाचारी हो गया। राजा ने बोधिसत्व से पूछा—क्यों तात! क्या वह शीलवान् हो गया?" बोधिसत्व ने 'देव! हाँ, इस प्रकार का दुष्ट हाथी पण्डितों (की संगति) के कारण, अपने पुराने-स्वभाव में ही प्रतिष्ठित हो गया' कह, यह गाथा कही—

पुराण चोरान वचो निसम्म,
महिलामुखो पोथयमानुचारि,
सुसञ्ञतानं हि वचो निसम्म
गजुत्तमो सब्बगुणेसु अट्ठा ॥

[महिलामुख (हाथी) पुराने चोरों की बात सुन, उनका अनुकरण करने वाला (लोगों को) मारने वाला हो गया। (और वही) गजुत्तम संयमी मनुष्यों की बात सुन सब गुणों में प्रतिष्ठित हो गया।]

पुराण चोरान=पुराने चोरों की। **निसम्म**=सुनकर। मतलब है, कि पहले चोरों की बात सुन। **महिलामुख** हथिनी के जैसा मुँह होने से **महिलामुख,** अथवा जैसे महिला आगे से देखने पर सुन्दर लगती है, न कि पीछे से, उसी प्रकार वह भी आगे से देखने पर ही सुन्दर लगने के कारण, उसका नाम **महिलामुख** पड़ गया। **पोथयमानुचारि,** पोथ देते हुए अथवा मार देते हुए, अनुकरण किया। अथवा अन्वचारि ही पाठ। **सुसञ्ञतानं** का अर्थ है

सम्यक् संयत=सदाचारी (पुरुषों) का। **गजुत्तमो**=उत्तम गज=माङ्गलिक हाथी। **सब्ब गुणेसु अट्ठा** सब पुराने-गुणों में प्रतिष्ठित हो गया।

राजा ने यह देख 'कि यह पशुओं तक के आशय (=मन की अवस्था) को जानता है', बोधिसत्व को बहुत सा ऐश्वर्य्य (=यश) दिया। फिर वह आयु पर्य्यन्त जीवित रहकर, बोधिसत्व सहित कर्मानुसार (परलोक) सिधारा।

शास्ता ने 'भिक्षु! पहले भी जिस जिस को देखा, तू उस उसकी संगति में पड़ गया। चोरों की बात सुनकर, तू उनका अनुयायी हो गया। धार्मिक लोगों की बात सुनकर धार्मिक लोगों का अनुयायी हो गया'—यह धर्म-देशना कह, मेल मिला, जातक का सारांश निकाल दिखाया। उस समय का **महिलामुख** (अब का) विपक्षी-दल में चला जाने वाला भिक्षु था। राजा (अब का) **आनन्द** था और अमात्य तो मैं ही था।

२७. अभिण्ह जातक

"**नालं कबलं पदातवे**..." यह गाथा, शास्ता ने **जेतवन** में विहार करते समय, एक उपासक और एक वृद्ध स्थविर के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

श्रावस्ती में दो मित्र रहते थे। उनमें से एक प्रव्रजित होकर (भी) प्रति दिन दूसरे के घर जाता। वह, उसको भिक्षा दे, स्वयं खा, उसके साथ ही विहार आता, और सूर्य्यास्त होने तक बात-चीत करने के बाद, नगर को वापिस लौटता। दूसरा भी उसे नगर-द्वार तक पहुँचा आता। उनके परस्पर-प्रेम (=विश्वास) की बात भिक्षुओं को मालूम हुई। सो, एक दिन भिक्षु धर्म-सभा में बैठे, उनके परस्पर-प्रेम की बात-चीत कर रहे थे। बुद्ध ने आकर

पूछा—"भिक्षुग्रो ! इस समय बैठे क्या बात-चीत कर रहे हो ?" उन्होंने कहा, 'भन्ते ! यह बात-चीत कर रहे थे।' शास्ता ने 'हे भिक्षुग्रो ! यह दोनों केवल ग्रभी के परस्पर-प्रेमी नहीं हैं, यह पहले भी परस्पर-प्रेमी रहे हैं' कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. ग्रतीत कथा

"पूर्वसमय में बाराणसी में (राजा) ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय, बोधिसत्व (उसके) ग्रमात्य थे। उस समय एक कुत्ता माङ्गलिक हाथी की शाला में जाकर, माङ्गलिक हाथी के खाने के स्थान पर गिरे हुए चावलों को खाता। उसी भोजन पर पलता पलता वह माङ्गलिक हाथी का विश्वास-पात्र बन गया। वह हाथी के पास ही (ग्राकर) खाता। दोनों पृथक् पृथक् न हो सकते। वह हाथी की सूँड़ पकड़ कर, (उसे) इधर उधर करके खेलता। एक दिन एक ग्रामीण-मनुष्य ग्राया ग्रौर हाथीवान् को मूल्य दे, उस कुत्ते को ग्रपने गाँव ले गया।

उस समय से वह हाथी कुत्ते को न देखने के कारण, न खाता, न पीता, न नहाता। (लोगों ने) राजा को, इस बात की खबर दी। राजा ने बोधिसत्व को भेजा—"पण्डित ! जा ! मालूम कर कि किस कारण से हाथी ऐसा करता है ?" बोधिसत्व ने हस्ति-शाला में जा हाथी के दुःखित-चित्त होने को जान, देखा—"कि इसको कोई शारीरिक रोग तो है नहीं।' ग्रवश्य ही इसकी किसी न किसी से मित्रता होगी। मालूम होता है, उस (मित्र) के न दिखाई देने से यह शोकग्रस्त हो गया है।" (यह सोच), उसने हथवानों से पूछा—"क्या इसकी किसी के साथ दोस्ती है ?"

"स्वामी हाँ ! एक कुत्ते के साथ बड़ी पक्की दोस्ती है।"

"वह कुत्ता ग्रब कहाँ है ?"

"एक ग्रादमी ले गया।"

"उस (ग्रादमी) का निवास-स्थान जानते हो ?"

"स्वामी ! नहीं जानते।"

बोधिसत्व ने राजा के पास जाकर, "देव ! हाथी को ग्रौर कोई पीड़ा

(=आबाधा) नहीं है। उसकी एक कुत्ते से बड़ी दोस्ती है। मालूम होता है, उसीको न देखने से, नहीं खाता है" कह, यह गाथा कही—

नालं कबलं पदातवे न च पिण्डं न कुकुसे न घंसितुं
मञ्ञामि अभिण्ह दस्सना नागो सिनेहमकासि कुक्कुरे।

[न कबल (=ग्रास) न पिण्ड, न तृण (=कुश) खा सकता है; न ही मलने देता है। मालूम होता है कि निरन्तर मिलते रहने से हाथी और कुत्ते का प्रेम हो गया।]

नालं=सामर्थ्य नहीं। **कबलं,** भोजन से पहले दिया जाने वाला कड़ुवा कौल (=ग्रास) **पदातवे,** सन्धि के कारण आकार लुप्त हुआ जानना चाहिए; नहीं तो पादातवे; अर्थ, ग्रहण करने के लिए। **न च पिण्डं,** खाने के लिए गोले बनाकर दिया जाने वाला भात-पिण्ड भी नहीं ग्रहण कर सकता। **न कुसे,** दिये जाने वाले तृण भी नहीं ग्रहण कर सकता। **न घंसितुं;** नहाते समय शरीर को मलने भी नहीं देता। इस प्रकार जो जो हाथी नहीं कर सकता, वह सब राजा को कह उस (हाथी) के असमर्थ होने के विषय में अपना अनुभव कहते हुए **'मञ्ञामि'** आदि कहा।

राजा ने उसकी बात सुन, पूछा, "पण्डित! अब क्या करना चाहिए?"

"देव! आप यह मुनादी फिरवा दें कि हमारे माङ्गलिक हाथी के मित्र कुत्ते को कोई मनुष्य ले गया है। जिसके घर, वह कुत्ता दिखाई देगा, उसको यह यह दण्ड (मिलेगा)।"

राजा ने वैसा ही किया। उस समाचार को सुन, उस आदमी ने, उस कुत्ते को छोड़ दिया। कुत्ता जोर से दौड़ कर, हाथी के ही पास आ गया। हाथी ने उसे सूण्ड पर ले, माथे पर रख, रो कर, पीट कर, माथे पर से उतार, उसके खा लेने पर अपने खाया। 'इसने पशु का भी आशय (=मन की बात) जान लिया' सोच, राजा ने बोधिसत्व को बहुत ऐश्वर्य्य दिया।

बुद्ध ने "भिक्षुओ! यह (दोनों) केवल अब ही परस्पर-प्रेमी नहीं रहे हैं। पहले भी रहे हैं' कह, धर्म-देशना ला, चार आर्य-सत्यों के साथ अनुकूलता दिखा, मेल मिला, जातक का सारांश निकाल दिखाया। [यह चार आर्य-

सत्यों के साथ अनुकूलता दिखाना सभी जातकों में है, लेकिन हम इसे वहीं वहीं दिखावेंगे, जहाँ इस का कुछ फल है।] उस समय का कुत्ता (अब का) उपासक था। हाथी (अब का) वृद्ध स्थविर था। अमात्य-पण्डित तो मैं ही था।

२८. नन्दिविसाल जातक

"**मनुञ्ञमेव भासेय्य**..." यह गाथा, शास्ता ने **जेतवन** में विहार करते समय, छः वर्गीय भिक्षुओं की कठोर-वाणी के सम्बन्ध में कही।

क. वर्तमान कथा

उस समय छः वर्गीय भिक्षु कलह करते, शान्ति-प्रिय भिक्षुओं को तंग करते, उनकी निन्दा करते, उन्हें खिजाते, दस **आक्रोश-वस्तुओं**[1] से गाली देते। भिक्षुओं ने भगवान् से कहा। भगवान् ने छः वर्गीय भिक्षुओं को बुलवा, 'भिक्षुओ! क्या यह सच है?' पूछ 'सच है' कहने पर, उनको धिक्कारते हुए कहा—"भिक्षुओ! कठोर-वाणी पशुओं तक को अरुचिकर होती है।" पूर्व समय में एक पशु ने, अपने को कठोर-शब्द से पुकारनेवाले के हजार (मुद्रा) हरा दिये।" (यह कह) पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में **गन्धार** राज्य स्थित **तक्षिला** (=तक्षशिला) में गान्धार-नरेश राज्य करते थे। उस समय बोधिसत्व बैल की जून में पैदा हुए थे।

[1] जाति, नाम, गोत्र, कुल, कर्म, शिल्प (=पेशा), आबाध (=रोग) लिङ्ग क्लेश (=चित्तविकार) तथा आपत्ति (=सदोषता)।

सो, बोधिसत्व के तरुण बछड़ा होने की अवस्था ही में, एक ब्राह्मण ने गो-दक्षिणा देने वाले दाता के पास जा, उन्हें प्राप्त कर, **नन्दिविसाल** नाम रख, पुत्र की तरह बड़े लाड़-प्यार से यागु-भात इत्यादि खिलाकर पाला। आयु प्राप्त होने पर बोधिसत्व ने सोचा—"मुझे इस ब्राह्मण ने बड़ी कठिनाई से पाला है। सकल **जम्बूद्वीप** में, मेरे साथ एक धुर में जुतने वाला दूसरा बैल नहीं है। क्यों न मैं अपना बल दिखाकर, इस ब्राह्मण को पालने पोसने का खर्चा दूँ ?"

एक दिन उसने ब्राह्मण को कहा—ब्राह्मण ! जा, गो-धन (वाले) सेठ के पास जाकर, "मेरा बैल एक साथ बँधी हुई सौ गाड़ियों को (एक साथ) खेंच लेता है" कह एक हज़ार की शर्त लगा।

उस ब्राह्मण ने सेठ के पास जा, बात-चीत चलाई—"इस गाँव में किसके बैल (सबसे) तगड़े हैं ?" उस सेठ ने, 'अमुक के (बैल तगड़े) हैं, अमुक के (बैल तगड़े) हैं' कह, (अन्त में) कहा कि सकल नगर में हमारे बैलों के सदृश कोई बैल नहीं।" ब्राह्मण ने कहा—'मेरा एक बैल, एक साथ बँधे सौ छकड़ों को खींच सकता है।'

सेठ ने कहा, 'ऐसा बैल कहाँ है ?"

ब्राह्मण ने उत्तर दिया, "मेरे घर है।"

"तो शर्त लगाओ।" "अच्छा ! शर्त लगाता हूँ" कह, उसने एक हज़ार की शर्त लगाई।

एक सौ छकड़ों को बालू, कङ्कर तथा पत्थरों से भर, (उन्हें) क्रम से खड़ा कर, तमाम अक्षों (=धूरों) को बाँधने के जूये से एक साथ बाँध, **नन्दिविसाल** को नहला, सुगन्धि से पाञ्च अङ्गुलियों का चिन्ह कर, गले में माला डाल, अगले छकड़े के धुर में उसे अकेला ही जोड़, अपने आप धुर पर बैठ कहा, "अच्छा ! तो कूट, ढो कोट।"

बोधिसत्व यह सोच कि 'यह मुझ अकूट को कूट कह कर पुकारता है' चारों पैरों को स्तम्भ की तरह निश्चल करके खड़े रहे।

सेठ ने उसी समय ब्राह्मण से (एक) हज़ार (मुद्रा) धरवा (=मँगवा) लिये।

ब्राह्मण (एक) हज़ार हार कर, बैल को छोड़, घर जाकर शोकाभिभूत

हो पड़ रहा। नन्दिविसाल ने (घास) चरकर, आकर, ब्राह्मण को शोक-निमग्न देख पूछा—"ब्राह्मण ! क्या सोच रहे हो ?"

"(एक) हज़ार हारने वाले को मुझे निद्रा कहाँ ?"

"ब्राह्मण ! मैंने इतने चिर तक, तेरे घर में रहते समय क्या कभी कोई भाजन तोड़ा ? क्या कभी किसीको कुचला ? क्या कभी किसी अनुचित स्थान पर गोबर-पेशाब किया ?"

"तात ! नहीं।"

"तो फिर तू मुझे 'कूट' कह कर क्यों पुकारता है ? यह तेरा ही दोष है, मेरा दोष नहीं। जा (इस बार) उससे दो हज़ार की शर्त लगा। केवल मुझ अकूट (=अदुष्ट) को कूट कह कर न पुकारना।"

ब्राह्मण ने उसकी बात सुन, जाकर दो हज़ार की बाज़ी लगा, पूर्वोक्त प्रकार से ही सौ छकड़ों को एक साथ बाँध, नन्दिविसाल को सजाकर, अगले छकड़े के धुर में जोता। कैसे जोता ? युग को धुर में पक्की तरह बाँध कर, धुर के एक सिरे पर नन्दिविसाल को जोत, धुर के दूसरे सिरे को धुर की रस्सी से लपेट, युग के सिरे और अक्षों के बीच में मुण्ड-वृक्ष का एक दण्ड देकर, उसे रस्सी से पक्की तरह बाँध दिया। ऐसा करने से जुआ, इधर उधर नहीं होता था। (उसे) एक ही बैल खैंच सकता था। तब उस ब्राह्मण ने धुर पर बैठ, नन्दिविसाल की पीठ पर हाथ फेर कहा—"अच्छा, तो भद्र ! (ले) ढो भद्र !" बोधिसत्व ने एक साथ बँधे हुए सौ छकड़ों को एक ही झटके में खैंच, (सबसे) पीछे खड़ी गाड़ी को, (सबसे) आगे खड़ी गाड़ी की जगह पर ला कर खड़ा कर दिया। गो-धन (वाले) सेठ ने पराजित हो, ब्राह्मण को दो हज़ार दिये। और दूसरे मनुष्यों ने भी बोधिसत्व को बहुत धन दिया। (वह) सब धन ब्राह्मण का ही हुआ। इस प्रकार बोधिसत्व के कारण, (उसे) बहुत धन मिला।

बुद्ध ने "भिक्षुओ ! कठोर-वचन किसीको अच्छा नहीं लगता" कह, छः वर्गीय भिक्षुओं को धिक्कारते हुए, शिक्षा-पद (=नियम) बना, अभिसम्बुद्ध हुए रहने के समय ही यह गाथा कही—

मनुञ्ञमेव भासेय्य नामनुञ्ञं कुदाचनं
मनुञ्ञं भासमानस्स गरुम्भारं उदद्धरी,
धनञ्च नं अलभेसि तेन चत्तमनो अहु ॥

[जब बोले मनोज्ञ(-वाणी) ही बोले, अमनोज्ञ कभी न बोले। मनोज्ञ-वाणी बोलने से, (बैल ने) भारी-भार ढो दिया। उस (ब्राह्मण) को धन मिला, जिससे वह अत्यन्त सन्तुष्ट हुआ।]

मनुञ्जमेव भासेय्य का अर्थ है कि किसी दूसरे के साथ बोलते हुए, चार प्रकार के दोषों से रहित,[1] मधुर, सुन्दर, चिकनी, मृदु, प्रिय वाणी ही बोले। **गरुम्भारं उदद्धरी,** नन्दिविसाल बैल ने अप्रिय-वचन बोलने वाले (ब्राह्मण) के भार को न खेंच, पीछे प्रिय-वचन बोलने पर (उसी) ब्राह्मण के भारी-भार को खेंच दिया, खेंच कर, निकाल कर, रास्ते पर चला दिया। 'द' केवल व्यञ्जन सन्धि के कारण है।

इस प्रकार शास्ता ने 'मनुञ्जमेव भासेय्य . . ." इस धर्म-देशना को लाकर, जातक का सारांश निकाल दिखाया। उस समय का ब्राह्मण (अब का) आनन्द था। और, **नन्दिविसाल** तो मैं ही था।

२६. कण्ह जातक

"यतो यतो गरुधुरं . . ." यह गाथा, शास्ता ने, जेतवन में विहार करते समय, **यमक प्रातिहार्य**[2] के बारे में कही। वह तेरहवें परिच्छेद में 'देवारोहण' के साथ, सरभमृग जातक[3] में आयेगी।

[1] दुर्भाषित न हो, अप्रिय न हो, अधर्म न हो तथा असत्य न हो (सुभाषित सूत्र, सुत्तनिपात)

[2] एक ओर से पानी दूसरी ओर से आग निकलना, इस प्रकार की जोड़ीदार अलौकिक क्रिया।

[3] ४८३ जातक।

क. वर्तमान कथा

सम्यक् सम्बुद्ध के **यमक प्रातिहार्य**[1] कर, देव-लोक में रह, महापवारणा के बाद **संकिस्स-नगर**-[2]द्वार पर उतर, बहुत से अनुयायियों के साथ जेतवन में प्रविष्ट होने पर, धर्म-सभा में बैठे भिक्षु तथागत की गुण-कथा कहने लगे—"आवुसो ! तथागत असम-धुर हैं। तथागत जिस धुर को ढोते हैं, उसे ढोने वाला कोई और नहीं। (शेष) छः शास्ता 'हम ही प्रातिहार्य करेंगे', 'हम ही प्रातिहार्य करेंगे' कहकर, एक भी प्रातिहार्य न कर सके। अहो ! (हमारे) शास्ता असम-धुर हैं।"

शास्ता ने आकर पूछा—"भिक्षुओ ! इस समय बैठे क्या बात-चीत कर रहे हो ?" "भन्ते ! और कोई (बात-चीत) नहीं, इस तरह से आप ही की गुण-कथा कह रहे हैं।" शास्ता ने "भिक्षुओ ! अब मेरे खेंचे (=ढोये) धुर को कौन खेंचेगा ? पूर्वजन्म में पशु-योनि में उत्पन्न हुए रहने पर भी, मुझे अपने 'सम-धुर' कोई नहीं मिला' कह, पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में **बाराणसी** में (राजा) ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय, बोधिसत्व बैल की योनि में पैदा हुए। सो उसके स्वामियों ने, उसके तरुण बछड़ा ही रहते, उसे एक बूढ़ी के घर में रहने के किराये के स्वरूप में, उस बुढ़िया को दे दिया। उसने यवागु-भात आदि खिलाकर उसका पुत्र की तरह पालन किया। उस (बछड़े) का नाम **आर्य्यका-कालक** पड़ा। आयु-प्राप्त होने पर, वह सुरमे के रंग का (काला) हो, ग्राम के (अन्य) बैलों के साथ चरने लगा। वह सुशील स्वभाव का था। ग्राम-बालक सींग, कान तथा गले को पकड़ कर लटक जाते। पूँछ तक को पकड़ कर खेल करते। पीठ पर बैठ जाते।

उसने एक दिन सोचा—"मेरी माता दरिद्र है। उसने मुझे बड़ी कठि-

[1] **देखो पटिसम्भिदामग्ग।**

[2] **संकिसा वसंतपुर, स्टेशन मोटा** (E. I. Ry.) **जिला फ़र्रुखाबाद।**

नाई से पुत्र की तरह पाला है। मैं क्यों न मज़दूरी करके इसकी ग़रीबी दूर करूँ ?" सो, उसके बाद से, वह मज़दूरी ढूँढ़ता हुआ विचरने लगा। एक दिन एक सार्त्थ-वाह-पुत्र के पाँच सौ छकड़े एक विषम-तीर्थ (=पट्टन) पर आन (फँसे)। उसके बैल गाड़ियों को न निकाल सके। पाँच सौ गाड़ियों के बैल एक युग में जोतने पर वे, एक भी गाड़ी न निकाल सके।

बोधिसत्व भी ग्राम के गोरुओं के साथ तीर्थ (=पट्टन) के पास ही चरते थे। सार्त्थ-वाह-पुत्र, गो-शास्त्रज्ञ था। उसने 'इन बैलों में' इन गाड़ियों को निकाल सकने वाला कोई वृषभ-आजानीय है वा नहीं ?' सोचते हुए, बोधिसत्व को देख, 'यह आजानीय (वृषभ) है, यह मेरे शकटों को निकाल सकेगा' सोच, ग्वालों से पूछा—"इसका स्वामी कौन है ? मैं इसे शकटों में जोत कर, शकटों के निकल आने पर स्वामी को मज़दूरी (=वेतन) दूँगा।" उन्होंने उत्तर दिया—"इस स्थान पर, इसका स्वामी नहीं है। पकड़ कर जोत लें।" वह, बोधिसत्व को, नाक में रस्सी से बाँध, खैंच कर न चला सका। बोधिसत्व, 'मज़दूरी कहने पर जाऊँगा' सोच न गये। सार्त्थ-वाह-पुत्र ने उसका अभिप्राय जान कर कहा—'स्वामी ! तुम्हारे पाँच सौ गाड़ियों को खैंच कर निकाल देने पर, एक एक गाड़ी की मज़दूरी दो कार्षापण करके, एक हज़ार (कार्षापण) दूँगा।' तब बोधिसत्व अपने आप चले गये। लोगों ने उसे गाड़ियों में जोता। उसने एक ही एक झटके में गाड़ियों को निकाल कर स्थल पर रख दिया। इस प्रकार सब गाड़ियाँ निकाल दीं।

सार्त्थ-वाह-पुत्र ने एक गाड़ी के लिए एक के हिसाब से पाँच सौ (कार्षापणों) की पोटली बनाकर, उसके गले में बाँध दी। बोधिसत्व 'यह मुझे निश्चित मज़दूरी नहीं देता है, सो मैं अब इसे जाने नहीं दूँगा" सोच, जाकर, सबसे अगली गाड़ी के सामने मार्ग रोक कर खड़ा हो गया। उसको हटाने के बहुत प्रयत्न करने पर भी न हटा सके।

सार्त्थ-वाह-पुत्र ने सोचा, 'मालूम होता है यह अपनी मज़दूरी की कमी को पहचानता है'; सो एक कपड़े में एक हज़ार की गाँठ बाँध, 'यह तेरी गाड़ियाँ निकालने की मज़दूरी है' कह, उसे, उसकी गर्दन में लटका दिया।

वह हज़ार की गाँठ लेकर माता के पास गया। ग्राम के लड़के, 'आर्य्यका-कालक' के गले में यह क्या बँधा है (जानने के लिए) समीप आने लगे। वह

उनका पीछा कर, उन्हें दूर से ही भगा, माता के पास गया। पाँच सौ गाड़ियों को उतारने के कारण लाल हुई आँखों से थकावट प्रगट हुई। उपासिका उसके गले में एक हज़ार की थैली देख "तात ! यह तुझे कहाँ से मिली ?" पूछ (फिर) ग्राम-दारकों से वह (सब) समाचार जान बोली, "तात ! मैं क्या तेरी मज़दूरी से जीने की भूखी हूँ ? तूने किस लिए ऐसा कष्ट उठाया है ?" (यह कह) उसने बोधिसत्व को गर्म-जल से नहला, सारे शरीर पर तेल लगा, पानी पिला, अनुकूल भोजन खिलाया। बाद में आयु सम्पूर्ण होने पर वह बोधि-सत्व सहित कर्मानुसार (परलोक को) गई।

शास्ता ने, "भिक्षुओ ! तथागत (केवल) अब ही असम-धुर नहीं है, पहले भी असम-धुर ही रहे हैं"—यह धर्म-देशना कह, मेल मिला, अभिसम्बुद्ध होने की ही अवस्था में यह गाथा कही—

यतो यतो गरुधुरं यतो गम्भीर वत्तनी,
तदस्सु कण्हं युञ्जन्ति स्वास्सु तं वहते धुरं ॥

[जहाँ जहाँ पर धुर भारी होती है, जहाँ जहाँ पर मार्ग कठिन होता है; वहाँ वहाँ कृष्ण (=काले बैल) को जोतते हैं। और वह उस धुर को ढो देता है।]

यतो यतो गरुधुरं=जिस जिस स्थान पर धुर भारी होता है; अन्य बैल नहीं उठा सकते। **यतो गम्भीर वत्तनी,** जो वर्ते वह वर्त्तनी; मार्ग का पर्य्याय-वाची। जिस स्थान पर पानी-कीचड़ की अधिकता से, वा तट के विषम तरह से टूटा-फूटा रहने से, मार्ग कठिन होता है। **तदस्सु कण्हं युञ्जन्ति;** अस्सु, केवल निपात है। अर्थ है कि उस समय कृष्ण (बैल) को जोतते हैं। सारांश यह है कि जिस समय धुर भारी होता है, मार्ग गम्भीर होता है, उस समय अन्य बैलों को हटा कर, कृष्ण(-बैल) को ही जोतते हैं। **स्वास्सु तं वहते धुरं;** यहाँ भी अस्सु तो केवल निपात है। अर्थ है कि वह उस धुर को ढोता (= खींचता) है।

इस प्रकार भगवान ने 'भिक्षुओ ! कृष्ण(-बैल) ही उस धुर को खैंचता

(=वहन करता) है' दिखाकर, मेल मिलाकर, जातक का सारांश निकाल दिखाया। उस समय की वृद्धा (अब की) **उत्पलवर्णा** थी। **आर्य्यका-कालक** तो मैं ही था।

३०. मुनिक जातक

"**मा मुनिकस्स**..." यह गाथा, शास्ता ने **जेतवन** में विहार करते समय, एक प्रौढ़ कुमारी के प्रति आसक्ति (=लोभ) के बारे में कही। वह (कथा) तेरहवें परिच्छेद (=निपात) की **चुल्लनारदकस्सप जातक**[1] में आयेगी।

क. वर्तमान कथा

बुद्ध ने उस भिक्षु से पूछा, "भिक्षु ! क्या तू सचमुच उत्तेजित है ?"

"भन्ते ! हाँ।"

"किस लिए ?"

"भन्ते ! प्रौढ़-कुमारी के लोभ के कारण।"

बुद्ध ने, "भिक्षु ! यह (कुमारी) तेरा अनर्थ-करने वाली है। पूर्व-जन्म में भी तू, इसके विवाह के दिन प्राणों से हाथ धोकर, महा जन(-समूह) का सालन बना" कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में (राजा) ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय, बोधिसत्व एक गाँवड़े (=गामक) में एक कुटुम्बि के घर गो-योनि में पैदा हुए।

[1] **चुल्लनारद जातक** (४७७)

उनका नाम **महालोहित** था, और उनका एक छोटा भाई भी **चुल्ललोहित** नामक हुआ। इन दोनों भाइयों के कारण ही, उस परिवार का काम-काज उन्नति पर था। उसी कुल में एक कुमारी भी थी। उसे एक नगरवासी कुलपुत्र ने अपने पुत्र के लिए वरा। उस (कुमारी) के माता पिता, 'कुमारी के विवाह के अवसर पर आने वाले आगन्तुकों के लिए सालन की सामग्री रहेगा' सोच, एक सूअर को यवागु-भात खिला खिला कर पालते थे। उसे देख **चुल्ललोहित** ने अपने भाई से पूछा—"इस परिवार के काम-काज को उन्नत बनाने वाले हम हैं। हम दोनों भाइयों के कारण ही यह उन्नति पर है। लेकिन यह घर वाले हमें तो केवल तृण-पराल आदि ही देते हैं, और सूअर को यवागु-भात खिला कर पालते हैं। किस कारण से इसको यह सब मिलता है?" उसके भाई ने उत्तर दिया "तात! चुल्ललोहित! तू इसके भोजन की ईर्षा मत कर। यह सूअर अपना मरण-भोजन खा रहा है। 'इस कुमारी के विवाह के अवसर पर आने वाले आगन्तुकों के लिए सालन की सामग्री होगा' सोच, यह (घर वाले) इस सूअर को पोष रहे हैं। अब से कुछ ही दिन के बाद वे लोग आ जायेंगे। तब, तू देखेगा कि (यह) इस सूअर को पैरों से पकड़, घसीटते हुए, सूअर के निवास-स्थान से निकाल, प्राण-नाश कर, आगन्तुकों के लिए सूप-व्यञ्जन बनायेंगे।" यह कहकर, उसने यह गाथा कही—

मा मुनिकस्स पिहयि आतुरन्नानि भुञ्जति,
अप्पोस्सुक्को भुसं खाद एतं दीघायुलक्खणं॥

[मुनिक (सूअर के भोजन) की ईर्षा (=इच्छा) मत कर। वह मरणान्त भोजन खाता है। (तू) उत्सुकता-रहित होकर भूसे को खा। यह दीर्घायु का लक्षण है।]

मा मुनिकस्स पिहयि=मुनिक (सूअर) के भोजन की इच्छा मत उत्पन्न कर, "यह अच्छा भोजन खाता है" (करके) मा मुनिकस्स पिहयि=मैं भी कब ऐसा सुखी होऊँगा; इस प्रकार सोच, मुनिक-भाव की प्रार्थना मत कर। **अयं हि आतुरन्नानि भुञ्जति;** आतुरन्नानि का अर्थ है मरण भोजन। **अप्पोस्सुक्को भुसं खाद,** उसके भोजन के प्रति उत्सुकता (=आशा)-रहित

होकर, अपने को जो भूसा मिला है, उसे खा, एतं दीघायुलक्खणं—यह दीर्घायु होने का कारण है।

उसके थोड़ी देर बाद ही, वे मनुष्य आ गये। (उन्होंने) मुनिक को मार कर, (उसे) नाना प्रकार से पकाया। बोधिसत्व ने चुल्ललोहित से पूछा—"तात! तूने मुनिक को देखा?" भाई! मैंने देख लिया मुनिक को मिलने वाले भोजन का फल। इसके भात (=भोजन) से हमारा तृण-पराल-भूसा लाख दर्जा अच्छा है, दोष-रहित है, दीर्घायु का लक्षण है।

बुद्ध ने, "हे भिक्षु! तू इस प्रकार, पूर्वजन्म में भी, इस कुमारी के कारण प्राणों से हाथ धो, लोगों का सालन बना"—यह धर्म-देशना कह, आर्य (-सत्यों) को प्रकाशित किया। (आर्य-)सत्यों के (प्रकाशन के) अन्त में उत्कण्ठित भिक्षु स्रोतापत्ति-फल में प्रतिष्ठित हुआ। शास्ता ने भी मेल मिला, जातक का सारांश निकाल दिखाया। उस समय का मुनिक सूअर (अब का) उत्कण्ठित भिक्षु था। तरुण-कुमारी, यह (प्रौढ़-कुमारी) ही; चुल्ल-लोहित (अब के) आनन्द; (और) महा-लोहित तो मैं ही था।

पहला परिच्छेद

४. कुलावक वर्ग

२१. कुलावक जातक

"**कुलावका**..." यह गाथा, शास्ता ने **जेतवन** में विहार करते समय, बिना कपड़-छान किये पानी पीने वाले भिक्षु के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

श्रावस्ती से दो मित्र तरुण-भिक्षुओं ने (**कोशल**) जन-पद में, सुख-पूर्वक रह सकने योग्य किसी स्थान में, यथेच्छा वास किया। फिर सम्यक् सम्बुद्ध को देखने की इच्छा से, वहाँ से निकल, **जेतवन** की ओर प्रस्थान किया। एक के पास छन्ना (=पानी छानने का कपड़ा) था, दूसरे के पास नहीं, (इसलिए) दोनों एक ही छन्ने से छान कर पानी पीते थे। एक दिन उन दोनों में विवाद हो गया। छन्ने के स्वामी ने दूसरे (भिक्षु) को छन्ना न दे, अकेले अपने पानी छान कर पिया। दूसरे ने छन्ना न मिलने से, और प्यास भी न सह सकने से, बिना छाने ही पानी पिया। दोनों क्रम से **जेतवन** पहुँच कर, बुद्ध को प्रणाम कर बैठे।

बुद्ध ने कुशल-समाचार सम्बन्धी बात-चीत करते हुए पूछा, "कहाँ से आये हो?"

"भन्ते! हम **कोशल** जन-पद के एक गाँव में रह, वहाँ से निकल, आपके दर्शन करने के लिए आये हैं।"

"क्या मेल-मिलाप पूर्वक आये हो?"

जिस भिक्षु के पास छन्ना नहीं था, उसने कहा, "भन्ते! इसने रास्ते में मेरे साथ विवाद किया, (और फिर अपना) छन्ना नहीं दिया।"

दूसरे ने कहा, "भन्ते ! इसने जान-बूझ कर, बिना छाने, जीवों सहित जल पिया।"

"भिक्षु ! क्या तूने सचमुच जान-बूझ कर जीवों सहित जल पिया ?"

"भन्ते ! हाँ, मुझसे बिना छना पानी पिया गया।"

शास्ता ने, "भिक्षु ! पूर्व समय में **देव-नगर** में राज्य करते हुए पण्डितों ने युद्ध में पराजित हो, समुद्र की सतह पर भागते हुए, 'हम ऐश्वर्य के लिए प्राण-वध न करेंगे' सोच, महान् ऐश्वर्य का त्याग कर, गरुड़-बच्चों को प्राण-दान दे, रथ को रोक दिया", कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

'पूर्व-समय में **मगध**-राज्य के **राजगृह** नगर में, एक मगध-नरेश राज्य करते थे। जैसे वर्तमान समय के शक्र (=इन्द्र) देव, (अपने) पूर्व-जन्म में, **मगध**-राष्ट्र के **मचल** ग्राम में पैदा हुए थे, उसी प्रकार बोधिसत्त्व उस समय, उसी **मचल** ग्राम के एक महान् कुल में उत्पन्न हुए थे। नामकरण के दिन, उसका नाम **मघ-कुमार** रक्खा गया। आयु-बढ़ने पर, वह **मघ-माणवक** के नाम से प्रसिद्ध हुआ। उसके माता पिता ने, अपने समान जाति के कुल से, (उसके लिए) एक लड़की ला दी। पुत्र-पुत्रियों सहित उसकी बढ़ती होते होते, वह दानपति हो गया। वह पाँच-शीलों की आरक्षा करता। उस गाँव में (कुल) तीस ही कुल थे। वे तीसों कुलों के मनुष्य एक दिन गाँव के बीच में खड़े होकर ग्राम-कृत्य कर रहे थे। बोधिसत्त्व जहाँ खड़े थे, वहाँ के रेत को पाँव से हटा, उस स्थान को रमणीक बनाकर, वहाँ पर खड़े हुए। एक दूसरा आदमी आकर, उस स्थान पर खड़ा हो गया। बोधिसत्त्व दूसरी जगह को रमणीय बनाकर, वहाँ खड़े हो गये। वहाँ भी एक और आदमी आकर खड़ा हो गया। बोधिसत्त्व ने और दूसरा, और दूसरा करते, सभी के खड़े होने के स्थान को रमणीय बनाकर, फिर वहाँ एक मण्डप बनवा दिया। (फिर) मण्डप को हटाकर, एक शाला बनवाई। उसमें पटड़ों के आसन बिछवा कर, (पानी) पीने की चाटी रखवाई। कुछ समय बीतने पर, वह तीस के तीस जने, बोधिसत्त्व के समान विचार के हो गये। बोधिसत्त्व उन्हें पाँच शीलों में प्रतिष्ठित कर, उसके बाद से उनको साथ ले पुण्य करते विचरते रहे।

वे भी बोधिसत्त्व के साथ पुण्य करते हुए प्रातःकाल ही उठ कर वसुला, (=वासी) परुष, (=कुल्हाड़ा) तथा मूसल हाथ में ले, चौरस्तों (=चतुमहापथों) पर जा, वहाँ मूसल से पत्थरों को उलट रास्ते से हटा देते (=पवट्टेन्ति)। गाड़ियों के अक्षों में बाधक वृक्षों को हटाते। ऊँच-नीच को बराबर करते। पुल बनाते। पुष्करिणियाँ खोदते। शालायें बनाते। दान देते। शील की आरक्षा करते। इस प्रकार प्रायः सभी ग्रामवासी, बोधिसत्त्व के उपदेशानुसार सदाचारी बन गये।

तब उनके **ग्राम-भोजक** ने सोचा कि पहले जब यह लोग शराब पीते थे, जीव-हिंसा करते थे, तो मुझे इनसे **चाटी, कार्षापण** के रूप में तथा **दण्ड-बलि** (=जुर्माने) आदि के रूप में धन मिलता था। लेकिन अब यह मघ, माणवक 'शील आरक्षा कराता हूँ', (करके) लोगों को जीव-हिंसा नहीं करने देता। "अच्छा! अब तुझे पाँच-शील रखाऊँगा!" (कह) क्रुद्ध हो, उसने राजा से जाकर कहा—

"देव! बहुत से चोर ग्राम-घात आदि करते घूम रहे हैं।" राजा ने उसकी बात सुन आज्ञा दी—"जा, उन्हें (पकड़) ला।" उसने जाकर, सब को बाँध ला कर राजा से कहा—"देव! चोरों को ले आया।" राजा ने उनके कर्म की परीक्षा किये बिना ही आज्ञा दी कि उन्हें हाथी से रौंदवा दो। सब को राजाङ्गण में लिटा कर हाथी को लाया गया।

बोधिसत्त्व ने लोगों को उपदेश दिया—"तुम अपने शील का विचार करो। चुग़ल-खोर के प्रति, राजा के प्रति, हाथी के प्रति और अपने शरीर के प्रति एक जैसी मैत्री भावना करो।" उन्होंने वैसा ही किया। उन्हें रौंदने के लिए हाथी को आगे बढ़ाया गया। आगे बढ़ाया जाने पर भी, वह उनके ऊपर से नहीं जाता था। चिंघाड़ मार कर भागता था। दूसरे, तीसरे हाथी को लाया गया। वे भी, वैसे ही भागे।

राजा ने सोचा, 'इनके हाथ में कोई औषध होगी', इसलिए आज्ञा दी कि इनकी तलाशी लो। तलाशी लेने वालों ने (कुछ) न देखकर कहा "देव! नहीं है।" राजा ने सोचा, 'कोई, मन्त्र जपते होंगे'। (सो आज्ञा दी) पूछो कि क्या कोई जपने का मन्त्र है? राज-पुरुषों ने पूछा। बोधिसत्त्व ने कहा,

"(मन्त्र) है।" राजपुरुषों ने सूचना दी, "देव ! (यह कहता है) कि (मन्त्र) है।" राजा ने सब को बुला कर कहा—"तुम्हें जो मन्त्र मालूम है, सो कहो।"

बोधिसत्त्व ने कहा—"देव ! हमारे पास दूसरा कोई मन्त्र नहीं है। हम तीस जने जीव-हिंसा नहीं करते, चोरी नहीं करते, मिथ्या आचार (=व्यभिचार) नहीं करते, झूठ नहीं बोलते, शराब नहीं पीते, मैत्री-भावना करते हैं, दान देते हैं, (ऊँचे-नीचे) रास्तों को बराबर करते हैं, पुष्करिणियाँ खोदते हैं, शालायें बनाते हैं;—यही हमारा मन्त्र है, यही हमारी आरक्षा (=परित्त) है, और यही हमारी वृद्धि है।"

राजा ने उन पर प्रसन्न हो, चुग़ल-ख़ोर के घर की सब दौलत उनको दिलवा चुग़ल-ख़ोर को उनका दास बना दिया। वह हाथी और ग्राम भी उन्हीं को दे दिया। उस समय से उन्होंने यथेच्छ पुण्य करते हुए, चौरास्ते पर एक बड़ी भारी शाला बनवाने की इच्छा से, वढ़ई को बुलाकर, (उससे) शाला की नींव रखवाई। स्त्रियों (=मातुगाम) के प्रति आसक्ति न होने के कारण, उन्होंने उस शाला (के निर्माण) में स्त्रियों को हिस्सेदार नहीं बनाया। उस समय बोधिसत्त्व के घर में **सुधम्मा, चित्ता, नन्दा** और **सुजाता** नाम की चार स्त्रियाँ थीं। उनमें से सुधर्मा ने बढ़ई के साथ मिल, 'भाई ! इस शाला (के निर्माण) में, मुझे मीरी (=ज्येष्ठकी) कर' (कह) उसे रिशवत दी। उसने 'अच्छा' कह, स्वीकार कर, पहले से ही कर्णिक (=शहतीर के योग्य)-वृक्ष को सुखदाकर, छीलकर, बींधकर, शहतीर बना तैयार करके, वस्त्र से लिपटवा कर, रखवाया। फिर शाला को समाप्त कर, कर्णिका रखने के समय कहा—'ओह ! आर्यो ! एक बात याद न रही।" "भो ! क्या ?" "कर्णिका (= (=शहतीर) चाहिए" "अच्छा ! ले आयेंगे।" "अब के (ताज़े) कटे वृक्ष से न बन सकेगी। पहले से ही काट कर, छील कर, बींध कर, रक्खी हुई कर्णिका मिलनी चाहिए।" "तो अब क्या किया जाये ?" "यदि किसीके घर में बेचने के लिए रक्खी हुई कर्णिका हो, तो उसे खोजना चाहिए।" ढूँढ़ते हुए, उन्हें सुधर्मा के घर में (कर्णिका) मिली, (लेकिन वह उसे) मूल्य देकर न ले सके। "यदि मुझे शाला (के निर्माण) में हिस्सेदार बनाओ, तो दूँगी" कहने पर, उन्होंने कहा कि हम स्त्रियों को हिस्सा (=पत्ति) नहीं देते। तब बढ़ई ने उन्हें कहा—'आर्यो ! क्या कहते हो ? ब्रह्मलोक को छोड़ और कोई ऐसी

जगह नहीं, जहाँ स्त्रियाँ न हों। (इससे) कर्णिका को ले लो। ऐसा होने पर, हमारा काम सम्पूर्ण हो जायगा।" उन्होंने 'अच्छा' (कह), कर्णिका ले, शाला को समाप्त कर, आसन तथा पटड़े बिछवा, पानी की चाटियाँ रखवा, यागु-भात (का सदा-व्रत) बाँध दिया। शाला को चार-दीवारी से घेर, (उसमें) दरवाज़ा लगा, चार-दीवारी के अन्दर बालू-रेत बखेर, उसके बाहर ताड़ के वृक्षों की पंक्ति लगाई। **चित्रा** ने भी वहाँ उद्यान लगाया। कोई ऐसा फल-फूलदार वृक्ष नहीं होगा, जो उस उद्यान में न हो। **नन्दा** ने भी उसी स्थान पर पाँच वर्णों के कमलों से आच्छादित, रमणीय पुष्करिणी बनवाई। **सुजाता** ने कुछ न किया। बोधिसत्त्व मातृ-सेवा, पितृ-सेवा, अपने से बड़ों का आदर, सत्य-भाषण, मृदु-भापण, चुग़ल-ख़ोरी-रहित भाषण, मात्सर्य्य (=ईर्षा) का न होना, इन सात व्रतों को पूरा कर—

"माता पेत्तिभरं जन्तुं कुले जेट्ठापचायिनं,
सण्हं सखिल सम्भासं पेसुण्णेय्यप्पहायिनं
मच्छेर विनये युत्तं सच्चं कोधाभिभुं नरं
तं वे देवा तावतिंसा आहु सप्पुरिसो"[1]

[माता पिता की सेवा करने वाले, बड़ों का आदर करने वाले, प्रिय-मृदु बोलने वाले, चुग़ल-ख़ोरी-रहित बात कहने वाले, मात्सर्य्य के नाश में लगे हुए, सत्य-वादी अक्रोधी नर को ही, त्रयस्त्रिंश (=तावतिंस) -लोक के देवता सत्पुरुष कहते हैं]

इस प्रकार प्रशंसा के भागी हो, जीवन समाप्त होने पर, त्रयस्त्रिंश-भवन में देवेन्द्र शक्र होकर, उत्पन्न हुए। उसके साथी भी वहीं उत्पन्न हुए। उस समय **त्रयस्त्रिंश लोक** में असुर रहते थे। देवेन्द्र शक्र ने सोचा, 'इनके बराबरी के राज्य से हमें क्या (लाभ)?।" सो, उसने असुरों को दिव्य पान पिलवा कर, उनके बेहोश होने पर, उन्हें पैरों से पकड़वा सुमेरु पर्वत के प्रपात पर से फिंकवा दिया। वे असुर-भवन को प्राप्त हुए। असुर-भवन, सुमेरु(=पर्वत) के निचले तल पर (है) और त्रयस्त्रिंश देव-लोक जितना ही

[1] संयुत्तनिकाय, सक्क संयुत।

बड़ा है। देवताओं के पारिजात वृक्ष की भाँति, वहाँ असुरों का चित्रपाटली नामक कल्पस्थायी वृक्ष है। उन (असुरों) को चित्रपाटली वृक्ष के पुष्पित होने पर पता लगा कि यह हमारा देव-लोक नहीं है, क्योंकि देव-लोक में तो पारिजात वृक्ष फूलता है। सो, उन्होंने यह जान कि "बूढ़े शक्र ने, हमें बेहोश करके, महासमुद्र की सतह पर फेंक हमारा देव-नगर ले लिया है" निश्चय किया कि हम उसके साथ युद्ध करके अपना देव-नगर लेंगे। खम्भे पर च्यूँटियों के चढ़ने की तरह, वे सुमेरु पर्वत के साथ साथ चढ़ते हुए (ऊपर) उठे। शक्र ने 'असुर उठे' सुन, समुद्र-पृष्ठ पर ही आकर उनसे युद्ध करते हुए, उनसे हार कर, डेढ़ सौ योजन (लम्बे-चौड़े) वैजयन्त रथ में दक्षिण समुद्र के ऊपर ऊपर भागना आरम्भ किया। समुद्र-तल पर वेग से चलता हुआ उसका रथ, सिम्बलि वन के पास से गुज़रा। उसके रास्ते में आया सिम्बलि वन, ताड़-के पत्तों की तरह टूट टूट कर, समुद्र-तल पर गिरने लगा। समुद्र-तल पर उलटते पलटते गरुड़-बच्चे महा चीत्कार करने लगे। शक्र ने (अपने सारथी) मातलि से पूछा—"मातलि! यह अत्यन्त करुणाजनक क्या शब्द है?"

"देव! आपके रथ के वेग से चूर्णित होकर गिरते हुए सिम्बलि वन के कारण, मरने के भय से भयभीत गरुड़-पोतक एक साथ चीतकार कर रहे हैं।"

महासत्त्व ने कहा—"सम्म मातलि। हमारे कारण इन्हें कष्ट न हो। ऐश्वर्य्य के लिए, हम जीवहिंसा नहीं करते। इनके लिए, हम अपने प्राणों का परित्याग कर, (उन्हें) असुरों को दे देंगे। इस रथ को लौटाओ।" कह, यह गाथा कही—

कुलावका मातलि! सिम्बलिस्मि,
ईसा मुखेन परिवज्जयस्सु;
कामं चजाम असुरेसु पाणं,
मायिमे दिजा विकुलावा अहेसुं॥

[मातलि! सिम्वलि वन में जो गरुड़-बच्चे हैं, (उन्हें रथ के) अगले सिरे (=इषामुख) से (हानि पहुँचने से) बचाओ। हम असुरों को अपने प्राण भले ही दे दें। लेकिन इन पक्षियों के घोंसले नष्ट न हों।]

कुलावका=गरुड़ के बच्चे। **मातलि !**—यह सारथी का सम्बोधन है। **सिम्बलिस्मि**—इस शब्द से स्पष्ट है कि देख, यह सिविम्ल-वृक्षों में लटक रहे हैं। **ईसामुखेन परवज्जयस्सु;** इनको ऐसे बचाओ, जिससे यह इस रथ के अगले सिरे (=ईसामुख) से नष्ट न हों। **कामं चजाम असुरेसु पाणं**—यदि हमारे असुरों को अपने प्राण देने से, इनका कल्याण होता हो तो हम अवश्य ही प्रसन्नता पूर्वक असुरों को अपने प्राण दे देंगे। **मायिमे दिजा विकुलावा अहेसुं;** लेकिन यह पक्षी (=द्विज); यह गरुड़-बच्चे, अपने घोंसलों के विध्वंस, विचूर्ण हो जाने के कारण आश्रय-रहित (=बिना घोंसले के) न हों। हमारा दुःख उनके ऊपर मत डाल। रथ को लौटा। रथ को लौटा।"

यह शब्द सुन, मातलि-सारथी ने, रथ को रोक दूसरे मार्ग से, देव-लोक की ओर हाँक दिया। असुरों ने रथ को लौटता देख सोचा, "निश्चय से दूसरे चक्रवालों से भी शक्र आ रहे हैं। सेना की सहायता (=वल) मिलने से ही रथ लौटाया गया होगा।" यह सोच मरने से भय-भीत हो भाग कर असुर-भवन में छिप गये। शक्र भी देव-नगर में प्रवेश कर, दो देव-लोकों के देवताओं सहित नगर के बीच में खड़े हुए। उसी क्षण पृथ्वी फूटी, (और) उसमें से सहस्र योजन ऊँचा वेजयन्त प्रासाद (=महल) निकला। विजय के अन्त में निकलने के कारण, उसका नाम वेजयन्त रक्खा गया। शक्र ने, असुरों का फिर दुबारा आना रोकने के लिए पाँच जगहों पर पहरा (=आरक्षा) स्थापित किया। जिसके बारे में कहा है—

अन्तरा द्विन्नं अयुज्भपुरानं पञ्चविधा ठपिता अभिरक्खा,
उरग करोटि पयस्स च हारी मदनयुता चतुरो च महन्ता॥

[दोनों अयुद्ध-पूरों के बीच में पाँच प्रकार की आरक्षा स्थापित की गई—सर्पों की, गरुड़ों की, कुम्भाण्ड (=दावन राक्षसों) की, यक्षों की तथा चारों महाराजाओं की]

दोनों नगर युद्ध से अजेय होने के कारण अयुद्ध-पुर कहलाये—देवनगर तथा असुर नगर। जब असुर बलावन् होते, तब देवताओं के भाग कर देव-नगर में प्रविष्ट हो द्वारों के बन्द कर लेने पर एक लाख असुर भी उनका कुछ

न कर सकते। जब देवता बलवान् होते, तब असुरों के भाग कर, असुर नगर के द्वार बन्द कर लेने पर, एक लाख शक्र भी (उनका) कुछ न कर सकते। इसलिए यह दोनों नगर अयुद्ध-पुर कहलाये। इन दोनों (नगरों) के बीच में, शक्र ने पाँच स्थानों पर पहरा (=आरक्षा) स्थापित किया।

'उरग' शब्द से नागों का ग्रहण है। वे जल में बल-शाली होते हैं। इसलिए सुमेरु पर्वत के प्रथम चक्कर में उनका पहरा है **'करोटि'** शब्द से गरुडों का ग्रहण है। उनका 'नाम' 'करोटि' इसलिए पड़ा, क्योंकि वह जीवों को खाते हैं। दूसरे चक्कर में उनका पहरा है। **'पयस्स हारी'** शब्द से कुम्भाण्डों का ग्रहण किया गया है। यह दानव-राक्षस (होते) हैं। तीसरे चक्कर में उनका पहरा है। **'मदन युत'** शब्द से यक्षों का ग्रहण है। वे विषम-आचरण वाले (तथा) युद्ध-प्रिय होते हैं। चौथे चक्कर में उनका पहरा है। **'चतुरो च महन्ता'** का अर्थ है चारों महाराजा। पाँचवें चक्कर में उनका पहरा है। सो यदि असुर क्रुद्ध होकर (अथवा) मन बिगाड़ कर देव-पुर पहुँचते, तो उरग उन्हें सुमेरु पर्वत के पाँच प्रकार के घेरों में से जो प्रथम-घेरा है, उससे बाहर निकाल देते। इसी प्रकार बाकी चक्करों में शेष।

इन पाँच स्थानों में पहरा स्थापित करके, देवेन्द्र (शक्र) के दिव्य सम्पत्ति का उपभोग करते समय, सुधर्मा ने च्युत हो (=मर) कर, उस शक्र की ही भार्य्या बन कर जन्म ग्रहण किया। कण्णिका (=शहतीर) दिये रहने के फलस्वरूप, उसके लिए पाँच सौ योजन (लम्बी चौड़ी) सुधर्मा नामक देव-मणि-सभा (-शाला) उत्पन्न हुई, जिसमें दिव्य श्वेत छत्र के नीचे, योजन भर के काञ्चन पलंग के ऊपर बैठ कर, देवेन्द्र शक्र देव मनुष्यों के कर्तव्य-कृत्यों (का सम्पादन) करते थे। **चित्रा** भी मर कर, उसी की भार्य्या होकर उत्पन्न हुई। उद्यान लगाये रहने के फलस्वरूप इसके लिए चित्र-लता-वन नाम का उद्यान उत्पन्न हुआ। **नन्दा** भी च्युत होकर, उसीकी भार्य्या होकर उत्पन्न हुई। पुष्करिणी बनवाने के फलस्वरूप इसके लिए नन्दा नाम की पुष्करिणी पैदा हुई।

कोई भी शुभ-कर्म न किया रहने के कारण सुजाता एक अरण्य की किसी कन्दरा में बगुला-पक्षी की योनि में उत्पन्न हुई। शक्र ने, 'सुजाता नहीं दिखाई देती, वह कहाँ उत्पन्न हुई?' विचार करते हुए, उसे देखा। वहाँ जाकर

उसे साथ लाया और उसे रमणीय देव-नगर, सुधंम देवसभा, चित्र-लता-वन और नन्दा पुष्करिणी दिखाई। फिर 'यह शुभ-कर्म करके मेरी स्त्रियाँ होकर उत्पन्न हुईं, लेकिन तू शुभ-कर्म न किये रहने के कारण पशु-पक्षी (=तिरश्चीन) की योनि में उत्पन्न हुई। अब से सदाचार की रक्षा कर'—यह उपदेश देकर, उसे पाँच शीलों में प्रतिष्ठित किया और उसे वहीं ले जाकर छोड़ दिया। वह भी उस समय से सदाचार (=शील) की रक्षा करने लगी। कुछ दिनों के बाद 'वह शील की रक्षा कर सकती है, (वा नहीं)?' जानने के लिए, जाकर उसके सामने मच्छ की योनि में चित-पड़े प्रगट हुए। उसने मृत मच्छ समझ सीस पर प्रहार किया। मच्छ ने पूँछ हिलाई। उसने 'जीता है' समझ, उसे छोड़ दिया। शक्र "साधु साधु" (कह) 'शील की रक्षा कर सकेगी' (सोच) चला गया। वहाँ से च्युत होकर वह वाराणसी में कुम्हार के घर पैदा हुई।

शक्र ने 'कहाँ पैदा हुई?' (सोच) 'वहाँ पैदा हुई' जान, सोनहरी खीरों की गाड़ी भरकर, गाँव के बीच में एक बूढ़े के वेष में बैठ चिल्लाना शुरू किया—"खीरे ले लो, खीरे ले लो।"

मनुष्यों ने आकर कहा—"तात ! दो।"

"मैं केवल सदाचारियों को देता हूँ। तुम सदाचार की रक्षा करते हो?"

"हम शील(-वील) नहीं जानते, मूल्य से दो।"

"मुझे कीमत की ज़रूरत नहीं, मैं केवल सदाचारियों को ही देता हूँ।"

"कौन है यह लाल-बुझक्कड़ (=लालको)!" कहते मनुष्य चले गये। सुजाता ने उस समाचार को सुन, 'मेरे लिए लाये गये होंगे' सोच, जाकर कहा—"तात ! दो।"

"अम्म ! क्या सदाचार की रक्षा करती हो?"

"हाँ ! रक्षा करती हूँ।"

"यह (सब) मैं तेरे ही लिए लाया हूँ" (कह) गाड़ी सहित गृह-द्वार पर छोड़ चला गया। वह भी जीवन पर्य्यन्त सदाचार की रक्षा कर, वहाँ से च्युत हो, वेपचित्ति असुरेन्द्र की लड़की होकर उत्पन्न हुई। सदाचार (की रक्षा करने) के फलस्वरूप सुन्दरी हुई। असुरेन्द्र ने उसकी उमर होने पर, 'मेरी लड़की अपनी इच्छा के अनुकूल स्वामी ग्रहण करे'—इस इच्छा से—असुरों

को एकत्रित किया। शक्र 'वह कहाँ उत्पन्न हुई', देखते हुए, 'वहाँ उत्पन्न हुई' जान, सुजाता यथेच्छा स्वामी को चुनने (का अवसर मिलने) पर, मुझे ही चुनेगी' सोच असुर का रूप बनाकर वहाँ गया। सुजाता को सजाकर, सभा में लाकर कहा गया कि यथारुचि स्वामी को चुनो। उसने देखते हुए शक्र को देख, अपने पूर्व स्नेह के भी कारण 'यह मेरा स्वामी है' (करके) ग्रहण किया। वह उसे देव-नगर में ला, वहाँ उसे ढाई करोड़ नटनियों (नृत्यबालाओं) की मुखिया बना, आयु पर्य्यन्त रहकर, यथा-कर्म (परलोक) सिधारा।

बुद्ध ने यह धर्म-देशना कह 'हे भिक्षु! पूर्व समय में देव राज्य करते हुए पण्डितों ने, इस प्रकार अपने जीवन का परित्याग करते हुए भी (जीवहिंसा) नहीं की। और तू इस प्रकार के कल्याण-कारी शासन में प्रव्रजित होकर भी छाने बिना, जीव-सहित जल पीयेगा" (कह) उस भिक्षु को झिड़क, मेल मिला, जातक का सारांश निकाल दिखाया। उस समय का मातलि (नामक) सारथी (अब का) **आनन्द** था। शक्र तो मैं ही था।

३२. नच्च जातक

"**एवं मनुञ्ञं**..." यह गाथा बुद्ध ने **जेतवन** में विहार करते समय, एक बहुत सामान रखने वाले भिक्षु के वारे में कही। कहानी पूर्वोक्त **देवधम्म जातक**[१] के सदृश ही है।

क. वर्तमान कथा

बुद्ध ने उस भिक्षु से पूछा—"भिक्षु! क्या तू सचमुच बहु-सामान वाला है?"

[१] जातक (६)

"भन्ते ! हाँ ।"

"भिक्षु ! तू किस लिए बहु-भाण्डिक हो गया ?"

वह इतनी ही बात से क्रुद्ध हो, पहनना-ओढ़ना छोड़ 'अब इस ढंग से विचरूँगा' (कह) बुद्ध के सामने ही नङ्ग-धड़ङ्ग खड़ा हो गया। मनुष्यों ने कहा—"धिक्कार है। धिक्कार है।" उसने वहाँ से भाग जाकर सन्यास छोड़ दिया। धर्म-सभा में बैठे भिक्षु 'यह बुद्ध के सम्मुख भी ऐसा करेगा !' (कह) उस भिक्षु की निन्दा कर रहे थे।

बुद्ध ने आकर पूछा—भिक्षुओ ! इस समय बैठे क्या बात-चीत कर रहे थे ?

"भन्ते ! वह भिक्षु आपके सामने (और) चारों प्रकार की परिषद् के बीच में लज्जा-भय छोड़ गाँव के बच्चों की तरह नङ्गा खड़ा रह, लोगों के घृणा करने पर, गृहस्थ हो (बुद्ध) शासन से गिर गया (कहते हुए) बैठे उस भिक्षु की निन्दा कर रहे थे।"

शास्ता ने, 'भिक्षुओ ! न केवल अब ही वह भिक्षु लज्जा और भय के अभाव से शासन रूपी रत्न से पतित हो गया है, किन्तु पूर्व-जन्म में भी उसे स्त्री-रत्न के लाभ से हाथ धोना पड़ा' कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में, प्रथम कल्प में चौपायों ने सिंह को (अपना) राजा बनाया। मत्स्यों ने **आनन्द मत्स्य** को। पक्षियों ने **सुवर्ण** हंस को। उस सुवर्ण हंसराज की लड़की, हंस-बच्ची सुन्दरी थी। उस (हंस-राज) ने उसे वरदान दिया। उसने अपनी इच्छानुकूल स्वामी (चुनने की आज्ञा) माँगी। हंस-राज ने उसे वरदान दे, हिमवन्त(-प्रदेश) के सब पक्षियों को एकत्रित करवाया। नाना प्रकार के हंस, मोर आदि पक्षी-गण आकर, एक बड़े पाषाण-तल के नीचे इकट्ठे हुए।

हंस-राज ने लड़की को बुलाया—"आकर, अपनी इच्छा के अनुकूल स्वामी को चुन लो।' उसने पक्षी-समूह को देखते हुए, मणि के रंग की ग्रीवा तथा चित्रित पंखों वाले मोर को देख कर इच्छा प्रगट की कि यह मेरा स्वामी

हो। पक्षियों ने मोर के पास जाकर कहा—"सम्म मोर! इस राज-धीता ने इतने पक्षियों के बीच में स्वामी खोजते हुए, तुझे चुना है।"

मोर ने, "तो क्या वह आज भी मेरे बल को न देखती" (कह) अति प्रसन्न हो, लज्जा-भय छोड़कर, उतने बड़े पक्षि-संघ के बीच में पंखों को पसार कर, नाचना आरम्भ कर दिया। नाचते समय वह नंगा (=बिना ढका) हो गया। सुवर्ण हंस-राज ने लज्जित हो, 'इसको न तो अन्दर की लज्जा है, न बाहर का भय है। इस लज्जा-भय रहित को मैं (अपनी) लड़की न दूँगा' (कह) पक्षियों के संघ के बीच में यह गाथा कही—

रुदं मनुञ्ञं रुचिरा च पिट्ठी
वेलुरियवण्णूपनिभा च गीवा,
व्याम-मत्तानि च पेखुणानि
नच्चेन ते धीतरं नो ददामि॥

[(यद्यपि तेरा) स्वर मनोहारी है, पीठ सुन्दर है, गर्दन बिलौर के रंग की है, पंखड़ियाँ दो हाथ (=व्याम) भर की हैं; (तो भी) तेरे नाचने के कारण, तुझे लड़की नहीं देता हूँ]

रुदं मनुञ्ञं, 'रुदं' में 'त' का 'द' कर दिया गया। रुदं, मनापं का अर्थ है कि उच्चारित शब्द मधुर। **रुचिरा च पिट्ठी,** तेरी पीठ भी चित्रित तथा शोभासम्पन्न है। **वेलुरियवण्णूपनिभा**=बिल्लौर मणि के वर्ण सदृश। **व्याम-मत्तानि;** एक व्याम (=दो हाथ) भर। **पेखुणानि**-पंखड़ियाँ **नच्चेन ते धीतरं नो ददामि**—"लज्जा-भय छोड़ कर नाचने के कारण ही, तुझे, ऐसे निर्लज्ज को लड़की नहीं देता हूँ" कह, हंस-राज ने उसी परिषद् के बीच में अपने भांजे हंस-बच्चे को लड़की दे दी। मोर हंस-बच्ची को न पा, लज्जित हो, वहाँ से उड़ कर भाग गया। हंस-राज भी अपने निवास-स्थान को चला गया।

बुद्ध ने "भिक्षुओ! न केवल अब ही यह लज्जा-भय छोड़ने के कारण (बुद्ध-)शासन रूपी रत्न से पतित हुआ है, पूर्व-जन्म में भी स्त्री-रत्न की प्राप्ति से इसे हाथ धोना पड़ा था। यह धर्म-देशना कह, मेल मिला, जातक का सारांश

निकाल दिखाया। उस समय का मोर (अब का) बहुत सामान रखने वाला (भिक्षु) था और हंस-राज तो मैं ही था।

३३. सम्मोदमान जातक

"**सम्मोदमाना...**" यह गाथा शास्ता ने **कपिलवस्तु** के समीप **निग्रोधाराम** में रहते समय चुम्बट-कलह के बारे में कही। वह कथा **कुणाल-जातक**[1] में आयेगी।

क. वर्तमान कथा

उस समय बुद्ध ने रिश्तेदारों को आमन्त्रित कर, "महाराजाओ! रिश्तेदारों को एक दूसरे से लड़ना-झगड़ना उचित नहीं। पूर्व समय में तिरश्चीन (=पशु-पक्षी) योनि में पैदा हुए भी, एकमत रहने के समय शत्रु को पराजित किया था, और जब विवाद में पड़ गये, तो महाविनाश को प्राप्त हुए' कह, रिश्तेदार राजाओं के याचना करने पर पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में **बाराणसी** में (राजा) **ब्रह्मदत्त** के राज्य करते समय, बोधिसत्त्व (एक) बटेर की योनि में उत्पन्न होकर, अनेक सहस्र बटेरों के साथ जंगल में रहते थे। उस समय बटेरों का एक शिकारी उनके रहने के स्थान पर जाता। वह बटेरों का सा शब्द करता। जब बटेरें इकट्ठी हो जातीं तो उन पर जाल फेंकता; और सिरों पर से दबाते हुए, सब को एक जगह करके, पेटी में

[1] **कुणाल जातक** (५३६)

भर लेता। घर जाकर, उन्हें बेच, उस ग्रामदनी (=मूल्य) से जीविका चलाता था।

तब एक दिन बोधिसत्त्व ने उन बटेरों को कहा—'यह चिड़ीमार हमारी जात-बिरादरी का नाश करता है। मैं एक उपाय जानता हूँ, जिससे यह हमें न पकड़ सकेगा। ग्रब से, जैसे ही यह तुम्हारे ऊपर जाल फेंके, वैसे ही जाल की एक एक गाँठ में सिर रख कर, जाल के सहित उड़कर, उसे यथेष्ट स्थान पर ले जाकर, किसी काँटे-दार झाड़ी के ऊपर डाल दो। ऐसा होने पर, हम नीचे से जहाँ तहाँ से भाग जायेंगे।" उन सब ने 'ग्रच्छा' कहा। दूसरे दिन ऊपर जाल फेंकने पर, (वे) बोधिसत्त्व के कथनानुसार जाल को उड़ा कर, एक काँटेदार झाड़ी पर फेंक, ग्रपने ग्राप नीचे से, जहाँ तहाँ से निकल भागे।

चिड़ीमार को झाड़ी में से जाल निकालते ही निकालते विकाल हो गया। वह ख़ाली हाथ ही (घर) लौटा। ग्रगले दिन से लगाकर बटेर (रोज़) वैसा ही करते। वह (चिड़ीमार) भी सूर्य्यास्त होने तक जाल को ही छुड़ाते रह कर, कुछ भी न पा, ख़ाली हाथ ही घर लौटता। तब उसकी भार्य्या ने क्रुद्ध होकर कहा—"तू रोज़ रोज़ ख़ाली हाथ लौटता है। मालूम होता है बाहर किसी ग्रौर की भी परवरिश कर रहा है।" चिड़ीमार ने "भद्रे! मुझे किसी ग्रौर को पालना पोसना नहीं है। केवल वह बटेर एक मत होकर चुगते हैं। मेरे फेंके जाल को लेकर, काँटों की झाड़ी पर डाल चले जाते हैं। लेकिन वह सदैव एक मत होकर नहीं रहेंगे। तू चिन्ता मत कर। जिस समय वह विवाद में पड़ेंगे, उस समय उन सब को लेकर तुझे हँसाता हुग्रा घर लौटूँगा।" कह, भार्य्या को यह गाथा कही—

सम्मोदमाना गच्छन्ति जालमादाय पक्खिनो,
यदा ते विवदिस्सन्ति तदा एहिन्ति मे वसं॥

[(ग्रभी) पक्षी एक राय होने के कारण जाल को लेकर (उड़) जाते हैं; लेकिन जब वह विवाद करेंगे, तभी वह मेरे वश में ग्रा जायेंगे।]

यदा ते विवदिस्सन्ति, जिस समय वह बटेर, नाना मत के, नाना (प्रकार की) राय के, होकर विवाद करेंगे=कलह करेंगे। **तदा एहिन्ति मे वसं**—

उस समय वह सभी मेरे वश में आ जायेंगे। और मैं उन्हें लेकर तुझे हँसाता हुआ, आऊँगा (कह) भार्य्या को आश्वासन दिया।

कुछ ही दिन के बाद चुगने की भूमि (=गोचर-भमि) पर उतरता हुआ एक बटेर ग़लती से (=ख्याल न रहने से) दूसरे के सिर पर से लाँघ गया। दूसरे ने क्रोध से कहा, "मेरे सिर पर से कौन लाँघा ?" "मैं ग़लती से लाँघ गया। क्रुद्ध मत हो।" कहने पर भी वह क्रोध ही करता रहा। बार बार बोलते हुए, वह एक दूसरे को ताना देने लगे, "मालूम होता है, जैसे तू ही जाल को उठाता है !"

उन्हें विवाद करते देख, बोधिसत्त्व ने सोचा—"विवाद करने वालों का कुशल नहीं। अब यह जाल न उठायेंगे, और महान् विनाश को प्राप्त होंगे। चिड़ीमार को अवसर मिल जायगा। मैं अब यहाँ नहीं रह सकता।"(यह सोच) वह अपनी परिषद् (=जमात) को ले दूसरी जगह चला गया। चिड़ीमार ने भी कुछ दिन के बाद आ, बटेरों की बोली बोल, उनके एकत्र होने पर, उन पर जाल फेंका। तब एक बटेर ने दूसरे को कहा, 'जाल ही उठाते उठाते तेरे सिर के बाल गिर पड़े, ले, अब तो उठा।' दूसरे ने कहा—"जाल ही उठाते उठाते तेरे दोनों पंखों की पंखड़ियाँ गिर पड़ीं। ले, अब तो उठा।' सो उनके 'तू उठा', 'तू उठा', विवाद करते करते ही, चिड़ीमार जाल को उठा, उन सब को एकत्रित कर, पेटी भर भार्य्या को प्रसन्न करता हुआ, घर लौटा।

बुद्ध ने, 'सो हे महाराजाओ ! ज्ञाति-सम्बन्धियों का कलह उचित नहीं है। कलह विनाश का ही कारण होता है'; यह धर्म-देशना लाकर, मेल मिला, जातक का सारांश निकाल दिखाया। उस समय का मूर्ख (=अपण्डित) बटेर (अब का) **देवदत्त** था। और पण्डित-बटेर तो मैं ही था।

३४. मच्छ जातक

"न मं सीतं न मं उण्हं. . . ." यह गाथा, बुद्ध ने **जेतवन** में विहार करते समय, पूर्व-भार्य्या के लुभाने के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

उस समय बुद्ध ने उस भिक्षु से पूछा— भिक्षु ! क्या तू सचमुच उत्कण्ठित है ?"

"भगवान् ! सचमुच।"

"तुझे किस ने उत्कण्ठित किया ?"

"भन्ते ! मेरी पूर्व-भार्य्या के हाथों में माधुर्य्य है। उसे नहीं छोड़ सकता हूँ।"

तब बुद्ध ने, "हे भिक्षु ! यह स्त्री तेरा अनर्थ करने वाली है। पूर्व-जन्म में भी तू इसके कारण मरते मरते, मेरी शरण आने से मरने से बचा" (कह) पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में **बाराणसी** में (राजा) ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय, बोधिसत्त्व उसके पुरोहित थे। मछुओं ने नदी में जाल फेंका। एक महामत्स्य अपनी मछली के साथ रति-क्रीड़ा करता हुआ आ रहा था। उसके आगे आगे जाती वह मछली जाल-गन्ध सूँघ कर जाल से हट कर निकल गई। लेकिन वह कामासक्त, लोभी मत्स्य जाल के भीतर ही जा फँसा। मछुओं ने उसे जाल में प्रविष्ट हुआ जान, जाल को उठा, मत्स्य को बिना मारे ही ले जा बालू के ऊपर डाल दिया। (उन्होंने) सोचा इसे अङ्गारों पर पका कर खायेंगे।

इसलिए अङ्गार बनाने लगे और सलाई (=काँटे) को छीलने लगे। मत्स्य ने, 'अङ्गार पर तपने का, काँटे से बिंधने का वा अन्य कोई दुःख मुझे पीड़ा नहीं देता, लेकिन वह जो मछली सोचेगी कि वह किसी दूसरी मछली के पास चला गया, उसीसे मुझे दुःख होता है, उसीसे मुझे बाधा होती है', (कह) रोते पीटते यह गाथा कही—

न मं सीतं न मं उण्हं न मं जालस्मि बाधनं,
यं च मं मञ्ञते मच्छी, अञ्ञं सो रतिया गतो' ॥

[न मुझे शीत की पीड़ा है, न ऊष्णता की पीड़ा है, न जाल में बँधने की पीड़ा है। (मुझे दुःख है तो यह है) कि मेरी मछली, मेरे बारे में समझेगी कि वह रति के मारे किसी दूसरी मछली के पास चला गया।]

'न मं सीतं न मं उण्हं. . .' मत्स्यों को पानी से बाहर निकालने के समय शीत लगता है, पानी में जाने पर गरमी लगती है। सो दोनों के बारे में 'न तो मुझे शीत ही पीड़ा देता है, न गरमी।' (कह) रोता है। (और) जो अङ्गार में पकने का दुःख होगा, उसके बारे में भी 'न मुझे गरमी पीड़ा देती है' (कह) रोता ही है। **न मं जालस्मि बाधनं,** और जो मेरा जाल में बँधना हुआ, वह भी मुझे पीड़ा नहीं देता (कह) रोता है। **यं च मं** आदि का संक्षेपार्थ यह है— वह मछली मेरे जाल में फँसने और इन मछुओं द्वारा पकड़ लिये जाने की बात न जानकर, मुझे न देखती हुई सोचेगी कि वह मत्स्य कामरति के मारे अब दूसरी मछली के पास चला गया होगा—यह उसका मेरे प्रति बुरा-भाव होना मुझे पीड़ा देता है (कह) बालू के ऊपर पड़ा पड़ा रोता पीटता है।

उस समय दासों से घिरा हुआ पुरोहित, स्नान करने के लिए नदी के किनारे आया। उसे सब प्राणियों की बोली समझ में आती थी। सो, इस मत्स्य का रोना पीटना सुन कर, उसके मन में यह (विचार उत्पन्न) हुआ— यह मत्स्य कामासक्ति के दुःख से पीड़ित होकर रोता है। इस प्रकार आतुर (=दुःखित) चित्त होकर मरने पर भी, यह नरक में ही उत्पन्न होगा। मैं इसका उद्धार करने वाला होऊँगा।" (यह सोच) मछुओं के पास जाकर कहा—

"भो ! तुमने हमें एक दिन भी सालन (=व्यञ्जन) के लिए मछली नहीं दी ?"

मछुओं ने कहा—"स्वामी क्या कहते हैं ? आपको जो मछली अच्छी लगे, उसे ले जाइये "

"हमें और किसी मछली से काम नहीं, यही (मत्स्य) दे दो।"

"स्वामी ! ले जायें।"

बोधिसत्त्व, उसे दोनों हाथों से ले, नदी के किनारे बैठ "भो ! मत्स्य ! यदि मैं आज तुझे न देखता, तो तेरे प्राण जाते रहते। अब से क्लेश (=कामासक्ति) के वशीभूत न होना"—यह उपदेश कर, पानी में छोड़, नगर में प्रविष्ट हुए।

बुद्ध ने इस धर्म-देशना को कह (आर्य-)सत्यों को प्रकाशित किया। (आर्य-)सत्यों का प्रकाशन समाप्त होने पर उत्कण्ठित भिक्षु **स्रोतापत्ति-फल** में प्रतिष्ठित हुआ। बुद्ध ने भी मेल मिला, जातक का सारांश निकाल दिखाया। उस समय की मच्छी (अब की) पुरानी भार्य्या थी। मत्स्य (अब का) उत्कण्ठित भिक्षु। (और) पुरोहित तो मैं ही था।

३५. वट्टक जातक

"**सन्ति पक्खा**. . ." यह गाथा, बुद्ध नें मगध में चारिका करते समय, दावाग्नि के बुझने के सम्बन्ध में कही।

क. वर्तमान कथा

एक समय बुद्ध ने मगध में चारिका करते हुए मगध के गामड़े में भिक्षाटन कर, भिक्षाटन से लौटकर, भोजनोपरान्त भिक्षुगण सहित रास्ता लिया।

उस समय महादावाग्नि उठी। (शास्ता के) आगे पीछे बहुत भिक्षु थे। वह आग भी एक-धुआँ, एक ज्वाला हो फैलती ही चली आ रही थी। कुछ मरने से भयभीत अज्ञ (=पृथज्जन) भिक्षु 'हम प्रति-अग्नि जलायेंगे, जिससे जले स्थान पर दूसरी आग न फैल सकेगी' (सोच) अरणि निकाल कर आग जलाने लगे। दूसरों ने कहा—"आवुसो ! तुम क्या करते हो ? गगनमध्य स्थित चन्द्रमा को (न देखते हुए की तरह), पूर्व दिशा में उगने वाले, सहस्र रश्मिधारी सूर्य्यमण्डल को (न देखते हुए की तरह), समुद्र के तट पर खड़े होकर समुद्र को (न देखते हुए की तरह), सुमेरु पर्वत के पास खड़े होकर सुमेरु पर्वत को (न देखते हुए की तरह) क्या तुम लोक में सदैव अग्र व्यक्ति, सम्यक् सम्बुद्ध को अपने साथ न जाते देखकर ही कहते हो कि हम प्रति-अग्नि देंगे (=जलायेंगे)? क्या तुम बुद्ध-बल को नहीं जानते ? (चलो) बुद्ध के पास चलेंगे।" आगे पीछे जाते हुए वे सभी इकट्ठे होकर दसबल(-धारी) के पास गये।

महाभिक्षुसंघ को साथ लिये बुद्ध एक जगह खड़े थे। दावाग्नि (सब को) परास्त करती हुई की भाँति, घोषणा करती आ रही थी।

जिस स्थान पर तथागत खड़े थे, वहाँ पहुँच, उस स्थान से चारों ओर सोलह करीस[1] भर दूरी के स्थान पर, वह वैसे ही बुझ गई, जैसे तिनकों की मशाल (=उल्का) पानी में डुबोने पर। (बुद्ध के) आसपास से बत्तीस करीस की दूरी में (वह आग) न फैल सकी।

भिक्षु बुद्ध का गुणानुवाद करने लगे—"अहो ! बुद्धों का सामर्थ्य (=गुण)! यह अचेतन आग भी बुद्धों के खड़े होने की जगह पर न फैल सकी, (और) पानी में तिनकों की मशाल की तरह बुझ गई। अहो ! बुद्धों का प्रताप !"

शास्ता ने उनकी बात-चीत सुनकर कहा—"भिक्षुओ ! यह मेरा अब का बल नहीं है, जिसके कारण यह आग इस भूमि-प्रदेश में पहुँच कर बुझ गई है। किन्तु यह मेरी पुरानी सत्य-क्रिया का बल ह। इस प्रदेश में इस सारे कल्प भर आग न जलेगी। यह कल्प भर स्थिर रहने वाली प्रातिहार्य

[1] उतना रक़बा जिस में एक करीस बीज (चार अम्मन) बोया जा सके।

(=अलौकिक क्रिया) है।" आयुष्मान् आनन्द ने शास्ता के बठने के लिए चौतही संघाटी बिछा दी। शास्ता पल्लथी मारकर बैठ गये। भिक्षुसंघ भी तथागत को प्रणाम कर तथा घेरकर बैठ गया। तब बुद्ध ने भिक्षुओं के यह याचना करने पर कि 'भन्ते ! यह जो (अव की बात) है, सो तो हमें प्रगट है। अतीत की जो बात छिपी हुई है, उसे प्रगट करें।' पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

"पूर्व समय में, **मगध** राष्ट्र के उसी प्रदेश में, बोधिसत्त्व, बटेर की जून में जन्म ग्रहण कर, माता की कोख से निकल, अण्डे को फोड़, निकलते समय ही, एक बड़े गेंद जितना (बड़ा) बटेर हुआ। सो (उसके) माता पिता उसे घोंसले में लिटा, चोंच से चोगा ला, उसे पालते थे। उसमें, न तो पर फैला कर आकाश में उड़ने का सामर्थ्य था; न टाँग उठा कर पृथ्वी पर चलने का सामर्थ्य। उस प्रदेश में प्रति वर्ष दावाग्नि लग जाती। (आग लग जाने के) समय भी, वह चिल्लाता हुआ, उसी स्थान (=प्रदेश) पर रहा। पक्षी-गण अपने अपने घोंसले से निकल, मरने से भयभीत, चिल्लाते हुए भागे। बोधिसत्त्व के माता पिता भी मरने से भयभीत (हो) बोधिसत्त्व को छोड़ (अपने) भाग गये। बोधिसत्त्व ने घोंसले में पड़े पड़े गर्दन उठाकर, फैलती आती आग को देख, सोचा—"यदि मुझ में परों को फैला कर आकश-मार्ग से जाने का सामर्थ्य हो, तो उड़कर दूसरी जगह चला जाऊँ; यदि पैरों पर खड़े होकर जाने का सामर्थ्य हो, तो पैदल दूसरी जगह चला जाऊँ। मेरे माता-पिता भी मरने से भय-भीत (हो) मुझे अकेला छोड़कर, अपने प्राण लेकर भाग गये। अब मुझे किसी की शरण नहीं। मैं त्राण-रहित हूँ; शरण-रहित हूँ। मुझे आज क्या करना चाहिए ?" तव उसके (मन में) यह हुआ—"इस लोक में सदाचार (=शीलगुण) है, सत्य है, पूर्व समय में पारमिताओं को पूरा कर बोधि-वृक्ष के नीचे बैठ अभिसम्बुद्धत्त्व प्राप्त कर, शील-समाधि-प्रज्ञा-विमुक्ति—विमुक्ति-ज्ञान-दर्शन से युक्त, सत्य-दया-करुण-शान्ति से समन्वित, सब सत्वों के प्रति समान मैत्री-भावना रखने वाले, सर्वज्ञ बुद्ध हैं, उनके द्वारा साक्षात किये गये धर्म-तत्व (=गुण) हैं, मुझ में भी एक सत्य है (अर्थात्) (मुझ

में भी) एक विद्यमान् स्वाभाविक धर्म दिखाई देता है। इसलिए मुझे चाहिए कि मैं पूर्व समय के बुद्धों, और उनके द्वारा साक्षात् किये गये धर्म-तत्वों का विचार करूँ; और अपने में विद्यमान सत्य-स्वाभाविक धर्म को लेकर सत्य-क्रिया कर अग्नि को वापिस लौटा, आज अपना और शेष (सब) पक्षियों का कल्याण करूँ। इसीलिए कहा गया है—

अत्थि लोके सीलगुणो सच्चं सोचेय्यानुद्दया,
तेन सच्चेन काहामि सच्चकिरियमनुत्तमं,
आवज्जित्वा धम्मबलं सरित्वा पुब्बके जिने,
सच्च बलमपस्साय सच्चकिरियं अकासहं ॥[1]

[लोक में सदाचार (=शील-गुण) है, सत्य (है), शौच (है), दया (है);—मैं उस सत्य से उत्तमतम सत्य-क्रिया को करता हूँ। धर्म-बल तथा पूर्व समय के बुद्धों (=जिनो) का स्मरण कर, और सत्य-बल को देखकर, मैंने सत्य-क्रिया की।]

सो बोधिसत्त्व ने पूर्व समय में परिनिर्वाण को प्राप्त बुद्धों के गुणों का ध्यान धर, अपने में विद्यमान सत्य-स्वभाव के बारे में सत्य-क्रिया करते हुए यह गाथा कही—

सन्ति पक्खा अपतना सन्ति पादा अवञ्चना,
माता पिता च निक्खन्ता जातवेद ! पटिक्कम ॥

[पङ्ख हैं (लेकिन उनसे) उड़ा नहीं जाता; पैर हैं (लेकिन उनसे) चला नहीं जाता। मेरें माता-पिता (मुझे छोड़) चले गये। इसलिए हे अग्नि पीछे हट जा।]

सन्ति पक्खा अपतना; मेरे पक्ष हैं; लेकिन इनसे मैं उछल नहीं सकता = आकाश-मार्ग से जा नहीं सकता; इसलिए अपतना। **सन्ति पादा अवञ्चना,** मेरे पाँव भी हैं, लेकिन मैं उनसे वञ्चना=पाँव से चलना नहीं कर सकता, इसलिए अवञ्चना। **माता पिता च निक्खन्ता,** जो मुझे अन्यत्र ले जाते, वह

[1] देखो चरिया-पिटक (वट्टकपोत चरिया)।

माता-पिता भी मरने के डर से भाग गये। जातवेद ! यह अग्नि का सम्बोधन है। वह जात (=उत्पन्न) होते ही, वेदियति (=प्रगट होती है) इसलिए 'जातवेद' कहलाती है। पटिक्कम, वापिस जा =लौट जा (कह) जातवेद को आज्ञा देता है।

सो (इस प्रकार) महासत्त्व ने 'यदि मेरा पङ्खों-सहित होना सत्य है, और उनको फैलाकर आकाश में न उड़ सकने (की बात) सत्य है, यदि मेरा पाँव-सहित होना, और उनको उठाकर न चल सकने की तथा माता-पिता की मुझे घोंसले में ही छोड़ कर चले जाने (की बात) सत्य है, स्वभाव-भूत है; तो हे जातवेद ! इस सत्यता के कारण तू यहाँ से लौट जा' कह घोंसले में पड़े ही पड़े सत्य-क्रिया की। उसके सत्य-क्रिया (करने) के साथ ही अग्नि १६ करीष भर स्थान से (दूर) हट गई। लौटती हुई और न बुझती हुई (वह) आग (शेष) जंगल में चली गई ; (लेकिन) उस स्थान पर पानी में डाले मशाल की तरह, बुझ गई—

सह सच्चकते मय्हं महा पज्जलितो सिखी,
वज्जेसि सोलस करीसानि उदकं पत्वा यथा सिखी[1] ॥

[मेरे सत्य(-क्रिया) के साथ ही, महाप्रज्वलित आग ने, सोलह करीष (भूमि) को वैसे ही छोड़ दिया, जैसे पानी में पड़ने पर आग।]

सो यह स्थान इस सारे कल्प के लिए अग्नि से सुरक्षित हो गया; यह कल्प भर स्थिर रहनेवाली प्राति-हार्य हुई। इस प्रकार बोधिसत्त्व सत्य-क्रिया करके, जीवन की समाप्ति पर, कर्मानुसार (परलोक) गये।

बुद्ध ने "भिक्षुओ ! यह जो इस जंगल का अग्नि से न जलना है, यह मेरा अब का बल नहीं; किन्तु यह पूर्व-जन्म में बटेर-बच्चा होने के समय का मेरा सत्य-बल है"—यह धर्म-देशना कह (आर्य-)सत्यों को प्रकाशित किया। सत्यों के अन्त में कोई **स्रोतापन्न** हुए, कोई **सकृदागामी** हुए, कोई **अनागामी** हुए, कोई **अर्हत्** हुए। बुद्ध ने भी मेल मिला, जातक का सारांश निकाल दिखाया। उस समय के माता-पिता (अब के) माता-पिता ही थे। बटेर राज तो मैं ही था।

[1] **देखो चरियापिटक, (वट्टकपोत चरिया)।**

३६. सकुण जातक

"**यं निस्सिता...**" यह गाथा, बुद्ध ने जेतवन में विहार करते समय, दग्ध-पर्णशाल (=जिसकी पर्णशाला जल गई थी) भिक्षु के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

एक भिक्षु, शास्ता के पास से **कर्मस्थान** ग्रहण कर, **जेतवन** से निकल, **कोशल** (जनपद) के एक सीमान्त ग्राम के समीप, एक अरण्य में रहता था। (वर्षा-वास) के पहले ही महीने में उसकी पर्णशाला जल गई। उसने मनुष्यों से कहा—"मेरी पर्णशाला जल गई। मैं कष्ट-पूर्वक रहता हूँ।" मनुष्यों ने कहा—"अभी हमारे खेत सूखे हैं, (उन्हें) पानी देकर (पर्ण-शाला) बनायेंगे" पानी दे चुकने पर, "बीज बोकर" बीज बो चुकने पर, "मेंढ बाँध कर," मेंढ बाँध चुकने पर, "गुडाई करके" (गुडाई कर चुकने पर), "काट कर," (काट चुकने पर), दौंरी करके—इस प्रकार, यह, वह काम दिखाते हुए, उन्होंने तीन महीने गुज़ार दिये। वह भिक्षु तीन महीने तक खुले में कष्ट से रहने के कारण **कर्मस्थान** के अभ्यास में उन्नति न कर, अर्हत्व (=विशेष) न प्राप्त कर सका। **पवारणा**[1] के पश्चात्, वह, बुद्ध के पास पहुँच, प्रणाम कर, एक ओर बैठा। शास्ता ने उससे बात-चीत करते हुए पूछा—"भिक्षु! क्या वर्षा-वास सुख-पूर्वक व्यतीत किया? क्या कर्मस्थान सफल हुआ?" उसने वह समाचार कह, उत्तर दिया कि निवास-स्थान के अनुकूल न होने से मेरा कर्मस्थान सफल नहीं हुआ। बुद्ध ने, "भिक्षु! पहले समय में तिरश्चीन प्राणी भी अपनी अनुकूलता, अननुकूलता पहचानते थे, तूने क्यों न पहचानी?" कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

[1] वर्षावास समाप्त कर।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में, **बाराणसी** में (राजा) ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय, बोधिसत्त्व पक्षी-योनि में उत्पन्न हो, पक्षी-गण सहित, अरण्य में, शाखा-टहनियों से युक्त (एक) बड़े वृक्ष के आश्रय में रहते थे। एक दिन उस वृक्ष की एक दूसरे से रगड़ खाती हुई शाखाओं से चूर्ण (सा) गिरने (तथा) धुआँ उठने लगा। इसे देख, बोधिसत्त्व ने सोचा—"यह इस प्रकार रगड़ खाती हुई दो शाखायें आग पैदा करेंगी (=फेकेंगी), जो गिर कर पुराने पत्तों में लग जायगी, (और) फिर इस वृक्ष को भी जला देगी। हम यहाँ नहीं रह सकते। हमें यहाँ से भाग कर, अन्यत्र जाना चाहिए।" (यह सोच) उसने पक्षी-गण को यह गाथा कही—

यं निस्सिता जगति रुहं विहङ्गमा स्वायं अग्गि पमुञ्चति,
दिसा भजथ वक्कङ्गा। जातं सरणतो भयं॥

(जिस वृक्ष का पक्षियों ने आश्रय लिया है, सो यह वृक्ष आग छोड़ता है। (इसलिए) हे पक्षियो! (अन्य अन्य) दिशाओं को जाओ। (हमारे) शरण(-गत) स्थान से ही भय उत्पन्न हो गया।]

जगति रुहं; जगति कहते हैं पृथ्वी को। वहाँ उत्पन्न होने वाला रुक्ख, **जगतिरुह**। **विहङ्गमा**, विहं कहते हैं आकाश को, वहाँ (=आकाश में) गमन करने से पक्षी को **विहङ्गम** कहते हैं। **दिसा भजथ**; इस वृक्ष को छोड़, अन्यत्र भाग कर चारों दिशाओं में विचरो। **वक्कङ्गा**—पक्षियों का सम्बोधन। वे (अपने) उत्तमाङ्ग को, गले को कभी कभी वङ्क (=टेढ़ा) करते हैं, इसलिए 'वक्कङ्गा' कहलाते हैं, अथवा उनके दोनों ओर पङ्ख वङ्क होने से भी, वह 'वक्कङ्गा' कहलाते हैं। **जातं सरण तो भयं**; हमारे आश्रय-स्थान वृक्ष से ही भय पैदा हो गया। आओ! अन्यत्र चलें।

बोधिसत्त्व की बात मानने वाले बुद्धिमान् पक्षी, उसके साथ एक ही उड़ान में उड़ कर अन्यत्र चले गये। लेकिन जो मूर्ख थे वे 'यह ऐसे ही एक बूँद पानी

में मगर-मच्छ देखा करता है' (सोच), उसकी बात न मान वहीं रहे। उसके थोड़े ही काल बाद, जैसे बोधिसत्त्व ने सोचा था, वैसे ही आग पैदा होकर, उस वृक्ष में लग गई। धुएँ और ज्वालाओं के उठने पर, धुएँ से अन्धे पक्षी अन्यत्र न जा सके। (वहीं) आग में गिर कर विनाश को प्राप्त हुए।

बुद्ध ने 'भिक्षु ! पहले समय में तिरश्चीन योनि में पैदा हुए भी, वृक्ष के ऊपर रहते हुए, अपनी अनुकूलता, अननुकूलता को जानते थे। तूने क्यों न पहचानी ?"—यह धर्म-देशना कह, (आर्य-)सत्यों को प्रकाशित किया। (आर्य-)सत्यों का प्रकाशन समाप्त होने पर, वह भिक्षु **स्रोतापत्ति** फल में प्रतिष्ठित हुआ। बुद्ध ने भी मेल मिला कर, जातक का सारांश निकाल दिखाया। उस समय बोधिसत्त्व की बात मानने वाले पक्षी (अब) बुद्ध-परिषद हुए। (और) बुद्धिमान-पक्षी तो मैं ही था।

३७. तित्तिर जातक

"**ये वद्धमपचायन्ति**..." यह गाथा बुद्ध ने **श्रावस्ती** को जाते समय सारिपुत्र स्थविर के लिए शयनासन (=निवास-स्थान) न मिलने के सम्वन्ध में कही।

क. वर्तमान कथा

अनाथपिण्डक के विहार बनवा कर, दूत भेजने पर, बुद्ध **राजगृह** से निकल **वैशाली** पहुँच वहाँ इच्छानुसार विहार कर, **श्रावस्ती** जाने के विचार से चारिका के लिए निकले। उस समय छः-वर्गीय भिक्षुओं के शिष्य आगे आगे जाकर स्थविरों के शयनासन न ग्रहण किये रहने पर भी, 'यह शयनासन हमारे उपाध्याय के लिए होगा, यह हमारे आचार्य्य के लिए होगा; यह हमारे लिए होगा' (कह) शयनासन दखल कर लेते थे। पीछे आने वाले स्थविरों

को शयनासन न मिलते। सारिपुत्र के शिष्यों को भी स्थविर के लिए शयनासन ढूँढ़ने पर शयनासन न मिला। स्थविर ने शयनासन न मिलने से, बुद्ध के शयनासन से कुछ ही दूर, एक वृक्ष के नीचे, बैठ कर और चल-फिर कर (रात) बिताई। बुद्ध ने तड़के ही निकल कर खाँसा। स्थविर ने भी खाँसा। "यह कौन है?" "भन्ते! मैं सारिपुत्र हूँ।" "सारिपुत्र! तू इस समय यहाँ क्या कर रहा है?" उसने वह (सब) हाल कह दिया। बुद्ध को स्थविर की बात सुन, यह सोचते सोचते कि, 'जब मेरे जीते जी ही भिक्षु एक दूसरे के प्रति गौरव तथा सम्मान पूर्वक नहीं विचरते, तो मेरे परिनिर्वाण प्राप्त कर लेने पर यह क्या करेंगे' धर्म-संवेग उत्पन्न हुआ। उन्होंने प्रभात होने पर, भिक्षुसंघ को इकट्ठा करवा भिक्षुओं से पूछा—"भिक्षुओ! क्या सचमुच छः-वर्गीय भिक्षु आगे आगे जा कर स्थविरों के शयनासन दखल कर लेते हैं?"

"भगवान्! सचमुच।"

तब (भगवान् ने) छः-वर्गीय भिक्षुओं को धिक्कार, धार्मिक कथा कह (सब) भिक्षुओं को सम्बोधित किया—"भिक्षुओ! प्रथम आसन, प्रथम जल, और प्रथम परोसे के योग्य कौन है?"

कुछ भिक्षुओं ने कहा—"जो क्षत्रीय कुल से प्रव्रजित हुआ हो।" कुछ ने, "जो ब्राह्मण-कुल से, जो गृहपति-कुल (=वैश्य-कुल) से।" औरों ने, 'विनय-धर, धर्म-कथित, प्रथम ध्यान के लाभी, द्वितीय-तृतीय-चतुर्थ ध्यान के लाभी।" औरों ने कहा—"श्रोतापन्न, सकृदागामी, अनागामी, अर्हत, त्रि-विद्याओं का ज्ञाता, छः अभिज्ञा-प्राप्त।"

इस प्रकार उन भिक्षुओं के अपनी अपनी रुचि के अनुसार अग्र-आसन आदि के योग्यों के कहने के समय, बुद्ध ने कहा—"भिक्षुओ! मेरे शासन में अग्रासन आदि प्राप्त करने के लिए न क्षत्रीय-कुल में से प्रव्रजित होना प्रमाण है, न ब्राह्मण-कुल से, न वैश्य-कुल से प्रव्रजित होना प्रमाण है, न विनयधर (होना), न सूत्र-धर (होना), न अभिधर्म्म का ज्ञाता (होना), न प्रथम-ध्यान आदि का लाभी (होना), न श्रोतापन्न आदि (होना)। हे भिक्षुओ! इस शासन में प्रणाम, सेवा, हाथ जोड़ना, और अन्य उचित-क्रिया—यह सब बड़प्पन के क्रम से किया जाना चाहिए। अग्रासन, अग्र-जल और अग्रप-रोसा इस 'बड़प्पन' के ही क्रम से मिलना चाहिए। यही यहाँ प्रमाण है। इस

लिए इन सब में से जो सबसे बड़ा[1] है, वही यहाँ योग्य है। हे भिक्षुश्रो ! अब इस समय सारिपुत्र मेरा अग्र-श्रावक है, मेरे बाद धर्म-चक्र प्रवर्तित करने वाला है, मेरे बाद वही शयनासन पाने का अधिकारी है। सो, उसीने शयनासन न मिलने के कारण आज की रात वृक्ष के नीचे बिताई। जब तुम अभी से इस प्रकार अगौरव-युक्त तथा असम्मान-युक्त हो, तो समय बीतने पर क्या करके विचरोगे ?" फिर उनको उपदेश देने के लिए बुद्ध ने, "भिक्षुश्रो ! पूर्व समय में तिरश्चीन योनि में उत्पन्न हुओं ने भी 'हमारे लिए यह उचित नहीं है कि हम एक दूसरे का आदर न कर, सत्कार न कर, अनुचित ढंग से विचरते रहें। हम अपने में से जो बड़ा है, उसे जानकर, उसे प्रणाम (=अभिवादन) आदि करेंगे। सो उन्होंने अच्छी प्रकार परीक्षा कर, यह मालूम किया कि उनमें कौन बड़ा है। उसे प्रणाम आदि करते हुए, देव-पथ को भरते हुए (परलोक) गये" कह, पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में हिमालय के पास एक बड़ा बर्गद था। उसको आश्रय कर, तित्तिर, वानर और हाथी—तीन मित्र विहार करते थे। वे तीनों एक दूसरे का आदर न करने वाले, सत्कार न करने वाले, साथ जीविका न करने वाले थे। तब उनके मन में यह (विचार) हुआ—हमारे लिए इस प्रकार रहना उचित नहीं। जो हम लोगों में बड़ा है, उसे प्रणाम आदि करते हुए रहें। फिर 'हम में कौन जेठा है?' इसे सोचते हुए, एक दिन 'एक ऐसा उपाय है' (जिससे मालूम हो सके कि कौन जेठा है) सोच, तीनों जने बड़ के नीचे बैठे।

वहाँ बैठने पर तित्तिर और बन्दर ने हाथी से पूछा—"सौम्य हाथी ! तू इस बड़ वृक्ष को किस समय से जानता है ?"

उसने उत्तर दिया—सौम्यो ! जब मैं बच्चा था, तो इस बर्गद के वृक्ष को मैं जाँघ के बीच करके लाँघ जाता था। बीच करके खड़े होने के समय, इसकी फुनगी मेरे पेट को छूती थी। सो, मैं इसे, इसके गाछ होने के समय से

[1] भिक्षुओं में पूर्व प्रब्रजित बड़ा होता है।

जानता हूँ ।" फिर दोनों जनों ने पूर्व प्रकार से बन्दर से पूछा ।

वह बोला—सौम्यो ! जब मैं बच्चा था, तो भूमि पर बैठ कर, बिना गर्दन उठाये, इस बर्गद के पौधे के फुनगी के अंकुरों को खाता था। सो मैं इसे छोटा होने के समय से जानता हूँ । शेष दोनों ने पूर्व प्रकार से ही तित्तिर से पूछा । वह बोला—"सौम्यो ! पहले अमुक स्थान पर एक बड़ा बर्गद का पेड़ था । मैंने उसके फल खाकर इस स्थान पर बीट की । उससे यह वृक्ष पैदा हुआ । सो मैं इसे इसके अनुत्पन्न-काल से जानता हूँ । इसलिए, मैं तुम (दोनों) से जन्म से जेठा हूँ ।"

ऐसा कहने पर बन्दर और हाथी ने तित्तिर पण्डित को कहा—सौम्य ! तू हम में जेठा है। इसलिए अब से हम तेरा सत्कार करेंगे, गौरव करेंगे, मानेंगे, वन्दना करेंगे, पूजा करेंगे, अभिवादन करेंगे, सेवा करेंगे, हाथ जोड़ेंगे और भी सब उचित-कर्म करेंगे; तथा तेरे उपदेशानुसार चलेंगे। (इसलिए) अबसे तू हमें उपदेश देना और अनुशासन करना ।" उस समय से तित्तर उन्हें उपदेश देने लगा। (उसने) उन्हें (पाँच) शीलों में प्रतिष्ठित किया। अपने आप भी उसने शील ग्रहण किये। वे तीनों जने पाँच शीलों में प्रतिष्ठित हो, एक दूसरे का आदर करते, सत्कार करते, साथ जीविका करते हुए रह कर, जीवन के अन्त में देव-लोक गामी हुए ।

उन तीनों का यह समझौता तैत्तिरीय-ब्रह्मचर्य्य कहलाया। भिक्षुओ ! वह तिर्यग् योनि के प्राणी थे। (तो भी) वे, एक दूसरे का गौरव करते, सत्कार करते विहरते थे। तुम इस प्रकार के सु-आख्यात धर्म-विनय में प्रव्रजित हो कर भी किस लिए एक दूसरे का गौरव न करते, सत्कार न करते विहरते हो ?"

भिक्षुओ ! अब से तुम्हें वृद्ध-पन (=जेठे-पन) के अनुसार अभिवादन, प्रत्युत्थान, (बड़े के सामने खड़े होना), हाथ जोड़ना, कुशल प्रश्न, प्रथम-आसन, प्रथम-जल, प्रथम-परोसा देने की अनुज्ञा करता हूँ। अब से कनिष्ठतर भिक्षु द्वारा ज्येष्ठ-तर का शयनासन दखल नहीं किया जाना चाहिए। जो दखल करेगा, उसे 'दुष्कृत' की आपत्ति (होगी)। इस प्रकार शास्ता ने इस धर्म-देशना को ला, अभिसम्बुद्ध हो कर (ही) यह गाथा कही—

ये वद्धमपचायन्ति नरा धम्मस्स कोविदा,
दिट्ठेव धम्मे पासंसा सम्पराये च सुग्गति ॥

[जो धर्म के ज्ञाता नर, बड़ों की पूजा करते हैं; वे इसी जन्म में प्रशंसा के भागी तथा पर-लोक में सुगति के भागी होते हैं।]

ये वद्धमपचायन्ति; जाति-वृद्ध, वयो-वृद्ध, गुण-वृद्ध—तीन प्रकार के बड़े होते हैं। उनमें (ऊँची) जाति वाला जाति-वृद्ध, (अधिक) आयु वाला वयो-वृद्ध, गुण (-विशेष) से युक्त गुण-वृद्ध। उनमें से यहाँ 'वृद्ध' शब्द से गुण-सम्पन्न और वयो-वृद्ध का ही मतलब है। **अपचायन्ति**, बड़ों के सत्कार करने के कर्म से पूजते हैं। **धम्मस्स कोविदा**, बड़ों की पूजा के काम में दक्ष = हुशियार। **दिट्ठेव धम्मे**, इसी जन्म में। **पासंसा**, प्रशंसा के अधिकारी। **सम्पराये च सुग्गति**, इस लोक को छोड़ कर जो गन्तव्य पर-लोक है, वहाँ भी उनकी सुगति ही होती है। सारांश यह है—कि हे भिक्षुओ! चाहे क्षत्रिय हों, चाहे ब्राह्मण; चाहे वैश्य हों, चाहे शूद्र; चाहे गृहस्थ हों, वा प्रव्रजित; चाहे तिर्यग् योनि के ही प्राणी हों—जो कोई भी प्राणी, अपने से बड़ों की पूजा करने के कर्म में दक्ष, हुशियार होते हैं, गुणसम्पन्नों की, वयो-वृद्धों की पूजा करते हैं, वे इस जन्म में 'बड़ों का आदर करने वाला है'—इस प्रकार की प्रशंसा, स्तुति को प्राप्त करते हैं, और शरीर-भेद होने पर स्वर्ग-लोक में उत्पन्न होते हैं।

इस प्रकार बुद्ध ने 'ज्येष्ठों के सत्कार' करने के कर्म की प्रशंसा कर, मेल मिला, जातक का सारांश निकाल दिखाया। उस समय का हस्ति-नाग (अब का) **मोग्गलान** (स्थविर) था। बानर सारिपुत्र था। तित्तिर-पण्डित तो मैं ही था।

३८. बक जातक

"नाच्चन्त निकतिप्पञ्ञो..." यह गाथा, शास्ता ने **जेतवन** में विहार करते समय चीवर बनाने (=बढ़ाने) वाले भिक्षु के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

एक **जेतवन**-वासी भिक्षु, चीवर सम्बन्धी काटना, रफ़ु करना, . . . बिठाना तथा सीना आदि जो जो कृत्य हैं, उन सब के करने में दक्ष था। अपने इस दक्ष-पन से वह चीवर बनाता था। इसलिए वह चीवर-वर्द्धक नाम से प्रसिद्ध हुआ। लेकिन यह क्या करता था ? पुराने चिथड़ों में, हुशियारी का हाथ लगा, उनके मृदु, सुन्दर चीवर बना, रँगने के बाद, उन्हें कफ दे (=आटे वाले पानी से रँग कर), शङ्ख से रगड़, उज्ज्वल, मनोज्ञ करके रखता था। जो चीवर बनाना नहीं जानते, वह भिक्षु नया कपड़ा लेकर, उसके पास आते और कहते—"हम चीवर बनाना नहीं जानते। हमें चीवर बना दें।" वह "आवुसो ! चीवर बना कर समाप्त करने में बहुत चिर लगता है। मेरे पास बना बनाया चीवर पड़ा है। इस कपड़े को रख कर (उस बने बनाये) चीवर को ले जाओ" (कह चीवर) लाकर दिखाता। वह उसके रंग की तड़क-भड़क देख, अन्दर के बारे में कुछ न जानते हुए, (कपड़ा) पक्का है, मान, वह चीवर ले, और चीवर-वर्द्धक को नया कपड़ा दे कर चले जाते। थोड़ा मैला होने पर, गरम पानी से धोया जाने पर, वह चीवर अपनी असलियत दिखा देता। जहाँ तहाँ पुराना-पन दिखाई देने लग जाता। वे (भिक्षु) पछताते थे। इस प्रकार आने वालों को पुराने चिथड़ों से ठगने के कारण, वह भिक्षु सर्वत्र प्रसिद्ध हो गया। जैसे यह **जेतवन** में वैसे ही एक गाँव में भी एक (और) चीवर-वर्द्धक भिक्षु संसार को ठगता था। उसे मिलने वाले भिक्षुओं ने कहा—"भन्ते ! जेतवन में एक चीवर-वर्द्धक भिक्षु इस प्रकार संसार को ठगता है।"

उस भिक्षु के मन में हुआ—"मैं उस जेतवन-वासी भिक्षु को ठगूँ।" सो वह चीथड़ों का अच्छा चीवर बना कर, सुन्दर रंग से रँग कर, उसे पहन जेतवन गया। दूसरे ने उसे देखते ही (चित्त में) लोभ उत्पन्न कर पूछा—"भन्ते ! क्या यह चीवर आपने बनाया है ?"

"आवुसो ! हाँ (मैंने बनाया है)।"

"भन्ते ! यह चीवर मुझे दे दें। आपको दूसरा मिलेगा।"

"आवुसो ! हम ग्रामवासी हैं। हमें प्रत्यय (=चीवर आदि आवश्यकतायें) आसानी से नहीं मिलते। मैं यह चीवर तुझे देकर, स्वयं क्या पहनूँगा ?"

"भन्ते ! मेरे पास नया वस्त्र है। उसे ले जाकर आप अपना चीवर बना लें।" "आवुसो ! मैंने इसमें हाथ की मेहनत (=काम) की है, लेकिन तुम्हारे ऐसा कहने पर, मैं क्या कर सकता हूँ ? ले लें।" (कह) वह चीथड़ों का चीवर उसे दे, (उससे) नया कपड़ा ले, उसे ठग चल दिया। जेतवनवासी (भिक्षु) को वह चीवर पहन, कुछ दिन के बाद गरम पानी से धोने से पता लगा कि वह चीथड़ों का चीवर है। उसे देख वह लज्जित हुआ कि ग्रामवासी चीवर-वाले ने जेतवनवासी चीवर-वाले को ठग लिया। उसका ठगा जाना (भिक्षु-)संघ में प्रगट हो गया।

एक दिन धर्म-सभा में बैठे भिक्षु, उस कथा को कह रहे थे। बुद्ध ने आकर पूछा—"भिक्षुओ ! अब बैठे क्या बातचीत कर रहे हो ?" उन्होंने वह बात कही।

बुद्ध ने "भिक्षुओ ! न केवल अभी जेतवनवासी चीवर वाला औरों को ठगता (रहा) है, पहले भी ठगता रहा है, और न केवल अभी ग्रामवासी (चीवर वाले) ने, इस जेतवनवासी चीवर वाले को ठगा है, पहले भी ठगा है" कह, पूर्व-जन्म की कथा आरम्भ की—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में बोधिसत्त्व, एक जंगल में एक कमल के तालाब के पास खड़े वृक्ष पर एक वृक्ष-देवता की योनि में उत्पन्न हुए। तब गर्मी के मौसम में एक दूसरे छोटे तालाब में पानी की कमी हो गई। इस तालाब में बहुत सी मछलियाँ रहती थीं। एक बगुला 'एक तरीक़े से इन मछलियों को ठग कर खाऊँगा' सोच, जाकर, पानी के किनारे, चिन्तित सा (मुँह बनाकर) बैठ गया। उसे देख मछलियों ने पूछा—"आर्य ! चिन्तित क्यों बैठे हो ?"

"बैठा, तुम्हारे लिए चिन्ता कर रहा हूँ।"

"आर्य ! हमारे लिए क्या चिन्ता कर रहे हो ?"

"इस तालाब में पानी नपा-तुला है, भोजन की कमी है, गरमी की अधिकता है; मैं बैठा तुम्हारे लिए सोच रहा हूँ कि अब यह मछलियाँ क्या करेंगी ?"

"तो आर्य ! (हम) क्या करें ?"

"यदि तुम मेरा कहना करो, तो मैं तुम्हें, एक एक करके, चोंच से पकड़, पंच-वर्ण के कमलों से आच्छन्न, एक महातालाब में ले जाकर छोड़ आऊँ।"

"आर्य ! प्रथम कल्प से लेकर (आज तक) मछलियों की चिन्ता (= हित) करने वाला (कोई) बगुला नहीं हुआ। क्या तू हमें एक एक करके खाना चाहता है ?"

"मैं अपने पर विश्वास करने वालों को—तुम्हें—नहीं खाऊँगा। लेकिन यदि मेरी तालाब के होने की बात पर विश्वास न हो, तो मेरे साथ एक मछली को (पहले) तालाब देखने के लिए भेजो।"

मछलियों ने उसकी बात पर विश्वास कर, यह जल और स्थल दोनों जगहों पर समर्थ है (सोच) एक काणी महामछली दी; और कहा इसे ले जाओ। उसने उसे ले जाकर, तालाब में छोड़ दिया; और सब तालाब को दिखा कर, फिर (वापिस) लाकर उन मछलियों के पास छोड़ दिया। उसने उन मछलियों से तालाब के सौन्दर्य (सम्पत्ति) की प्रशंसा की। उन्होंने उसकी बात सुन, जाने की इच्छुक हो, (बगुले से) कहा—"अच्छा ! आर्य ! हमें लेकर चलो।"

बगुला पहले उस काणे महामत्स्य को तालाब के किनारे ले जाकर, तालाब दिखा कर, तालाब के किनारे उत्पन्न वरुण-वृक्ष पर जा बैठा। फिर उस (मछली) को शाखाओं के बीच में डाल, चोंच से कोंच कोंच कर मारा, और मांस खा (मछली के) काँटों को वृक्ष की जड़ में डाल दिया। फिर जाकर 'उस मछली को मैं छोड़ आया। अब दूसरी आये' (कह), इस उपाय से एक एक को ले जा, सब को खाकर, आकर देखा तो वहाँ एक भी बाकी न थी।

केवल एक केकड़ा वहाँ बाकी रह गया था। बगुले ने उसे भी खाने की इच्छा से कहा—भो। कर्कटक। मैं उन सब मछलियों को ले जाकर महा-तालाब में छोड़ आया। आ, तुझे भी ले चलूँगा।"

"ले कर जाते हुए, मुझे कैसे पकड़ोगे ?"

"डस कर (=चोंच में पकड़ कर) लेकर जाऊँगा।"

"तू ! इस प्रकार ले जाते हुए, मुझे गिरा देगा। मैं तेरे साथ न जाऊँगा।"

"डर मत ! मैं तुझे अच्छी प्रकार पकड़ कर ले जाऊँगा।"

केकड़े ने सोचा—"इसने मछलियों को (तो) तालाब में ले जाकर नहीं छोड़ा है। यदि मुझे तालाब में ले जाकर छोड़ देगा, तो इस में इसकी कुशल है; यदि नहीं छोड़ेगा, तो इसकी गर्दन छेद कर, इसका प्राण हर लूँगा।"

सो उसने कहा—"सौम्य बगुले ! तू ठीक से न पकड़ सकेगा। लेकिन हमारा जो पकड़ना होता है, वह पक्का होता है। इसलिए यदि मुझे अपने डंक से तू अपनी गर्दन पकड़ने दे, तो तेरी गर्दन को अच्छी तरह पकड़े, मैं तेरे साथ चलूँगा।" उसने उसकी ठगने की इच्छा को, 'न जानते हुए' 'अच्छा' कह, स्वीकार किया। केकड़े ने अपने डंक से, लोहार की संडासी की तरह, उसकी गर्दन को अच्छी तरह पकड़ कर कहा—"अब चल।" वह उसे ले जाकर, तालाब दिखा कर वरुण-वृक्ष की ओर उड़ा।

केकड़े ने कहा—"मामा ! तालाब तो यहाँ है; लेकिन तू यहाँ से ले जा रहा है।" बगुले ने कहा—"मालूम होता है कि तू समझता है कि 'मैं प्यारा मामा और तू मेरी बहन का प्रिय-पुत्र है' कह उठाये फिरते हुए मैं तेरा दास हूँ। देख इस वरुण-रूख के नीचे पड़े (मछलियों के) काँटों के ढेर को। जैसे मैं इन सब मछलियों को खा गया; वैसे ही तुझे भी खाऊँगा।"

केकड़े ने उत्तर दिया—"यह मछलियाँ अपनी मूर्खता से तेरा आहार हुईं। मैं तुझे अपने को खाने न दूँगा। किन्तु तेरा ही विनाश करूँगा। तू अपनी मूर्खता के कारण नहीं जानता कि तू मुझसे ठगा गया। मरना होगा, तो दोनों मरेंगे। देख, मैं तेरे सिर को काट कर भूमि पर फेंक दूँगा।" (कह) उसने संडासी की तरह अपने डंक से उसकी गर्दन भींची। बगुले ने चौड़े मुँह, आँखों से आँसू गिराते हुए मरने से भयभीत हो, कहा—"स्वामी ! मुझे जीवन दे। मैं तुझे नहीं खाऊँगा।"

"यदि ऐसा है, तो उतर कर मुझे तालाब में छोड़।"

उसने रुक कर, तालाब पर ही उतर, केकड़े को तालाब के किनारे कीचड़ पर रक्खा। केकड़ा कैंची से कुमुद की डंठल काटने की तरह, उसकी गर्दन काट कर पानी में घुस गया। वरुण-वृक्ष के देवता ने उस आश्चर्य्य को देख, साधुकार देते हुए, (तथा) वन को उन्नादित करते हुए, मधुर स्वर से यह गाथा कही—

नाच्चन्त निकतिप्पञ्ञो निकत्या सुखमेधति,
आराधेति निकतिप्पञ्ञो बको कक्कटकामिव ॥

धूर्त-बुद्धि (आदमी) अपनी अधिक धूर्तता से सदैव सुख नहीं पा सकता। धूर्त-बुद्धि (अपने किये का फल) भोगता है, जैसे बगुले ने केकड़े (के द्वारा)।

नाच्चन्त निकतिप्पञ्ञो निकत्या सुखमेधति, **निकति** कहते हैं ठगी को। निकतिप्पञ्ञो, ठगने वाला आदमी (=धूर्त) उस धूर्तता से (=उस ठगी से); **न अच्चन्तं सुखमेधति,** सदैव सुख में प्रतिष्ठित नहीं रह सकता, अवश्य ही विनाश को प्राप्त होता है। **आराधेति**=प्राप्त करता है। **निकतिप्पञ्ञो,** धूर्तता सीखा हुआ आदमी=पापी आदमी, अपने किये पाप-कर्म का फल पाता है, भोगता है। कैसे ? **बको कक्कटकामिव,** जैसे बगुले ने केकड़े से गर्दन छिदवाई; इसी प्रकार पापी पुरुष इस जन्म में, वा अगले जन्म में, अपने किये पाप के फलस्वरूप, भय का भागी होता है। इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए, महासत्त्व ने वन को उन्नादित करते हुए धर्मोपदेश किया।

शास्ता, 'भिक्षुओ ! न केवल अभी ग्रामवासी चीवर-वाले (भिक्षु) ने इसे ठगा, पूर्व जन्म में भी ठगा है' कह, इस धर्म-देशना को ला, मेल मिला, जातक का सारांश निकाल दिखाया। उस समय का वह बगुला (अब का) **जेतवन** वासी चीवर-वाला हुआ। केकड़ा (अब का) ग्रामवासी चीवर-वाला। वृक्ष-देवता तो मैं ही था।

३९. नन्द जातक

"मञ्ञे सोवण्णयो रासि...."यह गाथा, शास्ता ने **जेतवन** में विहार करते समय, **सारिपुत्र** स्थविर के शिष्य के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

वह भिक्षु सुभाषी था, बात सह लेने वाला था, और बड़े उत्साह से स्थविर की सेवा करता था। एक समय (सारिपुत्र) स्थविर, शास्ता की आज्ञा ले,

चारिका करते हुए, **दक्षिणागिरि**[1] जनपद पहुँचे। वहाँ पहुँच कर वह भिक्षु अभिमानी हो गया। स्थविर का कहना नहीं मानता था। 'आवुस ! यह कर' कहने पर स्थविर का विरोधी हो जाता था। स्थविर उसका आशय (=चित्त की बात) न समझते (=जानते)। वह, वहाँ चारिका कर, फिर (वापिस) जेतवन लौट आये। स्थविर के जेतवन-विहार पहुँचने के समय से वह भिक्षु फिर पूर्ववत् हो गया। स्थविर ने शास्ता से निवेदन किया—"भन्ते ! मेरा एक शिष्य एक स्थान पर (रहते समय) सौ (मुद्रा) के खरीदे हुए गुलाम की तरह रहता है, दूसरे स्थान पर (रहते हुए) अभिमानी हो, 'यह कर' कहने पर विरोधी हो जाता है।" शास्ता ने कहा—"सारिपुत्र ! इस भिक्षु का यह स्वभाव अब ही नहीं है, यह पहले भी एक स्थान पर तो सौ (मुद्रा) से खरीदे गुलाम की तरह रहता था; एक स्थान पर प्रतिपक्षी, (प्रति-)शत्रु हो जाता था।" यह कह स्थविर के याचना करने पर पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में बाराणसी में (राजा) ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय, बोधिसत्त्व ने एक कुटुम्ब में जन्म लिया। एक गृहस्थ उसका मित्र था। गृहस्थ अपने बूढ़ा था, लेकिन उसकी स्त्री तरुण थी। उसको स्त्री से एक पुत्र पैदा हुआ। उसने सोचा—(कदाचित्) यह तरुण स्त्री, मेरी मृत्यु के बाद किसी दूसरे पुरुष को लेकर, इस धन को नष्ट कर दे। मेरे पुत्र को न दे। सो, मैं इस धन को पृथ्वी में गाड़ दूँ।" (यह सोच) घर के नन्द नामक नौकर को ले, जंगल में जा, एक स्थान पर धन को गाड़, उसको बता कर कहा—"तात ! नन्द ! मेरे मरने पर, मेरे पुत्र को यह धन बता देना। उसकी ओर से लापरवाह न होना।" (इस प्रकार) उपदेश दे कर मर गया।

क्रम से उसका पुत्र बड़ा हो गया। माता ने कहा—"तात ! तेरे पिता ने नन्द को ले जाकर, धन गाड़ा था। सो, उसे मँगवाकर कुटुम्ब को पाल !" उसने एक दिन नन्द से पूछा—"मामा ! क्या मेरे पिता ने कहीं कुछ धन गाड़ा है ?"

[1] राजगृह के आस-पास।

"स्वामी ! हाँ ।"

"वह कहाँ गड़ा है ?"

"स्वामी ! जंगल में ।"

"तो चलें" कह, कुदाल टोकरी ले, जहाँ धन गड़ा था, वहाँ पहुँच कर पूछा—"मामा ! धन कहाँ है ?"

नन्द ने धन के ऊपर जा कर, उस पर खड़े हो, धन के कारण अभिमानी हो कुमार को गाली दी—अरे ! दासी पुत्र ! चेटक ! यहाँ तेरा धन कहाँ से आया ?"

कुमार ने उसके कठोर वचन को सुन कर, अनसुने की तरह कहा—"तो चलें ।"

उसको साथ ले, लौट कर, फिर दो तीन दिन गुजरने पर गया। नन्द ने वैसे ही गाली दी ।

कुमार ने उसके साथ कठोर बात न बोल लौट कर सोचा—"यह दास, 'इस बार धन बता दूंगा' कह कर जाता है। लेकिन (वहाँ) जाकर गाली देता है। न मालूम, इसका क्या कारण है ? मेरे पिता का एक कुटुम्बिक मित्र है। उसे पूछ कर, (इसका कारण) मालूम करूँगा।" (यह सोच) बोधिसत्त्व के पास जा, सब हाल कह, पूछा—"तात ! क्या कारण है ?"

बोधिसत्त्व ने, 'तात ! जिस स्थान पर खड़ा हो कर नन्द गाली बकता है, उसी स्थान पर तेरे पिता का धन है। इस लिए जब नन्द तुझे गाली दे, तो 'आ रे ! दास ! क्या गाली बकता है' कह, उसे खेंच, कुदाली ले, उस स्थान को खोद, कुल से प्राप्त धन को निकाल, दास से उठवा कर, "(घर) ले जा" कह, यह गाथा कही—

मञ्ञे सोवण्णयो रासि सोवण्णमाला च नन्दको ,
यत्थ दासो आमजातो ठितो थुल्लानि गज्जति ॥

[जहाँ पर आम दासी-पुत्र नन्दक खड़ा हो कर कठोर शब्दों की गर्जना करता है, मैं समझता हूँ (वहीं) स्वर्णमय (आभरणों) का ढेर है, वहीं सोने की माला (है) ।]

मञ्ञे, ऐसा मैं मानता हूँ । **सोवण्णयो,** सुन्दर वर्ण होने से सोवण्ण (वस्तुयें) । वह कौन कौन सी ? चाँदी, मणि, सोना, मूँगा आदि रत्न । इस

स्थान में 'सोवण्ण' से इन सब का मतलब है। उनका ढेर, सोवण्ण का ढेर। **सोवण्णमालाच**, तेरे पिता के पास, जो सुवर्ण माला थी, वह भी मैं मानता हूँ कि यहीं है। **नन्दको यत्थ दासो** जिस स्थान पर दास नन्दक खड़ा है; **आम-जातो**, हाँ (=आम) में दासी हूँ, इस प्रकार दासत्व के भाव को प्रगट करने वाली दासी का पुत्र। **ठितो थुल्लानि गज्जति**, वह जिस स्थान पर खड़ा हो कर स्थूल (वचन)=कठोर वचन बोलता है, वहीं, मैं समझता हूँ कि तेरा कुल-धन है।

बोधिसत्त्व ने कुमार को धन लाने का उपाय बताया। कुमार बोधिसत्त्व को प्रणाम कर, घर गये; और फिर नन्द को ले, धन के गड़े होने की जगह गये। और जैसे कहा था, वैसे ही किया। फिर उस धन को ला, कुटुम्ब को पाला। वह बोधिसत्त्व के उपदेशानुसार दान आदि पुण्य कर्म करके, जीवन की समाप्ति पर, यथाकर्म (परलोक) सिधारा।

बुद्ध ने, 'पहले भी इस (भिक्षु) का यही स्वभाव था' कह, यह धर्मदेशना ला, मेल मिला, जातक का सारांश निकाल दिखाया। उस समय का **नन्द** (अब का) **सारिपुत्र** का शिष्य था। लेकिन पण्डित-कुटुम्बिक तो मैं ही था।

४०. खदिरंगार जातक

"**कामं पतामि निरयं....**" यह गाथा शास्ता ने **जेतवन** में विहार करते समय, **अनाथपिण्डक** के सम्बन्ध में कही।

क. वर्तमान कथा

अनाथपिण्डक ने केवल विहार बनवाने के लिए ही चौवन करोड़ धन, बुद्धशासन के निमित्त त्याग दिया=बिखेर दिया। वह तीन रत्नों (=बुद्ध,

धर्म, संघ) को रत्न समझ, और किसी (रत्न) को रत्न ही न समझ, शास्ता के जेतवन में विहार करने के समय, प्रति दिन तीन बार दर्शनार्थ जाता था। एक बार प्रातःकाल ही जाता, दूसरी बार जल-पान करके जाता, तीसरी बार शाम को जाता। और भी बीच बीच में जाता ही था। जाते समय 'सामणेर'[1] वा अन्य बच्चे मेरे हाथ की ओर देखेंगे कि क्या ले कर आया है' सोच, वह कभी खाली हाथ नहीं गया। प्रातःकाल जाते समय यवागु लिवा कर जाता, जलपान करके जाते समय घी, मक्खन, मधु, गुड़ आदि और शाम को जाते समय गन्ध, माला, वस्त्र आदि ले कर जाता। इस प्रकार प्रति दिन परित्याग करते करते इसने कितना परित्याग किया, इसका (कोई) माप नहीं। बहुत से व्यापारियों ने भी, हाथ की लिखित देकर, इससे अट्ठारह करोड़ धन ऋण लिया था। महा-सेट्ठी उनसे वह धन नहीं मँगवाता था। और भी, इसका कुलायत अट्ठारह करोड़ धन नदी के किनारे गाड़ा हुआ था। जल-वायु से नदी के कूल के टूटने से वह समुद्र में बह गया। वहाँ वे लोहे की गागरें, जैसी की तैसी मुहर लगी हुई, समुद्र में बहती घूमती थीं। और, इस के घर में पाँच सौ भिक्षुओं को नित्यभात बँधा ही था। सेठ का घर भिक्षुसंघ के लिए चौरस्ते पर खोदी गई पुष्करिणी की तरह था। वह सब भिक्षुओं के लिए माता-पिता तुल्य था। सो, उसके घर, सम्यक् सम्बुद्ध भी जाते, अस्सी महास्थविर भी जाते, शेष जाने वाले भिक्षुओं की तो गणना ही न थी। वह घर सात तल्लों का और सात ड्योढ़ियों वाला था। उसकी चौथी ड्योढ़ी में एक मिथ्या-धारणा वाली देवी रहती थी। सम्यक् सम्बुद्ध के घर में प्रवेश करते समय वह अपने कोठे(=विमान)पर बैठी न रह सकती थी। बच्चों को साथ ले उतर कर, वह जमीन पर खड़ी होती। अस्सी महास्थविर तथा अन्य स्थविरों के भी प्रविष्ट होते, तथा निकलते समय उसे वैसा ही करना पड़ता। उसने सोचा: जब तक श्रमण गौतम, अथवा उसके श्रावक इस घर में आते-जाते रहेंगे, तब तक मुझे सुख नहीं। मैं नित्य-प्रति उतर उतर कर जमीन पर नहीं खड़ी हो सकती, सो मुझे ऐसा (प्रबन्ध) करना चाहिए, जिसमें ये (लोग) इस घर में प्रवेश न करें।

[1] भिक्षु बनने से पूर्व "ब्रह्मचारी" की अवस्था।

सो एक दिन वह लेटे हुए महाकर्मचारी के पास जाकर, (अपना) प्रकाश फैला कर खड़ी हो गई। "यहाँ कौन है ?" पूछने पर उत्तर दिया, "मैं चौथी ड्योढ़ी में रहने वाली देवी हूँ।"

"किस लिए आई है ?"

"क्या तुम सेठ की करनी को नहीं देखते ? वह अपने भविष्य का कुछ भी ख्याल न कर, धन ले जाकर, केवल श्रमण गौतम की पूजा करता है। धन को न व्यापार में लगाता है, न कर्मान्त (=खेती) में। तुम सेठ को उपदेश करो, जिसमें वह अपने काम में लगे; जिससे श्रावकों सहित श्रमण गौतम, इस घर में प्रवेश न किया करें।"

उस (=महाकर्मचारी) ने उसे उत्तर दिया—"मूर्ख देवी ! सेठ जो धन खर्च करता है, वह कल्याणकारी बुद्ध-शासन के लिए खर्च करता है। यदि वह (मेरी) चोटी पकड़ कर मुझे बेच भी देगा, तो भी मैं कुछ न कहूँगा। तू जा।"

इसी तरह, एक दिन, उसने सेट के पुत्र को जाकर उपदेश दिया। सेठ के पुत्र ने भी उसे पूर्वोक्त प्रकार से झाड़ बताई। सेठ को तो वह जाकर, कुछ कह ही न सकती थी।

सेठ के निरन्तर दान देते रहने से, व्यापार न करने के कारण आमदनी कम हो जाने से, धन में बहुत न्यूनता आ गई। (और) ऐसे ही क्रम से होते रहने से, उसके दरिद्र हो जाने पर, उसके पहनने के वस्त्र, बिस्तर, भोजन आदि भी पूर्व-सदृश न रहे। ऐसा होने पर भी, वह भिक्षुसंघ को दान देता, लेकिन हां, अब प्रणीत (आहार) न दे सकता। एक दिन वन्दना करके बैठे उसे, शास्ता ने पूछा—"गृहपति ! तुम्हारे घर से दान दिया जाता है ?"

"भन्ते ! दिया जाता है, लेकिन वह होता है (केवल) कणी का चावल और मट्ठा ?"

गृहपति ! 'मैं रूखा-सूख दान दे रहा हूँ' सोच संकुचित न हो, प्रसन्न (=पवित्र) चित्त से बुद्धों, प्रत्येक-बुद्धों तथा बुद्ध-श्रावकों को दिया हुआ दान रूखा-सूखा दान नहीं होता, क्यों ? (उसका) बड़ा फल होने से। चित्त प्रसन्न (=पवित्र) रख सकने वाले का दान 'रूखा-सूखा-दान' नहीं होता—यह इस प्रकार जानना चाहिए—

नत्थि चित्ते पसन्नम्हि अप्पिका नाम दक्खिणा,
तथागते वा सम्बुद्धे अथवा तस्स सावके॥
न किरत्थि अनोमदस्सिसु पारिचरिया बुद्धेसु अप्पिका,
सुक्खाय अलोणिकाय च पस्स फलं कुम्मासपिण्डिया॥

[चित्त प्रसन्न हो, तो तथागत=सम्बुद्ध अथवा उसके श्रावक को दी गई दक्षिणा 'थोड़ी' नहीं होती। और न ही अनोमदर्शी आदि बुद्धों की की हुई सेवा (=पारिचरिया) "थोड़ी" होती है। सूखे, अलूणे, कुल्माश-पिण्ड के (ही दान के) फल को देख।]

उसे और भी कहा कि हे गृहपति! तू अपना 'रूखा-सूखा' दान देता हुआ ही आठ आर्य-पुद्गलों को दे रहा है; लेकिन वेलाम (ब्राह्मण) के जन्म में उत्पन्न होने के समय, सारे जम्बुद्वीप के हलों को रुकवा कर सात रत्न देते हुए, पाँच महा नदियों को एक साथ, एक प्रवाह करने की तरह (चित्त को प्रसन्नता से भर कर) महादान देने के समय, कोई त्रिशरण-गत वा पञ्च-शील रक्षक (=सदाचारी) न मिला। इस प्रकार दान का अधिकारी पुद्गल मिलना भी दुर्लभ है। सो "मेरा दान रूखा-सूखा है" समझ, तू संकुचित मत हो। यह कह **वेलामसूत्र**[1] कहा।

सो वह देवी (यद्यपि) पहले, सेठ के साथ बात भी न कर सकती थी, (तो भी) अब सेठ के दुर्गति-प्राप्त होने से, '(शायद) वह मेरी बात मान ले' सोच, आधी रात के समय, (सेठ के) शयनागार में प्रविष्ट हो, (अपना) प्रकाश फैला आकाश में खड़ी हुई।

सेठ ने उसे देख कर पूछा—"यह कौन है ?"

"सेठ ! मैं चौथी ड्योढ़ी में रहने वाली देवी।"

"किस लिए आई है ?"

"तुझे नेक-सलाह देने की इच्छा से।"

"अच्छा ! तो कह।"

"बड़े सेठ ! तू भविष्य की चिन्ता नहीं करता। बेटे-बेटी की ओर नहीं

[1] यह सूत्र त्रिपिटक में नहीं मिला।

देखता। तूने श्रमण गौतम के शासन के लिए बहुत धन खर्च कर दिया। सो, तू चिरकाल तक धन खर्च करते रहने से तथा (खेती आदि) नवीन कर्मान्तों के न करने से, श्रमण गौतम के कारण निर्धन हो गया। ऐसा होने पर भी तू श्रमण गौतम (का पीछा) नहीं छोड़ता। आज भी श्रमण तेरे घर में आते ही हैं। जो कुछ वह ले गये, सो अब वापिस नहीं मँगवाया जा सकता; वह ले जायें। लेकिन अब से, तू श्रमण गौतम के पास जाना, और उसके श्रावकों को इस घर में आने देना—बन्द कर दे। (चलते चलते जरा) रुक कर भी, श्रमण गौतम को बिना देखे, (अपने) व्यापार और वाणिज्य को करते हुए, (अपने) कुटुम्ब को पाल।"

उसने उसे पूछा—"जो नेक-सलाह तू मुझे देना चाहती है, वह यही है ?"

"हाँ! यही है।"

"तुझ जैसे (=वैसे) सौ, हज़ार (और) लाख देवताओं (के उपदेश) से भी मैं हिलने वाला नहीं। दस-बल (-धारी) के प्रति मेरी श्रद्धा सुमेरु पर्वत की तरह अचल (है), सुप्रतिष्ठित (है)। मैंने कल्याण-कारी (त्रि-) रत्न-शासन के लिए जो धन खर्च किया है, उसे तूने 'अनुचित' कहा। तूने बुद्ध-शासन को दोष दिया। इस प्रकार की अनाचारिणी, दुश्शीला और मनहूस के साथ मैं एक घर में नहीं रह सकता। निकल, मेरे घर से, शीघ्र निकल और (किसी) दूसरी जगह जा।"

श्रोतापन्न, आर्य-श्रावक (अनाथपिण्डिक) की बात सुन कर, न ठहर सकने के कारण, वह अपने निवास-स्थान पर गई और बच्चों को हाथ से पकड़े हुए, (वहाँ से) निकल आई। (लेकिन) निकल कर, अन्य निवास-स्थान न मिलने के कारण, 'सेठ से क्षमा माँग, वहीं रहूँगी' सोच, नगर-रक्षक देवपुत्र के पास जा, उसे प्रणाम कर, खड़ी हुई।

'किस लिए आई ?' पूछने पर, वह बोली—स्वामी! मैंने बिना सोचे समझे, सेठ को (कुछ) कह दिया। उसने क्रुद्ध हो, मुझे निवास-स्थान से निकाल दिया। सेठ के पास ले जा, उससे क्षमा दिलवा मुझे रहने के लिए स्थान दिलवाइए (=दीजिए)।

"तूने सेठ को क्या कहा ?"

स्वामी! मैंने सेठ को कहा कि अब से बुद्ध-उपस्थान (=सेवा), संघ-

उपस्थान मत करो। श्रमण गौतम को घर में मत आने दो।"

"तूने अनुचित कहा। (बुद्ध-)शासन की निन्दा की। मैं तुझे ले कर सेठ के पास जाने की हिम्मत नहीं कर सकता।"

वह, उससे कुछ सहायता न पा, चारों महाराजाओं के पास गई। उनसे भी वैसा ही इनकार मिलने पर शक्र देवेन्द्र के पास जा, वह हाल कह, बड़ी नम्रता से याचना करने लगी—"हे देव! निवास-स्थान न मिलने से, मैं बच्चों को हाथ से पकड़े पकड़े, अशरणा हो घूमती हूँ। अपनी कृपा से, मुझे निवास-स्थान दिलवाइए।"

उसने भी कहा—तूने अनुचित किया जो बुद्ध-शासन की निन्दा की! मैं भी तेरे पक्ष में सेठ के साथ बातचीत तो नहीं कर सकता; लेकिन एक ऐसा उपाय बताता हूँ कि जिससे सेठ क्षमा कर दे।

"अच्छा! देव! कहें।"

"मनुष्यों ने तमस्सुक दे कर सेठ के हाथ से अट्ठारह करोड़ (की) संख्या में धन लिया है। तू सेठ के मुनीम (=आयुत्तक) का भेष बना, किसी को बिना जनाये, उन लेखों को ले, कुछ यक्षतरुणों के साथ, एक हाथ में लेख और एक हाथ में क़लम ले कर, उन (आदमियों) के घर जा; और घर के बीच में खड़े हो, अपने यक्ष-बल (=आनुभाव) से उन्हें डरा, 'यह तुम्हारे लेख हैं। हमारे सेठ ने अपने ऐश्वर्य के समय में तुम्हें कुछ नहीं कहा, लेकिन अब वह निर्धन (=दुर्गति-प्राप्त) हो गया है। तुमने जो कार्षापण लिए हैं सो दो' (कह) अपनी यक्ष-पन की सामर्थ्य दिखा कर, वह सब अट्ठारह करोड़ सोना वसूल (=साध) कर सेठ के ख़ाली कोठे को भर। दूसरे **अचिरवती**[1] नदी के किनारे गड़ा धन, नदी-कूल के टूट जाने से समुद्र में बह गया है, उसे भी अपने सामर्थ्य से लाकर, ख़ाली कोठे भर। और भी, अमुक स्थान पर बिना मलकीयत का अट्ठारह ही करोड़ धन है, उसे भी ला कर ख़ाली कोठे भर। इस चौवन करोड़ धन से इन ख़ाली कोठों को भरने से दण्ड-कर्म करके, महासेठ से क्षमा माँगना।"

---

[1] **रापती।**

वह 'देव ! अच्छा' कह, उसके कथन को स्वीकार कर, तदनुसार सब धन लाकर, आधी रात के समय, सेठ के शयनागार में प्रविष्ट हो, (अपना) प्रकाश फैला, आकाश में खड़ी हुई ।

"यह कौन है ?" पूछने पर बोली—"सेठ जी ! मैं तेरी चौथी ड्योढ़ी में रहने वाली अंधी-मूर्ख देवी हूँ । मैंने अपनी महामोह (भरी) मूढ़ता के कारण, बुद्ध-गुणों को न जानकर, पिछले दिनों में आपसे (जो) कुछ कहा, मेरे उस दोष को क्षमा करें । मैंने देवेन्द्र शक्र के कथनानुसार आपका ऋण वसूल (=साध) कर अट्ठारह करोड़; समुद्र में बहा हुआ अट्ठारह करोड़, जिस किसी स्थान में बिना मलकीयत का अट्ठारह करोड़;—इस प्रकार चौवन करोड़ लाकर, खाली कोठों को भरने से, दण्ड चुका दिया; जेतवन विहार के (निर्माण) में जितना धन खर्च हुआ, उतना एकत्र कर दिया । निवास-स्थान न मिलने से मैं कष्ट पा रही हूँ । सेठ जी ! मैंने अज्ञान से जो (भूल) कर दी, उसे क्षमा करें ।"

अनाथपिण्डिक ने, उसकी बात सुन, यह कहती है—'मैंने दण्ड भुगत लिया, और अपने दोष को स्वीकार करती हूँ' सोच विचार किया कि इसे सम्यक् सम्बुद्ध के पास ले चलना चाहिए; इसका ख्याल कर तथागत अपने गुणों को जनायेंगे । सो उसे कहा, "अम्म ! देवी ! यदि तू मुझ से क्षमा प्रार्थना करना चाहती है, तो शास्ता के सम्मुख क्षमा-प्रार्थना करना ।"

"अच्छा ! ऐसा करूँगी; लेकिन मुझे शास्ता के पास ले चलना ।" उसने 'अच्छा' कह, रात्रि समाप्त होने पर प्रातःकाल ही उसे ले, शास्ता के पास जा, शास्ता को उसका सब किया-कराया कह सुनाया । शास्ता ने, "हे गृहपति ! जब तक पाप-कर्म करने वाले का पाप पकता नहीं है, तब तक वह सुख भोगता है, लेकिन जब उसका पाप-कर्म पकता है (=फल देता है), तब से वह दुःख ही दुःख भोगता है । (इसी प्रकार) जब तक पुण्य-कर्म (=भद्र) करने वाले का पुण्य पकता नहीं, तब तक वह दुःख भोगता है, लेकिन जब उसका पुण्य-कर्म पकता है, तब से वह सुख ही सुख भोगता है" कह, धम्मपद की इन दो गाथाओं को कहा—

पापोपि पस्सति भद्रं याव पापं न पच्चति,
यदा च पच्चति पापं अथ पापो पापानि पस्सति ॥

भद्रोपि पस्सति पापं याव भद्रं न पच्चति,
यदा च पच्चति भद्रं अथ भद्रो भद्रानि पस्सति ॥

इन गाथाओं के (कहे जाने के) अन्त में, वह देवी **स्रोतापत्ति-फल** में प्रतिष्ठित हुई। उसने शास्ता के चक्राङ्कित चरणों में गिर कर कहा—"भन्ते ! मैंने राग में अनुरक्त हो, दोष (=क्रोध) से दूषित हो, मोह से मूढ़ हो, अविद्या से अंधी हो, आपके गुणों को न जानने के कारण अप-शब्दों का प्रयोग किया, सो वह मुझे क्षमा करें।" शास्ता से क्षमा माँग, उसने सेठ से क्षमा माँगी।

उस समय **अनाथपिण्डिक** ने शास्ता के सम्मुख अपना गुण वर्णन किया—"भन्ते ! यह देवी 'बुद्ध-सेवा आदि मत कर' (कह) मना करने पर भी, मुझे रोक नहीं सकी, 'दान नहीं देना चाहिए' कह रोकने पर भी, मैंने दान दिया ही। भन्ते ! क्या यह मेरा गुण नहीं ?"

शास्ता ने, "हे गृहपति ! तू स्रोतापन्न (है), आर्य-श्रावक (है), अचल श्रद्धा वाला (है), विशुद्ध-दृष्टि (=विचार) है; यदि यह अल्प-शाक्य देवी तुझे (दान देने से) रोकने पर भी, नहीं रोक सकी, तो यह आश्चर्य्य (की बात) नहीं। आश्चर्य्य तो यह है कि बुद्ध के अनुत्पन्न हुए रहने पर (भी), (उनके) ज्ञान के अपरिपक्व रहने पर भी, पूर्व समय में पण्डितों ने, कामावचर-लोक के स्वामी मार (=शैतान) के आकाश में खड़े हो कर 'यदि दान दोगे, तो इस नरक में पकोगे' (कहते हुए) अस्सी हाथ गहरा अङ्गारों का ढेर दिखाकर 'दान मत दो' मना करने पर भी, पद्म की कलि के बीच में खड़े हो कर दान दिया।" यह कह, **अनाथपिण्डिक** के याचना करने पर पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में **बाराणसी** में (राजा) **ब्रह्मदत्त** के राज्य करने के समय, बोधिसत्त्व बाराणसी सेठ के घर में उत्पन्न हो, नाना प्रकार की सुख-सामग्री (=भोगों) में देव-कुमार की तरह परवरिश पा, क्रम से ज्ञान प्राप्त कर, सोलह वर्ष की ही आयु में सब शिल्पों में दक्ष हो गये। वे, पिता के मरने पर,

सेठ का स्थान ग्रहण कर, नगर के चार द्वारों पर चार दान-शालायें, नगर के बीच में एक, अपने निवासस्थान के द्वार पर एक—छः दान-शालायें बनवा कर महा-दान देते, सदाचार की रक्षा करते तथा व्रत (=उपोसथ कर्म) रखते थे। सो एक दिन, प्रातःकाल का जल-पान करने के समय, बोधिसत्त्व के लिए नाना प्रकार के अग्र रसों से युक्त, मनोज्ञ भोजन लाये जाने पर, एक सप्ताह के बाद ध्यान से उठ कर, एक प्रत्येक-बुद्ध, भिक्षा माँगने के समय का ख्याल कर, 'आज मुझे (भिक्षा के लिए) बाराणसी सेट के गृह-द्वार पर जाना चाहिए' (सोच), नाग-लता की दातुन कर, अनोतप्त-दह (झील) पर मुँह धो, मनोशिला तल पर खड़े हो (चीवर) पहन, काय-बन्धन (=पट्टी) बाँध, चीवर धारण कर, ऋद्धिमय-मिट्टी का बर्तन (=पात्र) ले, आकाश से आकर, बोधिसत्त्व का भोजन लाये जाने के ठीक समय, (उसके) गृहद्वार पर आकर खड़े हुए।

बोधिसत्त्व ने उसे देखते ही, आसन से उठ, सत्कार कर सेवक की ओर देखा। (उसको) "स्वामी क्या करूँ?" पूछने पर कहा—"आर्य्य का पात्र लाओ।" उसी क्षण पापी मार ने थर्राते हुए उठ कर 'इस प्रत्येक-बुद्ध को आज से सात दिन पहले आहार मिला है, आज न मिलने पर, इसका विनाश हो जायगा सो, मैं इसका विनाश करूँगा और सेठ के दान देने में रुकावट डालूँगा' (सोच), उसी क्षण आकर देहली के बीच में अस्सी हाथ गहरा अङ्गारों से भरा गढ़ा बनाया। वह खदिर अङ्गारों से परिपूर्ण, प्रज्वलित, ज्योतिमान् गढ़ा, अवीची महा-नरक सदृश प्रतीत होता था। उसे बना कर, अपने आप आकाश में ठहरा। पात्र लेने के लिए जाने वाला आदमी उसे देखते ही भय-भीत हो कर लौटा। बोधिसत्त्व ने पूछा—"तात! लौट क्यों आया?"

"स्वामी! आङ्गन (देहली) में जलते हुए, दहकते हुए अङ्गारों का बड़ा भारी गढ़ा है।" दूसरा, तदनन्तर तीसरा—इस प्रकार जितने आये, सभी भयभीत होकर भाग गये।

बोधिसत्त्व ने सोचा—"आज वशवर्ती मार मेरे दान में रुकावट डालने के लिए उद्यत हुआ होगा। यह नहीं जानता कि मुझे सौ मार, हज़ार मार भी (मिलकर) नहीं हिला सकते। आज मालूम करूँगा कि मार में और मुझ में—हम दोनों में—कौन अधिक शक्तिशाली है, कौन अधिक प्रतापवान् है?।" सो उसने जैसी की तैसी परोसी हुई थाली को अपने (सिर पर) ले, घर से निकल,

अङ्गारों के गढ़े के किनारे पर खड़े हो, आकाश की ओर देखते हुए, मार को देख कर पूछा—"तू कौन है ?"

"मैं मार हूँ।"

"यह अङ्गारों का गढ़ा तूने बनाया है ?"

"हाँ, मैंने।"

"किस लिए ?"

"तेरे दान देने में रुकावट डालने के लिए, तथा प्रत्येक-बुद्ध का जीवन विनाश करने के लिए।"

बोधिसत्त्व ने, "न तो मैं तुझे अपने दान में रुकावट डालने दूंगा, और न मैं तुझे प्रत्येक-बुद्ध का जीवन विनाश करने दूंगा। मुझ में और तुझ में—दोनों में—कौन अधिक शक्तिशाली है, इसकी आज परीक्षा करूँगा" (कह) अङ्गारों के ढेर के किनारे खड़े हो, "भन्ते प्रत्येक-वर-बुद्ध ! मैं इस अङ्गारों के गढ़े में मुँह के बल (=सिर नीचे) गिरने पर भी, नहीं रुकूँगा, आप केवल मेरे दिये हुए भोजन को स्वीकार करें।" (कह) यह गाथा कही—

कामं पतामि निरयं उद्धपादो अवंसिरो,
नानरियं करिस्सामि हन्द पिण्डं पटिग्गह ॥

[भले ही मैं, सिर नीचे, पैर ऊपर (होकर) इस नरक में क्यों न गिरूँ; लेकिन मैं अनार्य (कर्म) न करूँगा। हन्त ! आप मेरे पिण्ड-पात (=भिक्षान्न) को स्वीकार करें।]

गाथा का सारांश यह है—भन्ते प्रत्येक-वर-बुद्ध ! यदि मैं तुम्हें पिण्ड-पात (=भिक्षा) देते हुए, निश्चित रूप से भी इस नरक में पैर-ऊपर सिर नीचे (=**निरयं उद्धपादो अवंसिरो**) होकर गिरूँ (=**पतामि**); तो भी यह जो अदान है, अशील है, आर्यों (=श्रेष्ठ) का अकृत्य तथा अनार्यों का कृत्य होने से, अनार्य कहलाता (=वुच्चति) है, उस अनार्य (-कर्म) को नहीं करूँगा (= **न तं अनरियंकरिस्सामि**) हन्त (=हन्द) ! इस मेरी दी भिक्षा को ग्रहण करें (=**पिण्डं पटिग्गह**)। हन्त (=हन्द) केवल निपात है।

यह कह दृढ़-निश्चय पूर्वक बोधिसत्त्व, भोजन की थाली को ले, अङ्गारों के गढ़े के ऊपर से चले। उसी समय, अङ्गारों के अस्सी हाथ गहरे गढ़े के तल के ऊपर ही ऊपर, (छ पद्मों के अतिरिक्त) एक सातवें महापद्म ने उत्पन्न होकर, बोधिसत्त्व के पैरों को स्पर्श किया। फिर एक महा-तूम्बा भर रेणु उठी। और उसने महासत्व के सिर पर से गिर कर, उसके सारे शरीर को स्वर्ण-चूर्ण से आकीर्ण की तरह कर दिया। उसने पद्म की कली में खड़े होकर नाना (प्रकार के) अग्र रसों (से युक्त) भोजन. प्रत्येक-बुद्ध के पात्र में रक्खा। प्रत्येक-बुद्ध, उसे स्वीकार कर, (दान-) अनुमोदन कर, पात्र को आकाश में फेंक, जन (-समूह) के देखते ही देखते, अपने आप भी ऊपर जाकर, नाना प्रकार की बादलों की पंक्तियों को मर्दित करते हुए से, हिमवन्त को चले गये। मार भी पराजित हो, दुःखित-चित्त अपने निवास-स्थान को चला गया। बोधिसत्त्व पद्म की कली में खड़े ही खड़े, जन(-समूह) को दान-शील आदि की बड़ाई करके, धर्मोपदेश दे, जनसमूह के साथ ही, अपने निवास-स्थान में प्रविष्ट हो जीवित रहते, दानादि पुण्य-कर्म करते हुए, कर्मानुसार (परलोक) गए।

बुद्ध ने, 'गृहपति ! यह आश्चर्य (की बात) नहीं कि तू दृष्टि (=विचार) सम्पन्न होकर, उस देवी (के उपदेश) से चञ्चल (=कम्पित) नहीं हुआ, पूर्व पण्डितों का कृत्य ही आश्चर्य-कारक है' (कह), इस धर्मदेशना को ला मेल मिला, जातक का सारांश निकाल दिखाया। उस समय के प्रत्येक-बुद्ध तो वहीं परिनिर्वाण को प्राप्त हुए। मार को पराजित कर, पद्म-कली में खड़े हो प्रत्येक बुद्ध को भिक्षा देने वाला **बाराणसी** सेठ तो मैं ही था।

पहला परिच्छेद

५. अत्थकाम वर्ग

४१. लोसक जातक

"**यो अत्थकामस्स** ...." यह गाथा, शास्ता ने **जेतवन** में विहार करते समय, **लोसकतिस्स** नामक स्थविर के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

यह लोसकतिस्स नामक स्थविर कौन था ? कोशल राष्ट्र में एक स्वकीय कुलनाशक, अलाभी (=जिसे कुछ न मिले), मछुआ-पुत्र भिक्षु। उसने (अपने) पूर्व-जन्म के स्थान से च्युत हो कोशल राष्ट्र में सहस्र घरों वाले मछुओं के एक गाँव में, एक मछुवे की स्त्री की कोख में प्रवेश किया। उसके गर्भ में आने के दिन वे सहस्र परिवार जाल-हाथ में लेकर (मछली) ढूँढ़ने के लिए गए। उन हज़ार कुलों को नदी और तालाब आदि में एक छोटी सी मछली भी न मिली। उस समय से उन मछुओं की अवनति ही होती रही। उसीके गर्भ प्रवेश करने के समय से लेकर, वह गाँव, सात बार आग से जला, सात बार राजा से दण्डित हुआ। इस प्रकार दिन प्रति दिन (=क्रम से) दुर्गति को प्राप्त हो, उन्होंने सोचा—"पूर्व समय में हमें ऐसा नहीं (होता) था। लेकिन अब प्रति दिन अवनत हो रहे हैं। हमारे अन्दर कोई (एक) मनहूस (हो गया) होगा। हम दो भागों (=वर्गों) में बँट जायें।" सो, पाँच पाँच सौ कुल एक एक जगह हो गए। तब से, जिस हिस्से में उसके माता पिता थे, उसीकी अवनति होने लगी, दूसरे की उन्नति। उन्होंने फिर उस कुल को भी दो में बाँट, और फिर उस (से अगले कुल) को भी दो में बाँट, इस प्रकार जब तक वह एक (मनहूस) कुल ही अकेला रह गया, तब तक बाँट, "वही कुल मनहूस है"—ऐसा मालूम कर, उसे थपेड़ कर निकाल दिया।

सो उसकी माँ ने बड़ी कठिनाई से दिन काटते हुए गर्भ के परिपक्व होने पर, एक स्थान पर प्रसव किया। अन्तिम शरीर-धारी (व्यक्ति) को नष्ट नहीं किया जा सकता। उसके हृदय में अर्हत्व का उपनिश्रय (=कारण) वैसे ही प्रकाशित रहता है, जैसे घड़े में दीपक। वह उस बालक को पाल, उसके भाग दौड़ कर चल सकने के समय, उसके हाथ में एक खोपड़ी दे 'पुत्र! एक घर में प्रवेश कर' (कह) उसके एक घर में प्रवेश करने पर, अपने भाग गई। वह उस दिन से, वहाँ अकेला ही भीख माँग, एक स्थान में पड़ा रहता था। न नहाता, न शरीर साफ करता, धूलि-पिशाच की तरह बड़ी कठिनाई से जीवन बिताता। इसी प्रकार, क्रम से सात वर्ष का होकर वह एक गृह-द्वार पर उक्खलि-धोवन फेंकने के स्थान पर पड़े हुए चावल के दानों को, कौए की तरह एक एक चुग कर खाता था।

श्रावस्ती में भिक्षा-चार करते समय धर्मसेनापति (=सारिपुत्र) ने, उसे देख 'इस प्राणी की दशा अत्यन्त करुणाजनक है, यह किस गाँव का रहने वाला है?' सोच, उसके प्रति मैत्री-भाव की वृद्धि कर, उसे बुलाया—"अरे! आ।" वह जाकर, स्थविर को प्रणाम कर, खड़ा हो गया। स्थविर ने उसे पूछा—"तू किस गाँव का रहने वाला है? तेरे माता-पिता कहाँ हैं?"

"भन्ते! मैं प्रत्यय (=आवश्यक वस्तु)-रहित हूँ। मेरे माता-पिता 'हम इसके कारण कष्ट पाते हैं' (सोच), मुझे छोड़ भाग गये।"

"तू प्रव्रजित होगा?"

"भन्ते! मैं तो प्रव्रजित हो जाऊँ, लेकिन मुझ दरिद्र (=कृपण) को कौन प्रव्रजित करेगा?"

"मैं प्रव्रजित करूँगा।"

"अच्छा! तो प्रव्रजित कर लें।"

स्थविर ने उसे खाद्य-भोज्य दे, विहार ले जा, अपने ही हाथ से नहला, प्रव्रजित कर, **वर्ष सम्पूर्ण होने पर**[1] उपसम्पन्न किया। वृद्ध होने पर, वह लोसकतिस्स स्थविर कहलाया—अपुण्यवान् तथा अल्पलाभी हुआ। असाधारण दान में भी उसे पेट भर खाने को न मिला; उतना ही मिला, जितना जीवित

[1] बीस वर्ष से कम आयु रहने पर कोई उपसम्पन्न नहीं हो सकता।

रहने भर के लिए पर्य्याप्त हो। उसके पात्र में एक ही कड़छी यवागू डालने पर भी, उसका पात्र लबालब भरा प्रतीत होता। सो, मनुष्य 'इसका पात्र भर गया' सोच, उससे आगे यवागू बाँटते। ऐसा भी कहते हैं कि उसके पात्र में यवागू डालने के समय, मनुष्यों के (ही) पात्र से यवागू अन्तर्ध्यान हो जाता। खाद्य आदि के सम्बन्ध में भी ऐसा ही (होता)। आगे चल कर, विदर्शना-भावना (=योग) की वृद्धि करके अर्हत्व (नामक) अग्रफल में प्रतिष्ठित होकर भी वह अल्पलाभी ही रहा। इस प्रकार क्रम से, उसके आयुसंस्कारों के नाश होने पर, उसका **परिनिर्वाणदिवस**[1] भी आ गया।

धर्मसेनापति ने ध्यान लगा कर, उसके परिनिवृत्त होने की बात जान, 'यह लोसकतिस्स स्थविर आज परिनिर्वाण को प्राप्त होंगे; इसलिए मुझे चाहिए कि मैं इन्हें आज यथावश्यकता भोजन दूँ' सोच, उसे साथ लेकर, **श्रावस्ती** में पिण्डपात के लिए प्रवेश किया। उस (लोसकतिस्स) स्थविर के साथ होने के कारण, इतने अधिक मनुष्यों की श्रावस्ती में, स्थविर को किसी ने हाथ पसार कर, प्रणाम तक न किया। स्थविर ने उसे, 'अयुष्मान्! जा कर आसन-शाला में बैठें' (कह) भेज, अपने को जो आहार मिला था, उसे 'इसे लोसक को दो' कह कर भेजा। ले जाने वाले (आदमी) **लोसक स्थविर** को भूल (उस आहार को) अपने ही खा गये।

स्थविर के उठ कर विहार को जाते समय, **लोसकतिस्स** स्थविर ने जाकर, स्थविर की वन्दना की। स्थविर ने रुक कर खड़े ही खड़े पूछा—"आयुष्मान् तुम्हें भोजन मिला ?" "भन्ते! नहीं मिला।" स्थविर ने संवेग-प्राप्त हो समय की ओर देखा। (भोजन कर सकने) का समय बीत चुका था। स्थविर 'आयुष्मान्! यहीं बैठें' कह **लोसक स्थविर** को आसनशाला में बिठा (अपने) **कोशल** नरेश के घर गये। राजा ने स्थविर का पात्र लिवा, भोजन का असमय देख, पात्र को चार-मधुर पदार्थों[2] से भरवा (स्थविर को) दिलवाया।

स्थविर, उसे ले जाकर, 'आयुष्मान् तिस्स! आओ, इन चतु-मधुरों का

[1] **क्षीणास्रवों के मरने को परिनिर्वृत्त होना कहते हैं**

[2] **घी, मक्खन, राब तथा मधुर।**

भोजन करो' कह, पात्र को (अपने ही हाथ में) लिए खड़े रहे। लोसक स्थविर के गौरव से, शर्म के मारे नहीं खाते थे। स्थविर ने कहा—"आयुष्मान् तिस्स! आओ, मैं इस पात्र को लेकर खड़ा रहूँगा। तुम बैठ कर भोजन करो। यदि मैंने इस पात्र को हाथ से छोड़ दिया, तो (कदाचित्) इसमें कुछ न रहे।" सो आयुष्मान् लोसकतिस्स स्थविर ने, अग्रेश्वर धर्मसेनापति के हाथ में पात्र लिए खड़े रहते, चारों प्रकार के मधुर का भोजन किया। स्थविर के ऋद्धि-बल के कारण, वह भोजन समाप्त नहीं हुआ। उस समय लोसकतिस्स स्थविर ने, जितना चाहिए था, उतना पेट भर भोजन किया। और उसी दिन वह उपाधि-रहित निर्वाण-धातु को प्राप्त हुए। सम्यक् सम्बुद्ध ने पास खड़े होकर शरीर की दाह-क्रिया करवाई। (शरीर-)धातु लेकर चैत्य बनाया गया।

उस समय धर्म-सभा में एकत्रित हुए भिक्षु, (आपस में) बैठे बैठे कहने लगे—"आयुष्मानो! लोसकतिस्स स्थविर अपुण्यवान् (थे), अल्प-लाभी, (थे) इस प्रकार अपुण्यवान्, अल्पलाभी ने किस प्रकार आर्य-धर्म (=अर्हत्व) प्राप्त कर लिया?" बुद्ध ने धर्म-सभा में जाकर पूछा—"भिक्षुओ! बैठे क्या बात-चीत कर रहे हो?" उन्होंने कहा "भन्ते! यह बात-चीत।" बुद्ध ने, "भिक्षुओ! इस भिक्षु ने अपने आपको स्वयं ही अल्प-लाभी बनाया, और स्वयं ही अर्हत्। पूर्व-जन्म में औरों की प्राप्ति में बाधक होने के कारण, यह अल्प-लाभी हुआ, और अनित्य, दुःख, अनात्म—की विदर्शना युक्त भावना (=योगाभ्यास) के फल स्वरूप आर्यधर्म-लाभी (=अर्हत्) हुआ' कह, पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व-काल में काश्यप सम्यक् सम्बुद्ध के समय में, एक भिक्षु एक गृहस्थ पर विशेष रूप से निर्भर हो, एक गाँव के निवासस्थान में रहता था। वह स्वभाव से ही सदाचारी (=शीलवान्) था, और योगाभ्यास (=विदर्शना) में लगा रहता था। (उसी समय) एक क्षीणाश्रव स्थविर, अपने कर्तव्यों की अवहेलना न कर, एक एक स्थान में ठहरते हुए, क्रम से, उस भिक्षु के उपस्थायक गृहस्थ के ही गाँव में पहुँचे। गृहस्थ ने स्थविर के उठने बैठने (=इर्या-पथ) पर ही प्रसन्न हो, (उनका) पात्र ले, (उन्हें) घर में प्रवेश करा, अच्छी प्रकार

भोजन खिला, कुछ धर्म-कथा सुन, स्थविर को प्रणाम कर कहा—"भन्ते ! हमारे समीप के विहार को जायें, हम शाम को आपके दर्शनार्थ आयेंगे।" स्थविर विहार में जा, उसमें रहने वाले स्थविर को प्रणाम कर और (उनसे कुशल क्षेम) पूछ कर एक ओर बैठे। उस (स्थविर) ने भी उनसे कुशल-क्षेम सम्बन्धी बात-चीत कर, पूछा—"आयुष्मान् ! आज आपको भोजन मिला ?" "हाँ मिला।" "कहाँ मिला ?" "आपके ग्राम के गृहस्थी के घर में।" यह कह कर, अपना शयनासन पूछ, (उसे) झाड़ सँवार कर, पात्र चीवर को ठीक से रख कर, ध्यान-सुख तथा फल-सुख से (समय) बिताते हुए बैठे।

उस गृहस्थ ने शाम को गन्ध-माला, (तथा) तेल-प्रदीप लिवा कर, विहार जाकर, निवासिक स्थविर को प्रणाम कर, पूछा—"भन्ते ! यहाँ एक आगन्तुगक स्थविर आया है ?"

"हाँ ! आया है।"

"इस समय कहाँ है ?"

"अमुक शयनासन पर।"

वह उनके पास जाकर, प्रणाम कर, एक ओर बैठ, धर्म-कथा सुन, ठण्डा हो जाने पर, चैत्य और बोधि (-वृक्ष) की पूजा कर, दिये जला कर, दोनों स्थविरों को (भोजन के लिए) निमन्त्रित कर, लौट आया। स्थानीय स्थविर ने सोचा—"यह गृहस्थ वदल रहा है। यदि यह भिक्षु इस विहार में रहेगा, तो यह (गृहस्थ) मेरी कुछ गिनती न करेगा।" (उसने) स्थविर के प्रति मन में असन्तोप उत्पन्न कर, "मुझे ऐसा करना चाहिए, जिससे यह इस विहार में न वस सके"—इस विचार से उपस्थान-वेला (=सेवा के कृत्य करने) के समय, उनके आने पर, उनसे कुछ वात-चीत न की। क्षीणाश्रव स्थविर ने उनके मन का विचार जान कर 'यह स्थविर नहीं जानते कि मेरी न तो (भिक्षु-)गण में आसक्ति है, न (गृहस्थ-)कुल में' सोचते हुए, अपने स्थान पर जाकर, ध्यान-सुख और फल-सुख में समय विताया।

अगले दिन स्थानीय भिक्षु अपने नाखून से (हलके से) घंटी बजा और नाखून से ही (आगन्तुक भिक्षु) के द्वार पर टक टक कर, (उस) गृहस्थ के घर गया। उसने उसका पात्र ले, उसे विछे आसन पर बिठा, पूछा—"भन्ते ! आगन्तुक स्थविर कहाँ है ?"

"मुझे नहीं मालूम ! तेरे उस कुलूपक[1] का हाल; घंटी बजाते, द्वार खटखटाते भी मैं उसे नहीं जगा सका। कल तेरे यहाँ का प्रणीत-भोजन खाकर, हज़्म न कर सकने के कारण पड़ा सोता होगा ! तेरी भी, जब श्रद्धा होती है, तो ऐसों पर ही होती है।"

क्षीणाश्रव स्थविर अपना भिक्षा माँगने का समय (आया) देख, शरीर (पर के चीवर) को सँवार, पात्र चीवर ले, आकाश में उड़ कर अन्यत्र चले गये।

उस गृहस्थ ने स्थानीय स्थविर को घी, मधु तथा शक्कर मिली खीर पिला कर, पात्र पर सुगन्धित-चूर्ण लगाकर, (उसे) फिर भर कर 'भन्ते ! वह स्थविर मार्ग चलने के कारण थके होंगे। यह (उनके लिए) ले जायें' कह दिया। दूसरे ने बिना अस्वीकार किये, लेकर जाते हुए सोचा, "यदि वह भिक्षु इस खीर को पीयेगा, तो गर्दन से पकड़ कर निकालने पर भी न जायेगा; यदि मैं इस खीर को (किसी) आदमी को दूँगा, तो मेरा यह कर्म प्रगट हो जायगा; यदि पानी में उँड़ेलूँगा, तो पानी के ऊपर घी तैरेगा; यदि भूमि पर फेंकूँगा, तो कौओं के इकट्ठे होने से पता लग जायगा। इसे कहाँ फेंकूँ?" सोचते हुए, उसने एक आग जलते खेत को देख, अङ्गारों को हटा कर, (खीर को) वहाँ डाल, ऊपर अङ्गारों से ढक दिया, और विहार को चला गया। (विहार पहुँच कर) उस भिक्षु को न देख, सोचने लगा—'निश्चय से, वह क्षीणाश्रव भिक्षु मेरे अभिप्राय को जान कर किसी दूसरी जगह चले गये होंगे। अहो ! मैंने इस पेट के कारण अनुचित किया।" (यह सोचने से) उसी समय, उसे बड़ा भारी पश्चात्ताप हुआ। तभी से वह मनुष्य प्रेत होकर, थोड़े ही समय बाद मर कर नरक में पैदा हुआ।

लाखों वर्ष नरक की आग में जल कर, बचे कर्म का फल भुगतने के लिए, उसने क्रम से पाँच सौ यक्ष योनियों में उत्पन्न होकर, एक दिन भी पेट भर कर भोजन न पाया। हाँ ! एक दिन गर्भ मैल (=गर्भ से निकला मैल) पेट भर कर मिला। फिर पाँच-सौ जन्मों में कुत्ता हुआ। तब भी एक दिन (किसी

[1] कुलूपक=कुल में आने जाने वाला।

की) उल्टी (वमन) पेट भर कर मिली। बाकी समय में उसको कभी भी पेट भर कर खाने को न मिला। कुत्ते की योनि से च्युत होकर, **काशी** राष्ट्र में एक ग्राम में एक दरिद्र-कुल में उत्पन्न हुआ। उसकी उत्पत्ति के बाद से वह कुल अत्यन्त दरिद्र हो गया। वहाँ, उसे नाभी से ऊपर (पेट भरने के लिए) काञ्जी-का पानी भी नहीं मिला। (उस समय) उसका नाम **मित्तविन्दक** था। माता पिता ने संतान-दुःख को न सह सकने के कारण, 'निकल मनहूस' कह, उसे धौले मार कर निकाल दिया। वह अशरण हो, घूमता हुआ, बाराणसी पहुँचा।

उस समय बोधिसत्त्व, **बाराणसी** में लोक-प्रसिद्ध आचार्य्य होकर, पाँच सौ शिष्यों को शिल्प सिखाते थे। तब **बाराणसी**-निवासी, दरिद्र छात्रों को छात्र-वृत्ति दे कर शिल्प सिखाते थे। यह **मित्रविन्दक** भी बोधिसत्त्व के पास **निःशुल्क शिक्षा**[1] सीखने लगा। लेकिन वह कठोर (स्वभाव का) तथा उपदेश न मानने वाला था। जिस किसी को मारता रहता। बोधिसत्त्व के उपदेश करने पर भी कहना न मानता। उसके कारण बोधिसत्त्व की आमदनी भी कम हो गई। (अन्य) शिष्यों से झगड़ा कर, उपदेश न मान, वहाँ से भाग कर, वह, घूमता घूमता एक प्रत्यन्तग्राम (=सीमा से बाहर के ग्राम) में पहुँच, मज़दूरी (वा नौकरी) करके जीने लगा। वहाँ, उसने एक दरिद्र स्त्री के साथ सहवास किया, जिससे उसे दो बालक पैदा हुए। ग्रामवासियों ने 'तुम हमें अच्छी बुरी खबर देते रहना' (कह) मित्रविन्दक की नौकरी लगा, उसे ग्राम-द्वार पर कुटिया में बसाया। उस मित्रविन्दक के कारण, उन प्रत्यन्त-ग्राम-वासियों को सात बार राज्य-दण्ड देना पड़ा, सात बार आग लगी और सात बार तालाब टूटा। उन्होंने सोचा—"इस **मित्रविन्दक** के आने से पहले, हमारा यह (हाल) नहीं था, लेकिन अब इसके आने के समय से हमारी अवनति ही हो रही है।" (यह सोच) उन्होंने उसे धौले मार कर निकाल दिया। वह अपने बच्चों को ले, दूसरी जगह जाते हुए, एक अमनुष्य-परिगृहीत जंगल में से गुज़रा। वहाँ अमनुष्यों (=यक्ष आदि) ने, उसकी स्त्री, बच्चों को मार, उनका मांस खा लिया।

[1] **पुण्य-शिल्प।**

वहाँ से भाग कर, वह जहाँ तहाँ घूमता हुआ **गम्भीर** नामक एक बन्दर-गाह में नौकायें छूटने के दिन ही पहुँचा, (और) नौकर बन कर नौका पर चढ़ गया। नाव सात दिन समुद्र में जाकर, सातवें दिन, कीलों से गाड़ दी जैसी-की तरह रुक गई। उन्होंने मनहूस (आदमी चुनने की) तीली (=शलाका) बाँटी। वह सात बार मित्रविन्दक के ही पास निकली। मनुष्यों ने उसे एक बाँसों का गट्ठा दे, हाथ से पकड़ समुद्र में फेंक दिया। उसके फेंकते ही नाव चल पड़ी। **मित्रविन्दक** ने **काश्यप** सम्यक्सम्बुद्ध के समय में सदाचारमय जीवन व्यतीत किया था। उसके फलस्वरूप, उसे (अब) बाँसों के गट्ठे पर, समुद्र में लेटे (=तैरते) जाते हुए, एक स्फटिक-विमान में चार देव-कन्यायें मिलीं। एक सप्ताह तक, वह, उनके पास सुख भोगता हुआ रहा। वह विमान-प्रेतनियाँ, एक सप्ताह तक सुख भोगती थीं, एक सप्ताह तक दुःख। दुःख भोगने के लिए जाने के समय, 'जब तक हम लौट कर आयें, तब तक यहीं रहो' कह, वह चली गईं। उनके जाने के बाद, बाँसों के गट्ठे पर लेटे जाते हुए **मित्रविन्दक** को, आगे जाने पर रजत-विमान में आठ देव-कन्यायें मिलीं, उससे भी आगे जाने पर, मणि-विमान में सोलह, स्वर्ण-विमान में बत्तीस देव-कन्यायें मिलीं। उनकी भी बात न मान, आगे जाने पर उसने (एक) द्वीप के अन्दर एक यक्ष-नगर देखा। वहाँ एक यक्षिणी (एक) बकरी की शकल में घूमती थी। **मित्र-विन्दक** ने यह न जान कि वह यक्षिणी है, बकरी का मांस खाने के ख्याल से, उसे पैर से पकड़ा। उसने (अपने) यक्ष बल से, उसे उछाल कर फेंका। उसका फेंका हुआ, वह समुद्र तल को लाँघ, **बाराणसी** की चारदीवारी पर, एक काँटों के झाड़ पर गिर, वहाँ से लुढ़कता लुढ़कता ज़मीन पर आया।

उस समय उस चारदीवारी पर चरती हुई, राजा की बकरियों को चोर उड़ा ले जाते थे। बकरियों के रखवाले चोरों को पकड़ने के ख्याल से, एक ओर छिपे रहते थे। **मित्रविन्दक** ने उलट कर, ज़मीन पर खड़े होने पर, उन बकरियों को देख सोचा: "मैंने समुद्र के एक द्वीप में एक बकरी के पैर पकड़े, उसका फेंका हुआ, यहाँ आकर गिरा। यदि अब मैं यहाँ एक बकरी के पैर पकड़ूँगा, तो वह मुझे उस पार समुद्र में विमान-देवताओं के पास फेंक देगी।" (सो) ऐसी उल्टी-बात मन में कर, उसने बकरी के पाँव पकड़े। बकरी ने पैर पकड़ते ही "मैं मैं" किया। बकरियों के रखवालों ने इधर उधर से आ,

'यह इतने दिनों तक राजकीय बकरियाँ खाने वाला चोर है' (सोच) उसे पकड़, ठोक-पीट, बाँध कर राजा के पास ले गये।

उस समय बोधिसत्त्व ने पाँच सौ शिष्यों सहित नगर से निकल, नहाने के लिए जाते समय, **मित्रविन्दक** को देख, पहचान, उन मनुष्यों से पूछा—"तात! यह हमारा शिष्य है, इसे किस लिए पकड़ा है?" "आर्य! यह बकरी-चोर है। इसने एक बकरी पैर से पकड़ी थी, इसीलिए इसे पकड़ा है।"

"तो इसे हमारा 'दास' बना कर, हमें दे दो, हमारे पास जीयेगा।" वे "आर्य्य! अच्छा!" कह, उसे छोड़ कर चले गये। तब बोधिसत्त्व ने मित्र-विन्दक से पूछा—"तू इतने समय तक कहाँ रहा?" उसने अपनी सब आपबीती सुनाई। "हितैषियों की बात न मानने वाले इसी प्रकार दुःख पाते हैं" कह, बोधिसत्त्व ने यह गाथा कही—

यो अत्थकामस्स हितानुकम्पिनो
ओवज्जमानो न करोति सासनं,
अजिया पादमोलुब्भ
मित्तको विय सोचति ॥

[जो (अपना) भला चाहने वाले, हितैषी, के उपदेश देने पर, उस उपदेश के अनुसार आचरण नहीं करता, वह बकरी के पैर पकड़ने वाले मित्र(-विन्दक) की तरह शोक को प्राप्त होता है।]

अत्थकामस्स=उन्नति की इच्छा करने वाले का। **हितानुकम्पिनो**=हित से अनुकम्पा (=दया) करने वाले का। **ओवज्जमानो,** मृदु, हितैषी चित्त से उपदेश दिये जाने पर। **न करोति सासनं,** अनुसार आचरण नहीं करता, वचन =उपदेश न मानने वाला होता है। **मित्तको विय सोचति,** जिस प्रकार यह मित्रविन्दक बकरी के पैर पकड़ कर सोचता है, कष्ट पाता है, इसी प्रकार सदैव सोचता है। इस गाथा से बोधिसत्त्व ने धर्मोपदेश किया।

इस प्रकार उस स्थविर को इतने समय में, केवल तीन ही जन्मों में पेट भर खाने को मिला। यक्ष होने की अवस्था में एक दिन गर्भ-मैल मिला, कुत्ते

के जन्म में एक दिन खाये हुए की उल्टी, और परिनिर्वाण के दिन धर्मसेनापति के प्रताप (=आनुभाव) से चार-प्रकार का मधुर मिला। सो इससे जानना चाहिए कि दूसरे के लाभ (=मिलने की वस्तु) को रोकने में बड़ा दोष है।

उस समय वह आचार्य्य और मित्रविन्दक भी—दोनों (अपने अपने) कर्मानुसार (परलोक) गये। बुद्ध ने, 'सो हे भिक्षुओ! इसने अपना अल्प-लाभी-पन और अर्हत्व-प्राप्ति—दोनों अपने ही की' कहा, इस धर्म-देशना को ला, मेल मिला कर, जातक का सारांश निकाल दिखाया। उस समय का मित्रविन्दक (अब का) लोसक-तिस्स स्थविर था। लोक-प्रसिद्ध (=दिशा-प्रमुख) आचार्य्य तो मैं ही था।

४२. कपोत जातक

यो अत्थकामस्स'....यह गाथा शास्ता ने **जेतवन** में विहरते समय, एक लोभी भिक्षु के सम्बन्ध में कही। उसके लोभ-पन (की कथा) नौवें परिच्छेद में, **काक जातक**[1] में आयेगी। उस समय भिक्षुओं ने बुद्ध से कहा—"भन्ते! यह भिक्षु लोभी है।" तब बुद्ध ने उसे पूछा—"हे भिक्षु! क्या तू सचमुच में लोभी है?" "भन्ते! हाँ।" बुद्ध ने, "हे भिक्षु! तू पूर्व-जन्म में भी लोभी था। लोभ के कारण (तूने) जान गँवाई और तेरे कारण पण्डितों को भी अपने निवासस्थान से वञ्चित होना पड़ा" कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

अतीत कथा

पूर्व समय में **बाराणसी** में (राजा) **ब्रह्मदत्त** के राज्य करने के समय,

[1] **काक जातक १४०, १४६, ३९५; नौवें परिच्छेद में कोई काक जातक नहीं।**

बोधिसत्त्व **कबूतर** की योनि में पैदा हुए। उस समय बाराणसी निवासी पुण्येच्छा से, जगह जगह पर पक्षियों के सुख-पूर्वक वास करने के लिए छीके लटकाते थे। बाराणसी के सेठ के रसोइये ने भी अपने रसोई-घर में एक छीका लटका रक्खा था। बोधिसत्त्व वहीं रहता था। वह प्रातःकाल ही निकल, चुगने की जगहों पर चुग, शाम को वहाँ आकर, रहते हुए समय बिताता था। एक दिन एक कौवे ने बड़े ज़ोर से (उड़ते) जाते हुए, खट्टे-मीठे मत्स्य-मांस के छौंक की गन्ध सूँघ कर, उसमें लोभ उत्पन्न कर, सोचा "मुझे यह मत्स्य-मांस कैसे मिलेगा ?" कुछ दूर पर बैठ कर विचारते हुए, उसने शाम को बोधिसत्त्व को आकर रसोई में प्रवेश करते देख, सोचा—'इस कबूतर के ज़रिये (मुझे) मत्स्य-मांस मिलेगा।' अगले दिन प्रातःकाल ही बोधिसत्त्व के निकल कर चुगने के लिए जाने के समय (उसके) पीछे पीछे हो लिया।

तब बोधिसत्त्व ने उससे पूछा—"सौम्य ! तू किस लिए हमारे साथ साथ फिरता है ?"

"स्वामी ! मुझे आपकी (जीवन-)चर्य्या अच्छी लगती है। अब से मैं आपकी सेवा में रहूँगा।"

"सौम्य ! तुम्हारा चुगना दूसरा होता है, हमारा दूसरा, तुम्हारा हमारी सेवा में रहना कठिन है।"

"स्वामी ! तुम्हारे चोगा लेने के समय, मैं भी चोगा लेकर, तुम्हारे साथ ही (वापिस) लौटूँगा।"

"अच्छा ! तुझे केवल प्रमाद-रहित रहना चाहिए"—बोधिसत्त्व ने कौवे को उपदेश दिया।

उसे उपदेश दे बोधिसत्त्व चुगने के समय चुगने जाते, तृण-बीज आदि खाते, और कौआ उसी समय में जा, गोबर का पिंड ले, उसमें से कीड़े खा, पेट भर, बोधिसत्त्व के पास आकर कहता—"स्वामी ! तुम देर तक चुगते हो। अधिक खाना उचित नहीं।" वह, बोधिसत्त्व के चोगा ले, शाम को वापिस लौटने पर, उसके साथ ही रसोई में प्रवेश करता। रसोइये ने यह देख कि हमारा कबूतर (एक) दूसरे साथी को भी लाया है, उस कौवे के लिए भी छीका टाँग दिया। उस समय से दोनों जने (वहीं) रहने लगे।

एक दिन सेठ के लिए बहुत सा मत्स्य-मांस लाया गया। रसोइये ने उसे

लेकर, रसोई-घर में जहाँ तहाँ लटका दिया। कौवा उसे देख, (मन में) लोभ पैदा कर, और वह 'कल चुगने न जाकर, मुझे यह (मत्स्य-मांस) ही खाना चाहिए' सोच, रात को छटपटाता हुआ लेट रहा। अगले दिन बोधिसत्त्व ने चुगने के लिए जाते समय कहा—"सौम्य ! काक ! आ।"

"स्वामी ! आप जायें। मुझे पेट में दर्द है।"

"सौम्य ! कौओं को, पहले कभी पेट-दर्द नहीं हुआ है। वे (भूख के मारे) रात्रि के तीन पहरों में से एक एक पहर में मूर्च्छित होते हैं। केवल दीपक की बत्ती निगलने पर, उन्हें मुहूर्त्त भर के लिए तृप्ति होती है। तू इस मत्स्य-मांस को खाना चाहता होगा। आ, जो मनुष्य के खाने की चीज़ है, उसका खाना तेरे लिए अनुचित है। ऐसा मत कर, मेरे साथ चुगने के ही लिए चल।"

"स्वामी ! (चल) नहीं सकता।"

"अच्छा ! तो तू अपने कर्म को प्रगट करेगा। लोभ के वशीभूत मत हो, प्रमाद-रहति रह।" उसे उपदेश दे, बोधिसत्त्व चुगने के लिए गया। रसोइया नाना प्रकार की मत्स्य-मांस की चीजें बना, भाप निकलने के लिए बरतनों को थोड़ा खोल, कड़छी को बरतनों पर रख, (अपने) पसीना पोंछता हुआ, बाहर जाकर खड़ा हो गया।

उसी समय कौवे ने, छींके में से सिर निकाल, रसोई-घर को देखते हुए, रसोइए को बाहर निकला जान, सोचा—"अब, यह मेरे लिए मन भर कर मांस खाने का समय है। मैं बड़ा बड़ा मांस खाऊँ, या मांस का चूरा ? मांस का चूरा खाने से पेट जल्दी नहीं भरा जा सकता। (इसलिए) एक बड़े (से) मांस के टुकड़े को, छींके पर ले जाकर, वहाँ रख, पड़ा पड़ा खाऊँगा।" (यह सोच) छीके में से उड़, उस कड़छी पर जा लगा। कड़छी ने 'किली किली' शब्द किया। रसोइये ने उस शब्द को सुन, 'यह क्या है ?' (करके) प्रविष्ट हो, उस कौवे को देख, 'यह दुष्ट-कौआ मेरा, सेठ के लिए बनाया मांस खाना चाहता है। मैं सेट्ठी की नौकरी करके, जीता हूँ; इस मूर्ख की नहीं। मुझे इससे क्या ?" (कह) दरवाज़ा बन्द कर, कौवे को पकड़, (उसके) सारे शरीर से पर नोच, कच्चे अदरक, निमक तथा जीरे को कूट, (उसे) खट्टे मट्ठे में मिला, (उससे) उसके सारे बदन को चोपड़, उस छीके में फेंक दिया। वह अत्यन्त पीड़ा अनुभव करता हुआ, छटपटाता पड़ा रहा। बोधिसत्त्व ने

शाम को आ, उसे पीड़ा-ग्रस्त देख, 'लोभी कौवे ! मेरी बात न मान, अपने लोभ के कारण तू इस दुःख में पड़ा' कह यह गाथा कही—

यो अत्थकामस्स हितानुकम्पिनो
ओवज्जमानो न करोति सासनं,
कपोतकस्स वचनं अकत्वा
अमित्तहत्थत्थगतोव सेति ॥

[जो भला चाहने वाले, हितैषी, के उपदेश देने पर, उस उपदेश के अनुसार आचरण नहीं करता, वह कबूतर का वचन न मान कर अमित्र के हाथ में पड़ कर (दुःख भोगने वाले) की तरह, (दुःखित हो) सोता है।]

कपोतकस्स वचनं अकत्वा=कबूतर की हित की बात न मान कर। **अमित्तहत्थत्थगतो व सेति;** अमित्रों के=अनर्थ करने वालों के=दुःख उत्पादन करने वाले आदमियों के, हाथ में पड़ कर, इस कौवे की तरह, (वह) आदमी, महान् दुःख को प्राप्त हो, चिन्ता करता हुआ सोता है।

बोधिसत्त्व, यह गाथा कह कर, 'अब मैं इस जगह नहीं रह सकता' सोच, अन्यत्र चला गया। कौवा वहीं मर गया। रसोइए ने उसे छीके सहित, उठा कर कूड़े पर फेंक दिया।

बुद्ध ने भी, 'भिक्षु ! तू अब ही लोभी नहीं है, पूर्व-जन्म में भी लोभी रहा है।(और) तेरे उस लोभ के कारण, पण्डितों को अपना घर छोड़ना पड़ा है"—इस धर्म-देशना को ला, (आर्य-)सत्यों को प्रकाशित किया। (आर्य-)सत्यों के (प्रकाशित होने के) अन्त में, उस भिक्षु ने अनागामी फल प्राप्त किया। शास्ता ने मेल मिला कर, जातक का सारांश निकाला। उस समय का कौआ, (अब का) लोभी भिक्षु था। (और) कबूतर तो मैं ही था।

४३. वेळुक जातक

"यो अत्थकामस्स. . . ." यह गाथा शास्ता ने **जेतवन** में विहरते समय एक भी बात न मानने वाले भिक्षु के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

सो भगवान् ने उस भिक्षु से, 'भिक्षु! क्या तू सचमुच बात न मानने वाला है?' पूछ, उसके 'भन्ते! सचमुच' कहने पर, 'भिक्षु! तू केवल अब ही बात न मानने वाला, नहीं है, पूर्व-जन्म में भी बात न मानने वाला ही रहा है। और बात न मानने के स्वभाव के ही कारण, (तूने) पण्डितों की बात न मान, सर्प के मुंह में पड़ कर, जीवन गँवाया' कह, पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में **बाराणसी** में (राजा) **ब्रह्मदत्त** के राज्य करने के समय, बोधिसत्त्व ने, काशी राष्ट्र में एक महा-सम्पत्तिशाली कुल में उत्पन्न हो, जब होश सँभाला, तो काम-भोगों में हानियाँ देख, और नैष्क्रम्य में लाभ देख, काम भोगों को छोड़, हिमवन्त में प्रविष्ट हो, ऋषि-प्रव्रज्या के अनुसार प्रव्रजित हुआ। (प्रव्रजित हो) वह योगाभ्यास कर, **पाँच अभिज्ञा** तथा **आठ समापत्तियाँ** प्राप्त कर, ध्यान-सुख में समय बिताने लगा। आगे चल कर, पाँच सौ तपस्वियों का नेता बन, गण का शास्ता होकर रहने लगा।

(एक दिन) एक विषैले साँप का बच्चा, अपने स्वभाव से घूमता घूमता एक तपस्वी के आश्रम के पास आया। तपस्वी ने, उस (सर्प के बच्चे) में पुत्र-स्नेह उत्पन्न कर, उसे एक बाँस की फोंफी में सुला, पालना शुरू किया। बाँस (वेळु) की पोरी में सोने के कारण, उसका नाम वेळुक, और वेळुक को

पुत्र-स्नेह से पालने के कारण, उस तपस्वी का नाम वेळुक-पिता ही पड़ गया। तब बोधिसत्त्व ने यह सुन कि एक तपस्वी विषैले सर्प को पालता है, उसे बुला, 'क्या तू सचमुच विषैले सर्प को पालता है ?" पूछ, उसके 'हाँ, सचमुच' कहने पर, उससे कहा—"विषैले सर्प का विश्वास नहीं किया जा सकता। उसे मत पाल।"

तपस्वी ने कहा—"आचार्य ! वह मेरा पुत्र है। मैं उसके बिना नहीं रह सकता।"

"अच्छा ! तो इसीसे तेरे प्राणों का नाश होगा।" तपस्वी ने न बोधिसत्त्व की बात मानी, (और) न ही विषैले-सर्प को छोड़ा।

उसके कुछ ही दिन बाद सभी तपस्वी फल-मूल (ढूँढ़ने) के लिए गये। वहाँ फल-मूल की सुलभता देख, दो तीन दिन वहीं रह गये। वेळुक-पिता भी उन्हीं के साथ जाते समय, विषैले सर्प को, बाँस की पोरी में सुला, ढक कर गया। दो तीन दिन के बाद तपस्वियों के साथ लौट कर, उसने 'वेळुक को खाद्य दूँगा' (सोच), बाँस की पोरी को उघाड़ 'आ पुत्र ! क्या तू भूखा है' ? (कह) हाथ पसारा। विषैले सर्प ने दो तीन दिन आहार न मिलने से क्रुद्ध हो, तपस्वी को हाथ पर डँसा; जिससे तपस्वी वहीं मर गया। तपस्वी को मार, विषैला सर्प जंगल में चला गया। (अन्य) तपस्वियों ने उसे देख, बोधिसत्त्व को सूचना दी। बोधिसत्त्व ने उसका शरीर-कृत्य करवा, ऋषिगण के मध्य बैठ ऋषियों को उपदेश देते हुए यह गाथा कही—

> **यो अत्थकामस्स हितानुकम्पिनो,**
> **ओवज्जमानो न करोति सासनं।**
> **एवं सो निहतो सेति,**
> **वेळुकस्स यथा पिता॥**

[जो (अपना) भला चाहने वाले, हितैषी के उपदेश देने पर, उस उपदेश के अनुसार आचरण नहीं करता, वह वेळुक के पिता की तरह नाश को प्राप्त होता है।]

एवं सो निहतो सेति, जो ऋषियों के उपदेश को ग्रहण नहीं करता, वह, जैसे यह तपस्वी विषैले सर्प के मुँह में पड़, विकृत-भाव को प्राप्त हो, विनष्ट

हो सोता है, वैसे ही, महाविनाश को प्राप्त हो, नष्ट हो सोता है। यही अर्थ है। इस प्रकार बोधिसत्त्व, ऋषि-गण को उपदेश दे, चारों ब्रह्मविहारों की भावना कर, आयु का अन्त होने पर, ब्रह्मलोक में उत्पन्न हुआ।

बुद्ध ने भी, 'भिक्षु ! तू केवल अब ही बात न मानने वाला नहीं है, पूर्व-जन्म में भी तू बात न मानने वाला ही था। और बात न मानने के स्वभाव के ही कारण, तू विषैले-सर्प के मुंह में पड़, विकृत-भाव को प्राप्त हुआ'—यह धर्म-देशना ला, मेल मिला कर, जातक का सारांश निकाला। उस समय का वेळुक-पिता (अब का) बात न मानने वाला भिक्षु था। शेष परिषद् (अब की) बुद्ध परिषद् थी। गण का शास्ता तो मैं ही था।

४४. मकस जातक

"**सेय्यो अमित्तो**...." यह गाथा, शास्ता ने मगध (देश) में विचरते समय, एक ग्राम के मूर्ख, गँवार मनुष्यों के सम्बन्ध में कही।

क. वर्तमान कथा

एक समय, तथागत **श्रावस्ती** से **मगध** राष्ट्र जा कर, वहाँ विचरते हुए, एक ग्राम में पहुँचे। वह गाँव अधिकतर अत्यन्त मूर्ख मनुष्यों से ही भरा पड़ा था। सो एक दिन उन अत्यन्त मूर्ख मनुष्यों ने इकट्ठे हो कर (आपस में) सलाह की—"भो ! जंगल में जाकर काम करते समय, हमें मच्छर काटते हैं। उससे हमारे काम में विघ्न पड़ता है। हम सब, धनुष और आयुध लेकर चलें। चलकर, मच्छरों से युद्ध कर, सब मच्छरों को बेध कर, छेद कर मार डालें।" यह सलाह कर, जंगल में जा, वहाँ मच्छरों को बेधने के ख्याल से एक

दूसरे को बेध कर, प्रहार कर, दुखी हो, आकर, गाँव के अन्दर, मध्य में, तथा बाहर—सभी जगह—पड़ रहे।

भिक्षुसंघ सहित शास्ता ने उस गाँव में भिक्षा के लिए प्रवेश किया। अवशिष्ट पण्डित (=बुद्धिमान्) मनुष्य भगवान् को देख, ग्राम-द्वार पर मण्डप बना, बुद्ध-सहित भिक्षुसंघ को महादान दे, शास्ता को प्रणाम कर, बैठे। शास्ता ने जहाँ तहाँ पड़े हुए मनुष्यों को देख कर, उन उपासकों से पूछा—"यह बहुत से मनुष्य रोगी (जख्मी) हैं। इन्होंने क्या किया है?"

"भन्ते! यह मनुष्य "मच्छरों से युद्ध करेंगे"(विचार) जाकर, एक दूसरे को आहत कर अपने ही जख्मी हो गये।" शास्ता ने, 'न केवल अभी अत्यन्त मूर्ख मनुष्यों ने मच्छरों को मारने के लिए जाकर अपने को घायल किया है, पूर्व समय में भी 'मच्छर को मारेंगे' सोच, यह एक दूसरे को मार देने वाले मनुष्य थे' कह, उन मनुष्यों के याचना करने पर पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में (राजा) **ब्रह्मदत्त** के राज्य करने के समय, **बोधिसत्त्व** व्यापार करके (अपनी) रोज़ी चलाते थे। उस समय **काशी** देश के एक सीमान्त के ग्राम में बहुत से बढ़ई रहते थे। वहाँ एक बूढ़ा बढ़ई वृक्ष छीलता था। उसकी ताँबे की थाली के तल सदृश खोपड़ी पर, एक मच्छर ने बैठ कर, उसके सिर को अपने डंक से ऐसे बींधा, जैसे कोई शक्ति(-आयुध) से चोट करता हो। उसने अपने पास बैठे हुए पुत्र को कहा—'तात! मेरे सिरको एक मच्छर, शक्ति से चोट करते की तरह काट रहा है, उसे हटा।"

"तात! सबर करें। एक (ही) प्रहार से उसे मारूँगा।" उस समय बोधिसत्त्व भी अपने लिए सौदा ढूँढ़ते हुए, उस गाँव में पहुँच, उस बढ़ई-शाला में बैठे थे। सो, उस बढ़ई ने पुत्र को कहा—"तात! इस मच्छर को हटा।" उसने 'तात! हटाता हूँ' कह, तेज कुल्हाड़े को उठा, पिता की पीठ की ओर खड़े हो, "मच्छर को मारूँगा"(सोच) पिता के सिर के दो टुकड़े कर दिये। बढ़ई वहीं मर गया। बोधिसत्त्व ने उसके उस कर्म को देख कर सोचा—"बुद्धिमान् शत्रु भी अच्छा है। वह दण्ड से भयभीत होकर भी मनुष्यों को नहीं मारेगा।" यह सोच, यह गाथा कही—

सेय्यो अमित्तो मतिया उपेतो,
नत्वेव मित्तो मतिविप्पहीनो,
मकसं वधिस्सन्ति हि एळमूगो
पुत्तो पितु अब्भिदा उत्तमङ्गं ॥

[बुद्धिमान् शत्रु (=अमित्र) भी अच्छा है। मूर्ख मित्र अच्छा नहीं। जड़-मति पुत्र ने "मच्छर को मारूँगा" सोच पिता के सिर को फाड़ दिया।]

सेय्यो=प्रवर=उत्तम। **मतिया उपेतो**=प्रज्ञा से युक्त। **एळमूगो**= लार-मुख=मूर्ख। **पुत्तो पितु अब्भिदा उत्तमङ्गं** अपनी मूर्खता के कारण पुत्र हो कर भी, "मच्छर को मारूँगा" (करके) पिता के सिर के दो टुकड़े कर दिये। इसलिए मूर्ख-मित्र की अपेक्षा बुद्धमान् शत्रु भी अच्छा है।

यह गाथा कह, बोधिसत्त्व, उठ कर, यथा-कर्म गये। बढ़ई के रिश्तेदारों ने उसका शरीर-कृत्य किया।

शास्ता ने, 'उपासको ! पूर्व समय में भी मच्छर को मारेंगे' (करके) एक दूसरे को मार डालने वाले मनुष्य थे—यह धर्म-देशना लाकर, मेल मिला कर, जातक का सारांश निकाला। उस समय गाथा कह कर चले जाने वाला व्यापारी तो मैं ही था।

४५. रोहिणी जातक

"**सेय्यो अमित्तो**...." यह गाथा शास्ता ने **जेतवन** में विहार करते समय, **अनाथपिण्डिक** सेठ की एक दासी के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

अनाथपिण्डिक की एक **रोहिणी** नाम की दासी थी। (एक दिन) **उसकी वृद्धा**

माता, उस (दासी) के धान कूटने के स्थान पर आकर लेट गई। मक्खियाँ, उसे घेर कर, सूई के बींधने की तरह काटने लगीं। उसने लड़की (=दासी) को कहा—"अम्म ! मुझे मक्खियाँ काटती हैं। इन्हें हटा।" उसने "अम्म ! हटाती हूँ" कह, 'मूसल उठा कर माता के शरीर पर (बैठी) मक्खियों को मार कर नष्ट करूँगी' (सोच) माता को मूसल का प्रहार दे, (उसे) मार डाला। उसे (मरा) देख, 'माता मर गई' (सोच) रोना आरम्भ किया। वह बात सेठ को कही गई। सेठ ने उसका शरीर-कृत्य करवा, विहार जा कर, वह सब बात शास्ता को कही। शास्ता ने, गृहपति ! न केवल अभी इसने, 'माता के शरीर की मक्खियों को मारूँगी' (सोच) उसे, मूसल से मार डाला है, पूर्व (-जन्म)में भी मार डाला है कह, सेठ के याचना करने पर, पूर्वजन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में बाराणसी में (राजा) **ब्रह्मदत्त** के राज्य करने के समय, बोधिसत्त्व (एक) सेठ के कुल में उत्पन्न हुए थे। पिता की मृत्यु पर वह श्रेष्ठी के पद पर आरूढ़ हुए। उसकी भी **रोहिणी** नाम की दासी थी। उसने भी अपने धान कूटने के स्थान पर, आकर लेटी माता के, 'अम्म ! मेरी मक्खियाँ हटा' कहने पर, इसी प्रकार मूसल का प्रहार दे, माता के जीवन का नाश कर, रोना शुरू किया। बोधिसत्त्व ने इस वृत्तान्त को सुन, 'बुद्धिमान शत्रु भी अच्छा है' सोच, यह गाथा कही—

सेय्यो अमित्तो मेधावी यञ्चे बालानुकम्पको,
पस्स रोहिणिकं जम्मि मातरं हन्त्वान सोचती ॥

[मूर्ख दयालु (=मित्र) की अपेक्षा बुद्धिमान् शत्रु अच्छा है। मूर्ख रोहिणी को देखो। माता को मारकर (अब) सोचती है।]

मेधावी=पण्डित=ज्ञानी=बुद्धिमान्। **यञ्चे बालानुकम्पको**—इसमें **'यं'** में लिङ्ग-परिवर्तन कर दिया। **'चे'** निपात है। अर्थ यही है कि जो मूर्ख मित्र है, उसकी अपेक्षा बुद्धिमान (आदमी) शत्रु होने पर भी, सौ गुना,

हज़ार गुना अच्छा है। अथवा 'यं', प्रतिषेधार्थ निपात है; तो इसका अर्थ हुआ कि मूर्खमित्र नहीं। **जम्मि**=जड़-बुद्धि। **मातरं हन्त्वान सोचति**, 'मक्खियों को मारूँगी' करके माता को मार, अब यह मूर्खा, अपने आप ही रोती है, पीटती है। इस कारण से, 'इस लोक में बुद्धिमान् शत्रु भी अच्छा है' कह, बोधिसत्त्व ने बुद्धिमान की प्रशंसा करते हुए, इस गाथा से धर्मोपदेश किया।

शास्ता ने, 'गृहपति! न केवल अभी इसने 'मक्खियों को मारूँगी' (सोच), माता को मार डाला है, पहले भी मारा था'—यह धर्म-देशना लाकर, मेल मिला कर, जातक का सारांश निकाला। उस समय, माता ही माता थी, लड़की ही लड़की, और महाश्रेष्ठी तो मैं ही था।

४६. आरामदूसक जातक

"**न वे अनत्थकुसलेन**. . . ." यह गाथा शास्ता ने कोसल (देश) के एक गामड़े के बाग-बिगाड़ने वाले के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

शास्ता कोसल में विचरते हुए एक गाँव में पहुँचे। वहाँ एक गृहस्थ ने भगवान् को निमन्त्रित कर, अपने उद्यान में बिठा, बुद्ध-सहित भिक्षु-संघ को (भोजन-)दान देकर कहा—"भन्ते! इस उद्यान में यथारुचि विहार करें।"

भिक्षुओं ने उठ कर, माली को (साथ) ले, उद्यान में घूमते हुए एक आँगन जैसी जगह को देख कर माली से पूछा—"उपासक! इस उद्यान में और (सब) जगह घनी छाया है। लेकिन इस जगह कोई वृक्ष वा गाछ नहीं है। इसका क्या कारण है?"

"भन्ते ! इस बाग के लगाने के समय, एक गँवार लड़का पानी सींचते हुए, इस जगह के पौदों को उखाड़ उखाड़ कर उनकी जड़ों की गहराई के अनुसार पानी सींचता था। सो वह पौदे कुम्हला कर मर गये। इसी कारण से यह स्थान आँगन (सा) हो गया।"

भिक्षुओं ने शास्ता से जाकर, यह बात कही। शास्ता ने, "भिक्षुओ ! न केवल अभी वह गँवार लड़का बाग-बिगाड़ने वाला है, पहले भी वह बाग-बिगाड़ने वाला था" कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में **बाराणसी** में (राजा) **ब्रह्मदत्त** के राज्य करते समय, बाराणसी में उत्सव (=नक्षत्र) की घोषणा की गई। उत्सव-भेरी के शब्द सुनने के बाद से, सभी नगर निवासी उत्सव की मस्ती में घूमने लगे। उस समय राजा के उद्यान में बहुत से बन्दर रहते थे। माली ने सोचा—"नगर में उत्सव की घोषणा हुई है। इन बानरों को 'पानी सींचो' कह कर, मैं उत्सव में खेलने जाऊँगा।" उसने ज्येष्ठ बानरों के सर्दार के पास जाकर पूछा—"सौम्य बानर-राज ! इस उद्यान से तुम्हें भी बहुत फायदा है। तुम इसके फल-फूल-पत्ते खाते हो। नगर में उत्सव उद्घोषित हुआ है। मैं उत्सव में खेलने जाना चाहता हूँ। जब तक मैं लौट कर आऊँ, क्या तुम तब तक इस उद्यान के पौदों में पानी सींच सकते हो ?"

"अच्छा ! सींचेंगे।"

"तो आलस्य-रहित रहना," (कह) वह (उन्हें) पानी सींचने के लिए चरसा और लकड़ी के बरतन देकर चला गया। चरसा और लकड़ी के बरतन लेकर, बानर पौदों में पानी सींचने लगे। तब उन्हें बानरों के सर्दार ने कहा—"बानरो ! जल रक्षणीय है। तुम पौदों में पानी सींचते समय (उन्हें) उखाड़ उखाड़ कर, (उनकी) जड़ें देख कर, गहरी जड़ वाले पौदों में बहुत पानी सींचो, जिनकी जड़ें गहरी नहीं हैं, उनमें थोड़ा। पीछे हमें पानी मिलना दुर्लभ हो जायगा।"

उन्होंने 'अच्छा' कह स्वीकार कर, वैसा ही किया। उस समय एक बुद्धिमान् आदमी ने उन बानरों को राजोद्यान में वैसा करते देख, पूछा—"बानरो !

तुम किस लिए पौदों को उखाड़ उखाड़, उनकी जड़ (की गहराई) के अनुसार पानी सींच रहे हो ?"

उन्होंने जवाब दिया—"हमारे सर्दार ने हमें, ऐसा ही करने को कहा है।" उसने उन (बानरों) की बात सुन, 'अहो ! मूर्ख (लोग) उपकार करने का मन करके, अपकार ही करते हैं' (सोच) यह गाथा कही—

न वे अनत्थकुसलेन अत्थचरिया सुखावहा,
हापेति अत्थं दुम्मेधो कपि आरामिको यथा ।।

[उपकार(=अनर्थ)=करने में अचतुर आदमी का उपकार(=अर्थ) करना भी सुखदायक नहीं होता। माली-बन्दर की तरह, मूर्ख आदमी, काम की हानि ही करता है।]

वे, निपात मात्र है। **अनत्थकुसलेन**, अनर्थ=अनायतन में दक्ष, अथवा आयतन=कारण (=मतलब की बात) में अदक्ष। **अत्थचरिया** (=उन्नति) वृद्धि-क्रिया। **सुखावहा**, इस प्रकार के अनर्थ करने में दक्ष (आदमी) से शारीरिक-मानसिक सुख नामक अर्थ की चरिया सुख-कारक नहीं होती, मतलब है कि प्राप्त नहीं की जा सकती। किस वजह से ? सर्व प्रकार से ही **हापेति अत्थं दुम्मेधो**, मूर्ख आदमी, उपकार करूँगा (करके) उपकार का नाश कर, अपकार ही करता है। **कपि आरामिको यथा**, आराम (=बाग) में नियुक्त, बाग का रक्षक बन्दर, उपकार करूँगा (करके) अपकार ही करता है। इस प्रकार जो अर्थ-कुशल नहीं है, वह भलाई का काम(=अत्थचरिया) नहीं कर सकता; वह निश्चय से अपकार ही करता है।

इस प्रकार, उस बुद्धिमान् आदमी ने, इस गाथा से, ज्येष्ठ बानरों के सर्दार की निन्दा की (और) अपनी परिषद् को लेकर उद्यान से निकल आया। शास्ता ने, "भिक्षुओ ! न केवल अभी यह गँवार लड़का बाग-बिगाड़ने वाला हुआ है, पहले भी बाग-बिगाड़ने वाला ही हुआ है" (कह) इस धर्म-देशना को लाकर, मेल मिला, जातक का सारांश निकाल दिखाया। उस समय का बानरों का सर्दार (अब का) बाग-बिगाड़ने वाला लड़का था; और बुद्धिमान् आदमी तो मैं ही था।

४७. वारुणी जातक

"**न वे अनत्थकुसलेन**. . . ." यह गाथा शास्ता ने **जेतवन** में विहार करते समय, एक शराब बिगाड़ देने वाले के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

एक शराब का व्यापारी **अनाथपिण्डिक** का मित्र तेज़ शराब बनाकर, हिरण्य, सोना आदि लेकर बेचता था। (एक दिन) वह बेचते बेचते, बहुत ग्राहकों के इकट्ठे हुए रहने के समय, अपने शिष्य को, "तात ! तू (इनसे) मूल्य ले ले कर शराब दे" कह, (अपने) नहाने चला गया। शागिर्द ने लोगों को शराब देते हुए देखा कि (लोग) बीच बीच में नमक की डली मँगवा कर, खाते हैं। यह देख, उसने 'शराव अलूनी होगी' (सोच) 'इसमें निमक डालूँगा' (करके) शराब की चाटी में नालिका[1] भर कर निमक डाल, लोगों को शराब दी। उन्होंने मुँह भर कर थूक, (कर) पूछा—"यह तूने क्या किया ?"

"तुम्हें शराब पीते पीते निमक मँगवाते देखकर, (इसमें) निमक मिला दिया।"

"ऐसी अच्छी शराब को ख़राब कर दिया। मूर्ख कहीं का" कह, उसकी निन्दा करते, उठ कर चले गये।

शराब के व्यापारी ने आकर, एक को भी न देख, पूछा—"शराब के पीने वाले कहाँ चले गये ?"

शागिर्द ने सब हाल कहा। उसके मालिक ने, 'मूर्ख ! तूने इतनी अच्छी शराब बिगाड़ दी' कह, उसकी निन्दा कर, यह वृत्तान्त **अनाथपिण्डिक** से कहा।

[1] अनाज का एक नाप।

अनाथपिण्डिक ने 'कहने के लिए बात है' सोच, **जेतवन** जा, शास्ता को प्रणाम कर, यह बात कही। शास्ता ने, 'गृहपति ! न केवल अभी यह शराब बिगाड़ने वाला हुआ है, पहले भी यह शराब बिगाड़ने वाला था" (कह) उसके प्रार्थना करने पर पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में **बाराणसी** में (राजा) **ब्रह्मदत्त** के राज्य करने के समय, बोधिसत्त्व, बाराणसी के सेठ थे। उनके आश्रित एक शराब का व्यापारी जीविका करता था। वह तेज़ शराब बनाकर शागिर्द को 'इसे बेच' कह कर, (अपने) नहाने चला गया। उसके जाते ही शागिर्द ने शराब में निमक डाल कर, इसी प्रकार शराब ख़राब कर डाली। सो उसके गुरु ने आकर, वह हाल मालूम कर श्रेष्ठी को कहा। श्रेष्ठी ने उपकार करने में अदक्ष मूर्ख (लोग) उपकार करेगें (करके) अपकार ही करते हैं, (कह) यह गाथा कही—

न वे अनत्थकुसलेन अत्थचरिया सुखावहा,
हापेति अत्थं दुम्मेधो कोण्डञ्ञो वार्रुण यथा ॥

[उपकार (=अनर्थ) करने में अदक्ष आदमी का उपकार (=अर्थ) करना भी सुखदायक नहीं होता। कोण्डज्ज (नामक) अन्तेवासिक के शराब बिगाड़ देने की तरह, मूर्ख आदमी अर्थ (=काम) की हानि कर डालता है।]

कोण्डञ्ञो वारुणिं यथा, जैसे इस कोण्डञ्ञ नामक अन्तेवासिक ने 'अच्छा करता हूँ' (करके) निमक डाल कर, शराब बिगाड़ दी, ख़राब कर दी, विनाश कर दी। इस प्रकार सभी अनर्थ-कुशल अर्थ (=काम) को बिगाड़ डालते हैं। बोधिसत्त्व ने इस गाथा से धर्मोपदेश दिया।

शास्ता ने भी, "गृहपति ! न केवल अभी यह शराब बिगाड़ने वाला हुआ है, पहले भी यह शराब बिगाड़ने वाला ही था" कह, मेल मिला, जातक का सारांश निकाल दिया। उस समय का शराब-बिगाड़ने वाला, अब का भी शराब-बिगाड़ने वाला हुआ। लेकिन वाराणसी का श्रेष्ठी तो मैं ही था।

४८. वेदब्भ जातक

"**अनुपायेन यो अत्थं....**" यह गाथा, शास्ता ने **जेतवन** में विहार करते समय (एक) बात न मानने वाले भिक्षु के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

उस भिक्षु को, शास्ता ने, "भिक्षु ! न केवल अभी तू बात न मानने वाला है, पहले भी तू बात न मानने वाला ही था। उसी कारण से, बुद्धिमानों की बात न मान, तेज तलवार से दो टूक हो रस्ते पर गिरा। और तेरे एक के कारण एक हज़ार आदमियों के प्राण की हानि हुई।" कह, पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में **बाराणसी** में (राजा) **ब्रह्मदत्त** के राज्य करने के समय, एक गाँव में, एक ब्राह्मण **वेदर्भ** नामक मन्त्र जानता था। वह मन्त्र बेश-कीमत था, महामूल्यवान् था। नक्षत्रों का योग होने पर, उस मन्त्र का जप कर, आकाश की ओर देखने से सात रत्नों की वर्षा होती थी। उस समय बोधिसत्त्व उस ब्राह्मण के पास विद्या सीखते थे। सो एक दिन वह ब्राह्मण किसी भी काम से, बोधिसत्त्व को (साथ) लेकर, अपने ग्राम से निकल **चेतिय राष्ट्र**[1] (की ओर) गया। रास्ते में, एक जंगल की जगह में, पाँच सौ 'पेसनक चोर' मुसाफिरों पर डाका डालते थे। उन्होंने बोधिसत्त्व और वैदर्भ ब्राह्मण को पकड़ लिया। यह चोर, 'पेसनक चोर' क्यों कहलाते थे ? वह दो जनों को पकड़ कर, उनमें

[1] **वर्तमान पूर्वी बुन्देलखण्ड।**

से एक को धन लाने के लिए भेजते थे, इसलिए पेसनक (=प्रेषनक=भेजने वाले) चोर कहलाते थे। वे, पिता-पुत्र को पकड़ कर, पिता को कहते, 'तू हमारे लिए धन लाकर, पुत्र को ले जाना, इसी प्रकार माँ-बेटी को पकड़ कर, माँ को भेजते, ज्येष्ठ-कनिष्ठ भाइयों को पकड़ कर ज्येष्ठ भाई को भेजते, (और) गुरु-शिष्य को पकड़ कर शिष्य को भेजते। सो, उस समय भी, उन्होंने वैदर्भ-ब्राह्मण को पकड़े रख कर, बोधिसत्त्व को भेजा।

बोधिसत्त्व ने आचार्य्य को प्रणाम कर, कहा—"मैं एक दो दिन में आ जाऊँगा। आप डरियेगा नहीं। और मेरा कहना करना। आज धन वर्षाने का नक्षत्रयोग होगा। आप दुःख को न सह सकने के कारण, मन्त्र का जाप कर, धन मत बरसाना। यदि बरसाओगे, तो तुम और यह पाँच सौ चोर—सभी—नाश को प्राप्त होंगे।" इस प्रकार आचार्य्य को उपदेश (=सलाह) देकर, वे धन लाने के लिए चले गये। चोरों ने सूर्यास्त होने पर ब्राह्मण को बाँध कर डाल दिया। उसी समय पूर्व दिशा की ओर से परिपूर्ण चन्द्रमण्डल उगा। ब्राह्मण ने तारों की ओर देखते हुए धन बरसाने के नक्षत्र-योग को देख, सोचा—"मैं किस लिए दुःख अनुभव करूँ? क्यों न मन्त्र का जाप करूँ और रत्नों की वर्षा वर्षाकर चोरों को धन देकर, सुख पूर्वक चला जाऊँ।" उसने चोरों को सम्बोधित किया—"चोरो! तुमने मुझे किस लिए पकड़ रक्खा है?"

"आर्य! धन के लिए।"

"यदि, धन की आवश्यकता है, तो शीघ्र ही मुझे बन्धन से खोल, सिर से नहला, नवीन वस्त्र पहना, सुगन्धियों का लेप कर, फूल-मालायें पहिना कर, बिठाओ।" चोरों ने उसकी बात सुन, वैसा ही किया।

ब्राह्मण ने नक्षत्र-योग जान, मन्त्र जाप कर आकाश की ओर देखा। उसी समय आकाश से रत्न गिरे। चोर उस धन को इकट्ठा कर, (अपने अपने) उत्तरीय में गठरी बाँध, भागे। ब्राह्मण भी उनके पीछे ही पीछे गया। तब उन चोरों को दूसरे पाँच सौ चोरों ने पकड़ लिया।

"हमें किस लिए पकड़ा है?" पूछने पर, उत्तर मिला, "धन के लिए पकड़ा है।" "यदि धन की आवश्यकता है, तो इस ब्राह्मण को पकड़ो। यह, आकाश की ओर देख कर धन वर्षावेगा। हमें भी यह धन इसी ने दिया है।"

चोरों ने उन चोरों को छोड़ कर ब्राह्मण को पकड़ा, और कहा—"हमें भी धन दो।" ब्राह्मण ने कहा—"मैं तुम्हें धन दूँ, लेकिन धन बरसाने का नक्षत्रयोग (अब) एक वर्ष बाद होगा। यदि धन से मतलब है, तो सबर करो, मैं तब धन की वर्षा बरसाऊँगा।" चोरों ने क्रुद्ध होकर, 'अरे। दुष्ट ब्राह्मण ! औरों के लिए अभी धन वर्षा कर, हमें अगले वर्ष तक प्रतीक्षा कराता है' कह, (वहीं) तेज़ तलवार से ब्राह्मण के दो टुकड़े कर, (उसे) रास्ते पर डाल दिया। (फिर) जल्दी से उन चोरों का पीछा कर, उनके साथ युद्ध किया; और उन सब को मार कर, धन ले फिर (आपस में) दो हिस्से हो, एक दूसरे से युद्ध किया; और ढाई सौ जनों को मारा। इस प्रकार जब तक (केवल) दो जने बाकी रह गये, तब तक एक दूसरे को मारते रहे।

इस प्रकार उन (एक) सहस्र आदमियों के विनष्ट होने पर, उन दोनों जनों ने उपाय से धन को लाकर, एक ग्राम के समीप, जंगल में छिपाया। (उन दोनों में से) एक खड्ग लेकर धन की हिफ़ाज़त करने लगा। दूसरा, चावल लेकर, भात पकवाने के लिए गाँव में गया। लोभ विनाश का मूल ही है। धन के पास बैठे हुए ने सोचा—"उसके आने पर धन के दो हिस्से करने होंगे। क्यों न मैं, उसे आते ही खड्ग के प्रहार से मार दूँ।" सो वह खड्ग को तैयार कर, बैठा, और उसके आने की प्रतीक्षा करने लगा। दूसरे ने भी सोचा—"उस धन के दो हिस्से (करने) होंगे। सो, मैं, भात में विष मिला कर, उस आदमी को खिलाऊँ; इस प्रकार उसका प्राण नाश कर, सारे धन को अकेला ही ले लूँ।" उसने भात के तैयार हो जाने पर, अपने खा, शेष भात में विष मिला, (उसे) लेकर वहाँ गया। उसके भात उतार कर रखते ही, दूसरे ने खड्ग से दो टुकड़े करके, उसे छिपी जगह में छोड़, अपने भी उस भात को खा, वहीं प्राण गँवाये।

इस प्रकार, उस धन के कारण सभी विनाश को प्राप्त हुए। बोधिसत्त्व भी एक दो दिन में धन लेकर आ गये। (उन्होंने) वहाँ आचार्य्य को न पा, और बिखरे धन को देख (सोचा)—'आचार्य्य ने मेरी बात न मान धन बरसाया होगा। और सब विनाश को प्राप्त हुए होंगे।' (यह सोच) महा-मार्ग से चले। चलते चलते आचार्य्य को, सड़क पर दो टुकड़े हुए पड़ा देख, 'मेरा कहना न मान कर मरा' (सोच) लकड़ियाँ चुन, चिता बना, आचार्य्य का दाह-कर्म

किया और उसे वन-पुष्पों से पूजा। आगे चलकर, पाँच सौ मरे हुए, उससे आगे ढाई सौ, इसी प्रकार क्रम से आख़ीर में दो जनों को मरा देख कर, सोचा—"यह दो कम एक हज़ार (जने) विनाश को प्राप्त हुए। दूसरे दो जने (भी) चोर होंगे, और वे भी सँभल न सके होंगे। वे कहाँ गये?" सोचते हुए उनके धन लेकर जंगल में घुसने के मार्ग को देख, जाकर, गठरी बँधी धन की राशि को देखा। वहाँ एक को भात की थाली को परोस कर, मरा पाया। तब इन्होंने 'यह यह किया होगा'—यह सब जान, 'वह (दूसरा) आदमी कहाँ है?' सोचते हुए उसे भी जंगल में फेंका पड़ा देख, सोचा—हमारे आचार्य्य ने मेरी बात न मान, अपने बात न मानने के स्वभाव के कारण, अपने भी प्राण गँवाये, और दूसरे हज़ार जनों का भी नाश किया। अनुचित मार्ग से अपनी उन्नति चाहने वाला, हमारे आचार्य्य की तरह महाविनाश को ही प्राप्त होता है। यह सोच, यह गाथा कही—

अनुपायेन यो अत्थं इच्छति सो विहञ्ञति,
चेता हनिंसु वेदब्भं सब्बे ते व्यसनमज्झगु॥

[जो अनुचित मार्ग से अर्थ (=धन) चाहता है, वह विनाश को प्राप्त होता है। चेतिय-देश के चोरों ने वैदर्भ ब्राह्मण को मार डाला। (और) वे सब भी मरण को प्राप्त हुए।]

सो विहञ्ञति, अनुचित रीति से, अपना अर्थ, वृद्धि, सुख चाहता हूँ (करके) अनुचित समय पर प्रयत्न करने वाला आदमी मरता है, दुःख पाता है, महाविनाश को प्राप्त होता है। **चेता,** चेतिय-राष्ट्र वासी चोर। **हनिंसु वेदब्भं,** वैदर्भ मन्त्र वाला होने के कारण, वैदर्भ नाम पड़ जाने वाले ब्राह्मण को मार दिया। **सब्बे तेव्यसनमज्झगु** वे भी सारे के सारे, एक दूसरे को मार कर दुःख (=व्यसन) को प्राप्त हुए।

इस प्रकार बोधिसत्त्व ने 'जैसे हमारे आचार्य्य अनुचित स्थान में प्रयत्न करके, धन वर्षा कर अपने प्राण नाश को प्राप्त हुए, और दूसरों के भी विनाश के कारण हुए; इसी प्रकार और भी जो कोई अनुचित रीति से अपनी उन्नति

की इच्छा करके, प्रयत्न करेंगे, वे सब के सब अपने विनाश को प्राप्त होंगे, तथा औरों के विनाश के कारण बनेंगे' (कह) बन को उन्नादित कर देवताओं के "साधु-साधु" कहते समय, इस गाथा से धर्मोपदेश कर, उस धन को उपाय से अपने घर मँगवा लिया। (फिर) वे दानादि पुण्य करते हुए, जितनी आयु थी, उतने समय तक जीवित रह कर, जीवन के अन्त में, स्वर्ग-मार्ग को पूर्ण करते (परलोक) गये।

शास्ता ने भी, 'भिक्षु ! न केवल अभी तू बात न मानने वाला है, पहले भी तू बात न मानने वाला ही रहा है, और (अपने) बात न मानने के स्वभाव के कारण महाविनाश को प्राप्त हुआ है' (कह) यह धर्म-देशना ला, जातक का सारांश निकाला। "उस समय का वैदर्भ ब्राह्मण (अब का) बात न मानने वाला भिक्षु था। शिष्य तो मैं ही था।"

४९. नक्खत्त जातक

"**नक्खत्तं पतिमानेन्तं. . . .**" यह गाथा, शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय, एक **आजीवक**[1] के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

श्रावस्ती की एक लड़की, दीहात (=जनपद) के एक कुल-पुत्र ने अपने पुत्र के लिए पक्की की। 'अमुक-दिवस (आकर) ले जाऊँगा'—इस प्रकार दिन का निश्चय कर, उस दिन के आने पर, उसने अपने कुल-विश्वासी आजीवक[1] से पूछा—"भन्ते ! आज हम एक मङ्गल करेंगे। क्या नक्षत्र अच्छा

[1] उस समय के नंगे साधुओं का एक सम्प्रदाय।

उसने 'यह मुझे बिना पूछे, पहले दिन निश्चय करके, अब मुझे पूछता है' (सोच) क्रुद्ध हो, 'अच्छा, इसे सबक सिखाऊँगा' (करके) कहा—"आज नक्षत्र अच्छा नहीं। आज मङ्गल-कर्म मत करना। यदि आज मङ्गल-कर्म करोगे, तो महाविनाश होगा।"

उस कुल के आदमी, उस (आजीवक) की बात पर विश्वास कर, उस दिन न गये। नगर-वासियों ने सब मङ्गल-क्रिया (समाप्त) कर, उनको न आते देख, 'उन्होंने आज का दिन निश्चय किया, और वे नहीं आये। हमारा बहुत खर्चा हुआ। हमें उनसे क्या? हम अपनी लड़की (किसी) दूसरे को दे देंगे' (सोच) उस किए कराये मङ्गल-कर्म से लड़की दूसरे को दे दी।

जब पहले के लोगों ने अगले दिन आकर कहा—हमें लड़की दें। उन श्रावस्तीवासियों ने, 'तुम दीहाती गृहस्थी पापी-मनुष्य हो। दिन का निश्चय कर (हमारा) अनादर कर नहीं आये। जिस रास्ते से आये हो, उसी रास्ते से चले जाओ। हमने, लड़की, दूसरों को दे दी है' (कह) उनका मखौल उड़ाया। वे, उनके साथ झगड़ा करके, जिस रास्ते आये थे, उसी रास्ते लौट गये।

उस आजीवक द्वारा, उन मनुष्यों के मङ्गल-कर्म में बाधा डाल दी जाने की बात भिक्षुओं को मालूम हुई। वे भिक्षु धर्म-सभा में बैठे बात-चीत कर रहे थे—"आवुसो! (उस) आजीवक ने (अमुक) कुल के मङ्गल-कर्म में बाधा डाल दी।" शास्ता ने आकर पूछा—"भिक्षुओ! बैठे क्या बात-चीत कर रहे थे?"

उन्होंने कहा—"यह (बातचीत)।"

(शास्ता ने) "भिक्षुओ! न केवल अभी वह आजीवक उस कुल के मङ्गल-कर्म में विघ्न डालने वाला है, पूर्व समय में भी इसने उन पर क्रुद्ध होकर, उनके मङ्गल-कर्म में बाधा डाली थी"—कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में बाराणसी में (राजा) ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय, दीहातियों (=जनपदवासियों) ने नगरवासियों की लड़की पक्की करके, दिन का निश्चय कर, अपने कुल के विश्वासी आजीवक से पूछा—"भन्ते! आज हमारी एक मङ्गल-क्रिया है। क्या नक्षत्र अच्छा है?" उसने, 'यह अपनी

रुचि अनुसार दिन निश्चित करके, अब मुझे पूछते हैं' (सोच) क्रुद्ध हो 'आज इनके मङ्गल-कर्म में बाधा डालूँगा' (निश्चय कर) कहा—"आज नक्षत्र अच्छा नहीं। यदि (मङ्गल-कर्म) करोगे, तो महाविनाश को प्राप्त होगे।"

वे उसकी बात पर विश्वास कर, न गये। जनपदवासियों ने उनको न आता देख, 'वे आज दिन निश्चित करके नहीं आये। हमें उनसे क्या?' (सोच) औरों को लड़की दे दी। नगरवासियों ने अगले दिन आकर लड़की माँगी। जनपदवासियों ने (उत्तर दिया)—"तुम नगरनिवासी निर्लज्ज गृहस्थ हो। दिन निश्चित करके (भी) लड़की को नहीं लेते। तुम्हें न आता देख, हमने (लड़की) दूसरों को दे दी।"

"हम आजीवक को पूछ कर, उसके नक्षत्र अच्छा नहीं है, कहने के कारण नहीं आये। (अब) हमें लड़की दो।"

"हमने तुम्हारे न आने के कारण, लड़की दूसरों को दे दी। हम दी हुई लड़की को वापिस कैसे लें।" इस प्रकार उनके आपस में एक दूसरे के साथ कलह करते समय, एक नगरनिवासी बुद्धिमान् आदमी किसी काम से दीहात (=जन-पद) में आया। उन नगरनिवासियों को 'हम आजीवक को पूछ कर, (उसके) 'नक्षत्र अच्छा नहीं है' कहने के कारण, नहीं आये' कहते सुन 'नक्षत्र से क्या प्रयोजन? क्या लड़की का मिलना ही नक्षत्र नहीं है?' कह, यह गाथा कही—

नक्खत्तं पतिमानेन्तं अत्थो बालं उपच्चगा,
अत्थो अत्थस्स नक्खत्तं किं करिस्सन्ति तारका॥

["नक्षत्र देखते रहने वाले मूर्ख आदमी का काम नष्ट हो जाता है (=जाता रहता है)। मतलब की सिद्धि (=अर्थ) ही मतलब का नक्षत्र है। तारे क्या करेंगे?"]

पतिमानेन्तं, देखते हुए के, अब नक्षत्र होगा, अब नक्षत्र होगा, इस प्रकार प्रतीक्षा करते हुए के। **अत्थो बालं उपच्चगा,** इस नगरनिवासी मूर्ख ने लड़की की प्राप्ति नामक मतलब की बात (=अर्थ) गँवा दी। **अत्थो अत्थस्स नक्खत्तं,** जिस मतलब को खोजता है, उसकी प्राप्ति ही, उस मतलब का नक्षत्र है। **किंकरिस्सन्ति तारका**—दूसरे आकाश के तारे क्या करेंगे? मतलब,

किस अर्थ को साधेंगे ? नगरवासी झगड़ा करके लड़की को बिना पाये ही चले गये।

शास्ता ने भी, भिक्षुओ ! न केवल अभी, यह आजीवक इस कुल के मङ्गल-कार्य्य में बाधा डालता है, (इसने) पहले भी बाधा की थी—यह धर्म-देशना लाकर मेल मिला जातक का सारांश निकाला। उस समय का आजीवक अब का आजीवक ही था। उस समय के कुल भी, यह अब के कुल ही थे। उस समय गाथा कह कर खड़े होने वाला बुद्धिमान् आदमी तो मैं ही था।

५०. दुम्मेध जातक

"**दुम्मेधानं....**" यह गाथा, बुद्ध ने **जेतवन** में विहार करते समय, लोकोपकार के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

वह (कथा) बारहवें परिच्छेद की **महाकण्ह जातक**[1] में आयेगी।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में **बाराणसी** में (राजा) **ब्रह्मदत्त** के राज्य करते समय, बोधिसत्त्व ने उस राजा की पटरानी की कोख में जन्म ग्रहण किया। माता की कोख से निकलने पर, नाम ग्रहण के दिन (उसका) नाम ब्रह्मदत्त कुमार रक्खा गया। जब वह (कुमार) सोलह वर्ष का हो गया; तो **तक्षिला** जा विद्या

[1] जातक (४६९)

सीख कर, तीनों वेदों[1] तथा अट्ठारह विद्याओं[1] में पूर्णता प्राप्त की। तब उसके पिता ने उसे उप-राज (युवराज) बना दिया।

उस समय बाराणसी-निवासी देवताओं के भक्त थे। (वे) देवताओं को नमस्कार करते थे और बहुत सी भेड़, बकरी, मुर्गे, सूअर आदि को मार, नाना प्रकार के पुष्प-गन्धों तथा रक्त-मांस के साथ बलिकर्म करते थे।

बोधिसत्त्व ने सोचा—"इस समय लोग देवताओं की भक्ति में बहुत प्राण-बध करते हैं। साधारण लोग अधिकांश तौर पर, अधर्म में ही नियुक्त हैं। मैं पिता के मरने पर, राज्य प्राप्त कर किसी को भी बिना कष्ट दिये, ढंग (=उपाय) से ही किसी को प्राण-बध न करने दूँगा।" उसने एक दिन रथ पर चढ़ नगर से निकल कर देखा कि एक बड़े भारी बरगद के वृक्ष के नीचे बहुत से लोग एकत्रित हुए हैं, और उस वृक्ष में रहने वाले देवता से, पुत्र, पुत्री, यश, धन आदि जो जो चाहते हैं, सो सो माँगते हैं। वह रथ से उतर कर उस वृक्ष के पास गया। गन्धपुष्प से उसकी पूजा की। जल से उसका अभिषेक किया। और उसकी प्रदक्षिणा की। इस प्रकार उस देवता का भक्त बन, उसे नमस्कार किया। (फिर) रथ पर चढ़ नगर में प्रविष्ट हुआ।

उस समय से, इसी प्रकार, बीच बीच में वहाँ जाकर देवता के भक्त की तरह पूजा करता। कुछ समय के बाद पिता की मृत्यु होने पर, उसने राज्य-पद पर प्रतिष्ठित हो, चार अगतियों से बच, दस राज-धर्मों के विरुद्ध न जा, धर्मपूर्वक राज्य करते हुए सोचा—"मेरी इच्छा पूरी हुई। मैं राज्य पर प्रतिष्ठित हुआ। अब मैंने, जो पहले एक बात सोची थी, उसे पूरा करूँगा।" (यह सोच) अमात्यों, तथा ब्राह्मण गृहपति आदि को एकत्रित करवा, (उन्हें) सम्बोधित किया — "भो! क्या आप जानते हैं कि मुझे राज्य क्यों मिला?"

[1] (१ ऋक्वेद, यजुर्वेद, सामवेद,) २ स्मृति, ३ व्याकरण, ४ छन्दोविचिति, ५ निरुक्त, ६ ज्योतिष, ७ शिक्षा, ८ मोक्ष-ज्ञान, ९ क्रियाविधि, १० धनुर्वेद, ११ हस्तिशिक्षा, १२ कामतन्त्र, १३ लक्षण, १४ पुराण, १५ इतिहास, १६ नीति, १७ तर्क तथा १८ वैद्यक—यह अट्ठारह विद्यायें हैं।

"देव ! नहीं जानते हैं।"

"क्या मुझे, (कभी) अमुक बड़ वृक्ष को, गन्ध आदि से पूजते तथा हाथ जोड़ कर नमस्कार करते हुए देखा है ?"

"देव ! हाँ (देखा) है।" "उस समय मैंने मिन्नत मानी थी कि यदि मुझे राज्य मिलेगा, तो मैं तुम्हारे (निमित्त) बलि-कर्म करूँगा। मुझे यह राज्य, इन्हीं देवता के प्रताप से मिला है। सो मैं अब इनका बलि-कर्म करूँगा। तुम देर न करो, शीघ्र ही देवता के बलि-कर्म की तैयारी करो।"

"देव ! क्या क्या (चीजें) लें।"

मैंने देवता की प्रार्थना करते हुए, यह मिन्नत मानी थी कि जो मेरे राज्य में हिंसा (=प्राण-घात) आदि पाँच दुःशीलकर्म तथा दस अकुशल कर्म करने में लगे रहते हैं, उन्हें मार कर, उनकी आँत की बत्ति, रक्त-मांस आदि से बलि-कर्म करूँगा। सो तुम यह मुनादी करवा दो—"हमारे राजा ने उप-राज रहते समय ही यह मिन्नत मानी थी, कि यदि मुझे राज्य मिलेगा, तो जो मेरे राज्य में दुःशील होंगे, उन सब को मार बलि-कर्म करूँगा। सो, नगरवासी जान लें कि अब वह पाँच प्रकार, तथा दस प्रकार के दुःशील कर्म करने वाले एक हज़ार जनों को मरवा कर, उनके हृदय मांस आदि लिवा कर, उससे देवता का बलि-कर्म करने का इच्छुक है। (यह कह कर) जो अब से लगा कर दुःशील कर्मों में अनुरक्त रहेंगे, उनके एक सहस्र जने मार कर, यज्ञ करके मिन्नत से मुक्त होऊँगा।" इस अर्थ का प्रकाश करते हुए यह गाथा कही—

दुम्मेधानं सहस्सेन यञ्ञो मे उपयाचितो,
इदानि खो हं यजिस्सामि बहू अधम्मिको जनो ॥

[मैंने एक सहस्र दुर्बुद्धि (मनुष्यों) की (बलि देकर), यज्ञ करने की मिन्नत मानी थी। सो मैं अब यज्ञ करूँगा, (क्योंकि) अधार्मिक जन (तो) बहुत हैं।]

"**दुम्मेधानं सहस्सेन....**" यह काम करना चाहिए, यह नहीं करना चाहिए, (यह) न जानने से, अथवा दस प्रकार के अकुशल कर्मों में लगे रहने से, दुष्ट-मेधा वाले =दुर्मेधा, उन दुर्बुद्धि=प्रज्ञा-रहित=मूर्ख मनुष्यों को

गिन कर, एक हज़ार । **यञ्ञो मे उपयाचितो,** मैंने देवता के पास जाकर मिन्नत मानी कि इस प्रकार यज्ञ करूँगा । **इदानि स्वो हं यजिस्सामि,** सो मैं मिन्नत (के प्रताप) से राज्य प्राप्त कर लेने के कारण अब यज्ञ करूँगा । क्यों ? क्योंकि अभी बहुत अधार्मिक जन हैं । इसलिए अभी उनका बलि-कर्म करूँगा ।"

अमात्यों ने बोधिसत्त्व का बचन सुन, "देव ! अच्छा कह, बारह योजन के बाराणसी नगर में मुनादी फिरवा दी । मुनादी की आज्ञा सुनकर, एक भी दुःशील-कर्म (=कुकर्म) करने वाला आदमी न रहा । सो जब तक बोधिसत्त्व राज्य करते रहे, तब तक एक आदमी भी पाँच वा दस प्रकार के कुकर्मों में से किसी एक कर्म को भी करता न दिखाई दिया । इस प्रकार बोधिसत्त्व किसी एक भी आदमी को कष्ट न दे, सकल राष्ट्रवासियों से सदाचार की रक्षा करवाते हुए, अपने आप भी दान आदि पुण्य करते हुए, जीवन के अन्त में अपनी परिषद् को ले देव-नगर की पूर्ति करते हुए (परलोक को) गये ।

शास्ता ने भी, 'भिक्षुओ ! न केवल अभी तथागत लोक का उपकार करते हैं, पहले भी किया ही है' (कह) इस धर्म-देशना को ला, मेल मिला जातक का सारांश निकाल दिया । उस समय की परिषद् (अब की) बुद्धपरिषद् थी । बाराणसी-राजा तो मैं ही था ।

पहला परिच्छेद

६. आसिंस वर्ग

५१. महासीलव जातक

"**आसिंसेथेव पुरिसो....**" यह गाथा, बुद्ध ने **जेतवन** में विहार करते समय, (एक) हिम्मत-हार भिक्षु के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

बुद्ध ने उसे पूछा—भिक्षु ! क्या तूने सचमुच हिम्मत हार दी ?

"भन्ते ! हाँ" कहने पर "हे भिक्षु ! तूने इस प्रकार के कल्याणकारी शासन में प्रव्रजित होकर, किस लिए हिम्मत हार दी ? पूर्व समय में बुद्धिमानों ने राज्य गँवा कर भी, अपने वीर्य्य (=प्रयत्न) में स्थित रह, (अपने) नष्ट हुए यश को भी फिर पैदा कर लिया" (कह) पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में बाराणसी में (राजा) ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय, बोधिसत्त्व (उस) राजा की पटरानी की कोख से उत्पन्न हुए। उसके नामकरण के दिन, (उसका) नाम **सीलव** कुमार रक्खा गया। सोलह वर्ष की आयु होने पर (वह) सब शिल्पों में पारङ्गत हो गया। पिता के मरने के बाद राज्य पर प्रतिष्ठित हो, महासीलव नामक राजा हुआ। वह अत्यन्त धार्मिक राजा था। नगर के चार द्वारों पर चार (दानशालायें), बीच में एक, प्रवेश-द्वार पर एक, इस प्रकार छः दान-शालायें बनवाकर वह दरिद्र यात्रियों को दान देता हुआ सदाचार की रक्षा करता था। उपोसथ (=व्रत) रखता। शान्ति, मैत्री और दया से युक्त, (वह) गोद में बैठे पुत्र को सन्तुष्ट करने की

तरह सभी प्राणियों को सन्तुष्ट करता हुआ, धर्म-पूर्वक राज्य करता। उसके एक अमात्य ने अन्तःपुर में दूषित कर्म किया। आगे चलकर, उसका पता लग गया। अमात्यों ने राजा से कहा। राजा ने ख्याल रखते हुए, अपने आप प्रत्यक्ष रूप से मालूम करके, उस अमात्य को बुलाकर कहा—"हे अन्ध मूर्ख ! तूने अनुचित किया है। अब तू मेरे राज्य में रहने के योग्य नहीं है। अपने धन और स्त्री-पुत्र को लेकर दूसरी जगह चला जा।" यह कह, उसे देश से निकाल दिया।

वह **काशी** राज्य (=राष्ट्र) को पार कर, **कोशल** नरेश की सेवा में रहता हुआ, क्रम से राजा का आंतरिक विश्वासपात्र हो गया। उसने एक दिन कोशल-नरेश को कहा—"देव ! बाराणसी का राज्य मक्खी-रहित शहद के छत्ते जैसा है। राजा, अत्यन्त कोमल स्वभाव है। थोड़ी सी ही सेना से बाराणसी राज्य जीता जा सकता है।"

राजा ने उसकी बात सुन सोचा—"बाराणसी राज्य महान् है। यह कहता है कि थोड़ी ही सेना से जीता जा सकता है। कहीं यह चर-पुरुष[1] तो नहीं ?" यह सोच कर उसे कहा—"मालूम होता है, तू चर-पुरुष है ?"

"देव ! मैं चर-पुरुष नहीं हूँ। यदि मेरा विश्वास न हो, तो मनुष्यों को भेज कर (काशी-नरेश के) प्रत्यन्त-ग्रामों को नाश करवाओ। (गाँव वालों) के उन आदमियों को पकड़ कर, अपने पास लाने पर, (वह राजा) उन आदमियों को धन देकर छोड़ देगा।"

राजा ने, "यह बड़ी निर्भीकता के साथ बोल रहा है, अच्छा, परीक्षा करूँगा" सोच, अपने आदमियों को भेज कर प्रत्यन्त के ग्रामों को नाश करवाया। लोगों ने चोरों को पकड़ कर बाराणसी-नरेश को दिखाया। राजा ने उन्हें देख पूछा—"तात ! किस लिए गाँव का नाश करते हो ?"

"देव ! जीविका का कोई उपाय न होने से।"

"तो तुम मेरे पास क्यों नहीं आये ? अब आगे से ऐसा मत करना" कह, उन्हें धन देकर विदा किया। उन्होंने जाकर कोशल-नरेश को वह समाचार

[1] सी० आई० डी०।

कहा। इतने से भी आक्रमण करने की हिम्मत न होने के कारण, उसने फिर मध्य-जनपद का नाश करवाया। उन चोरों को भी राजा ने वैसे ही धन देकर छोड़ दिया। इतने पर भी उसने न जाकर, फिर (आदमियों को) भेज कर अन्दर-शहर लुटवाया। राजा ने उन चोरों को भी धन देकर ही लौटा दिया। तब कोशल-नरेश यह जान, कि बाराणसी का राजा अत्यन्त धार्मिक है, बाराणसी राज्य को लेने के लिए सेना लेकर निकला।

उस समय **बाराणसी-नरेश सीलव** महाराज के पास एक हज़ार अभेद्य—शूरतर—महायोधा ऐसे थे, जो सामने से मस्त हाथी के आने पर भी (पीछे) न लौटने वाले थे, सिर पर बिजली के गिरने पर भी न डरने वाले थे, सीलव महाराज की मरज़ी होने पर सारे जम्बूद्वीप का राज्य जीत सकते थे। उन्होंने 'कोशल-नरेश आता है', सुन कर, राजा के पास आकर कहा—"देव ! कोशल-नरेश बाराणसी लेने के इरादे से आ रहा है। हम जायें, और अपने राज्य की सीमा लाँघते ही, उसे पीट कर पकड़ लायें।"

'तात ! मेरे कारण दूसरों को कष्ट न होना चाहिए। जिन्हें राज्य लेना हो, वह राज्य ले लें। मत जाओ।' (कह) उन्हें रोक दिया।

कोशल-राजा ने सीमा लाँघ, जनपद के बीच में प्रवेश किया। अमात्यों ने फिर भी जा कर राजा को वैसे ही कहा। राजा ने पहले ही की तरह मना किया। कोशल-राजा ने नगर के बाहर खड़े होकर **सीलव** महाराज के पास सन्देश भेजा कि 'या तो राज्य दे, अथवा युद्ध करे।'

राजा ने उसे सुन प्रत्युत्तर भेजा—'मेरे साथ युद्ध (करने की आवश्यकता) नहीं। राज्य ले लें।'

फिर भी अमात्यों ने राजा के पास आकर कहा—"देव ! हम कोशल-नरेश को नगर में प्रविष्ट न होने दें ? उसे नगर के बाहर ही पीट कर पकड़ लें ?"

राजा ने पहले ही की तरह उन्हें मना किया। (फिर) नगर-द्वारों को खुलवा कर, हज़ार अमात्यों सहित (अपने) महातल पर सिंहासन के बीच में बैठा।

कोशल-नरेश बड़ी सेना-सवारी के साथ बाराणसी में प्रविष्ट हुआ। उसने एक भी विरोधी-शत्रु को न देख, राजा के निवास (-स्थान) के द्वार पर जा, अमात्यों से घिरे हुए, खुले द्वार वाले राज-महल में अलंकृत-सजे महातल पर

चढ़ कर बैठे निरपराध सीलव महाराजा को उसके सहस्र मन्त्रियों सहित पकड़वा कर (अपने आदमियों को) कहा—"जाओ, अमात्यों सहित इस राजा को, (इनके) हाथ पीछे कस करके बाँध कर, कच्चे श्मशान में ले जाओ। (वहाँ ले जा कर) गले तक गहरे गढ़े खोद कर, जिसमें एक भी हाथ न हिलाया जा सके, वैसे रेत भर कर गाड़ो। रात को शृगाल आकर, जो इनके साथ करना योग्य है, सो करेंगे।"

मनुष्य चोर-राजा की आज्ञा सुन, अमात्यों सहित राजा को, पीछे बाहें कड़ी करके बाँध कैद कर ले गये। उस समय भी सीलव महाराज ने चोर-राजा के प्रति द्वेष-भाव तक नहीं किया। उन बाँध कर लिए जाते अमात्यों में से, राजा की बात के विरुद्ध जाने वाला, एक भी (अमात्य) न था। इतनी सुविनीत थी वह राजा की परिषद। सो वह राजपुरुष अमात्यों सहित सीलव राजा को कच्चे श्मशान में ले गये। (वहाँ) ले जा, गले तक गढ़े खोद, सीलव महाराज को बीच में (और उसके) दोनों ओर शेष अमात्यों को; इस प्रकार सब को गढ़ों में उतार, रेत से भर, ऊपर से घन से कूट कर चले गये। सीलव महाराज ने अमात्यों को सम्बोधित करके उपदेश दिया—"तात! चोर-राजा के प्रति क्रोध न कर मैत्री-भावना ही करो।"

सो आधी रात के समय, मनुष्य मांस खाने के लिए शृगाल आ गये। उन्हें देख, राजा और अमात्यों ने, सब ने एक साथ ही शोर मचाया। शृगाल डर के मारे भाग गये। (लेकिन) ठहर कर, उन्होंने पीछे किसी को न आते देखा। सो वह फिर लौट आये। इन्होंने भी वैसे ही शोर मचाया। इस प्रकार तीन बार भाग कर, फिर देखते हुए, उनमें से किसी एक को भी पीछे न आते देख, 'यह दण्डित होंगे' (सोच), वीर बन कर लौटे। फिर उनके शोर मचाते रहने पर भी नहीं भागे।' स्यारों का सर्दार (=ज्येष्ठ शृगाल) राजा के पास पहुँचा; और बाकी दूसरों के पास। होशियार राजा ने उसे अपने समीप आने दिया, और (गीदड़ को) काटने का मौका देते हुए की तरह, गरदन को उठाया। जब स्यार गरदन काटने आया, तो उसको ठोड़ी की हड्डी से खींच कर यन्त्र में फँसाये की तरह, ज़ोर से पकड़ लिया। हाथी के बल समान बल-शाली राजा की ठोड़ी की हड्डी द्वारा खींच कर गरदन से पकड़े जाने पर, स्यार (जब) अपने को छुड़ा न सका, तो वह मरने से भयभीत होकर, ज़ोर से चिल्ला

उठा। बाकी स्यार उसकी उस चिल्लाहट को सुन कर 'उसे किसी आदमी ने पकड़ लिया होगा' समझ अमात्यों के पास न फटक सकने के कारण सब के सब भाग गये। राजा की ठोड़ी से अच्छी तरह करके पकड़े स्यार के इधर उधर झटके मारने से, रेत ढीली हो गई। उस शृगाल ने भी मरने से भयभीत हो, चारों पाँव से राजा के ऊपर रेत उछाली। राजा ने रेत ढीला हुआ जान, शृगाल को छोड़ दिया। (फिर वह) हाथी के समान शक्तिशाली (राजा) के इधर उधर हिलते डोलते, दोनों हाथों को निकाल, गढ़े के मुँह की मुंडेर पर लटक, वायु से छिन्न हुए बादल की तरह (बाहर) निकल आया। निकल कर, (उसने) अमात्यों को आश्वासन दे, रेत हटा, सब को निकाला। (अब) अमात्यों सहित वह, कच्चे श्मशान में खड़ा हुआ।

उस समय मनुष्य एक मृत-मनुष्य को कच्चे श्मशान में छोड़ने आकर, उसे दो यक्षों की सीमा के बीच में छोड़ गये। उन यक्षों ने उस मृत-मनुष्य को (आपस में) बाँट न सकने पर सोचा—"इसे हम नहीं बाँट सकते। यह सीलव राजा धार्मिक है। यह इसे हमें बाँट कर देगा। इसके पास चलें।" (सो उन्होंने) उस मृत-मनुष्य को पाँव से पकड़ घसीटते घसीटते राजा के पास ले जा कर कहा—देव ! इसे हमें बाँट कर दें।

"यक्षो ! मैं इसे तुम्हें बाँट कर तो दे दूँ, लेकिन मैं अपरिशुद्ध हूँ। पहले, नहाऊँगा।"

यक्षों ने अपने बल से चोर-राजा के लिए रक्खा हुआ, सुगन्धित जल, लाकर, राजा को नहाने के लिए दिया। नहा कर खड़े हुए को, सँभाल कर रक्खे हुए चोर-राजा के वस्त्र लाकर दिये। उन वस्त्रों को पहने खड़े हुए को, चार प्रकार की सुगन्धि की पेटिका लाकर दी। सुगन्धि का लेप करके खड़े हुए को, सोने की पेटिका में, मणि-निर्मित पंखी में रक्खे हुए नाना प्रकार के फूल लाकर दिये। फूलों को पहन कर खड़े होने पर पूछा—"और क्या करें ?" राजा ने कहा कि भूख लगी है। उहोंने जाकर चोर-राजा के लिए सम्पादित नाना प्रकार के अग्ररस भोजन लाकर दिये। नहाकर, (सुगन्धि से) अनुलिप्त, अलंकृत, प्रसन्न चित्त, राजा ने नाना प्रकार के भोजन खाये। यक्ष, चोर-राजा के लिए रक्खा हुआ सुगन्धित जल, सोने की सुराही और सोने के कसोरे सहित ले आये। फिर इस के पानी पी, कुल्ला कर, हाथ

धोने पर, उन्होंने चोर-राजा के लिए तैयार किया, पाँच प्रकार की सुगन्धियों से सुगन्धित पान लाकर दिया। उसको खा चुकने पर पूछा—"अब क्या करें ?" "जाकर चोर-राजा के सिरहाने रक्खी माङ्गलिक-खड्ग लाओ।" वह भी जाकर ले आये। राजा ने तलवार ले, उस मृत-मनुष्य को सीधा खड़ा रखवा, माथे के बीच में तलवार से प्रहार कर, दो टुकड़े कर, दोनों यक्षों को बराबर बराबर बाँट दिया। (उन्हें) दे, तलवार धो, तैयार हो खड़ा हुआ। उन यक्षों ने मनुष्य-मांस खा कर, प्रसन्न हो, संतुष्ट-चित्त हो, राजा से पूछा—"महाराज ! तेरे लिए और क्या करें ?"

"तुम अपने प्रताप से मुझे तो चोर-राजा के शयनागार में उतार दो, और इन अमात्यों को इनके अपने अपने घर पहुँचा दो।" उन्होंने 'देव ! अच्छा' (कह) स्वीकार कर, वैसा ही किया।

उस समय चोर-राजा (अपने) शयनागार में शय्या पर पड़ा सो रहा था। राजा ने उस सोते हुए प्रमादी के पेट में तलवार की नोक चुभोई। उसने डर के मारे उठ, दीपक के प्रकाश में सीलव महाराज को पहचान, शय्या से उठ, होश सँभाल, खड़े हो राजा से पूछा—महाराज ! इस प्रकार की रात्रि में, पहरे से युक्त, बन्द दरवाज़ों वाले भवन में, पहरेदारों की आज्ञा के बिना, तुम इस प्रकार तलवार बाँध, अलंकृत-सज कर, इस शयनागार में कैसे आये ? राजा ने, जैसे आया था, सब विस्तार से कहा। चोर-राजा ने पुलकित-चित्त हो, "महाराज ! मैं मनुष्य हो कर भी आपके गुणों को नहीं जानता, और यह दूसरों का रक्त-मांस खाने वाले, अति कठोर यक्ष आपके गुण जानते हैं। हे नरेन्द्र ! मैं अब से आप ऐसे शीलवान् (=सदाचारी) के प्रति द्वेष न रक्खूँगा" (कह) तलवार ले कर शपथ ली। (फिर) राजा से क्षमा माँग, उसे महाशय्या पर सुलाया। अपने आप छोटी चारपाई पर लेटा। उसने सुबह होने पर, सूर्य्य के उदय होने के वक्त, मुनादी फिरवाई और सब सैनिकों तथा अमात्य-ब्राह्मण-गृहपतियों को एकत्रित करवा, उनके सम्मुख, आकाश में पूर्ण चन्द्र को उठा कर (दिखाने की) तरह सीलव-राजा के गुणों को कहा। (फिर) सभा के बीच में राजा से क्षमा माँग, (उसे) राज्य सौंप, 'अब से आपके (राज्य) में चोरों की गड़बड़ी (की देख भाल करने) का भार मुझ पर रहा। मैं पहरेदारी

करूँगा। आप राज्य करें' (कह) चुगल-खोर को दण्ड दे कर, अपनी सेना-सवारी ले, अपने ही देश को चला गया।

सीलव महाराजा ने भी, अलंकृत-सजे हुए (हो), श्वेतछत्र के नीचे, सरभ मृग के पैरों सदृश पैरों वाले सोने के सिंहासन पर बैठ, अपनी सम्पत्ति को देखते हुए सोचा—"यह इस प्रकार की सम्पत्ति, हज़ार अमात्यों का जीवन प्रतिलाभ; यदि मैं प्रयत्न (वीर्य्य) न करता, तो यह कुछ भी न होता। प्रयत्न के बल से, मैंने इस नष्ट हुए यश को प्राप्त किया, सहस्र अमात्यों को जीवन-दान दिया। (इसलिए) बिना निराश हुए प्रयत्न ही करना चाहिए। किया गया प्रयत्न इसी प्रकार फलदायक होता है।" यह सोच उदान (=हर्ष वाक्य) स्वरूप नीचे की गाथा कही—

आसिंसेथेव पुरिसो न निब्बिन्देय्य पण्डितो,
पस्सामि वोहं अत्तानं यथा इच्छि तथा अहू ॥

[पुरुष आशा लगाये रक्खे। बुद्धिमान् आदमी निराश न हो। मैं अपने को ही देखता हूँ। जैसी इच्छा की थी, वैसा ही हुआ।]

आसिंसेथेव, मैं इस प्रकार प्रयत्न करके इस दुःख से मुक्त हो जाऊँगा, अपने प्रयत्न से ऐसी आशा लगाये ही रक्खे। **न निब्बिदेय्य पण्डितो,** बुद्धिमान्=उपाय करने में दक्ष (आदमी) उचित स्थान पर प्रयत्न करता हुआ, "मैं इस प्रयत्न का फल नहीं पाऊँगा" इस प्रकार की उत्कण्ठा न करे, आशा-छेद-कर्म न करे; यही अर्थ है। **पस्सामि वोहं अत्तानं,** इसमें 'वो' निपात मात्र है; मैं आज अपने को देखता हूँ। **यथा इच्छि तथा अहू,** मैंने गढ़े में गड़े हुए इच्छा की कि मैं उस दुःख से मुक्त होकर फिर राज्य लाभ करूँ। सो मैंने यह सम्पत्ति प्राप्त कर ली। जैसी मैंने इच्छा की थी, वैसा ही मुझे हो गया। इस प्रकार बोधिसत्त्व 'अहो! वत! भो! सदाचारियों का प्रयत्न फल लाता है' (कह) इस गाथा से हर्ष-वाक्य कह, जीवन रहते पुण्य कर, यथा-कर्म (परलोक) गये।

बुद्ध ने भी इस धर्म-देशना को लाकर, (आर्य-)सत्यों को प्रकाशित किया। सत्यों (के प्रकाशन) के अन्त में (वह) हिम्मत-हार भिक्षु अर्हत्व में प्रतिष्ठित

हुआ। शास्ता ने मेल मिला, जातक का सारांश निकाल दिया। उस समय का दुष्ट अमात्य (अब का) देवदत्त था। सहस्र अमात्य (अब की) बुद्ध परिषद् थी। सीलव महाराज तो मैं ही था।

५२. चूल जनक जातक

"**वायमेथेव पूरिसो....**" यह गाथा (भी) शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय, हिम्मत-हार भिक्षु के ही बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

सो, उसके विषय में जो कथनीय है, वह सब **महाजनक जातक**[1] में आयेगा।

ख. अतीत कथा

जनक राजा ने श्वेत-छत्र के नीचे बैठे यह गाथा कही—

वायमेथेव पुरिसो न निब्बिन्देय्य पण्डितो,
पस्सामि वोहं अत्तानं उदका थलमुब्भतं॥

[पुरुष प्रयत्न करे। बुद्धिमान् आदमी निराश न हो। मैं अपने को ही देखता हूँ कि मैं जल से स्थल पर आ गया।]

वायमेथेव, प्रयत्न करे ही। **उदका थलमुब्भतं**, जल से स्थल पर उत्तीर्ण (हुआ), अपने को स्थल पर प्रतिष्ठित देखता हूँ।

[1] जातक (५३९)

इस अवसर पर भी हिम्मत-हार भिक्षु ने अर्हत्व प्राप्त किया। जनक राजा, सम्यक्-सम्बुद्ध ही थे।

५३. पुण्णपाति जातक

"**तथेव पुण्णापातियो....**" यह गाथा, शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय जहरीली शराब के सम्वन्ध में कही।

क. वर्तमान कथा

एक समय श्रावस्ती में शराबियों (=सुराधूर्तों) ने इकट्ठे होकर आपस में सलाह की—"हमारे पास शराब के लिए पैसा नहीं रहा। अब (पैसा) कहाँ से मिले?" एक अत्यन्त धूर्त ने कहा—"चिन्ता मत करो। एक उपाय है। कौन सा उपाय? अनाथपिण्डिक अँगुली में अँगूठी पहनता है। बारीक वस्त्र धारण करता है। तब राजा की सेवा में जाता है। हम शराब की बाटी में बेहोशी की दवा मिला, (शराब की) दूकान लगा कर बैठ, अनाथ-पिण्डिक के आने के समय 'महाश्रेष्ठी इधर पधारें' (कह) उसे बुलावेंगे, (और) उसको शराब पिला, उसके बेहोश हो जाने पर, उसकी अँगुली की अँगूठी और वस्त्र उतार, उससे शराब पीने के लिए पैसे जुटावेंगे।" उन्होंने 'अच्छा' कह स्वीकार कर, वैसा कर चुकने पर, श्रेष्ठी के आने के समय, उसके रास्ते पर जाकर कहा—"स्वामी! जरा इधर आयें। हमारे पास, अत्यन्त सुन्दर शराब है। (उसमें से) थोड़ी पी जायें।" श्रोतापन्न आर्य-श्रावक (अनाथ-पिण्डिक) क्या शराब पीता? आवश्यकता न रहने पर भी, उसने इन धूर्तों की परीक्षा करूँगा (सोच) उनकी दूकान पर जा, उनकी क्रिया देख, 'इन्होंने यह शराब इस मतलब से बनाई है' जान, 'अब से, इन्हें यहाँ से भगाऊँगा' विचार कर, कहा—"अरे! दुष्ट धूर्तो! तुम शराब की बाटी में दवाई

मिला कर, आने वालों को पिला कर, बेहोश करके उन्हें लूटने के विचार से दूकान सजा कर बैठे हो। ख़ाली इस शराब की प्रशंसा भर करते हो। किसी एक की भी, उठा कर पीने की हिम्मत नहीं होती। यदि यह बिना-मिलाई (शराब) होती, तो (पहले) तुम ही पीते।" धूर्तों को लताड़, अपने घर जा, 'धूर्तों की करनी तथागत से कहूँगा' (सोच), जेतवन जाकर, (तथागत से) निवेदन की। बुद्ध ने 'हे गृहपति ! अब तो वह धूर्त तुझे ठगना चाहते थे; पूर्व समय में पण्डितों को भी ठगना चाहते थे' कह, उसके याचना करने पर, पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में **बाराणसी** में (राजा) **ब्रह्मदत्त** के राज्य करते समय, बोधिसत्त्व **बाराणसी** के श्रेष्ठी हुए। उस समय भी इन धूर्तों ने, इसी प्रकार सलाह कर, शराब में मिलावट मिला, बाराणसी श्रेष्ठी के आने के समय, रास्ते पर जाकर, इसी प्रकार कहा। एक ने आवश्यकता न रहने पर भी, उनकी परीक्षा करने की इच्छा से, जाकर उनकी करनी देख, 'यह ऐसा करना चाहते हैं' जान 'यहाँ से इन्हें भगाऊँगा' सोच, कहा—"धूर्तो ! शराब पीकर राज-कुल जाना अनुचित है। राजा को देख कर, लौटते समय (शराब को) जानूँगा। तुम यहीं बैठे रहना।" राजा की सेवा में जाकर लौट आया। धूर्तों ने कहा—"स्वामी ! इधर आयें।" उसने वहाँ जाकर, दवाई मिलाई हुई (शराब की) बाटियों को देख, कहा—"अरे ! धूर्तो ! तुम्हारी करनी मुझे अच्छी नहीं लगती। तुम्हारी शराब की बाटियाँ जैसी की तैसी भरी ही रक्खी हैं। तुम केवल शराब की प्रशंसा भर करते हो, लेकिन पीते नहीं। यदि यह अच्छी (शराब) होती, तो तुम भी पीते। लेकिन इसमें विष मिला होगा" इस प्रकार उनके मनोरथ को छिन्न-भिन्न करते हुए यह गाथा कही—

तथेव पुण्णापातियो अञ्जायं वत्तते कथा,
आकारकेन जानामि न चायं भद्दिका सुरा ॥

[(शराब की) बाटियाँ, वैसी ही भरी हैं (जैसी पहले थीं)। सो यह

शराब की प्रशंसा (=कथा) दूसरे ही मतलब से है। मैं रंग ढंग से जानता हूँ कि यह शराब अच्छी नहीं है।]

तथेव, मैंने इन्हें जैसा जाते समय देखा, यह शराब की बाटियाँ, अब भी वैसी ही भरी हैं। **अञ्ञायं वत्तते कथा,** यह जो तुम्हारी शराब की प्रशंसा की बात है, वह अन्य है=असत्य है=झूठ है। यदि यह शराब अच्छी होती, तो तुम भी पीते, (केवल) आधी बाटियें बाकी बचतीं। लेकिन तुम में से किसी एक ने भी शराब नहीं पी। **आकारकेन जानामि,** सो मैं इस बात से जनता हूँ। **न चायंभद्दिका सुरा,** यह शराब अच्छी नहीं, इसमें विष मिला हुआ होगा।

इस प्रकार धूर्तों को ले, जिसमें वह फिर वैसा न करें, उनको लताड़, छोड़ दिया। वह जीवन रहते, दानादि पुण्य करके यथा-कर्म (परलोक) गया।

बुद्ध ने यह धर्म-देशना कह, जातक का सारांश निकाल दिया। उस समय के धूर्त (अब के) धूर्त थें। लेकिन उस समय वाराणसी का सेठ मैं ही था।

५४. फल जातक

"नायं रुक्खो दुरारूहो. . . ." यह गाथा, बुद्ध ने जेतवन में विहार करते समय, एक फल (पहचानने में) हुशियार उपासक के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

एक श्रावस्ती-वासी गृहस्थ ने, बुद्ध-प्रमुख भिक्षु-संघ को निमन्त्रित कर, अपने आराम में बिठा, यवागु-खाजा दे, (अपने) माली को आज्ञा दी, कि वह भिक्षुओं के साथ बाग में घूम, उन आर्य्यों को आम आदि नाना प्रकार के फल

दे। वह 'अच्छा' (कह) स्वीकार कर, भिक्षु-संघ को साथ ले, उद्यान में फिरते हुए, वृक्ष को देख कर ही जान लेता कि यह कच्चा फल है, यह अच्छी तरह पका नहीं, यह अच्छी तरह पका है। जिसे वह जैसा कहता, वह वैसा ही निकलता। भिक्षुओं ने जाकर तथागत से निवेदन किया—"भन्ते! यह माली फल (पहचानने में) दक्ष है। पृथ्वी पर खड़े ही खड़े वृक्ष को देख कर ही, जान लेता है, 'यह फल कच्चा है, यह अच्छी तरह नहीं पका, यह अच्छी तरह पका है' जिसे, वह जैसा कहता है, वह वैसा ही निकलता है।" बुद्ध ने, 'हे भिक्षुओ! केवल यह माली ही फल (पहचानने में) दक्ष नहीं, पूर्व समय में पण्डित (जन) भी फल (पहचानने में) दक्ष थे' कह, पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में (राजा) ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय, बोधिसत्त्व (एक) श्रेष्ठी-कुल में उत्पन्न हुए। उन्होंने आयु-प्राप्त होने पर, पाँच सौ गाड़ियाँ ले, वाणिज्य करते हुए, एक समय जंगल में से गुज़रने वाले माहमार्ग से, जंगल के मुख-द्वार पर खड़े हो, सभी मनुष्यों को एकत्रित करवा कहा—"इस जंगल में विष-वृक्ष होते हैं, विष-पत्र, विष-पुष्प, विष-फल, तथा विष-मधु होते हैं। यदि कोई ऐसा पत्र, फूल या फल हो, जिसे तुमने पहले न खाया हो, उसे बिना मुझे पूछे मत खाना।" वह 'अच्छा' (कह) स्वीकार कर जंगल में प्रविष्ट हुए। जंगल में प्रविष्ट होते ही, एक ग्राम-द्वार पर एक किम्फल नामक वृक्ष था। उस (वृक्ष) के तने, शाखा, पत्ते, फूल, फल, सब आम की तरह के थे। न केवल रंग और आकार में, किन्तु गन्ध और रस में भी। (इस वृक्ष के) कच्चे पक्के फल, आम के फल के सदृश ही थे। लेकिन खाने पर हलाहल विष की तरह, उसी समय प्राणों का नाश कर देते थे। आगे आगे जाने वाले कुछ लोभी आदमियों ने 'यह आम के वृक्ष हैं' समझ, फल खाये। कुछ ने 'कारवान के सरदार को पूछ कर खायेंगे' हाथ में लिये खड़े रहे। उन्होंने सार्थवाह (कारवान के सरदार) के आने पर पूछा—"आर्य! इन आम के फलों को खायें?" बोधिसत्त्व ने यह जान कि यह आम का वृक्ष नहीं है, 'यह आम्र-वृक्ष नहीं, यह किम्फल वृक्ष है, मत खाओ' (कह) मना किया। जिन्होंने खाये थे, उनकी भी उल्टी करा, उन्हें चतु-मधुर पिला अच्छा किया। (इससे)

पहले, मनुष्य उस वृक्ष के नीचे निवास कर, 'यह ग्राम्रफल हैं' (करके) उन विष-फलों को खा, (ग्रपने) प्राण गँवाते। ग्रगले दिन ग्रामवासी निकल, मृत-मनुष्यों को देख, उन्हें पाँव से पकड़, छिपे हुए स्थान पर फेंक, गाड़ियों सहित, जो कुछ उनके पास होता, सब ले जाते।

उस दिन भी उन्होंने ग्ररुणोदय के समय ही निकल 'बैल मेरे होंगे, गाड़ी मेरी होगी, सामान मेरा होगा' (करके) जल्दी से उस वृक्ष के नीचे पहुँच, मनुष्यों को निरोगी देख पूछा—'तुम्हें कैसे मालूम हुग्रा कि यह वृक्ष ग्राम्र-वृक्ष नहीं है ?' उन्होंने कहा—'हम नहीं जानते। हमारा ज्येष्ठ सार्त्थवाह जानता है।' मनुष्यों ने बोधिसत्त्व से पूछा—"हे पण्डित ! तूने कैसे जाना कि यह वृक्ष ग्राम का वृक्ष नहीं है ?" उसने दो बातों से जाना कह, यह गाथा कही—

नायं रुक्खो दुरारूहो न पि गामतो ग्रारका,
ग्राकारकेन जानामि नायं सादुफलो दुमो ॥

[न तो यह वृक्ष चढ़ने में दुष्कर है, न ही गाँव से दूर है। इन दो बातों से मैं जानता हूँ कि यह स्वादु फलों का वृक्ष नहीं।]

नायं रुक्खो दुरारूहो, यह विष-वृक्ष चढ़ने में दुष्कर नहीं है, उछल कर, जैसे सीढ़ी रक्खी हो, वैसे चढ़ा जा सकता है। **न पि गामतो ग्रारका**, ग्राम से दूर भी नहीं है, ग्रर्थात् ग्राम के समीप ही है। **ग्राकारकेन जानामि**, इस दो प्रकार की बात से मैं इस वृक्ष को पहचानता हूँ कि **नायं सादुफलो दुमो**, यदि यह मधुरफल ग्राम्र-वृक्ष हो, तो इस प्रकार ग्रासानी से चढ़ सकने योग्य (तथा) ग्राम के पास ही लगे इस (वृक्ष) पर एक भी फल न रहे। फल खाने वाले मनुष्य, इसे नित्य ही घेरे रहें। इस प्रकार मैंने ग्रपने ज्ञान से परीक्षा करके जाना कि यह विष-वृक्ष है। इस प्रकार जन (-समूह) को धर्मोपदेश कर, उसने सकुशल मार्ग ग्रहण किया।

बुद्ध ने भी, "हे भिक्षुग्रो ! इस प्रकार पहले भी पण्डित (-जन) फल (पह-चानने में) दक्ष हुए हैं" (कह) इस धर्म-देशना को कह, मेल मिला, जातक का सारांश निकाल दिया। उस समय की परिषद् (ग्रब की) बुद्ध परिषद् ही थी। लेकिन सत्थवाह मैं ही था।

५५. पंचावुध जातक

"**यो अलीनेन चित्तेन**...." यह (गाथा) बुद्ध ने **जेतवन** में विहार करते समय (एक) हिम्मत-हार भिक्षु के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

उस भिक्षु को बुद्ध ने बुलाकर, पूछा—'हे भिक्षु ! क्या तू सचमुच हिम्मत-हार बैठा ?' उसके 'भगवान् ! सचमुच' कहने पर, 'हे भिक्षु ! पूर्व समय में बुद्धिमान् लोग हिम्मत करने की जगह हिम्मत करके राज-सम्पत्ति के लाभी हुए।' कह (शास्ता ने) पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में **बाराणसी** में (राजा) **ब्रह्मदत्त** के राज्य करने के समय, बोधिसत्त्व, उसकी पटरानी की कोख से उत्पन्न हुए। उसके नामकरण के दिन, एक सौ आठ ब्राह्मणों की सब कामनायें पूरी कर, उनसे उसके लक्षण (=चिन्ह) पूछे गये। चिह्न (देखने में) दक्ष ब्राह्मणों ने, उसकी चिह्न-सम्पत्ति को देख कहा—"महाराज ! कुमार पुण्यवान् है। तुम्हारे बाद राज्य प्राप्त करेगा। पाँच शस्त्रों के चलाने में प्रसिद्ध हो, जम्बूद्वीप में अग्र-पुरुष होगा।" ब्राह्मणों की बात सुन, कुमार का नाम रखने वालों ने, उसका नाम पञ्चावुधकुमार रक्खा। सो उसके होश सँभालने पर, सोलह वर्ष का होने पर, राजा ने बुलाकर, कहा—तात ! शिल्प सीख।

"देव ! किस के पास सीखूं ?"

"तात ! जा, गान्धार देश के तक्षशिला नगर में लोक-प्रसिद्ध आचार्य्य के पास जा कर सीख। यह उस आचार्य्य का भाग (=फीस) देना" (कह) हज़ार (मुद्रा) देकर भेजा।

उसने वहाँ जाकर शिल्प सीख, आचार्य्य के दिये हुए पाँच शस्त्र ले, आचार्य्य को प्रणाम कर, **तक्षशिला**[1] नगर से निकल, पंच हथियार बंद (हो) **बाराणसी** का रास्ता लिया। मार्ग में वह, **श्लेषलोम यक्ष** से अधिकृत एक जङ्गल (के द्वार) पर पहुँचा। सो उसे जंगल के द्वार पर देख, मनुष्यों ने रोका—"भो! माणवक! इस जंगल में मत प्रविष्ट हो। इस जंगल में श्लेषलोम (नामक) यक्ष है। वह जिस किसी मनुष्य को देखता है, उसे मार डालता है।"

बोधिसत्त्व अपने को जाँचते हुए, निर्भीत केशरसिंह की तरह, जंगल में घुस ही गया। उसके जंगल में प्रवेश करने पर, उस यक्षने (अपने) ताड़ जितना (ऊँचा) हो, घर जितना (बड़ा) सिर, बरतनों जितनी (बड़ी बड़ी) आँखें, और कन्दल की कली जितने बड़े दाँत बना, श्वेतमुख, चितकबरे पेट और नीले हाथ पाँव वाला हो, अपने आपको बोधिसत्त्व को दिखाकर कहा—"कहाँ जाता है? ठहर, तू मेरा आहार है।" बोधिसत्त्व ने, "यक्ष! मैंने (अपने सामर्थ्य का) अन्दाज़ा लगा कर यहाँ प्रवेश किया है। तू सँभल कर मेरे समीप आना, मैं तुझे विष में बुझे हुए तीर से बींध कर यहीं गिरा दूँगा" (कह) धमका, हलाहल विष से बुझा हुआ तीर चढ़ा कर छोड़ा। वह (जाकर) यक्ष के रोमों में ही चिपक गया। उसके बाद दूसरा.... इस प्रकार पचास तीर छोड़े। सब, उसके रोमों में ही चिपक रहे। यक्ष, उन सभी तीरों को तोड़- मरोड़, अपने पैरों के नीचे गिरा, बोधिसत्त्व के समीप आया।

बोधिसत्त्व ने फिर भी, उसे डरा कर खड्ग निकाल कर प्रहार किया। तेंतिस अंगुल लम्बी तलवार रोमों में ही चिपक रही। तब उस पर बरछी से प्रहार किया। वह भी रोमों में ही चिपक रही। उसका भी 'चिपक-रहना' जान मुद्गर से प्रहार किया। वह भी रोमों में चिपक रहा। उसका भी चिपक रहना जान, "हे यक्ष! क्या तूने मुझ पञ्चावुध-कुमार का नाम पहले नहीं सुना? मैंने तेरे अधिकृत जंगल में प्रवेश करते हुए धनुप आदि का भरोसा कर प्रवेश नहीं किया, मैंने अपना ही भरोसा कर प्रवेश किया है। सो आज मैं

[1] **वर्तमान शाहजी की ढेरी, जिला रावलपिंडी।**

तुझे मार कर चूर्ण-विचूर्ण करूँगा।" यह निश्चय प्रगट कर, ऊँचा शब्द करते हुए, दाहिने हाथ से यक्ष पर प्रहार किया। हाथ (भी) रोमों में चिपक गया। बायें हाथ से प्रहार किया। वह भी चिपक गया। दायें पैर से प्रहार किया। वह भी चिपक गया। बायें पैर से प्रहार किया, वह भी चिपक गया। 'सिर से टक्कर मार कर, उसे चूर्ण-विचूर्ण करूँगा' (सोच) सिर से प्रहार किया। वह सिर भी रोमों में चिपक गया।

वह पाँच जगह चिपका हुआ, पाँच जगह बँधा हुआ, लटकता हुआ भी, निर्भय ही रहा। यक्ष ने सोचा—'यह एक पुरुष-सिंह है, पुरुष-आजानीय है, साधारण आदमी नहीं। मेरे सदृश नाम वाले यक्ष के पकड़ने पर भी डरता तक नहीं। मैंने इस मार्ग पर हत्या करते हुए, इससे पहले, एक भी ऐसा आदमी नहीं देखा। यह क्यों नहीं डरता?" सो उसने, उसे खाने की रुचि न होने के कारण, उससे पूछा—"माणवक! तू मरने से किस लिए नहीं डरता?" "यक्ष! मैं क्यों डरूँगा? एक जन्म में एक बार मरना तो निश्चित ही है। और मेरी कोख में (एक) वज्र-आयुध है। यदि मुझे खायेगा, तो तू उस आयुध को न पचा सकेगा। वह आयुध, तेरी आँतों के टुकड़े टुकड़े कर, तुझे मार डालेगा। इस प्रकार (यदि मरेंगे) तो दोनों मरेंगे। इस कारण से (भी) मैं नहीं डरता हूँ।" यह बोधिसत्त्व ने अपने अन्तर के ज्ञान-आयुध के बारे में कहा।

यह सुन यक्ष ने सोचा—"यह माणवक सत्य कहता है। मेरी कुक्षि इसके शरीर का मूँगे के बीज जितना मांस का टुकड़ा भी हज़म न कर सकेगी। मैं इसे छोड़ दूँ।" (यह सोच) मरने के भय से भयभीत उसने बोधिसत्त्व को छोड़ते हुए कहा—"माणवक! तू पुरुष-सिंह है। मैं तेरा मांस नहीं खाऊँगा। आज तू राहु-मुख से मुक्त चन्द्रमा की तरह मेरे हाथ से छूट कर, जाति-सुहृद-मण्डल को प्रसन्न करता हुआ जा।"

बोधिसत्त्व ने कहा—यक्ष! मैं तो जाऊँगा ही, लेकिन तू पूर्व जन्म में भी कुकर्म करके, क्रूर, रक्त-पाणी, दूसरों का रक्त-मांस खाने वाला होकर उत्पन्न हुआ, यदि इस जन्म में भी कुकर्म ही करेगा, तो अन्धकार से अन्धकार में जायेगा। अब मुझसे भेंट होने के बाद से, तू कुकर्म नहीं कर सकता। प्राण-घात-कर्म नरक में, पशुयोनि में, प्रेत योनि में, असुर योनि में उत्पत्ति का कारण

होता है। मनुष्य योनि में उत्पन्न होने पर आयु कम करने वाला होता है। इस प्रकार पाँचों प्रकार के कुकर्मों के दुष्परिणाम और पाँचों प्रकार के सुकर्मों के शुभ-परिणाम कह, बहुत सी बातों से यक्ष को डरा, धर्मोपदेश कर, दमन कर, विषयों से पृथक् कर, **पाँचों शीलों** में प्रतिष्ठित कर, उसीको उस जंगल का बलि-प्रतिग्राहक देवता बना, प्रमाद रहित रहने का उपदेश कर, जंगल से निकलते हुए, जंगल के द्वार पर रहने वाले मनुष्यों को यह (वृत्तान्त) कह, पाँचों हथियार बाँध बाराणसी गया। वहाँ माता पिता को देख, आगे चल कर राज्य पर प्रतिष्ठित हो, धर्मानुसार राज्य करते हुए, दानादि पुण्य करते हुए, यथा-कर्म (परलोक) गया।

शास्ता ने भी इस धर्म-देशना को ला अभिसम्बुद्ध होने की अवस्था में यह गाथा कही—

यो अलीनेन चित्तेन अलीनमनसो नरो,
भावेति कुसलं धम्मं योगक्खेमस्स पत्तिया;
पापुणे अनुपुब्बेन सब्बसंयोजनक्खयं॥

[जो कोई उत्साही पुरुष योगक्षेम (=अर्हत्व; निर्वाण) की प्राप्ति के लिए उत्साह-युक्त चित्त से, शुभ कर्म करता है; वह क्रमानुसार सर्व **संयोजनों** के क्षय को प्राप्त होता है।]

सो इसका संक्षेपार्थ यह है जो कोई आदमी **अलीनेन,** उत्साह-युक्त **चित्तेन** स्वभाव से ही उत्साही होकर,(और भी)उत्साही हो, दोष-रहित होने से कुशल (=शुभ)—**सैंतिस बोधिपाक्षिक**[1]—धर्मों की भावना करता है,

[1] चार स्मृति-उपस्थान (१कायानुपस्सना, २वेदनानुपस्सना३चित्तानुपस्सना, ४धम्मानुपस्सना) २.चार सम्यक् प्रयत्न (१संवरप्पधान, २पहानप्पधान, ३भावनप्पधान, ४अनुरक्खणप्पधान), ३.चार ऋद्धिपाद (१छन्द २वीर्य्य, ३चित्त, ४वीमंसा), ४.पाँच बल तथा पाँच इन्द्रियाँ (१श्रद्धा, २वीर्य्य, ३स्मृति, ४समाधि, ५प्रज्ञा), ५.सात बोधि-अङ्ग (१स्मृति,२ धर्म-विचय, ३वीर्य्य, ४प्रीति, ५प्रश्रब्धि, ६.समाधि, ७उपेक्षा), ६.आर्य अष्टांगिक मार्ग

चारों योगों से क्षेमकर निर्वाण की प्राप्ति के लिए, विशाल चित्त से विदर्शना में अनुयुक्त होता है, वह इस प्रकार सब संस्कारों में अनित्यता, अनात्मता, तथा दुःखपन को मान, नई विदर्शना से आरम्भ करके, उत्पन्न बोधिपाक्षिक धर्मों की भावना (=अभ्यास) करते हुए, क्रमानुसार एक भी संयोजन बाकी न छोड़, सब संयोजनों* का क्षय करने वाले, चतुर्थ मार्ग के अन्त में उत्पन्न होने के कारण, 'सब संयोजनों के क्षय' कहे जाने वाले, अर्हत्व को प्राप्त होते हैं।

इस प्रकार बुद्ध ने अर्हत्व को धर्म-देशना में प्रधान स्थान दे, आगे चार आर्य-सत्यों को प्रकाशित किया। सत्यों (के प्रकाशन) के अन्त में, वह भिक्षु अर्हत्व को प्राप्त हुआ। शास्ता ने भी मेल मिला, जातक का सारांश निकाल दिया। उस समय का यक्ष (अब का) अंगुलिमाल था। **पञ्चावुधकुमार** नाम वाला (तो) मैं ही था।

५६. कंचनक्खन्ध जातक

"**यो पहट्ठेन चित्तेन....**" यह गाथा, शास्ता ने **श्रावस्ती** में विचरते हुए, एक भिक्षु के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

एक श्रावस्तीवासी कुल-पुत्र शास्ता की धर्म-देशना सुन (त्रि-)रत्न शासन में अत्यन्त श्रद्धा से प्रव्रजित हुआ। उसके आचार्य्य उपाध्यायों ने

(१सम्यक् दृष्टि, २सम्यक् संकल्प, ३सम्यक् वाचा, ४सम्यक् कर्मान्त, ५सम्यक् व्यायाम, ६सम्यक् आजीविका, ७सम्यक् स्मृति, ८सम्यक् समाधि)

*** संयोजन दस हैं**

कहा—"हे आयुष्मान् ! शील (=सदाचार) एक प्रकार का होता है, दो प्रकार का, तीन प्रकार का, चार प्रकार का, पाँच प्रकार का, छः प्रकार का, सात प्रकार का, आठ प्रकार का, नौ प्रकार का, दस प्रकार का, इस तरह कई प्रकार का होता है। यह गौण-शील है, यह मध्यम-शील है, यह महा-शील है, यह प्रातिमोक्ष-संवर-शील है, यह इन्द्रिय-संवर-शील है, यह आजीविका-परिशुद्ध-शील है, यह प्रत्यय-प्रतिसेवन-शील है, इसे शील कहते हैं।" उसने सोचा—'यह बहुत से शील हैं। मैं इतने शीलों को अपने ऊपर ले, उनके अनुसार आचारण न कर सकूँगा। यदि शीलों के अनुसार आचरण न करूँ, तो प्रव्रजित होने का ही क्या फल ? मैं गृहस्थ होकर दानादि पुण्य कर्म करूँगा, स्त्री-बच्चों का पालन करूँगा।' यह सोच उसने कहा—"भन्ते ! मैं शील न रख सकूँगा। शील न रख सकने वाले के लिए प्रव्रज्या का क्या अर्थ ? मैं गृहस्थ होऊँगा। अपना पात्र चीवर ले लें।"

उन्होंने कहा—"आयुष्मान् ! यदि ऐसा है, तो बुद्ध को प्रणाम करके जाओ।" (यह कह) वे, उसे धर्म-सभा में बुद्ध के पास ले गये। बुद्ध ने देखते ही पूछा—"भिक्षुओ ! क्यों इस अनिच्छुक भिक्षु को लेकर आये हो ?"

"भन्ते ! यह भिक्षु, 'मैं शील नहीं रख सकूँगा' (कह) पात्र-चीवर लौटाता है। सो हम इसे लेकर आये हैं।"

"भिक्षुओ ! तुम किस लिए इस भिक्षु को बहुत से शील कहते हो ? यह जितने रख सकेगा, उतने रखेगा। अब से तुम इसको कुछ न कहो। इसमें जो करना उचित है, उसे मैं देखूँगा।" (यह कह) "हे भिक्षु ! आ, तुझे बहुत से शीलों से क्या ? तू केवल तीन शील रख सकेगा ?" "भन्ते ! रख सकूँगा।" "तो तू, अब से काय-द्वार (=शारीरिक), वची-द्वार (=वाणी के), मनो-द्वार (=चित्त के)—इन तीन द्वारों की रक्षा कर। शरीर से, वाणी से, मन से पाप-कर्म मत कर। जा, गृहस्थ मत बन। इन तीन ही शीलों को रख।" इतने से वह भिक्षु सन्तुष्ट-चित्त हो, "भन्ते ! अच्छा, मैं तीनों शीलों की रक्षा करूँगा" (कह) शास्ता को प्रणाम कर, आचार्य्य उपाध्याय के साथ ही चला गया।

उसे उन तीन शीलों की पूर्ति करते ही मालूम हो गया कि आचार्य्य, उपाध्यायों का बताया हुआ भी शील इतना ही था, लेकिन वह अपने बुद्ध न

होने के कारण मुझे समझा न सके। सम्यक्-सम्बुद्ध ने अपने सुबुद्ध होने के कारण, धर्म-राजा होने के कारण, उतना ही शील, तीन ही द्वारों में डाल कर, मुझे स्वीकार करा दिया। शास्ता ने मेरी बाँह पकड़ ली। (इस प्रकार) विदर्शना (भावना) की वृद्धि कर, कुछ ही दिनों में अर्हत्व को प्राप्त हुआ।

उस समाचार को सुन धर्म-सभा में बैठे भिक्षु (आपस में) बातचीत करने लगे—"आयुष्मानो! 'शील न रख सकूँगा' करके गृहस्थ होने के लिए तैयार भिक्षु को; शास्ता ने सब शीलों को तीन ही हिस्सों में बाँट, वे शील उससे स्वीकार करा, उसे अर्हत्व-पद लाभ करा दिया।" (यह कह) 'अहो! बुद्ध आश्चर्य्य-कारक-मनुष्य होते हैं' कहते हुए बुद्ध-गुणों की प्रशंसा करने लगे। शास्ता ने आकर पूछा—"भिक्षुओ! यहाँ बैठे क्या बात-चीत कर रहे थे?" "यह बात-चीत" कहने पर, "भिक्षुओ! बहुत भारी वजन भी हिस्से करके देने पर, हलका प्रतीत होता है; पूर्व समय में भी बुद्धिमान् बड़ा सा सोने का ढेर पाकर, उठाने में असमर्थ हो, बाँट कर उठा कर ले गये" कह, पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में (राजा) ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय, बोधिसत्त्व एक गाँव में कृषक हुए। वह एक दिन एक ऐसे खेत में, जहाँ पहले ग्राम बसा हुआ था, खेती करते थे। पूर्व समय में, उस गाँव में एक धनी श्रेष्ठी, जाँघ तक गहरे, चार हाथ चौड़े (गढ़े) में सोने का ढेर गाड़ कर मर गया था। उससे बोधिसत्त्व का हल टकरा कर रुक गया। उसने 'जड़ें होंगी' समझ, रेत को हटा कर उसे देखा। उसे फिर भी रेत से ढक, दिन भर हल चलाता रहा। सूर्यास्त होने पर, हल, जोत आदि को एक ओर रख, 'सोने के ढेर को ले जाऊँगा' सोच, उसे उठा कर न ले जा सका। तब, उसने एक ओर बैठ 'इतना पेट भरने के लिए होगा', 'इतना गाड़ कर रक्खूँगा' 'इतना कर्मान्त (=व्यापारादि) में लगाऊँगा।' 'इतना दानादि पुण्य कर्मों के लिए होगा'—इस प्रकार चार हिस्से किये। उसके इस प्रकार बाँटने पर, वह सोने का ढेर हलका सा हो गया। वह उसे उठा कर, घर ले जा कर, चार हिस्सों में बाँट कर, दान आदि पुण्य-

कर्म करके यथा-कर्म (परलोक) गया। भगवान् ने इस धर्म-देशना को कह, अभिसम्बुद्ध हुए रहने के समय, यह गाथा कही—

यो पहट्ठेन चित्तेन पहट्ठमनसो नरो
भावेति कुसलं धम्मं योगक्खेमस्स पत्तिया,
पापुणे अनुपुब्बेन सब्ब संयोजनक्खयं॥

[जो प्रसन्न-चित्त नर, सन्तुष्ट चित्त से योग-क्षेम (=निर्वाण) की प्राप्ति के लिए शुभ-धर्म की भावना करता है, वह क्रम से सब संयोजनों के क्षय को प्राप्त होता है।]

पहट्ठेन, नीवरण (=चित्तमैल) रहित होने से, **पहट्ठमनसो**, उसी नीवरण-रहित होने से, प्रसन्न-चित्त=सोने की तरह से चमक कर समुज्ज्वलित=प्रभा-युक्त चित्त होकर—यही अर्थ है।

इस प्रकार बुद्ध ने अर्हत्व को सिरे पर रख, देशना को समाप्त कर, मेल मिला, जातक का सारांश निकाल दिया। उस समय सोने का ढेर प्राप्त करने वाला मनुष्य मैं ही था।

५७. वानरिन्द जातक

"**यस्सेते चतुरो धम्मा**...." यह गाथा, बुद्ध ने **वेळुवन** में विहार करते समय, देवदत्त द्वारा किये गये बध करने के प्रयत्न के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

उसी समय बुद्ध ने 'देवदत्त बध करने का प्रयत्न करता है' सुन 'हे भिक्षुओ!

न केवल अभी देवदत्त मेरे बध करने का प्रयत्न करता है, (उसने) पहले भी किया था, लेकिन त्रास मात्र भी उत्पन्न नहीं कर सका' कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में बाराणसी में (राजा) ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व बानर योनि में उत्पन्न हो, बड़ा हो, घोड़े के बच्चे जितना (बड़ा) हुआ। वह शक्ति-सम्पन्न हो, अकेला घूमता हुआ, नदी के किनारे रहने लगा। उस नदी के बीच में एक द्वीप था, जिसमें आम, पनस आदि नाना प्रकार के फलों के वृक्ष लगे हुए थे। बोधिसत्त्व हाथी की तरह शक्तिशाली होने से, नदी के इस किनारे से उछल कर, द्वीप के इस ओर नदी के बीच में पड़े एक पत्थर पर जाकर, गिरता, वहाँ से उछल कर, उस द्वीप में जाकर गिरता। वहाँ, नाना प्रकार के फल खा कर, शाम को उसी ढंग से वापिस लौट कर, अपने निवास-स्थान पर रह कर, अगले दिन फिर वैसा ही करता। इसी प्रकार वहाँ रहता था।

उस समय स्त्री सहित एक मगरमच्छ, उसी नदी में रहता था। उसकी स्त्री ने, बोधिसत्त्व को आरपार जाते देख, बोधिसत्त्व के हृदय-मांस में दोहद उत्पन्न कर, मगरमच्छ से कहा—"आर्य! इस वानरेन्द्र के हृदय-मांस में दोहद (=खाने की बलवती इच्छा) उत्पन्न हुआ है।"

मगरमच्छ 'अरी! अच्छा, मिलेगा' कह 'आज शाम को उसे द्वीप से लौटते ही पकड़ूँगा' (सोच) पाषाण के ऊपर जाकर पड़ रहा।

बोधिसत्त्व ने दिन भर चर कर शाम को द्वीप में खड़े ही खड़े, पत्थर को देख सोचा—"क्या कारण है? आज पत्थर कुछ ऊँचा दिखाई दे रहा है?" उसने पहले ही पानी और पत्थर का अन्दाज़ अच्छी तरह लगा लिया था। सो उसके मन में यह विचार उत्पन्न हुआ—"आज इस नदी का पानी न घट रहा है, न बढ़ रहा है; लेकिन यह पत्थर बढ़ा हुआ दिखाई दे रहा है। कहीं (आज) यहाँ मेरे पकड़ने के लिए मगरमच्छ तो नहीं पड़ा है?" 'अच्छा! उसकी परीक्षा करूँगा' सोच, उस ने, वहीं खड़े ही खड़े, पत्थर के साथ बात-चीत करने की भाँति, 'अरे! पाषाण!' पुकार कर, उत्तर न मिलने पर तीन बार 'अरे!

पाषाण !' पुकारा। पाषाण क्या उत्तर देता ? लेकिन फिर भी उस बानर ने पूछा—"अरे ! पाषाण ! क्या आज मुझे उत्तर न देगा ?"

मगरमच्छ ने सोचा—'और दिनों यह पत्थर निश्चय से इस वानरेन्द्र को प्रत्युत्तर देता रहा है। आज मैं इसे उत्तर दूंगा" सोच, पूछा "अरे वानर ! क्या है ?"

"तू कौन है ?"

"मैं मगरमच्छ हूँ।"

"यहाँ तू किस लिए लेटा है ?"

"तेरे हृदय-मांस की इच्छा से ।"

बोधिसत्त्व ने, 'और मेरे लिए जाने का रास्ता नहीं है, आज मुझे इस मगरमच्छ को धोखा देना चाहिए' सोच उसे कहा—"सौम्य ! मगरमच्छ ! मैं अपने को तुझे समर्पित करूँगा। तू मुख खोल कर, अपने समीप आने के समय मुझे ग्रहण करना।" मगरमच्छ के मुँह खोलने के समय, उसकी आँखें बन्द हो जाती हैं। उसने उस बात का ख्याल न कर, मुँह खोला। उसकी आँखें मुंद गईं। वह मुंह खोल कर, आँखें मीच कर पड़ रहा। बोधिसत्त्व वैसा जान, द्वीप से उछल, जाकर मगरमच्छ के मस्तक पर गिर, वहाँ से उछल, बिजली की तरह चमकता हुआ, दूसरे किनारे जा खड़ा हुआ। मगरमच्छ ने वह आश्चर्य देख, 'इस वानरेन्द्र ने अतीव आश्चर्य किया' सोच, कहा—"अरे ! वानरेन्द्र ! इस लोक में जिस आदमी में चार बातें होती हैं, वह अपने शत्रु को जीत लेता है, वह चारों बातें तेरे अन्दर हैं।" यह कह गाथा कही—

यस्सेते चतुरो धम्मा वानरिन्द ! यथा तव,
सच्चं धम्मो धिती चागो दिट्ठं सो अतिवत्तति ॥

[वानरेश्वर ! जैसे यह तुझ में हैं, वैसे जिस आदमी में यह चार बातें होती हैं—सत्य, धर्म, धृति और त्याग—वह शत्रु को जीत लेता है।]

यस्स, जिस किसी आदमी को, **एते**, अब कहे जाने वाले, प्रत्यक्ष ही निर्देश किये गये। **चतुरो धम्मा**, चार गुण, **सच्चं**, सत्य-वाणी, 'तेरे पास आऊँगा' कह कर, उसे असत्य (=मृषा) न कर, जो तू आया, वह तेरी सत्य-वाणी है।

धम्मो, विचार-बुद्धि, ऐसा करने पर, ऐसा होगा, यह तेरी विचार-बुद्धि। **धृति,** कहते हैं अखण्ड प्रयत्न को, सो वह भी तुझ में है। **चागो,** आत्म-परित्याग, तू तो अपना आत्मसमर्पण कर, मेरे पास आया; यदि मैं तुझे ग्रहण न कर सका, तो उसमें मेरा ही दोष है **दिट्ठं,** शत्रु। **सो अतिवत्तति,** जिस आदमी में, जैसे यह तुझ में हैं, उसी प्रकार चारों धर्म (=गुण) विद्यमान होते हैं, वह आदमी जैसे तू आज मुझे लाँघ कर चला गया, उसी प्रकार, अपने शत्रु को लाँघ जाता है, जीत लेता है।

इस प्रकार मगरमच्छ बोधिसत्त्व की प्रशंसा कर, अपने निवास-स्थान को-गया। शास्ता ने, 'हे भिक्षुओ ! न केवल अभी देवदत्त मेरे बध के लिए प्रयत्न शील हुआ, पहले भी हुआ, कह, यह धर्म-देशना ला, मेल मिला, जातक का सारांश निकाल दिया।' उस समय का मगरमच्छ (अब का) देवदत्त था। उसकी भार्य्या (अब की) **चिञ्चा माणविका;** और वानरेन्द्र तो मैं ही था।

५८. तयोधम्म जातक

"यस्सेते. . . ." यह गाथा भी, बुद्ध ने **वेळुवन** में विहार करते समय, बध करने का प्रयत्न करने वाले के ही बारे में कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में **बाराणसी** में (राजा) **ब्रह्मदत्त** के राज्य करते समय, **देवदत्त** बानर योनि में उत्पन्न होकर, **हिमवन्त** प्रदेश में वानरों के समूह का नायक होने की अवस्था में, अपने (वीर्य्य) से उत्पन्न बानर-पोतकों को, दाँत से काट कर खस्सी कर डालता, ताकि कहीं वह समूह का नायकत्व न करें। उस समय

बोधिसत्त्व ने, उसी (के वीर्य्य) से एक बन्दरी की कोख में गर्भ धारण किया। वह बन्दरी 'गर्भ हुआ' जान, गर्भ की रक्षा के लिए एक दूसरे पर्वत पर चली गई। गर्भ परिपक्व होने पर, उसने बोधिसत्त्व को जन्म दिया। वह बड़ा होने पर, होश आने पर शक्तिधारी हुआ।

उसने एक दिन माँ से पूछा—"माँ! मेरा पिता कहाँ है?"

"तात! अमुक पर्वत पर बानरों के समूह का नेतृत्व करता हुआ रहता है।"

"माँ! मुझे उसके पास ले चल।"

"तात! तू पिता के पास नहीं जा सकता; क्योंकि तेरा पिता इस डर से कि कहीं यह समूह का नेतृत्व न करें, अपने (वीर्य्य) से उत्पन्न हुए बानर-पोतकों को, दाँत से काट कर, खस्सी कर डालता है।"

"माँ! मुझे, उसके पास ले चल, मैं देखूँगा।"

वह पुत्र को लेकर, उसके पास गई। उस बानर ने अपने पुत्र को देख, सोचा—बड़ा होकर यह मुझे नेतृत्व न करने देगा, अभी इसे नष्ट करना योग्य है। सो गले मिलने के बहाने से, इसे ज़ोर से भींच कर मार डालूँगा। यह सोच 'तात! आ, इतने समय तक कहाँ रहा?' कह, बोधिसत्त्व को गले लगाते हुए की तरह दबाया। बोधिसत्त्व, हाथी के सदृश बल वाला था। उसने भी उसे दबाया। सो उसकी हड्डियाँ टूटने वाली सी हो गईं। तब उसने सोचा—यह बड़ा हो, मुझे मार डालेगा, किस उपाय से इसे, उससे पहले ही मार डालूँ? तब उसे ख्याल आया—"यह पास ही राक्षस-गृहीत तालाब है। वहाँ इसे राक्षस को खिलवा दूँ।" सो उसने उसे कहा—"तात! मैं बूढ़ा हो गया। यह बानर-समूह तुझे सौंपूँगा। आज ही तुझे राजा बनाऊँगा। अमुक स्थान पर एक तालाब है, उसमें दो कुमुदिनियाँ हैं, तीस उत्पल हैं, पाँच पद्म हैं। जा, वहाँ से फूल ले आ।" उसने 'तात! अच्छा लाऊँगा' कह, जाकर, सहसा (तालाब में) उतरे बिना चारों ओर पैरों के चिन्हों को देखते हुए, केवल उतरते पैरों के चिन्हों को देखा, चढ़ते पैरों के चिन्हों को नहीं।

'यह तालाब राक्षस-गृहीत तालाब होगा, मेरा पिता अपने असमर्थ होने के कारण, राक्षस से मुझे मरवा देना चाहता होगा, मैं इस तालाब में बिना उतरे ही फूल ले जाऊँगा।' वह सूखी जगह पर जा, वहाँ से दौड़ कर आ, छलाँग मार कर दूसरी ओर जाते हुए, पानी के ऊपर ही ऊपर से दो फूलों को तोड़ कर ले,

दूसरी ओर जा गिरा। दूसरी ओर से इस ओर आते हुए, उसी उपाय से दो (और) फूल ले लिये। इस प्रकार दोनों ओर ढेर लगाते हुए, फूल तो ले लिये, लेकिन (वह) राक्षस की सीमा के भीतर नहीं उतरा। तब 'अब इससे अधिक न उछल सकूँगा' सोच, उसने उन फूलों को लेकर एक स्थान पर एकत्रित करना आरम्भ किया। उसे देख, उस राक्षस ने सोचा 'मैंने इतने समय तक इससे पूर्व ऐसा बुद्धिमान्, आश्चर्य्यकर मनुष्य नहीं देखा। (इसने) जितनी आवश्यकता थी, उतने फूल भी ले लिये, और मेरी सीमा के भीतर भी नहीं आया।' उसने पानी को दो ओर फाड़ कर, पानी में से ऊपर निकल, बोधिसत्त्व के पास आ, 'हे वानरेन्द्र! इस लोक में जिस आदमी में यह तीन गुण होते हैं, वह अपने शत्रु को जीत लेता है, वह तीनों गुण तुझ में है' (कह) बोधिसत्त्व की प्रशंसा करते हुए यह गाथा कही—

यस्स एते तयो धम्मा वानरिन्द ! यथा तव,
दक्खियं सूरियं पञ्ञा दिट्ठं सो अतिवत्तति ॥

[वानरेश्वर! जैसे यह तुझ में हैं, वैसे जिस आदमी में यह तीन बातें होती हैं—दक्षता; शौर्य्य, और प्रज्ञा—वह शत्रु को जीत लेता है।]

दक्खियं दक्षता=भय आने पर उसके नाश करने के उपाय के ज्ञान से युक्त पराक्रम। **सूरियं,** शौर्य्य, निर्भयता का पर्य्यायवाची। **प्रज्ञा,** प्रज्ञापन-प्रस्थापन=उपाय—प्रज्ञा का पर्य्यायवाची।

इस प्रकार उस उदक-राक्षस ने, इस गाथा से बोधिसत्त्व की स्तुति कर, (उसे) पूछा—"यह फूल किस लिए ले जा रहा है?"

"मेरे पिता मुझे राजा बनाना चाहते हैं, सो उसके लिए ले जा रहा हूँ।" "तेरे जैसे उत्तम आदमी को (अपने से) फूल उठा कर ले जाना शोभा नहीं देता। मैं ले चलूँगा" कह, उछल कर, (वह) उसके पीछे पीछे हो लिया।

उसके पिता ने दूर से ही उसे देख सोचा—"मैंने इसे भेजा था कि यह राक्षस का भोजन बनेगा, लेकिन यह राक्षस से फूल उठवा कर ला रहा है। अब मैं नष्ट हुआ।" यह सोच, हृदय के सात टुकड़े हो वह वहीं मर गया। शेष वानरों ने एकत्र हो बोधिसत्त्व को राजा चुन लिया।

शास्ता ने इस धर्म-देशना को ला, मेल मिला जातक का सारांश निकाल दिया। उस समय का यूथ (=बानर-समूह) पति (अब का) **देवदत्त** था। यूथपति का पुत्र तो मैं ही था।

५९. भेरिवाद जातक

"**धमे धमे**...." यह गाथा, शास्ता ने **जेतवन** में विहार करते समय (एक) बात न मानने वाले भिक्षु के वारे में कही।

क. वर्तमान कथा

शास्ता ने उस भिक्षु को पूछ कि हे भिक्षु ! क्या तू सचमुच (किसी का) कहना नहीं मानता है, उसके 'भगवान् ! सचमुच' कहने पर, उसे 'हे भिक्षु ! न केवल अब ही तू बात नहीं मानता है, (किन्तु) पहले भी तू बात न मानने वाला ही था', कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में **बाराणसी** में (राजा) ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय, बोधिसत्त्व (एक) भेरी बजाने वाले के कुल में उत्पन्न हो, एक गाँव में रहते थे। उसने '**बाराणसी** में नक्षत्र (=उत्सव) की घोषणा हुई है' सुन, 'समज्ज-मण्डल (=नृत्य-मण्डली) में भेरी बजा कर धन (कमा कर) लाऊँगा' (सोच) पुत्र के साथ, वहाँ गया, और भेरी बजा कर, बहुत धन प्राप्त किया। उसे ले, अपने ग्राम को (वापिस) लौटते समय, चोर-जंगल में पहुँच, (उसने) पुत्र को निरन्तर भेरी बजाने से मना किया—"तात ! निरन्तर न बजा कर, ऐश्वर्य्य-शालियों के रास्ता चलने के समय, बीच बीच में भेरी बजाने की तरह

भेरी बजा। वह पिता के मना करने पर भी, 'भेरी शब्द से ही चोरों को भगाऊँगा' (कह) निरन्तर ही बजाता रहा। चोरों ने पहले तो भेरी का शब्द सुन ऐश्वर्य्य-शालियों की भेरी होगी' समझ, भाग गये। लेकिन लगातार भेरी का शब्द सुन 'यह ऐश्वर्य्य-शालियों की भेरी नहीं हो सकती' (सोच) आकर, उन दो ही जनों को देख लूट लिया। बोधिसत्त्व ने 'कठिनाई से मिला हुआ धन, लगातार (भेरी) बजाने वाले ने नष्ट कर दिया' कह, यह गाथा कही—

धमे धमे नातिधमे अति धन्तं ही पापकं,
धन्तेन सतं लद्धं अतिधन्तेन नासितं॥

[(भेरी) बजाये, लेकिन बहुत न बजाये। लगातार (भेरी) बजाना बुरा है। (भेरी) बजाने से सौ (मुद्रायें) मिलीं, बहुत बजाने से वह नष्ट हो गईं।]

धमे धमे, ध्वनि करे, न ध्वनि न करे, भेरी बजाये, न बजाना न करे। **नाति धमे,** सीमा का उल्लंघन कर, निरन्तर ही न बजाये, किस लिए? **अति धन्तं ही पापकं** निरन्तर भेरी बजाना अब हमारे लिए बुरा सिद्ध हुआ। **धन्तेन सतं लद्धं,** नगर में भेरी बजाने से सौ **कार्षापण** मिला। **अतिधन्तेन नासितं,** लेकिन अब मेरे पुत्र ने मेरी बात न मान, जो जंगल में लगातार बजाया, उससे सब नष्ट हो गया।

शास्ता ने यह धर्मदेशना कह, मेल मिला, जातक का सारांश निकाल दिया। उस समय का पुत्र (अब का) बात न मानने वाला भिक्षु था, लेकिन पिता मैं ही था।

६०. संखधमन जातक

"**धमे धमे....**" यह गाथा, शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय, (एक) बात न मानने वाले के ही बारे में कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में **बाराणसी** में (राजा) **ब्रह्मदत्त** के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व ने (एक) शङ्ख बजाने वाले कुल में उत्पन्न हो, वाराणसी में नक्षत्र की घोषणा होने पर, पिता को (साथ) ले, शङ्ख बजा कर, धन कमा, (वापिस) आने के समय, चोर-जंगल में पिता को निरन्तर शङ्ख बजाने से मना किया। वह 'शङ्ख-शब्द से चोरों को भगाऊँगा' सोच, निरन्तर ही उसे फूंकता रहा। चोरों ने पहली तरह ही, आकर (उन्हें) लूट लिया। बोधिसत्त्व ने भी पहली ही तरह गाथा कही—

धमे धमे नातिधमे अति धन्तं हि पापकं,
धन्तेनाधिगता भोगा ते तातो विधमी धमं ॥

[(शङ्ख) बजाये, लेकिन बहुत न बजाये। लगातार (शङ्ख) बजाना बुरा है। (शङ्ख) बजाने से जो भोग प्राप्त किये, उन्हें तात ने अधिक बजा बजा कर विध्वंस कर दिया।]

ते तातो विधमी धमं, वे शङ्ख बजाने से जो भोग मिले थे, उन्हें मेरे पिता ने फिर फिर (शङ्ख) फूंकने से **विधमि,** विध्वंस कर दिया, नष्ट कर दिया।

शास्ता ने इस धर्म-देशना को कह, मेल मिला, जातक का सारांश निकाल दिया। उस समय का पिता (अब का) बात न मानने वाला भिक्षु था (और) पुत्र तो मैं ही था।

पहला परिच्छेद

७. इत्थि वर्ग

६१. असातमन्त जातक

"**असा लोकित्थियो नाम** . . . ." यह गाथा शास्ता ने **जेतवन** में विहार करते समय (एक) आसक्त चित्त भिक्षु के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

उस (भिक्षु) की कथा **उम्मदन्ति जातक**[1] में आयेगी। बुद्ध ने उस भिक्षु को "हे भिक्षु ! स्त्रियाँ, असाध्वी, असती, पापी, निकृष्ट होती हैं, तू इस प्रकार की पापी स्त्री (-जाति) के प्रति क्यों आसक्त हुआ है?" कह, पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में **बाराणसी** में (राजा) **ब्रह्मदत्त** के राज्य करने के समय, **बोधिसत्त्व गान्धार देश** (=राष्ट्र) में, **तक्षशिला** में ब्राह्मणकुल में जन्म ग्रहण कर, बालिग होने पर तीनों वेदों तथा सब शिल्पों में सम्पूर्णता प्राप्त कर, लोक-प्रसिद्ध आचार्य्य हुआ। उस समय **बाराणसी** में एक ब्राह्मण कुल में, पुत्र की उत्पत्ति के दिन, निरन्तर प्रज्वलित आग रक्खी गई। जब वह ब्राह्मण-कुमार १६ वर्ष का हुआ, तब उसके माता-पिता ने कहा—"पुत्र ! हमने तेरी उत्पत्ति के दिन, आग जलाकर रख दी थी। यदि ब्रह्म-लोक जाने की इच्छा है, तो उस आग को लेकर, जंगल में जा, अग्नि-देवता को नमस्कार करता हुआ

[1] **उम्मदन्ति जातक** (५२७)

ब्रह्म-लोक-परायण हो। यदि गृहस्थ होना चाहता है, तो **तक्षशिला जाकर** वहाँ लोक-प्रसिद्ध आचार्य्य से शिल्प सीख (घर आ) कुटुम्ब का पालन-पोषण कर।" माणवक (=ब्रह्मचारी) ने 'मैं जंगल में प्रविष्ट हो, अग्नि की परिचर्य्या न कर सकूँगा, मैं कुटुम्ब ही पालूँगा' विचारा। माता-पिता को नमस्कार कर, आचार्य्य की एक हज़ार की फीस[1] के साथ वह **तक्षशिला,** गया, और शिल्प सीख कर वापिस लौट आया। उसके माता-पिता को उसके गृहस्थ होने की इच्छा नहीं थी। वह चाहते थे कि वह बन में (जाकर) अग्नि (-देवता) की परिचर्य्या करे। सो, उसकी माता ने उसे स्त्रियों के दोष दिखा कर, जंगल को भेजने की इच्छा से सोचा—"वह आचार्य्य पण्डित है, व्यक्त है। वह मेरे पुत्र को स्त्रियों के दोष बता सकेगा।" (यह सोच) पूछा—"तात! तू ने शिल्प सीखा?

"अम्मा! हाँ।"

"असात-मन्त्र भी तूने सीखे?"

"अम्मा! नहीं सीखे।"

"तात! यदि तूने 'असात-मन्त्र' नहीं सीखे, तो तूने क्या सीखा? जा, सीख कर आ।"

वह 'अच्छा' कह, फिर तक्षशिला की ओर चल दिया।

उस आचार्य्य की भी, एक सौ बीस वर्ष की बूढ़ी माता थी। वह, उसे अपने हाथ से नहला, खिला, पिला, उसकी सेवा करता था। अन्य मनुष्य उसे वैसा करते देख, घृणा करते। उसने सोचा—"मैं जंगल में प्रवेश कर, वहाँ माता की सेवा करता रहूँ।" सो, उसने, एक एकान्त जंगल में, पानी मिलने की जगह पर, पर्णशाला बनवाई। वहाँ घी चावल आदि मँगवा कर अपनी माता को ले आया, और उसकी सेवा करता हुआ रहने लगा।

वह माणवक भी तक्षशिला में पहुँच, वहाँ आचार्य्य को न देख 'आचार्य्य! कहाँ है?' पूछा। उस समाचार को सुन कर वहाँ गया, और (आचार्य्य) को प्रणाम कर खड़ा हुआ। उस आचार्य्य ने (पूछा)—"तात! किस लिए

[1]**फीस (आचार्य्य-भाग)।**

बहुत जल्दी (लौट) आया ?"

"आपने मुझे 'असात-मन्त्र' नहीं सिखाया न ?"

"तुझे किस ने कहा कि 'असात-मन्त्र' सीखना चाहिए ?"

"आचार्य्य ! मेरी माता ने ।"

बोधिसत्त्व ने सोचा—"असात-मन्त्र तो कोई मन्त्र नहीं हैं। इसकी माता, इसे स्त्रियों के दोषों को विदित करा देना चाहती होगी।"

"सो, अच्छा तात ! तुझे असात-मन्त्र दूँगा" (कह) उसने कहा—"आज से आरम्भ करके, तू मेरे स्थान पर, मेरी माता को नहलाते, खिलाते, पिलाते, उसकी सेवा करना। हाथ, पैर, सिर और पीठ दबाते (=मलते) हुए, 'आर्ये ! बूढ़ी होने पर भी तेरा शरीर ऐसा है, तो जवानी में (यह शरीर) कैसा रहा होगा ?' (कह) शरीर दबाने के समय, हाथ पैर आदि के वर्ण की प्रशंसा करना। और, जो कुछ तुझे मेरी माता कहे, वह बिना लज्जा के, बिना छिपाये, मुझे कहना। ऐसा करने से असात-मन्त्रों की प्राप्ति होगी, न करने से नहीं होगी।" उसने 'आचार्य्य ! अच्छा' कह, उसकी बात मान, उस समय से आरम्भ करके, जैसा जैसा कहा था, वैसा वैसा किया।

उस माणवक के बार बार प्रशंसा करने पर, उस अन्धी, जराजीर्ण के मन में काम उत्पन्न हो गया—"यह माणवक मेरे साथ रमण करना चाहता होगा।" उसने एक दिन अपने शरीर-वर्ण की प्रशंसा करने वाले माणवक से पूछा—"मेरे साथ रमण करना चाहता है ?"

"आर्ये ! मैं रमण करने की इच्छा तो करूँ, लेकिन आचार्य्य का भय है।"

"यदि, मुझे चाहता है, तो मेरे पुत्र को मार डाल।"

"मैंने आचार्य्य के पास इतना शिल्प सीखा, कैसे, मैं केवल कामासक्ति के कारण उनको मारूँगा ?"

"अच्छा, तो यदि तू मेरा परित्याग न करे, तो मैं ही उसे मार दूँगी।"

सो स्त्रियाँ, ऐसी असाध्वी, पापी, निकृष्ट होती हैं। वैसी उमर में भी चित्त में रागोत्पत्ति के कारण, काम का अनुकरण करती हुई, ऐसे उपकारी पुत्र को मारने को तैयार हो गई। माणवक ने बोधिसत्त्व को वह सब बात कह दी। 'माणवक ! तू ने अच्छा किया, जो मुझे बता दिया' (कह) माता का आयु-संस्कार देख, वह 'आज ही मर जायगी' जान, (माणव को) कहा—"माण-

वक ! आ, उसकी परीक्षा करें।" (यह कह) उसने एक गूलर का वृक्ष छील कर, अपने जितना (बड़ा) काठ का पुतला बनाया। उसे सिर सहित ढक कर, अपने सोने की जगह पर लम्बा लिटा दिया, और रस्सी बाँध कर, अपने शिष्य को कहा—'तात ! कुल्हाड़ा ले जा कर, मेरी माता को इशारा कर।'

माणवक ने जाकर कहा—"आर्ये ! आचार्य्य, पर्णशाला में अपनी शय्या पर सोये हैं, मैंने रस्सी की निशानी बाँध दी है। यदि सामर्थ्य हो, तो इस कुल्हाड़े को ले जाकर मार।"

"तू मुझे छोड़ेगा नहीं न ?"

"किस लिए छोड़ूँगा ?"

उसने कुल्हाड़े को ले, काँपती हुई उठ कर, रस्सी के साथ साथ जा, हाथ से छू कर, 'यह मेरा पुत्र है' करके, काठ के पुतले के मुँह पर से कपड़े हटा, कुल्हाड़े को ले, 'एक ही प्रहार से मारूँगी' सोच, गरदन पर ही मारा। 'टन' करके शब्द हुआ। उसे पता लग गया कि लकड़ी है।

बोधिसत्त्व के, 'माँ ! क्या करती है ?' पूछने पर, 'मैं ठगी गई' जान वह वहीं गिर कर मर गई। अपनी पर्ण-शाला में पड़ी रहने पर भी, उस क्षण, उसको मरना ही था। बोधिसत्त्व ने उसका मृत होना जान, शरीर-कृत्य कर, आदाहन (=आग) बुझा, वन-पुष्पों से पूजा कर, माणवक सहित पर्णशाला के द्वार पर बैठ, (माणवक) को कहा—"तात ! असात-मन्त्र कोई पृथक मन्त्र नहीं है। स्त्रियाँ असाध्वी (=असाता) होती हैं। तेरी माता ने तुझे असात-मन्त्र सीख कर आ, (करके) जो मेरे पास भेजा है, वह स्त्रियों के दोष जानने के ही लिए भेजा है। सो तूने अब प्रत्यक्ष ही, मेरी माता के दोष देख लिए हैं। इसलिए तू जान ले कि स्त्रियाँ असाध्वी, पापिनी होती हैं।" इस प्रकार उपदेश कर, उसे विदा किया। वह माणवक भी आचार्य्य को प्रणाम कर, माता-पिता के पास गया। उसकी माता ने पूछा—"असात-मन्त्र सीखे ?"

"अम्म ! हाँ।"

"तो अब क्या करेगा ? प्रव्रजित हो, अग्नि-परिचर्य्या करेगा, वा गृहस्थ में रहेगा ?"

"माता ! मैंने प्रत्यक्षतः स्त्रियों के दोष देख लिए, मुझे अब गृहस्थी बनने

से काम नहीं, मैं प्रव्रजित होऊँगा" (कह) माणवक ने अपने अभिप्राय को प्रकाशित करते हुए, यह गाथा कही—

असा लोकित्थियो नाम वेला तासं न विज्जति,
सारत्ता च पगब्भा च सिखी सब्बघसो यथा,
ता हित्वा पब्बजिस्सामि विवेकमनुब्रूहयं ॥

[लोक में स्त्रियाँ असाध्वी होती हैं। उनका कोई समय नहीं होता। जैसे दीपक की शिखा सब को जला देने (=खा लेने) वाली होती है; वैसी ही वह रागानुरक्त तथा प्रगल्भ होती हैं। मैं उन्हें छोड़, अपनी शान्ति (= विवेक) की वृद्धि करता हुआ प्रव्रजित होऊँगा।]

असा, असतियां=पापिनियाँ, अथवा 'सात' कहते हैं सुख को, सो वह उनमें नहीं। जो उनमें अनुरक्त हो, उसे वह सुख नहीं देती, इसलिए भी असाता, दुःखदायिनी, यह अर्थ है। इस अर्थ की प्रमाणिकता के लिए यह सूक्त उद्धृत करना चाहिए—

"माया चेसा मरीची च सोको रोगो चुपद्दवो,
खरा च बन्धना चेता मच्चुपासो गुहासयो
तासु यो विस्ससे पोसो सो नरेसु नराधमो ॥

[वे माया हैं, मरीचि हैं, शोक हैं, रोग हैं, उपद्रव हैं, कठोर हैं, बन्धन हैं, मृत्यु-पाश हैं, गुह्य-आशय हैं। जो मनुष्य उनका विश्वास करे, वह नरों में अधम नर है।]

लोकित्थियो, लोक (=संसार) में स्त्रियाँ। **वेला तासं न विज्जति,** अम्मा! उन स्त्रियों को कामासक्ति होने पर, वेला (=समय), संवर (= संयम), मर्य्यादा, सन्तुष्टि नहीं। **सारत्ता च पगब्भा च,** पञ्चकामों में अनुरक्त होने पर, एक तो इनकी कोई वेला नहीं होती, वैसे ही काय-प्रगल्भता, वाक्-प्रगल्भता, और मन की प्रगल्भता—इन तीन से युक्त होने के कारण प्रगल्भ। इनमें काय-संयम, वाक्-संयम अथवा मन का संयम नहीं। लोभी, (तो यह) कौओं के समान होती हैं। **सिखी सब्बघसो यथा,** अम्म! जैसे ज्वाला-शिखा वा 'शिखी' कहलाने वाली अग्नि, गुँह (गूथ) आदि गन्दगी भी, घी, शहद,

शक्कर आदि शुद्ध चीज़ भी, इष्ट भी तथा अनिष्ट भी, जो जो पाती है, सभी खा लेती है; और इस लिए **सब्बघसो** (=सब को खाने वाली) कहलाती है, उसी प्रकार यह स्त्रियाँ भी, चाहे हथवान्, ग्वाले आदि हीन जाति, हीन पेशे के लोग हों, चाहे क्षत्रिय आदि उत्तम-पेशे वाले लोग हों, ऊँच-नीच का विचार किये बिना, जिसे दुनिया में 'मज़ा' कहते हैं, उस कामाचार की इच्छा होने पर, जिस किसी को पाती हैं, उसी का सेवन करती हैं। इसलिए वह सर्वभक्षक अग्नि-शिखा के समान होती हैं। इसलिए जैसे सर्व-भक्षक अग्नि-शिखा है वैसा ही इन्हें जानना चाहिए। **ता हित्वा पब्बजिस्सामि,** मैं उन पापिनी, दुःख की कारण स्त्रियों को छोड़, अरण्य में प्रविष्ट हो, ऋषियों की रीति से प्रव्रज्या लूँगा। **विवेकमनुब्रूहयं,** शारीरिक-शान्ति (=एकान्त), मानसिक शान्ति (=एकान्त) और चित्त के मैल (=उपधियों) से मुक्ति—यह तीन प्रकार का एकान्त कहा गया है। सो यहाँ शारीरिक-एकान्त और मानसिक एकान्त से अभिप्राय है।

माँ! मैं प्रव्रजित होकर **कसिण-कर्म** (=योगाभ्यास) करके, आठ समापत्तियाँ और पाँच अभिज्ञायें प्राप्त कर, (जन-)समूह से शरीर को पृथक् कर, और चित्त के मैलों (=क्लेशों) से चित्त को पृथक् कर, इस एकान्तता (=विवेक) को बढ़ाते हुए ब्रह्म-लोक-परायण होऊँगा। बस, मुझे गृहस्थी नहीं चाहिए।

इस प्रकार स्त्रियों की निन्दा कर, माता-पिता को प्रणाम कर, प्रव्रजित हो, उक्त प्रकार से एकान्त (=विवेक) की वृद्धि करते हुए ब्रह्म-लोक-गामी हुआ।

बुद्ध ने भी भिक्षुओ! इस प्रकार स्त्रियाँ, असाध्वी, पापिनी, दुःखदायिनी होती हैं, (कह) स्त्रियों के दोषों (=अगुण) का वर्णन कर, (आर्य-)सत्यों को प्रकाशित किया। (आर्य-)सत्यों के प्रकाशन के अन्त में वह भिक्षु श्रोतापत्ति-फल में प्रतिष्ठित हुआ। शास्ता ने मेल मिला, जातक का सारांश दिखाया। उस समय की माता (अब की) **कापिलानी,** पिता (अब के) **महाकाश्यप** थे, शिष्य (अब के) **आनन्द;** (और) आचार्य्य तो मैं ही था।

६२. अंडभूत जातक

'**यं ब्राह्मणोति**. .' यह गाथा (भी) **जेतवन** में विहार करते समय (एक) आसक्त चित्त भिक्षु के ही बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

शास्ता ने उसे 'भिक्षु ! क्या तू सचमुच आसक्त है' पूछा। 'सचमुच' कहने पर 'भिक्षु ! स्त्रियाँ (सँभाल कर) रक्खी नहीं जा सकतीं। पूर्व समय में पण्डित लोग (=बुद्धिमान्) स्त्रियों को (उनके) गर्भ से ही सँभाल कर रखने की कोशिश करते हुए भी, न रख सके' कह, पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में **बाराणसी** में (राजा) **ब्रह्मदत्त** के राज्य करने के समय, बोधिसत्त्व, उसकी अग्र पटरानी की कोख से जन्म ग्रहण कर, वयस्क होने पर, सभी शिल्पों में सम्पूर्णता प्राप्त कर, पिता के मरने पर, राज्य पर प्रतिष्ठित हो, धर्म पूर्वक राज्य करने लगा। वह पुरोहित के साथ जूआ खेला करता था, और खेलते समय इस द्यूत-गीत (जुये के गीत) को कह कर चाँदी के तख़्ते पर सोने के पासे फेंकता था—

सब्बा नदी वङ्कगता, सब्बे कट्ठमया वना,
सब्बित्थियो करे पापं, लभमाना निवातके ॥

[सभी नदियाँ टेढ़ी हैं, सभी बनों में लकड़ी है। मौका मिलने पर सभी स्त्रियाँ पाप-कर्म करती हैं।]

इस प्रकार खेलते हुए राजा सदैव जीतता, पुरोहित की हार होती। क्रम से घर की सम्पत्ति नाश होती देख, पुरोहित सोचने लगा—इस प्रकार तो इस

घर का सब धन नष्ट हो जायगा, मैं एक ऐसी स्त्री को ढूँढ़ कर घर में रक्खूँ, जो दूसरे पुरुष के पास न जाये।" फिर उसे यह ख्याल आया—"मैं किसी ऐसी स्त्री को, जिसने पहले किसी दूसरे पुरुष को देखा हो, (सँभाल कर) न रख सकूँगा। इस लिए मैं एक स्त्री को उसके गर्भ से आरम्भ करके, रख कर, उसकी आयु होने पर, उसे अपने वश में कर, (और) उसे एक ही पुरुष वाली रख, उसके गिर्द कड़ा पहरा लगा, राजा के कुल से धन ले आऊँगा।" वह अङ्क-विद्या में हुशियार था। सो, उसने एक दरिद्र गर्भिणी स्त्री को देख, 'लड़की उत्पन्न करेगी' जान, उसे बुला, खर्चा दे, घर में रक्खा। फिर उसके प्रसूत होने पर, उसे धन दे, प्रेरित कर, वह लड़की किन्हीं दूसरे आदमियों को न देखने देकर, स्त्रियों के ही हाथ में दे, उसका पालन-पोषण करा, बड़ी होने पर, उसे अपने वश में कर लिया। जब तक वह (लड़की) बढ़ती रही, तब तक वह राजा के साथ जूआ नहीं खेला, लेकिन लड़की को अपने वश में कर लेने पर, पुरोहित ने राजा से कहा—महाराज! जूआ खेलें। राजा ने 'अच्छा' कह, पूर्व प्रकार से ही खेला। पुरोहित ने राजा के गा कर पासा फेंकने के समय कहा—"मेरी माणविका के अतिरिक्त।" उस समय से पुरोहित जीतता, राजा की हार होती।

बोधिसत्त्व ने सोचा 'इसके घर में एक पुरुष-वाली एक स्त्री होनी चाहिए।' पता लगाने पर 'ऐसी स्त्री है' जान, इसके सदाचार को तुड़वाऊँगा, (सोच) एक धूर्त को बुलाकर पूछा—"पुरोहित की स्त्री का शील तोड़ सकता है?"।

"देव! तोड़ सकता हूँ।" सो राजा ने उसे धन दे 'जल्दी कर' कह, भेजा।

उसने राजा से धन ले, गन्ध, धूप, चूर्ण, कपूर आदि ख़रीद, उस (पुरोहित) के घर के समीप सब सुगन्धियों की दूकान लगाई। पुरोहित का घर सात तलों का तथा सात ड्योढ़ियों वाला था। सभी ड्योढ़ियों पर स्त्रियों का ही पहरा था। ब्राह्मण को छोड़ कर और कोई आदमी घर में नहीं घुस सकता था। कूड़ा फेंकने की टोकरी भी, देख कर ही अन्दर आने जाने दी जाती। उस माणविका को, केवल वह पुरोहित ही देख सकता था। (हाँ), उसकी एक स्त्री परिचारिका थी। वह परिचारिका गन्ध, पुष्प, खरीद कर ले जाती हुई, उस धूर्त की दूकान के समीप से ही जाती। उस (धूर्त) ने 'यह उसकी परिचारिका है' अच्छी तरह जान, एक दिन उसे आती देख, दूकान से उठ, जा कर,

उसके पैरों में गिर, दोनों हाथों से पैरों को ज़ोर से पकड़, 'माँ ! इतने समय तक तू कहाँ रही' कह, रोना (आरम्भ) किया।

शेष लगे हुए धूर्तों ने भी एक ओर खड़े हो कहा—"हाथ, पैर, मुँह की बनावट और रंग-ढंग (=आकल्प) से माता-पुत्र एक ही जैसे हैं।" उनको कहते सुन, उस स्त्री ने अपने में अविश्वास कर, 'यह मेरा पुत्र (ही) होगा' (सोच) स्वयं भी रोना शुरू कर दिया। वे दोनों काँद कर, रो कर एक दूसरे को गले लगा कर खड़े हुए। तब उस धूर्त ने पूछा—"माँ ! तू कहाँ रहती है ?"

"तात ! मैं किन्नर-लीला से रहने वाली, श्रेष्ठ-सुन्दरी, पुरोहित की तरुण-स्त्री की सेवा-सुश्रूषा करती हुई रहती हूँ।"

"माँ ! अब कहाँ जा रही है ?"

"उसके लिए फूल-माला आदि लेने।"

"माँ, तुझे और जगह जाने की क्या ज़रूरत है ? अब से तू मेरे ही पास से ले जाया कर" (कह) विना मूल्य लिये ही, बहुत से पान-पत्र आदि तथा नाना प्रकार के फूल दिये।

माणविका ने उसे बहुत से गन्ध-पुष्प आदि लाते देख, पूछा—"अम्म ! क्या आज हमारा ब्राह्मण प्रसन्न है ?"

"ऐसा क्यों कहती है ?"

"इनकी अधिकता देख कर।"

"ब्राह्मण ने अधिक मूल्य नहीं दिया, मैं इन्हें अपने पुत्र के पास से लाई हूँ।"

उस समय से, ब्राह्मण का दिया हुआ मूल्य अपने पास रख कर, उसी (पुत्र) के पास से गन्ध फूल आदि ले जाती थी। कुछ दिन व्यतीत होने पर, धूर्त बीमारी का बहाना बना पड़ रहा। उसने उसकी दूकान के दरवाज़े पर जा, उसे न देख, पूछा—"मेरा पुत्र कहाँ है ?"

"तेरे पुत्र को बीमारी हो गई है।"

उसने, जहाँ वह लेटा हुआ था, वहाँ जाकर, उसकी पीठ मलते हुए पूछा—"तात ! तुझे क्या बीमारी है ?" वह चुप रहा। "बेटा ! कहता क्यों नहीं ?"

"माँ ! प्राण निकलने को आयें, तो भी तुझे नहीं कह सकता।"

"तात ! यदि मुझसे नहीं कहेगा, तो किसे कहेगा ?"

"माँ ! मुझे और कोई रोग नहीं है। तुझसे उस माणविका (के सौन्दर्य)

की प्रशंसा सुन, मैं आसक्त हो गया हूँ। वह मिलेगी, तो जीता रहूँगा, नहीं मिलेगी, तो यहीं मर जाऊँगा।"

"तात! यह भार मुझ पर रहा। तू, इसके लिए चिन्ता मत कर" (कह) उसे आश्वासन दे, बहुत से गन्ध फूल आदि ले, माणविका के पास जाकर, उसे कहा—"अम्म! मुझसे तेरी प्रशंसा सुन, मेरा पुत्र (तुझ पर) आसक्त हो गया है। इस विषय में क्या करूँ?"

"यदि (उसे) ला सके, तो मेरी ओर से छुट्टी ही है।"

उसकी बात सुन, वह उस दिन से, उस घर के कोने कोने से बहुत सा कूड़ा इकट्ठा करके, फूल लाने की टोकरी में डाल कर ले जाती; और पहरेदार स्त्री के उस टोकरी को देखने लगने पर, (वह कूड़ा) उसके ऊपर फेंक देती। वह घबरा कर दूर हट जाती। (यदि कोई) दूसरी पहरेदार स्त्री कुछ कहती तो उसके ऊपर भी, वह उसी प्रकार कूड़ा उलट देती। तब से (चाहे) वह कुछ लाती, वा ले जाती, कोई उसकी तलाशी (=परीक्षा) करने की हिम्मत न करती। सो उस समय, वह उस धूर्त को फूलों की टोकरी में लिटा, माणविका के पास लिवा ले गई। धूर्त माणविका के सतीत्व का नाश कर, एक दो दिन प्रासाद में ही रहा। पुरोहित के बाहर जाने पर, दोनों रमण करते; उसके आने पर धूर्त छिप रहता। एक दो दिन के बीतने पर उसने कहा—"स्वामी! अब तुझे जाना चाहिए।"

"मैं ब्राह्मण को, एक थप्पड़ मार कर जाना चाहता हूँ।"

अच्छा! ऐसा हो; कह, उसने धूर्त को छिपा कर, ब्राह्मण के आने पर कहा—"आर्य! मैं चाहती हूँ कि तुम बीणा बजाओ, और मैं नाचूँ।"

"भद्रे! अच्छा, नाचो" (कह) वह बीणा बजाने लगा।

"तुम्हारे देखते, नाचते लज्जा आती है, तुम्हारा मुँह वस्त्र से बाँध(-ढक) कर नाचूँगी।"

"यदि लज्जा लगती है, तो वैसा कर ले।"

माणविका ने घना वस्त्र ले, उसकी आँखें ढँकते हुए, मुँह पर (कपड़ा) बाँध दिया। ब्राह्मण मुँह बँधवा कर, वीणा बजाने लगा। उसने थोड़ी देर नाच कर कहा—"आर्य! जी चाहता है कि तुम्हारे सिर पर एक थप्पड़ मारूँ।"

स्त्री के लोभ में फँसे हुए ब्राह्मण ने, किसी (भीतरी) बात को न जान कहा—"मार"। माणविका ने धूर्त को इशारा किया।

उसने हलके से आ, ब्राह्मण की पीठ के पीछे खड़े हो (उसके) सिर पर, कोहनी से प्रहार दिया। ब्राह्मण की आँखें गिरने वाली सी हो गईं। सिर में फोड़ा पड़ गया। उसने दर्द से पीड़ित होकर कहा—"अपना हाथ ला।" ब्राह्मण तरुणी ने अपना हाथ उठा कर, उसके हाथ में रख दिया। ब्राह्मण बोला—'हाथ तो कोमल है; लेकिन प्रहार कड़ा है।' ब्राह्मण को मार कर, धूर्त छिप रहा। धूर्त के छिप रहने पर, ब्राह्मण तरुणी ने ब्राह्मण के मुँह पर से कपड़ा खोल, तेल लेकर, सिर में चोट की जगह पर मला। ब्राह्मण के बाहर जाने पर, उस स्त्री ने, फिर, उस धूर्त को टोकरी में लिटाया, और बाहर ले गई। उसने राजा के पास जा, सब हाल कह सुनाया।

राजा ने अपनी सेवा में आये ब्राह्मण को कहा—"(आओ) ब्राह्मण ! जुआ खेलें।"

"महाराज ! अच्छा।" राजा ने द्यूत-मण्डल तैयार करवा, पहली ही तरह से जुए का गीत गा कर पाँसा फेंका। ब्राह्मण ने माणविका के तप के खण्डन हुए रहने की बात न जानते हुए कहा—"मेरी माणविका के अतिरिक्त।" ऐसा कहने पर भी, वह हार ही गया। राजा ने जान कर कहा—"ब्राह्मण ! "**अतिरिक्त**" क्या कह रहे हो ? तुम्हारी माणविका का सतीत्व भ्रष्ट हो गया। तुम समझते थे, कि शुरू गर्भ से (सँभाल) कर, रखने से, सात जगहों पर पहरा लगा कर रखने से, तुम स्त्री को सँभाल कर रख सकोगे ? स्त्री को गोद में लेकर, (साथ) लिए फिरने से भी, उसे (सँभाल) कर रक्खा नहीं जा सकता। ऐसी कोई स्त्री नहीं है, जो एक ही पुरुष वाली हो। तेरी माणविका ने 'मैं नाचना चाहती हूँ' (कह) वीणा बजाते रहने पर तेरा मुँह कपड़े से बाँध, अपने जार को तेरे सिर में कोहनी से प्रहार देने के लिए प्रेरित किया। अब क्या "अतिरिक्त" कहते हो ? यह कह, यह गाथा कही—

यं ब्राह्मणो अवादेसी वीणं सम्मुखवेठितो,
अण्डभूता भता भरिया, तासु को जातु विस्ससे ॥

[जिसके कारण ब्राह्मण ने मुँह पर पट्टी बाँध कर, वीणा बजाई, वह गर्भ

से आरम्भ करके पाली गई, भार्य्या थी। ऐसी स्त्रियों का कौन विश्वास करे।]

यं ब्राह्मणो अवादेसि वीणं सम्मुखवेठितो, जिस कारण से ब्राह्मण घने कपड़े से मुँह बँधवा कर वीणा बजाता था, वह उस कारण को न जानता था। उसे भी ठगने की इच्छा से, उसने ऐसा किया। ब्राह्मण ने उस स्त्री का अत्यन्त-मायावी होना न जान, स्त्री का विश्वास कर समझा कि यह मुझसे लजाती है। सो, उस (ब्राह्मण) के अज्ञान को प्रगट करने के लिए राजा ने ऐसा कहा। यही, यहाँ अभिप्राय है। **अण्डभूता भता भरिया,** अण्ड कहते हैं बीज को। बीजभूता अर्थात् माता की कोख से निकलते ही लाई गई। भता अथवा पाली गई। वह कौन ? भार्य्या, प्रजापती, पाद परिचारिका। भोजन, वस्त्रादि भरना पड़ने से, टूटे संयम वाली होने से, अथवा लोक-धर्मों से भरी होने से भार्य्या। **तासु को जातु विस्ससे,** जातु=सम्पूर्णतः, कोख से आरम्भ करके भी पाली गई भार्य्याओं के इस प्रकार विकृत आचरण करने पर, कौन बुद्धिमान् आदमी, उनका सम्पूर्णतः विश्वास करे ? अर्थात्, 'यह मेरे प्रति निर्विकार हैं' ऐसा कौन विश्वास करे ? पाप कर्म का आमन्त्रण-निमन्त्रण करने वालों के रहने पर, स्त्री की रक्षा नहीं की जा सकती।

इस प्रकार बोधिसत्त्व ने ब्राह्मण को धर्मोपदेश किया। ब्राह्मण ने बोधि-सत्त्व का धर्मोपदेश सुन, घर जाकर, माणविका से पूछा—"तूने इस प्रकार का पाप-कर्म किया ?

"आर्य ! ऐसा किसने कहा ? नहीं किया, प्रहार मैंने ही दिया, किसी और ने नहीं। यदि विश्वास न हो, तो 'मैं तुम्हें छोड़, किसी दूसरे पुरुष के हस्त-स्पर्श को नहीं जानती'—ऐसी सत्य-क्रिया कर अग्नि में प्रविष्ट हो, तुम्हें विश्वास कराऊँगी। ब्राह्मण ने 'ऐसा हो' (कह) लकड़ी का बड़ा ढेर लगवा, उसमें आग दे, उसे बुलवा कर कहा—"यदि अपने पर विश्वास है, तो अग्नि में प्रविष्ट हो।"

माणविका ने अपनी परिचारिका को पहले से ही सिखा-पढ़ा रक्खा था—अम्म ! तू अपने पुत्र से कह, कि वह मेरे अग्नि प्रवेश करने के समय, वहाँ जाकर मेरा हाथ पकड़ ले। उसने जाकर वैसा कहा। धूर्त आकर परिषद् के बीच में खड़ा हो गया। ब्राह्मण को ठगने की इच्छा से माणविका ने जन(-समूह)

के बीच में खड़े होकर कहा—"ब्राह्मण ! मैं तुझे छोड़ किसी अन्य पुरुष के हस्त-स्पर्श को नहीं जानती हूँ। मेरे इस सत्य (के वल) से, यह अग्नि मुझे न जलाये।" यह कह, वह आग में घुसने को तैयार हुई।

उसी क्षण उस धूर्त ने, "देखो ! इस पुरोहित-ब्राह्मण के काम को; इस प्रकार की माणविका को आग में जलाना (=प्रवेश कराना) चाहता है" कहते हुए, उस माणविका को हाथ से पकड़ लिया। उसने हाथ छुड़ा पुरोहित से कहा—"आर्य ! मेरी सत्य-क्रिया टूट गई। अब मैं आग में प्रवेश नहीं कर सकती। कैसे ? आज मैंने यह सत्य-क्रिया की कि अपने स्वामी को छोड़ कर, मैं किसी के हस्त-स्पर्श को नहीं जानती। और, अब मुझे इस आदमी ने हाथ से पकड़ लिया।"

ब्राह्मण जान गया कि इसने मुझे धोका दिया है। सो, उसने उसे पीट कर, निकलवा दिया।

यह स्त्रियाँ ऐसी असद्धर्मिणी होती हैं। कितना बड़ा भी पाप-कर्म हो, उसे करके, अपने स्वामी को ठगने के लिए, 'नहीं, मैं ऐसा नहीं करती हूँ' करके प्रति दिन शपथ खाती हैं। (इस प्रकार) यह अनेक चित्तों वाली होती हैं। इसी-लिए कहा गया है—

चोरीनं बहुबुद्धीनं यासु सच्चं सुदुल्लभं,
थीनं भावो दुराजानो मच्छस्सेवोदके गतं॥
मुसा तासं यथा सच्चं सच्चं तासं यथा मुसा,
गावो बहुतिणस्सेव ओमसन्ति वरं वरं॥
चोरियो कठिना हेता वाळा चपलसक्खरा,
न ता किञ्चि न जानन्ति यं मनुस्सेसु वञ्चनं॥

[ऐसी स्त्रियाँ—जो चोर हैं, अति-बुद्धि हैं, जिनमें सत्य का मिलना दुर्लभ है,—उनका भाव, जल में गई मछली (के पद-चिन्ह) की तरह दुर्ज्ञेय है। उनको झूठ वैसा ही है, जैसा सत्य (और) उनको सत्य वैसा ही है, जैसा झूठ। वह बहुत तृण के होने पर, गौवों के अच्छा ही अच्छा (खाने की तरह), नये नये (आदमी) के साथ रमती हैं। यह चोर, कठोर, हिंस्-प्राणी सदृश, चपलता में कङ्कर सदृशा (स्त्रियाँ) मनुष्यों के ठगने (की सब विधियों) को जानती हैं।]

शास्ता न 'इस प्रकार स्त्रियाँ सँभाल कर नहीं रक्खी जा सकतीं'—यह धर्मदेशना ला, (आर्य-)सत्यों का प्रकाश किया। सत्यों (के प्रकाशन) के अन्त में आसक्त-चित्त (=उत्कण्ठित) भिक्षु स्रोतापत्ति फल में प्रतिष्ठित हुआ। शास्ता ने भी मेल मिला, जातक का सारांश निकाल दिया। उस समय बाराणसी-नरेश मैं ही था।

६३. तक्क जातक

"**कोधना अकतञ्ञू च**...." यह गाथा (भी) शास्ता ने **जेतवन** में विहार करते समय, (एक) आसक्त-चित्त भिक्षु के ही सम्बन्ध में कही।

क. वर्तमान कथा

शास्ता ने उसे, 'भिक्षु! क्या तू सचमुच उत्कण्ठित है' पूछा। उसके 'हाँ! सचमुच' कहने पर स्त्रियाँ अकृतज्ञ होती हैं, मित्रों में फूट डालने वाली होती हैं, तू किस लिए उनके प्रति चञ्चल हुआ है?' कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में **बाराणसी** में (राजा) **ब्रह्मदत्त** के राज्य करने के समय, बोधिसत्त्व ऋषि-प्रव्रज्या के अनुसार प्रव्रजित हो, **गङ्गा** के किनारे आश्रम बना, समापत्तियाँ और अभिञ्ञा की प्राप्ति कर, ध्यान में रत हो, सुख पूर्वक रहते थे। उस समय बाराणसी के श्रेष्ठी की (एक) दुष्ट-कुमारी नामक चण्ड (-स्वभाव) की, कठोर(-स्वभाव) की लड़की थी। वह दासों को, नौकरों को गाली देती थी, मारती थी। एक दिन, उसे लेकर, (वे) **गङ्गा** पर खेलने के

लिए गये। उनके खेलते ही खेलते सूर्य्यास्त का समय हो गया। बादल आ गये। आदमी, बादलों को देखकर, इधर उधर भाग गये। श्रेष्ठी की लड़की के दासों, नौकरों ने सोचा—"आज हमें इससे छुट्टी पानी चाहिए (=इसकी पीठ देखनी चाहिए)।" (यह सोच) वह, उसे जल के भीतर ही छोड़, स्थल पर चले आये। वर्षा (=देव) बरसी। सूर्य्य भी अस्त हो गया। अँधेरा छा गया। उन्होंने उस (लड़की) के बिना ही घर लौट कर, "वह कहाँ है?" पूछने पर कहा—"गङ्गा से तो पार हो गई थी, फिर हम नहीं जानते कि कहाँ चली गई।" रिश्तेदारों को ढूँढ़ने पर भी पता नहीं लगा।

वह चीखती-चिल्लाती, पानी में बहती बोधिसत्त्व की पर्ण-शाला के समीप पहुँची। उसने उसका शब्द सुन सोचा—'यह स्त्री का शब्द है, मैं इसे बचाऊँगा।" (और) उसने तिनकों की मशाल ले, नदी के किनारे जा, उसे देख, 'डर मत, डर मत' (कहा)। तब आश्वासन दे, (अपने) हाथी सदृश बल से, नदी को तैरते हुए, जाकर, उसे उठा लाया; और आग बना कर दी। शीत दूर हो जाने पर मधुर फल-फूल लाकर दिये। उनके खा चुकने पर पूछा—"कहाँ की रहने वाली है? कैसे गङ्गा में गिर पड़ी?" उसने वह हाल कह दिया। उसे 'तू यहीं रह' (कह) दो तीन दिन पर्णशाला में रखा; और स्वयं खुले में रहे। दो तीन दिन के बाद कहा—"अब जा।" वह 'इस तपस्वी का ब्रह्मचर्य्य तोड़, इसे साथ लेकर जाऊँगी' (सोच) न गई। समय बीतते बीतते स्त्री-माया और स्त्री-लीला दिखा, उसने, उस पतस्वी का व्रह्मचर्य्य नष्ट कर, उसके 'ध्यान' का लोप कर दिया। वह उसे लेकर जंगल में ही रहने लगा। तब उसने उसे कहा—"आर्य! हमें जंगल में रहने से क्या (लाभ)? आबादी की जगह पर चलें।" वह उसे लेकर एक सीमान्त के ग्राम में गया। और वहाँ मट्ठा बेच कर जीविका कमा, उसे पालने लगा। तक्र बेच कर जीविका करने से, उसका नाम तक्र-पण्डित पड़ गया। ग्राम-वासियों ने उसे खर्चा दे, 'हमें उचित अनुचित बताते हुए यहाँ रहें' (कह) ग्राम-द्वार पर एक कुटिया वनवा, उसमें बसाया।

उस समय चोर पर्वत से उतर कर, आस-पास लूट-मार किया करते थे। एक दिन उन्होंने उस गाँव को लूटा, और ग्राम-वासियों से ही उनका सामान उठवा कर, जाते समय, उस श्रेष्ठी की लड़की को भी अपने निवास-स्थान को

ले गये ।' (वहाँ जा) बाकी सब जनों को तो छोड़ दिया; लेकिन चोरों के सरदार ने उसके रूप पर मुग्ध हो, उसे अपनी भार्य्या बना लिया। बोधिसत्त्व ने पूछा—"अमुक नामक कहाँ रही ?"

"चोरों के सरदार ने पकड़ कर, अपनी भार्य्या बना ली।" यह सुन कर भी बोधिसत्त्व 'वह मेरे बिना वहाँ नहीं रहेगी, भाग कर आ जायगी' (सोच) उसकी प्रतीक्षा करता रहा। श्रेष्ठी की लड़की ने भी सोचा—"मैं यहाँ सुख से रह रही हूँ। कहीं वह तक्क-पण्डित किसी काम से यहाँ आकर, मुझे यहाँ से ले न जाये, और मैं इस सुख से वञ्चित हो जाऊँ। सो मैं उसे चाहती हूँ (करके) उसे बुलवा कर, मरवा दूँ।" (यह सोच) उसने एक आदमी को बुला कर संदेशा भेजा—"मैं यहाँ दुखी हूँ। तक्क-पण्डित आकर मुझे ले जायें।"

उसने उस संदेश को सुन, उस पर विश्वास कर लिया, और जाकर ग्राम के द्वार पर पहुँच खबर भेजी। उसने बाहर आ, उसे देख, कहा—"आर्य्य! यदि हम इस समय भागेंगे, तो चोरों का सरदार हमारा पीछा कर, हम दोनों को मार देगा। इस लिए रात को भागेंगे।" (यह कह) उसे लिवा, खिला कर कमरे में बिठाया। शाम को चोरों के सरदार के आकर, शराब पी कर, मस्त होने पर पूछा—"स्वामी! यदि इस समय अपने प्रतिद्वन्दी को देख पाओ, तो क्या करो ?"

"यह करूँगा—यह करूँगा"।

"तो क्या वह दूर है ? क्या वह कमरे में नहीं बैठा है ?" चोरों के सरदार ने मशाल ले, वहाँ जा कर, उसे देख, पकड़, घर के बीच में गिरा कर, कुहनी आदि से यथेच्छ पीटा। वह पिटते समय, और कुछ न कह कर, केवल इतना ही कहता—'**कोधना, अकतञ्ञू च पिसुणा मित्तदूभिका** (=क्रोधी, अकृतज्ञ, चुगलखोर, मित्रों में फूट डालने वाली)। चोर ने उसे पीटा, बाँध कर डाल दिया, और अपने खा कर सो रहा। उठने पर, शराब का नशा उतरने पर, फिर उसे पीटना शुरू कर दिया।

वह भी केवल वह चार शब्द ही कहता रहा। चोर ने सोचा—"यह इस प्रकार पीटे जाने पर भी, और कुछ न कह कर, केवल वह चार शब्द ही कहता है। मैं इसे पूछूँ ?" उसने उस (लड़की) को सोया जान, उससे पूछा—

"भो ! तू इस प्रकार पीटे जाने पर भी किस लिए केवल यह चार शब्द ही कहता है ?"

तक्र-पण्डित ने 'तो सुन' (कह) वह सब बात शुरू से कही। "मैं पहले बन में रहने वाला एक ध्यानी, तपस्वी था। सो मैंने इसे गङ्गा में बही जाती हुई को निकाल कर, पाला। इसने मुझे प्रलोभन दे, ध्यान से च्युत किया। मैं जंगल छोड़, इसका पालन-पोषण करता हुआ सीमान्त के ग्राम में रहने लगा। सो इसने चोरों द्वारा यहाँ लाने पर 'मैं दुख से रह रही हूँ, मुझे आकर ले जाओ' मेरे पास संदेश भेज, (मुझे यहाँ बुला) अब तुम्हारे हाथ में फँसा दिया। इस वजह (=कारण) से, मैं ऐसा कहता हूँ।"

चोर सोचने लगा—"जिसने इस प्रकार के गुणवान्, उपकारी (आदमी) के साथ इस प्रकार का बर्ताव किया, वह मेरे साथ क्या उपद्रव न करेगी ? इसे हटाना चाहिए।" उसने तक्र-पण्डित को आश्वासन दे, उसे जगा, तलवार ले 'चल, इस पुरुष को ग्राम-द्वार पर मारूँगा' कह, उसके साथ ग्राम से बाहर जा, 'इसे हाथ से पकड़' (कह) उस (पुरुष) को, उसके हाथ में पकड़ाते हुए, तलवार लेकर तक्र-पण्डित को मारते हुए की तरह, उसी के दो टुकड़े कर दिये। (फिर) सिर से नहा कर, कुछ दिन तक तक्र-पण्डित को प्रणीत भोजन से संतर्पित कर पूछा—"अब कहाँ जायेगा ?"

तक्र-पण्डित ने कहा—"मुझे गृहस्थ से मतलब नहीं। ऋषि-प्रव्रज्या के अनुसार प्रव्रजित हो, उसी जंगल में रहूँगा।"

"तो मैं भी प्रव्रजित होऊँगा।" दोनों जने प्रव्रजित हो, उस अरण्य में जा कर, पाँच अभिञ्ञा और आठ समापत्तियाँ प्राप्त कर, जीवन के अन्त में ब्रह्म-लोकगामी हुए। शास्ता ने यह दो कथायें कह, मेल मिला, अभिसम्बुद्ध होने की अवस्था में यह गाथा कही—

कोधना अकतञ्ञू च पिसुणा च विभेदिका,
ब्रह्मचरियं चर भिक्खू ! सो सुखं न विहाहिसि

[भिक्षु! (जिस पर तू आसक्त है) वह क्रोधी है, अकृतज्ञ है, चुगलखोर है, (मित्रों में) फूट डालनेवाली है। भिक्षु ! तू ब्रह्मचर्य्य पालन कर। इससे तेरे (ध्यान-)सुख का नाश न होगा।"]

भिक्षु ! यह स्त्रियाँ **कोधना,** आये क्रोध को रोक नहीं सकतीं। **अकतञ्ञू च,** बड़े से बड़े उपकार को भी भूल जाती हैं (=नहीं जानतीं)। **पिसुणा च,** प्रेम को शून्य करने वाली ही बात-चीत करती हैं। **विभेदिका,** मित्रों में फूट डालती हैं, भेद उत्पन्न करने वाली बात-चीत ही करना इनका स्वभाव है। यह ऐसे दुर्गुणों (=पापकर्मों) से युक्त हैं। तुझे इनसे क्या ? **ब्रह्मचरियं चर भिक्खु !** यह जो मैथुन-रहित परिशुद्ध ब्रह्मचर्य है, उसे चर(=पालन कर)। **सो सुखं न विहाहिसि,** सो तू इस ब्रह्मचर्य वास करते हुए, अपने ध्यान-सुख, मार्ग-सुख, फल-सुख से च्युत न होगा। इस सुख को नहीं छोड़ेगा। इस सुख से हीन न होगा (=परिहायिस्ससि) **न परिहाहिसि,** यह भी पाठ है, अर्थ वही है।

शास्ता ने इस धर्मदेशना को ला, (आर्य-)सत्यों का प्रकाशन किया। सत्यों के (प्रकाशन के) अन्त में आसक्त (=उत्कण्ठित) भिक्षु श्रोतापत्ति फल में प्रतिष्ठित हुआ। शास्ता ने जातक का सारांश निकाल दिया। उस समय का चोरों का सरदार (अब का) आनन्द (स्थविर) था। तक्र-पण्डित तो मैं ही था।

६४. दुराजान जातक

"मासु नन्दि इच्छति मं. . . ." यह (गाथा) शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय, एक उपासक के सम्बन्ध में कही।

क. वर्तमान कथा

एक श्रावस्ती-वासी उपासक त्रिशरण तथा पाँच-शील में प्रतिष्ठित था। उसकी बुद्ध में, धर्म में, तथा संघ में श्रद्धा थी। लेकिन उसकी भार्य्या दुश्शीला

पापिन थी। जिस दिन मिथ्या-आचार (=पर पुरुष का सेवन) करती, उस दिन सौ (मुद्रा) से खरीदी हुई दासी की तरह रहती, जिस दिन मिथ्या-चार न करती, उस दिन स्वामिनी की तरह चण्ड, कठोर (स्वभाव की) होती। वह (पुरुष) उसका कारण न समझ सकता था। उससे अत्यन्त तंग आकर, वह (कभी कभी) बुद्ध की सेवा में न जाता। सो एक दिन, वह गन्धपुष्प आदि ले, आकर, वन्दना करके बैठा। शास्ता ने पूछा—"उपासक! तू सात आठ दिन से बुद्ध की सेवा में क्यों नहीं आता?"

"भन्ते! मेरी घर वाली एक दिन सौ (मुद्रा) से खरीदी दासी की तरह रहती है, एक दिन स्वामिनी की तरह चण्ड, कठोर (स्वभाव वाली)। मैं उसके मन की बात (=भाव) नहीं जान सकता। सो मैं उससे तंग आ कर बुद्ध की सेवा में नहीं आता।"

उसकी बात सुन, शास्ता ने "उपासक! स्त्रियों के मन की बात दुर्ज्ञेय होती है। पूर्व-जन्म में भी पण्डितों ने तुझे यह बात कही है, लेकिन वह जन्मान्तर की बात होने से, तू उसे नहीं जान सकता" (कह) उसके प्रार्थना करने पर पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में **बाराणसी** में (राजा) **ब्रह्मदत्त** के राज्य करने के समय, बोधिसत्त्व लोक-प्रसिद्ध आचार्य्य होकर पाँच सौ ब्रह्मचारियों (=माणवकों) को विद्या पढ़ाते थे। सो एक दूर देश का ब्राह्मण तरुण उसके पास विद्या सीखने के लिए आया। वह एक स्त्री पर आसक्त हो, उसे भार्य्या बना, वहीं **बाराणसी** में रहते समय ही, दो तीन दिन आचार्य्य की सेवा में नहीं गया। उसकी वह भार्य्या दुःशीला पापिन थी। मिथ्याचार करने के दिन दासी की तरह रहती और न करने के दिन स्वामिनी की तरह चण्ड, कठोर (स्वभाव) की। वह उसके मन की बात न जानने के कारण, उससे परेशान हो, व्याकुल-चित्त हो आचार्य्य की सेवा में न गया। सात आठ दिन के बाद उसके आने पर आचार्य्य ने पूछा—'माणवक! क्यों, दिखाई नहीं देते?" उसने उत्तर दिया—"आचार्य्य! मेरी भार्य्या एक दिन (तो मुझे) चाहती है, दासी की तरह नम्र होती है, लेकिन दूसरे दिन स्वामिनी की तरह चण्ड, कठोर (स्वभाव की)

होती है। मैं उसके मन की बात नहीं जान सकता। उससे तंग परेशान हो, व्याकुल-चित्त (हो) मैं आपकी सेवा में नहीं आया।

आचार्य्य ने—"माणवक ! यह ऐसा ही है। स्त्रियाँ अनाचार करने के दिन तो स्वामी का अनुकरण करती हैं, दासी की तरह नम्र होती हैं; न करने के दिन अभिमान के मारे, स्वामी की कद्र (=गिनती) नहीं करतीं। इस प्रकार, यह स्त्रियाँ अनाचारिणी, दु:शीला होती हैं। उनके मन की बात जाननी दुष्कर है। उनके चाहने वाली होने पर भी, और न चाहने वाली होने पर भी, आदमी को उनके साथ उपेक्षा का ही व्यवहार करना चाहिए' (कह) उसे उपदेश स्वरूप यह गाथा कही—

मा सु नन्दि इच्छति मं मा सु सोचि न इच्छति,
थीनं भावो दुराजानो मच्छस्सेवोदके गतं॥

['मुझे चाहती है' (सोच) प्रसन्न न हो, 'मुझे नहीं चाहती है' (सोच) शोक न करे। पानी में मछलियों की चाल की भाँति, स्त्रियों के मन की बात जाननी दुष्कर है।]

"**मासु नन्दि इच्छति मं** 'सु' निपात-मात्र है। 'यह स्त्री मुझे चाहती है, मेरी कामना करती है, मुझसे स्नेह करती है' सोच सन्तुष्ट न हो। **मा सु सोचि न इच्छति,** 'यह मेरी चाह नहीं करती' सोच कर, शोक न करे, उसके इच्छा करने पर प्रसन्नता, न इच्छा करने पर शोक—दोनों में न पड़ कर, बीच का ही वर्ताव रक्खे। यही स्पष्ट किया गया है। **थीनं भावो दुराजानो,** स्त्रियों का भाव (=मन की वात) स्त्री-माया से छिपा रहने के कारण दुर्ज्ञेय होता है। जैसे क्या ? **मच्छस्सेवोदके गतं,** जिस प्रकार पानी से ढँका रहने के कारण मछली का गमन दुर्ज्ञेय होता है, जिससे वह मछुओं के आने पर, पानी से अपने गमन को छिपा कर भाग जाती है, अपने को पकड़ने नहीं देती; इसी प्रकार स्त्रियाँ बड़े बड़े दु:शील-कर्म करके भी 'हम ऐसा नहीं करतीं' (कह) अपने किये कर्मों को स्त्री-माया से ढँक स्वामियों को ठगती हैं। इस प्रकार यह स्त्रियाँ पापिन, दुराचारिणी होती हैं। उनके प्रति बीच का भाव (=मध्यस्थ भाव) रखने वाला ही सुखी रहता है।

इस प्रकार बोधिसत्त्व ने शिष्य को उपदेश दिया। उस समय से वह उसके प्रति मध्यस्थ-भाव रखने लगा। उसकी भार्य्या भी, यह जान कि आचार्य्य ने मेरे दुःशील भाव को जान लिया, उस समय से अनाचार-विरत हो गई। उस उपासक की उस स्त्री ने भी यह समझ, कि सम्यक् सम्बुद्ध ने मेरा दुराचार-भाव जान लिया, उस समय से पाप-कर्म नहीं किया।

शास्ता ने भी इस धर्म-देशना को ला (आर्य-)सत्यों को प्रकाशित किया। सत्यों (के प्रकाशन) के अन्त में, (वह) उपासक स्रोतापत्ति-फल में प्रतिष्ठित हुआ। शास्ता ने मेल मिला, जातक का सारांश निकाल दिया। उस समय के स्त्री-पुरुष (=पत्नी-पति) ही अब के स्त्री-पुरुष हुए। आचार्य्य तो, मैं ही था।

६५. अनभिरत जातक

"**यथा नदी च पन्थो च....**" यह गाथा, शास्ता ने **जेतवन** में विहार करते समय, उसी तरह के उपासक के सम्वन्ध में कही।

क. वर्तमान कथा

वह खोज करके, उसकी दुःशीलता की बात मालूम कर, झगड़ कर, चित्त-व्याकुलता के कारण सात आठ दिन तक सेवा में नहीं गया। एक दिन विहार जाकर **तथागत** को प्रणाम कर बैठते (तथागत के) "किस लिए सात-आठ दिन तक नहीं आया" पूछने पर, उसने कहा—"भन्ते! मेरी भार्य्या दुःशीला है। उसीसे व्याकुल-चित्त होने के कारण नहीं आया।"

शास्ता ने 'उपासक! यह स्त्रियाँ अनाचारिणी हैं' (करके) उन पर क्रोध न कर, उनके प्रति मध्यस्थ-भाव ही रखना चाहिए', यह बात, तुझे पहले

भी पण्डितों ने कही। लेकिन तू जन्मान्तर से छिपे रहने के कारण उस बात को नहीं देखता' (कह) उसके प्रार्थना करने पर पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में बाराणसी में (राजा) **ब्रह्मदत्त** के राज्य करने के समय, बोधिसत्त्व पूर्व प्रकार से ही, लोक-प्रसिद्ध आचार्य्य हुए। सो उसके शिष्य ने भार्य्या का दोष देख, व्याकुल चित्त रहने के कारण, कई दिन न जा कर, एक दिन आचार्य्य के पूछने पर, वह बात निवेदन की। आचार्य्य ने, "तात ! स्त्रियाँ सब के लिए हैं। 'यह दुःशीला हैं' (करके) पण्डित लोग उनपर क्रोध नहीं करते" कह, उपदेश-स्वरूप यह गाथा कही—

यथा नदी च पन्थो च पाणागारं सभा पपा,
एवं लोकित्थियो नाम नासं कुज्झन्ति पण्डिता ॥

[जैसे नदी, महामार्ग, शराबखाने, धर्मशालायें तथा प्याऊ, सब के लिए आम होते हैं, वैसे ही लोक में स्त्रियाँ सब के लिए साधारण होती हैं। पण्डित (=बुद्धिमान्) लोग, उनके विषय में क्रोध नहीं करते।]

यथा नदी—जैसे अनेक तीर्थों वाली नदी, नहाने के लिए आने वाले चाण्डाल आदि तथा क्षत्रिय आदि—सभी के लिए आम होती है, उसपर सभी को नहाना मिलता है। **पन्थो,** आदि में भी, जैसे महामार्ग सब के लिए आम है। उसपर सभी चल सकते हैं। **पाणागार**=शराब खाना भी सबके लिए आम होता है, जो जो पीना चाहते हैं, वह सब उसमें प्रवेश कर सकते हैं। पुण्येच्छुओं द्वारा जहाँ तहाँ बनाई गई धर्म-शालाएँ (=सभा) भी सबके लिए आम होती हैं, उसमें सभी प्रवेश कर सकते हैं। महामार्ग पर पानी की चाटियाँ रख कर बनाये प्याऊ भी सबके लिए आम होते हैं, वहाँ सभी पानी पी सकते हैं। **एवं लोकित्थियो नाम,** इसी प्रकार हे तात ! लोक में स्त्रियाँ भी सब के लिए आम हैं। इसी प्रकार आम (=सार्वजनिक) होने से वह नदी, महामार्ग, पाणागार (=शराबघर) सभा (=धर्मशाला) (तथा) प्याऊ के सदृश हैं। इसलिए **नासं कुज्झन्ति पण्डिता,** सो इन स्त्रियों

के प्रति, यह पापिन हैं, अनाचारिणी हैं, दुश्शीलिनी हैं, सबके लिए आम हैं, सोचकर, पण्डित लोग, दक्ष लोग, बुद्धिमान् लोग क्रोध नहीं करते।

इस प्रकार बोधिसत्त्व ने (अपने) शिष्य को उपदेश दिया। वह उस उपदेश को सुन मध्यस्थ (-भाव का) हो गया। उस की भार्य्या ने भी यह जान कि आचार्य्य ने मुझे जान लिया, उस समय से फिर पापकर्म नहीं किया। उस उपासक की भार्य्या ने भी, 'शास्ता ने मुझे जान लिया' सोच उस समय से फिर पाप-कर्म नहीं किया।

शास्ता ने इस धर्म-देशना को ला (आर्य-) सत्यों को प्रकाशित किया। सत्यों (के प्रकाशन) के अन्त में (वह) उपासक स्रोतापत्ति-फल में प्रतिष्ठित हुआ। शास्ता ने भी मेल मिला, जातक का सारांश निकाल दिया। उस समय के स्त्री-पुरुष ही अब के स्त्री-पुरुष (=पति-पत्नी) हैं, लेकिन आचार्य्य-ब्राह्मण तो मैं ही था।

६६. मुदुलक्खण जातक

"एका इच्छा पुरे आसि....." यह (गाथा) शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय चित्त के विकार के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

श्रावस्ती निवासी एक कुल-पुत्र शास्ता की धर्म-देशना सुन, (त्रि) रत्न शासन में श्रद्धापूर्वक प्रव्रजित हुआ। वह शिक्षाओं को आचरण में ला, योगाभ्यास करता, कर्मस्थानों में लगा रहता था। एक दिन श्रावस्ती में भिक्षा के लिए घूमते हुए एक अलंकृत-सजी स्त्री को देख, (उसे) 'सुन्दर'

मान, उसकी इन्द्रियाँ चञ्चल हो गईं। उसके दिल में विकार पैदा हो गया; मानो दूध वाले वृक्ष को बसूले से छील दिया गया हो। उस समय से, विकार के वशीभूत हुए उसको न शारीरिक आनन्द था, न मानसिक। उसकी दशा वैसी ही हो गई, जैसे भ्रान्त मृग की। उसका आचरण (बुद्ध) शासन के अनुकूल न रहा। केश, नाखून, लोम (रोम) लम्बे हो गये, तथा चीवर मैले-कुचैले रहने लगे। उसकी इन्द्रियों (=आकृति) में विकृति देख कर उसके मित्रों ने पूछा—"आयुष्मान! तुझे क्या है? तेरी आकृति पूर्ववत् नहीं है?"

"आयुष्मानो! (शासन में) मेरी रुचि नहीं।"

तब, वे उसे शास्ता के पास ले गये।

शास्ता ने पूछाः—"भिक्षुओ! इस अनिच्छुक भिक्षु को लेकर क्यों आये?"

"भन्ते। इस भिक्षु की (शासन में) रुचि नहीं रही।"

"भिक्षु! क्या सचमुच?"

"भगवान्! सचमुच।"

"तुझे किसने उत्कण्ठित कर दिया?"

"भन्ते! मैं ने भिक्षा के लिए घूमते हुए एक स्त्री को (अपनी) इन्द्रियों को चञ्चल करके देखा। उस से मेरे मन में विकार पैदा हो गया। उसीसे मैं उत्कण्ठित हूँ।"

शास्ता ने, "भिक्षु! इसमें कुछ आश्चर्य नहीं, यदि तू इन्द्रियों को चञ्चल कर विपक्षी-आलम्बन,[1] को 'सुन्दर' मानकर देखने से चित्त के विकार द्वारा चलायमान हो गया। पूर्व समय में पाँच अभिज्ञा तथा आठ समापत्ति लाभी, ध्यानबल से चित्त के मैल का नाश कर, विशुद्ध-चित्त, गगन तल चारी बोधिसत्त्व भी, इन्द्रियों को चञ्चल कर, अपने से विपक्षी आलम्बन (=स्त्री) को जब देखते थे, ध्यान से गिर, विकार से विकृत होने पर, बड़े

[1] स्त्री के लिए पुरुष, तथा पुरुष के लिए स्त्री विपक्षी-आलम्बन (opposite sex) हैं।

दु:ख के भागी होते। क्या सुमेरुपर्वत को उखाड़ डालने वाली हवा, हाथी जितने छोटे-पर्वत को; महाजम्बू वृक्ष को उखाड़ देने वाली हवा, टूटे तट के किनारे उगी झाड़ी को; महासमुद्र को सुखा देने वाली हवा, छोटे से तालाब को कुछ समझती है? इसी प्रकार उत्तम बुद्धि विशुद्ध-चित्त बोधि-सत्त्वों की भी अज्ञानी बना देने वाले चित्त के विकार क्या तुझसे लज्जा करेंगे? विशुद्ध-सत्व भी विकृत हो जाते हैं। उत्तम यशस्वी लोग भी अयश को प्राप्त होते हैं' (कह) पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में **बाराणसी** में (राजा) **ब्रह्मदत्त** के राज्य करते समय, बोधिसत्त्व, **काशी** राष्ट्र के एक महाधनी ब्राह्मण के कुल में उत्पन्न हुए थे। विज्ञता प्राप्त कर सब शिल्पों में पारङ्गत हो, काम-सुख को छोड़, ऋषि प्रव्रज्या के अनुसार प्रव्रजित हो, योगाभ्यास करने लगा। अभिञ्ञा तथा समापत्तियाँ उत्पन्न कर ध्यान-सुख से सुखी (हो) **हिमवन्त** प्रदेश में रहने लगा। वह एक समय निमक-खटाई खाने के लिए, हिमवन्त से उतर **बाराणसी** में पहुँच, राज-उद्यान में ठहरा। अगले दिन शारीरिक कृत्य समाप्त कर, लालरंग के वल्कल के वस्त्र पहन, एक कन्धे पर अजिन-चर्म रख, जटा-मण्डल बाँध, झोली-बँहगी ले, बाराणसी में भिक्षा माँगते हुए राजा के गृह-द्वार पर पहुँचा। राजा ने उस की चरिया-विहरण से ही प्रसन्न हो, उसे बुलवा महामूल्यवान् आसन पर बिठा, प्रणीत खाद्य-भोज्य से सन्तुष्ट किया; उसके अनुमोदन[1] कर चुकने पर, उस से उद्यान में ही रहने की प्रार्थना की।

उसने स्वीकार कर, राजा के घर से भोजन खा, राज-कुल को उपदेश देते हुए, उस उद्यान में सोलह वर्ष विताये। एक दिन राजा, उपद्रवी सीमान्त देश को शान्त करने के लिए जाते समय, (अपनी) **मृदुलक्षणा** नामक अग्र-महिषी को 'आर्य्य की सेवा प्रमाद-रहित होकर करना' कह, चला गया। राजा के जाने के बाद से, बोधिसत्त्व अपनी मरजी के समय, घर जाते। सो एक दिन

[1] पुण्यानुमोदन।

मृदुलक्षणा, बोधिसत्त्व के लिए भोजन तैयार कर 'आज आर्य्य देर कर रहे हैं' (सोच) सुगन्धित जल से नहा, सब अलंकारों से अलंकृत हो, महातल पर छोटी सी शय्या बिछवा, बोधिसत्त्व के आगमन की प्रतीक्षा करती हुई लेट रही।

बोधिसत्त्व भी अपना समय हुआ देख, ध्यान से उठ, आकाश-मार्ग से ही राजा के घर पहुँचे। मृदुलक्षणा वल्कल-चीर का शब्द सुन 'आर्य आ गये' समझ, जल्दी से उठी। शीघ्रता से उठने के कारण उस का बारीक वस्त्र खसक गया। तपस्वी ने छज्जे पर से आते हुए, देवी का विपक्षी आलम्बन इन्द्रियों को चंचल करके 'सुन्दर' (=शुभ) मानकर देखा। उसके दिल में विकार पैदा हो गया, जैसे दूध-वाले वृक्ष को वसूले से छील दिया गया हो। उसी समय उसके ध्यान का लोप हो गया। उसकी दशा ऐसी हो गई, जैसी बिना पर के कौवे की। उसने खड़े ही खड़े आहार ग्रहण किया और बिना खाये चित्त के विकार से कम्पित हो, प्रासाद से उतरा; और उद्यान में जा, पर्णशाला में प्रवेश कर, तखते के शयनासन के नीचे आहार को रख, (अपने) असदृश-आलम्बण[1] से बँध कर, राग-अग्नि से जलते हुए, निराहार रहने के कारण सूखते हुए, सात दिन तखते के बिछौने पर पड़े ही पड़े (बिता दिये)।

सातवें दिन, राजा सीमान्त को शान्तकर, लौट आया। नगर की प्रदक्षिणा कर, बिना घर गये ही (पहले) 'आर्य को देखूँगा' (सोच) उद्यान में जा, पर्णशाला में प्रवेश कर, उसे लेटे देखा। राजा ने सोचा—"कोई रोग हो गया होगा।" सो उसने पर्णशाला की सफाई करा, (उसके) पैर दबाते हुए पूछा—"आर्य! क्या तकलीफ है?"

"महाराज! मुझे और कोई रोग नहीं है; लेकिन चित्त के विकार के कारण मैं आसक्त हो गया हूँ।"

"आर्य! चित्त किस पर आसक्त हो गया है।"

"महाराज! मृदुलक्षणा पर।"

[1] विपक्षी-आलम्बन (opposite sex)।

"आर्य ! 'अच्छा, मैं आपको मृदुलक्षणा देता हूँ' कह, तपस्वी को ले जा, घर में प्रवेश कर, देवी को सब अलंकारों से अलंकृत कर तपस्वी को दिया। (लेकिन) देते हुए **मृदुलक्षणा** को इशारा किया, कि तुझे अपने बल से आर्य (के सदाचार) की रक्षा करनी चाहिए। 'अच्छा ! देव ! रक्षा करूँगी।' देवी को लेकर तपस्वी राज-भवन से उतरा।

उसने महाद्वार से निकलने के समय (ही) कहा—'आर्य ! हमें एक घर लेना चाहिए। जायें राजा से घर माँग लें।' तपस्वी ने जाकर (एक) घर माँगा। राजा ने एक ऐसा खाली पड़ा घर—जिसमें लोग आकर पाखाना कर जाते थे—दिलवाया। वह देवी को ले कर, वहाँ चला गया। देवी ने उसमें प्रविष्ट होने की अनिच्छा प्रगट की।

'क्यों नहीं प्रवेश करती ?'

'(स्थान) गन्दा होने से',

'अब क्या करूँ ?'

'इसे साफ कर' (कह) राजा के पास 'जा कुदाली ला, टोकरी ला' (कह) भेजा। अशुचि और कूड़ा फेंकवा, फिर गोबर मँगवा कर लिपवाया। तदनन्तर 'जा चारपाई ला, दीपक ला, बिछौना ला, चाटी ला, घड़ा ला'—इस प्रकार एक एक मँगवा कर, फिर पानी आदि लाने के लिए कहा। उसने घड़ा ले, पानी ला, चाटी को भर, स्नान करने के लिए पानी रख, बिछौना बिछाया।

बिछौना पर इकट्ठे बैठते समय उसने, उसे दाढ़ी से पकड़, घसीट, नीचा दिखा, अपने सामने किया—"तुझे अपने श्रमण होने का, ब्राह्मण होने का ख्याल नहीं ?" तब उसे अक्ल आई। इतनी देर तक वह अज्ञानी ही रहा। चित्त के विकार ऐसा अज्ञान फैलाने वाले हैं। "भिक्षुओ ! कामच्छन्द नीवरण अन्धा बना देनेवाला है, अज्ञानी बना देनेवाला है।" आदि (सूक्त पाठ) यहाँ कहना चाहिए। उसने अक्ल (=स्मृति) आने पर सोचा—"यह तृष्णा अधिक होने पर, मुझे चारों नरकों में से सिर न उठाने देगी। आज ही इसे राजा को सौंपकर मुझे हिमवन्त में प्रवेश करना चाहिए।" (यह सोच) उसने, उसे ले, राजा के पास जा, "महाराज ! मुझे तेरी देवी से मतलब नहीं। केवल इसी के कारण मेरी तृष्णा बढ़ी" (कह) यह गाथा कही—

एका इच्छा पुरे आसि अलद्धा मुदुलक्खणं,
यतो लद्धा अळारक्खी इच्छा इच्छं विजायथ ॥

[मृदुलक्षणा मिलने से पहले, केवल एक ही इच्छा थी; लेकिन जबसे यह विशालाक्षी मिली है, तब से (एक) इच्छा से (दूसरी) इच्छा पैदा हो रही है।]

महाराज! इस तेरी मृदुलक्षणा देवी के मिलने से **पुरे** (=पहले) 'अहो! मुझे यह मिल जाये'—ऐसी एक ही इच्छा थी, एक ही तृष्णा उत्पन्न हुई। **यतो**, लेकिन जब से मुझे यह **अळारक्खी**=विशालनेत्रा=शोभन-लोचना **लद्धा** (=मिली); तब से उस मेरी एक इच्छा ने घर की तृष्णा, सामान की तृष्णा, उपभोग-सामग्री की तृष्णा (करके) और और नाना प्रकार की इच्छायें पैदा कर दीं, उत्पन्न कर दीं। इस प्रकार मेरी यह बढ़ती हुई इच्छा, मुझे अपाय (=नरक) से सिर उठाने न देगी। यह मुझे बस है, तुम ही अपनी देवी को ग्रहण करो, मैं तो हिमवन्त को जाऊँगा।

उसी समय उसका खोया ध्यान उत्पन्न हो गया, और वह आकाश में बैठकर, राजा को उपदेश दे, आकाश मार्ग से ही हिमवन्त को चला गया। फिर आबादी की ओर नहीं आया। (वहाँ) ब्रह्म-विहारों की भावना कर, ध्यान प्राप्त (हो) ब्रह्म-लोक में उत्पन्न हुआ।

शास्ता ने इस धर्म देशना को ला, (आर्य) सत्यों को प्रकाशित किया। सत्यों (के प्रकाशन) के अन्त में, वह भिक्षु अर्हत्व में प्रतिष्ठित हुआ। शास्ता ने भी मेल मिला, जातक का सारांश निकाल दिया। उस समय का राजा (अब का) **आनन्द**, मृदुलक्षणा (अब की) **उत्पलवर्णा** और ऋषी तो मैं ही था।

६७. उच्छंग जातक

"**उच्छङ्गे देव ! मे पुत्तो . . . .**" यह (गाथा) शास्ता ने **जेतवन** में विहार करते समय एक दीहाती (=जानपदिक) स्त्री के सम्बन्ध में कही।

क. वर्तमान कथा

एक समय, **कोसल** देश (=राष्ट्र) में तीन जने एक जंगल के पास, खेती करते थे। उस समय जंगल के अन्दर (कुछ) चोर, लोगों को लूट कर भाग गये। (चोर पकड़ने वालों ने) चोरों को ढूंढ़ते हुए उन्हें न पाया। वहाँ आकर, 'तुम जंगल में डाका डालकर, अब यहाँ किसान बने हो' (कह) 'यह चोर हैं' (समझ), उन्हें बाँध कर, कोसल-नरेश को दे दिया। उस समय एक स्त्री, 'मुझे वस्त्र (=आच्छादन) दो, मुझे वस्त्र दो' कहती आकर, रोती, पीटती बार बार राज-भवन के पास से गुजरती। राजा ने उसका शब्द सुनकर कहा—दो, इसे कपड़ा। (लोग) वस्त्र लेकर गये। वह उसे देख बोली—'मुझे यह चादर (=वस्त्र) नहीं चाहिए। मुझे स्वामी रूपी चादर चाहिए।' लोगों ने जाकर राजा से निवेदन किया—"यह ऐसी चादर नहीं चाहती, यह स्वामी रूपी चादर चाहती है।" राजा ने उसे बुलवा कर पूछा—"तू स्वामी रूपी चादर माँगती है?"

"देव! स्त्री की चादर (उसका) स्वामी ही है। बिना स्वामी के, (हज़ार मुद्रा)के मूल्य की चादर पहनने पर भी स्त्री नंगी ही है।" इस अर्थ के समर्थन के लिए यह, सूक्त कहना चाहिए—

नग्गा नदी अनोदिका नग्गं रट्ठं अराजिकं,
इत्थीपि विधवा नग्गा यस्सापि दस भातरो ॥

[बिना पानी के नदी नग्न होती है, बिना राजा के राष्ट्र नग्न होता

है। विधवा स्त्री नग्न होती है, चाहे उसके दस भाई क्यों न हों।]

राजा ने उसपर प्रसन्न हो पूछा—"यह तीनों जने तेरे क्या लगते हैं ?"

"देव ! एक मेरा स्वामी है, एक भाई है, एक पुत्र है।"

राजा ने पूछा—"मैं तुझ पर सन्तुष्ट हूँ। इन तीनों में से एक को देता हूँ, किसे चाहती है ?" वह बोली—'देव ! मैं जीती रही, तो मुझे एक स्वामी भी मिल सकेगा, पुत्र भी मिल सकेगा; लेकिन माता-पिता के मर गये होने से भाई का मिलना दुर्लभ है। मुझे भाई (ही) दें।" राजा ने सन्तुष्ट हो, तीनों को छोड़ दिया। 'उस एक के कारण, तीनों जने दुःख से मुक्त हो गये'—यह बात भिक्षु-संघ में प्रगट हो गई। सो एक दिन धर्म-सभा में एकत्रित हुए भिक्षु, उसकी प्रशंसा कर रहे थे—"आवुसो ! इस एक स्त्री के कारण तीन जने दुःख से मुक्त हो गये।" शास्ता ने आकर पूछा—"भिक्षुओ ! इस समय बैठे क्या बातचीत कर रहे थे ?" (भिक्षुओं के) 'यह बात' कहने पर, शास्ता ने 'भिक्षुओ ! न केवल अभी इस स्त्री ने उन तीन जनों को दुःख से छुड़ाया पहले भी छुड़ाया था' कह, पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में (राजा) ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय तीन जने जंगल के किनारे पर खेती करते थे...... पूर्वोक्त प्रकार ही। तब राजा के यह पूछने पर कि तीनों जनों में से किसे (छुड़ाना) चाहती है, वह बोली, "देव ! क्या तीनों को नहीं (दे) सकते हैं ?"

"हाँ ! नहीं (दे) सकता।"

"यदि तीनों को नहीं दे सकते, तो मुझे (मेरे) भाई को दें।"

"पुत्र या स्वामी को ले, तुझे भाई से क्या ?" कहने पर "देव ! यह (दोनों) सुलभ हैं; लेकिन भाई दुर्लभ है" कह, यह गाथा कही—

उच्छङ्गे देव ! मे पुत्तो पथे धावन्तिया पति,
तञ्च देसं न पस्सामि यतो सोदरियमानये ॥

[देव ! पुत्र तो गोद में है, और पति रास्ते चलती को मिल सकता है;

लेकिन वह देश नहीं दिखाई देता, जहाँ से भाई (=सहोदर) लाया जा सके।]

उच्छङ्गे देव ! मे पुत्तो, देव ! मेरा पुत्र तो मेरे पल्ले में है, जैसे जंगल में जाकर, पल्ला करके, साग चुन चुन कर, उसमें डालने से पल्ले में साग सुलभ होता है; इसी प्रकार स्त्री के लिए पुत्र भी, पल्ले में साग की तरह सुलभ ही होता है। इसी से कहा, **उच्छङ्गे देव ! मे पुत्तो, पथे धावन्तिया पति**, रास्ता पकड़ कर, अकेली जाती हुई स्त्री को भी पति सुलभ है, जो जो देखता है, वही वन जाता है। इसी लिए कहा है, **पथे धावन्तिया पति**। **तञ्च देसं न पस्सामि यतो सोदरियमानये**—क्योंकि (अब) मेरे माता पिता नहीं हैं, इसलिए मैं माता की कोख नामक वह दूसरा देश नहीं देखती, जहाँ से समान-उदर में पैदा होने के कारण, सहोदर कहलाने वाला भाई ले आऊँ। इसलिए मुझे भाई ही दो।

राजा ने 'यह सत्य कहती है' सन्तुष्ट चित्त हो, तीनों जनों को बंधनागार से मँगवाकर, दे दिया। वह तीनों जनों को ले कर चली गई।

शास्ता ने भी 'भिक्षुओ ! न केवल अभी, पूर्व जन्म में भी इसने इन तीनों जनों को दुख से मुक्त किया था।' (कह) यह धर्म-देशना ला, मेल मिला, जातक का सारांश निकाल दिया। पूर्व-जन्म में चारों जने, अबके चारों जने ही (थे)' लेकिन राजा, उस समय मैं था।

६८. साकेत जातक

"यस्मिं मनो निविसति. . . ." यह (गाथा) शास्ता ने **साकेत** के समीप अंजन बन में विहार करते समय, एक ब्राह्मण के सम्बन्ध में कही।

क. वर्तमान कथा

भिक्षुसंघ सहित भगवान् साकेत (समीपवर्ती अंजन बन) में प्रवेश करते थे। उस समय, एक साकेत नगरवासी बृद्ध ब्राह्मण ने नगर से बाहर जाते समय, (नगर-) द्वार के बाहर बुद्ध को देखा, और (उनके) पाँव में गिर, पैरों को जोर से पकड़ कर बोला—"तात! क्या माता-पिता के बूढ़े होने पर, पुत्र को उनकी सेवा नहीं करनी चाहिए? तो फिर किस लिए इतनी देर तक तूने अपने को हम से छिपाये रक्खा? खैर, मैंने तो देख लिया, आ अब अपनी) माता को देखने के लिए चल।" यह कह, वह शास्ता को अपने घर ले गया। भिक्षुसंघ सहित शास्ता वहाँ जाकर बिछे आसन पर बैठे। ब्राह्मणी भी आकर शास्ता के पैरों में गिर कर रोने लगी—"तात! इतने समय तक कहाँ रहे? क्या माता-पिता के बृद्ध होने पर, उनकी सेवा नहीं करनी चाहिए?"(यह कहकर) उसने (अपने) लड़के लड़कियों से भी 'आओ! भाई को प्रणाम करो' (कहके) प्रणाम करवाया। दोनों ने सन्तुष्ट चित्त हो बड़ा दान दिया। शास्ता ने भोजन के बाद, उन दोनों जनों को **जरा-सुत्त**[1] का उपदेश दिया। सूत्र (के उपदेश) के अन्त में, दोनों जने **अनागामि-फल** में प्रतिष्ठित हुए। शास्ता, आसन से उठ अञ्जन वन को ही लौट गये। धर्म-सभा में बैठे हुए भिक्षुओं ने बात चलाई—"आवुसो! 'तथागत के पिता **शुद्धोदन** (हैं), माता **महामाया** (हैं) यह जानकर भी, ब्राह्मण और ब्राह्मणी ने 'तथागत हमारे पुत्र हैं' कहा। शास्ता ने भी इसे सहन कर लिया; क्या कारण है?" शास्ता ने उनकी बात सुन, 'भिक्षुओ! वे दोनों जने अपने पुत्र को ही पुत्र कहते थे' (कह) पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

"भिक्षुओ! पूर्व समय में, यह ब्राह्मण लगातार पाँच सौ जन्मों तक मेरा पिता हुआ, पाँच सौ जन्मों तक चाचा (=चुल्ल पिता), पाँच सौ जन्मों

[1] जरासुत्त (सुत्त निपात ४.६)।

तक ताया (=महापिता), यह ब्राह्मणी भी लगातार पाँच सौ जन्मों तक माता, पाँच सौ जन्मों तक चाची (=चुल्ल माता), पाँच सौ जन्मों तक ताई (=महामाता) हुई। इस प्रकार मैं डेढ़ हजार जन्म तो ब्राह्मण के हाथ में पला, और डेढ़ हजार जन्म ब्राह्मणी के हाथ में। इस प्रकार तीन हजार जन्मों को कह, बुद्ध होने की अवस्था में, यह गाथा कही—

यस्मिं मनो निविसति चित्तं वापि पसीदति,
अदिट्ठपुब्बके पोसे कामं तस्मिम्पि विस्ससे॥

[जिस (आदमी) पर मन ठहर जाता है, अथवा चित्त प्रसन्न होता है, पहले न देखा रहने पर भी, उसमें विश्वास कर लिया जाता है।"]

यस्मिं मनो निवसति, जिस आदमी को देखते ही, उसपर मन ठहर जाता है, **चित्तं वापि पसीदति,** जिसको देखते ही चित्त प्रसन्न हो जाता है, मृदु हो जाता है। **अदिट्ठपुब्बके पोसे,** साधारणतः जिसे इस जन्म में नहीं देखा है, ऐसे आदमी में **कामं तस्मिम्पि विस्ससे,** अनुभूत-पूर्व स्नेह के कारण, वैसे आदमी में भी सम्पूर्ण विश्वास हो जाता है।

इस प्रकार शास्ता ने इस धर्मदेशना को ला, मेल मिला, जातक का सारांश निकाल दिया। उस समय ब्राह्मण और ब्राह्मणी, यह दोनों ही थे, और पुत्र भी मैं ही था।

६६. विसवन्त जातक

"धिरत्थु तं विसं वन्तं....."यह (गाथा) शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय, धर्मसेनापति सारिपुत्र के सम्बन्ध में कही।

क. वर्तमान कथा

स्थविर के खाजा खाने के दिनों में, मनुष्य, संघ के लिए बहुत सा खाजा लेकर, विहार आये। भिक्षुसंघ के ले लेने पर, बहुत सा (खाजा) बाक़ी बच गया। लोग कहने लगे, "भन्ते! जो (भिक्षु) गाँव में गये हुए हैं, उनका (हिस्सा) भी ले लें।" उस समय स्थविर का (एक) बालक-शिष्य गाँव में गया था? (लोगों ने) उसका हिस्सा ले, उसके न आने पर, बहुत देर होती है (सोच) वह हिस्सा स्थविर को दे दिया। स्थविर ने जब उसे खा लिया, तो वह लड़का आया। सो स्थविर ने उससे कहा—"आयुष्मान्! मैंने तेरे लिए रक्खा हुआ खाद्य खा लिया।"

वह बोला—"भन्ते! मधुर (चीज़) किसे अप्रिय लगती है?"

महास्थविर को खेद हुआ। उन्होंने निश्चय किया कि "अब इस के बाद (कभी) खाजा न खायेंगे।" उसके वाद से सारिपुत्र स्थविर ने कभी खाजा नहीं खाया। उनके खाजा न खाने की बात भिक्षु-संघ में प्रगट हो गई। धर्म-सभा में बैठे भिक्षु उसकी चर्चा कर रहे थे। शास्ता ने पूछा—"भिक्षुओ! इस समय बैठे क्या बात कर रहे हो?"

"यह (कथा)" कहने पर, (शास्ता ने) "भिक्षुओ! एक बार छोड़ी हुई चीज को सारिपुत्र, प्राण छोड़ने पर भी (फिर) ग्रहण नहीं करता" (कह) पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में (राजा) ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय, बोधिसत्त्व एक विष-वैद्य के कुल में उत्पन्न हो, वैद्यक से जीविका चलाते थे। (एक बार) एक दीहाती को साँप ने डँस लिया। उसके रिश्तेदार देर न कर, जल्दी से वैद्य को बुला लाये। वैद्य ने पूछा—दवा के ज़ोर से विष को दूर करूँ? अथवा जिस साँप ने डँसा है, उसे बुलाकर, उसी से डँसे हुए स्थान से विष निकलवाऊँ?

(लोगों ने कहा)—"सर्प को बुलाकर, विष निकलवाओ।"

उसने साँप को बुलाकर पूछा—"इसे तू ने डँसा है?"

"हाँ ! मँनं।"

"अपने डँसे हुए स्थान से तू ही विष को निकाल।"

"मैंने एक बार छोड़े हुए विष को फिर कभी ग्रहण नहीं किया; सो मैं अपने छोड़े विष को नहीं निकालूँगा।"

उसने लकड़ियाँ मँगवा कर, आग बनाकर कहा—"यदि ! अपने विष को नहीं निकालता, तो इस आग में प्रवेश कर।"

सर्प बोला—"आग में प्रविष्ट हो जाऊँगा, लेकिन एक बार छोड़े अपने विष को फिर नहीं चाटूँगा।" यह कह, उसने यह गाथा कही—

धिरत्थु तं विसं वन्तं यमहं जीवितकारणा,
वन्तं पच्चावमिस्सामि मतम्मे जीविता वरं ॥

[धिक्कार है, उस विष को, जिसे जीवन की रक्षा के लिए, एक बार उगल कर मैं फिर निगलूँ। ऐसे जीवन से मरना अच्छा है।]

धिरत्थु, निन्दार्थक निपात है। **तं विसं**, उस विष को। **यमहं जीवित कारणा** (=जिसे मैं (अपने) जीवन की रक्षा के लिए) **वन्तं विसं** (=उगले हुए विष को) **पच्चावमिस्सामि** (=निगलूँगा), उस उगले हुए विष को धिक्कार है। **मतम्मे जीविता वरं**, उस विष को फिर न निगलने के कारण, जो आग में प्रविष्ट होकर मरना है, वह मेरे जीवित रहने की अपेक्षा अच्छा है।

यह कह, वह अग्नि में प्रविष्ट होने के लिए तैयार हुआ। वैद्य ने उसे रोक, रोगी को औषध तथा दवाई से निरोग कर दिया। फिर सर्प को सदाचारी बना, 'अब से किसी को दुःख न देना' (कह) छोड़ दिया।

शास्ता ने भी "भिक्षुओ ! एक बार छोड़ी हुई (चीज) को **सारिपुत्र**, प्राण छोड़ने पर भी फिर ग्रहण नहीं करता"—यह धर्मदेशना ला, मेल मिला, जातक का सारांश निकाल दिया। उस समय का सर्प (अब का) **सारिपुत्र** था, वैद्य तो मैं ही था।

७०. कुद्दाल जातक

"न तं जितं साधु जितं. . . ." यह (गाथा) शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय, चित्तहत्थ सारिपुत्र स्थविर के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

वह श्रावस्ती का एक कुल-पुत्र था। उसने एक दिन हल चला कर, लौटते हुए, विहार में एक स्थविर के पात्र में से उत्तम स्निग्ध, मधुर भोजन पाकर सोचा—'हम अपने हाथ से, रात दिन, नाना प्रकार के काम करते हुए भी, इस प्रकार का भोजन नहीं पाते। हमें भी प्रव्रजित होना चाहिए।' (सोच) वह प्रव्रजित हुआ। महीने आध महीने में ही, अनुचित ढंग से विचार करने के कारण, क्लेश (=चित्त विकार) के वशीभूत हो, वह भिक्षु-आश्रम छोड़ गया। पीछे भोजन के अभाव से कष्ट पा फिर आकर, प्रव्रजित हुआ और अभिधर्म सीखा। इसी प्रकार, ६ बार भिक्षु-आश्रम छोड़ प्रव्रजित हुआ; और सातवीं बार प्रव्रजित होने पर (अभिधर्म के) सातों प्रकरणों का ज्ञाता हो, बहुत से भिक्षुओं को धर्म बँचवाते, (उसने) अर्हत पद को प्राप्त किया। तब उसके मित्रों ने उसकी हँसी की—"आयुष्मान्! चित्त! पूर्व की भाँति, अब तेरे चित्त में विकार वृद्धि नहीं पाता?"

"आवुसो! अब इसके बाद मेरे गृहस्थ होने की सम्भावना नहीं रही।" सो, उसके अर्हत् होने की बात धर्म-सभा में चली—'आवुसो! इस प्रकार अर्हत् पद की योग्यता रख कर भी, आयुष्मान् चित्तहत्थ सारिपुत्र छः बार गृहस्थ हुए। अहो। पृथक्-जन[1] होने में कितना बड़ा दोष है!' शास्ता ने

[1] जो न मुक्त है, न मुक्ति के मार्ग पर स्थिरता के साथ आरूढ़ है।

आकर 'भिक्षुओ ! इस समय बैठे क्या बातचीत कर रहे थे' पूछ 'यह बातचीत' कहने पर, कहा—भिक्षुओ ! पृथक्जन का चित्त हलका (=लघुक) होता है, उसका निग्रह करना दुष्कर होता है, किसी आलम्बन (=विषय) में जाकर आसक्त हो जाता है, एक बार आसक्त होने पर, (उसे) जल्दी छुड़ाया नहीं जा सकता। इस प्रकार के चित्त का संयम (=दमन करके) रखना अच्छा है; संयत रहने पर ही वह सुख का कारण होता है।

दुन्निग्गहस्स लहुनो यत्थकामनिपातिनो,
चित्तस्स दमथो साधु चित्तं दन्तं सुखावहं ॥[1]

[निग्रह करने में दुष्कर, लघुक, जहाँ चाहे वहीं गिर पड़ने वाले चित्त को संयम में रखना अच्छा है। चित्त का संयम सुख का कारण होता है।]

उसका निग्रह दुष्कर होने के कारण ही, पूर्व समय में एक पण्डित, एक कुदाली के लोभ के मारे उसे न छोड़ सकने के कारण छः बार गृहस्थ हुए और सातवीं बार प्रव्रजित हो, ध्यान उत्पन्न कर, उस लोभ का निग्रह कर सके। यह कह, पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में **बाराणसी** में (राजा) **ब्रह्मदत्त** के राज्य करने के समय, बोधिसत्त्व (एक) **कुंजड़े** (तरकारी बेचने वाले) के कुल में उत्पन्न हो, बालिग हुए। उनका नाम हुआ कुदाल-पण्डित। वह कुदाल से ज़मीन खोद कर, उसमें साग, लौकी, कद्दू (तथा अन्य) सब्ज़ी-तरकारी बोकर, और उन्हें बेंच कर भी, दरिद्र जीवन व्यतीत करता था। उसके पास एक कुदाली को छोड़ कर, धन नाम की, और कोई चीज़ नहीं थी। उसने एक दिन सोचा—"मुझे गृहस्थ में रहने से क्या लाभ ? (घर से) निकल कर प्रव्रजित हो जाना चाहिए।" तब एक दिन उस कुदाली को एक जगह छिपा कर, वह ऋषि प्रव्रज्या के अनुसार प्रव्रजित हुआ, (पीछे) उस कुदाल की याद

[1] धम्मपद, (चित्तवग्ग)।

आने पर, लोभ को शान्त न कर सकने के कारण, उस खुण्डी कुदाली के लिए (वह फिर) गृहस्थ बन गया। इसी प्रकार दूसरी, तीसरी (बार करके) छः बार उस कुदाली को छिपा, निकल कर प्रव्रजित हो फिर गृहस्थ हुआ। लेकिन सातवीं बार उसने सोचा—"मैं इस खुण्डी कुदाली के लिए बार बार गृहस्थ बना, अब इस बार उसे महानदी में फेंक कर प्रव्रजित होऊँगा।" तब उसने नदी के किनारे जा 'यदि इस के गिरने की जगह देखूँगा, तो शायद फिर आकर निकालने का मन हो' (सोच) कुदाल को बेंट से पकड़, हाथी समान बल से, सिर के ऊपर तीन बार घुमा, आँखें मीच, नदी के बीच में फेंक दिया; और तीन बार सिंह नाद किया—"मैं ने जीत लिया। मैं ने जीत लिया।"

उस समय **बाराणसी** नरेश सीमान्त देश (के उपद्रव) को शान्त कर, लौट रहे थे। उन्होंने नदी पर सिर से नहा, सब अलङ्कारों से अलंकृत हो, हाथी के कन्धे पर बैठ कर जाते समय, बोधिसत्त्व के उस शब्द को सुनकर (सोचा)—"यह पुरुष कहता है, 'मैं ने जीत लिया;' इसने किसे जीत लिया?" 'उसे बुलाओ' (कह) बुलवा कर पूछा—"भो! पुरुष! मैं तो संग्रामविजेता हूँ। अभी विजय करके आ रहा हूँ। तू ने किसे जीता है?"

बोधिसत्त्व ने, "महाराज! तुम्हारा हज़ार-संग्राम, लाख-संग्राम जीतना भी वास्तविक जीतना नहीं; क्योंकि तुमने चित्त के विकारों को नहीं जीता। मैं ने अपने अन्दर के लोभ का दमन करते हुए चित्त-विकारों को जीता है" कहते हुए महानदी की ओर देखा। उसी समय जल (-कसिण) के ध्यान से उत्पन्न होनेवाला ध्यान उत्पन्न हो गया। योगबल सम्पन्न हो, उन्होंने आकाश में बैठ, राजा को धर्मोपदेश देते हुए यह गाथा कही—

न तं जितं साधु जितं यं जितं अवजीयति,
तं खो जितं साधु जितं यं जितं नावजीयति॥

[वह जीत अच्छी जीत नहीं, जिस जीत की फिर हार हो। वही जीत अच्छी जीत है, जिस जीत की फिर हार न हो।]

न तं जितं साधुजितं यं जितं अवजीयति, शत्रुओं से जिस देश को जीत लिया हो, यदि शत्रु फिर उस देश को जीत ले, तो वह जीत अच्छी जीत नहीं।

क्योंकि उसे फिर (दूसरा) जीत ले जा सकता है। दूसरा अर्थ 'जित' कहते हैं 'जय' को। शत्रुओं के साथ युद्ध करके जो जय प्राप्त की गई है, यदि वह फिर उनके जीतने से पराजय हो जाय, वह (जय) अच्छी नहीं; शोभा का कारण नहीं। किस लिए ? क्योंकि (वह) फिर पराजय (के रूप में बदली जा सकती) है। **तं खो जितं साधु जितं यं जितं नावजीयति,** लेकिन जो शत्रुओं को जीत-कर, उनसे फिर नहीं हारता है, अथवा एक बार प्राप्त की गई जो जय फिर पराजय (के रूप में बदल) नहीं सकती वही जय अच्छी जय है, शोभा का कारण है। क्योंकि (वह) फिर हार में नहीं बदली जा सकती। इसलिए महाराज! हज़ार बार भी, लाख बार भी संग्राम में विजयी होने पर, तुम संग्राम-योद्धा नहीं हो। क्योंकि तुमने अपने चित्त के विकारों को नहीं जीत पाया। जो एक बार भी अपने अन्दर के चित्त-विकारों को जीत लेता है, वही उत्तम संग्राम-विजयी है। (इस प्रकार) आकाश में बैठे ही बैठे, इस बुद्ध-लीला से राजा को धर्मोपदेश दिया। श्रेष्ठ संग्राम-विजेता का भाव यहाँ दिखाया गया है—

यो सहस्सं सहस्सेन सङ्गामे मानुसे जिने,
एकं च जेय्यमत्तानं स वे सङ्गामजुत्तमो[1] ॥

[जो एक (आदमी) सहस्र जनों को लेकर, संग्राम में सहस्र जनों को जीत लेता है, और एक सिर्फ अपने को जीतता है। तो अपने आप को जीतने वाला ही, उत्तम संग्राम-विजेता है।]

यह सूत्र (उक्त विचार का) समर्थक है। यह धर्म सुनते ही, राजा के चित्त का क्रियात्मक विकार नष्ट हो गया; और उसका चित्त प्रव्रज्या की ओर झुका। राजा की सेना के चित्त का विकार भी, उसी तरह नष्ट हो गया।

राजा ने बोधिसत्व से पूछा—'अब आप कहाँ जायेंगे ?'

"महाराज! हिमवन्त में जा, ऋषि प्रव्रज्या के अनुसार प्रव्रजित होऊँगा।"

'तो मैं भी प्रव्रजित होऊँगा' (कह) वह बोधिसत्त्व के साथ ही निकल पड़ा।

[1] **धम्मपद (सहस्य वग्ग ८.३)**

सेना, ब्राह्मण गृहपति, सब श्रेणियाँ[1], (तथा) उस स्थान पर एकत्र हुआ सभी जन-समूह, राजा के साथ ही निकल पड़ा। बाराणसी-वासियों ने सोचा—

"कुद्दाल पण्डित की धर्म-देशना सुन, हमारा राजा, प्रव्रज्या का इच्छुक हो, सेना सहित ही चला गया है, हम यहाँ (रहकर) क्या करेंगे?" (यह सोच) बारह योजन की बाराणसी के सभी निवासी निकल पड़े। (उसकी) बारह योजन की परिषद् (=मंडली) हुई। उसे ले, बोधिसत्त्व हिमवन्त में प्रविष्ट हुए।

देवेन्द्र शक्र का (सिंह-) आसन गर्म हो गया। उसने ध्यान लगाकर देखा कि कुदाल-पंडित ने महा अभिनिष्क्रमण (गृहत्याग) किया है, और (उसके साथ) बहुत जन-समूह है" फिर (सोचा) कि उन्हें निवास स्थान मिलना चाहिए। उसने विश्वकर्मा को बुला कर कहा—"तात! कुदाल-पण्डित ने महाभिनिष्क्रमण किया है। (उन्हें) निवास स्थान मिलना चाहिए। तू हिमवन्त प्रदेश में जाकर समतल भूमि पर तीस योजन लम्बा और पन्द्रह योजन चौड़ा आश्रम बना।" उसने 'देव! अच्छा' कह, जाकर, वैसा (आश्रम) बना दिया। यहाँ यह संक्षिप्त वृत्तान्त है। विस्तार, हत्थिपाल जातक[2] में आयेगा। यहाँ और वहाँ एक ही वर्णन है।

विश्वकर्मा ने आश्रम में पर्णशालायें बनाईं, फिर कुशब्द वाले मृगों, पक्षियों तथा अमनुष्यों (=भूत प्रेत, आदि) को दूर कर, उस उस तरफ एक एक पगडण्डी बना, अपने निवास स्थान को चला गया। कुदाल पण्डित भी, उस परिषद् को साथ ले, हिमवन्त में प्रविष्ट हुए, और उन्होंने (वहाँ) शक्र के दिये हुए आश्रम पर जा, विश्वकर्मा के बनाये हुए प्रव्रजित परिष्कारों को ग्रहण किया। फिर पहले अपने आपको प्रव्रजित कर, अपने अनुयायियों (=परिषद्) को प्रव्रजित करा, आश्रम (को) उनमें बाँट दिया। (उस समय) सातराज्य खाली हो गये। तीस योजन (की दूरी का) आश्रम भर गया। कुदाल पण्डित ने शेष कसिण (योगाभ्यासों) का भी अभ्यास किया, ब्रह्मविहारों[3] की भावना की और परिषद् को भी कसिण (= योगा-

[1] भिन्न भिन्न शिल्पियों के समुदाय। [2] जातक (५०९)

[3] मैत्री, करुणा, मुदिता तथा उपेक्षा-भावना।

भ्यास के साधन) बतलाये। सभी (लोग) समापत्ति (समाधि) प्राप्त कर, ब्रह्मविहारों की भावना करते, ब्रह्मलोक परायण हुए। लेकिन जिन्होंने उनकी सेवा सुश्रूषा की थी, वे देवलोकगामी हुए।

शास्ता ने, 'भिक्षुओ! इस प्रकार इस चित्त के विकृत हो जाने पर—विकार में आसक्त हो जाने पर, उसका मुक्त करना आसान नहीं होता। लोभ का त्याग दुष्कर होता है, इस प्रकार के पण्डितों को भी (लोभ) अज्ञानी बना देता है' (कह) यह धर्मदेशना ला, (आर्य-) सत्यों को प्रकाशित किया। सत्यों (के प्रकाशन) के अन्त में, कोई **स्रोतापन्न** हुए, कोई **सकृदागामी** हुए, कोई **अनागामी** हुए, किन्हीं ने **अर्हत्** पद को प्राप्त किया।

शास्ता ने भी मेल मिला, जातक का सारांश निकाल दिया। उस समय का राजा (अब का) **आनन्द** था। परिषद् (अब की) बुद्ध परिषद्। कुदाल पण्डित तो मैं ही था।

पहला परिच्छेद

७१. वरण जातक

"**यो पुब्बे करणीयानि...**" यह (गाथा) शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय, कुटुम्बियपुत्र तिस्स स्थविर के सम्बन्ध में कही।

क. वर्तमान कथा

एक दिन परस्पर मित्र तीस कुलपुत्र गन्ध-पुष्प-वस्त्र आदि ले, 'शास्ता की धर्मदेशना सुनेंगे' (करके) बहुत से लोगों सहित, जेतवन में गये। (वहाँ) **नागमालक** तथा **शालमालक** आदि (शालाओं) में कुछ देर बैठे। जब शाम के समय शास्ता सुरभि-गन्ध से सुवासित-गन्धकुटी से निकल कर, धर्म-सभा में जा, अलंकृत बुद्धासन पर बैठे, तब अनुयायियों सहित धर्म-सभा में जा शास्ता की सुगन्धित पुष्पों से पूजा की, तथा चक्र से अंकित तले और पुष्पित पद्म से सुशोभित तलवाले चरणों में प्रणाम कर, एक ओर बैठ, धर्मोपदेश सुना। उनको ऐसा विचार हुआ—'जैसे जैसे हम भगवान् द्वारा उपदिष्ट धर्म को जानते हैं, उससे तो हमें प्रव्रजित होना चाहिए।' फिर उन्होंने तथागत के धर्म-सभा से निकलने के समय, पास जाकर, प्रणाम कर प्रव्रज्या की याचना की। शास्ता ने उनको प्रव्रज्या दी।

उन्होंने आचार्य्य उपाध्यायों को सन्तुष्ट कर, (उनसे) उपसम्पदा प्राप्त की, और पाँच वर्ष तक (उनके) पास रह, दोनों मातृका[1] (=शीर्षक)

[1] भिक्षु-प्रातिमोक्ष तथा भिक्षुणी-प्रातिमोक्ष।

कण्ठस्थ की, हलाल-हराम (कप्पिय-अकप्पिय) को जाना, तीनों प्रकार की अनुमोदनाओं[1] को सीखा। फिर चीवरों को सी, रंग कर, योगाभ्यास (=श्रमणधर्म) करने की इच्छा से आचार्य्य उपाध्यायों से आज्ञा ले, शास्ता के पास जा, प्रणाम कर, एक ओर बैठ यह याचना की—"भन्ते। हम संसार (=भव) के प्रति विरक्त हैं, जाति-जरा-व्याधि तथा मरण से भयभीत हैं, हमें संसार से मुक्त होने के लिए कर्मस्थान (=योग के साधन) का उपदेश करें।" शास्ता नें उन्हें अड़तीस कर्मस्थानों[2] में से, उनके अनुकूल कर्मस्थान चुन कर बतला दिये।

उन्होंने शास्ता के पास से कर्मस्थान ले, उनकी बन्दना तथा प्रदक्षिणा कर, परिवेण में जा, आचार्य्य उपाध्याय से भेंट की; फिर पात्र चीवर ले, योगाभ्यास करने निकल पड़े।

उनके बीच में **कुटुम्बियपुत्त** तिस्स स्थविर नाम का एक भिक्षु आलसी, निरुद्योगी तथा जिह्वालोलुप था। वह सोचने लगा—"न तो मैं जंगल में रह सकता हूँ, न मैं योगाभ्यास कर सकता हूँ, न भिक्षा माँग कर निर्वाह कर सकता हूँ, सो मैं जाकर क्या करूँगा? मैं यहीं रुक जाऊँ।" तब वह भिक्षु हिम्मत-हार, (कुछ दूर तक) अन्य भिक्षुओं के साथ जाकर, रुक रहा। अन्य भिक्षु, **कोसल** जनपद में विचरते हुए, एक सीमान्त ग्राम में पहुँचे; और उसके समीप के एक जंगल में वर्षा-वास करने लगे। तीन महीने के भीतर प्रयत्न करके उन्होंने विदर्शना ज्ञान तथा पृथ्वी को उन्नादित करते हुए अर्हत् पद को प्राप्त किया। वर्षावास के बाद, पवारणा कर, (अपने) प्राप्त गुण को शास्ता से कहने की इच्छा से वह वहाँ से निकल, क्रमशः जेतवन पहुँचे; और पात्र-चीवर रख, आचार्य्य उपाध्यायों से भेंट की; फिर तथागत के दर्शन के लिए, शास्ता के पास जा, प्रणाम कर एक ओर बैठे। शास्ता ने उनके साथ मधुर बातचीत की। बातचीत के अनन्तर, उन्होंने अपने प्राप्त-गुण को तथागत से निवेदन किया। शास्ता ने उन भिक्षुओं की प्रशंसा की।

[1] माङ्गलिक, अमाङ्गलिक तथा भिक्षा ग्रहण करने के अनन्तर उपदेश।

[2] सब कर्मस्थान चालीस हैं। अंतिम दो छोटे होने से गिनती नहीं की।

शास्ता को उन भिक्षुओं की प्रशंसा करते देख, कुटुम्बियपुत्त तिस्स स्थविर की भी योगाभ्यास करने की इच्छा हुई। उन भिक्षुओं ने शास्ता से आज्ञा माँगी—"भन्ते! हम उसी जंगल में जाकर रहेंगे।" शास्ता ने 'अच्छा' कह, आज्ञा दी। वे प्रणाम करके परिवेण को चले गये। उस **कुटुम्बियपुत्त तिस्स** स्थविर ने, रात होने पर, अत्यन्त उत्साहित हो, बड़ी तेज़ी से योगाभ्यास करना शुरू किया। आधी रात बीतने पर, तख्ते के सहारे खड़े ही खड़े, ऊँघते उलट कर, गिर पड़ा; और उसने (अपने) जाँघ की हड्डी तुड़ा ली। बड़ी पीड़ा होने लगी। उसकी सेवा-सुश्रूषा में लग जाने से उन भिक्षुओं का जाना न हो सका।

उनके सेवा में आने के समय शास्ता ने पूछा—"भिक्षुओ! क्या तुमने कल जाने की आज्ञा नहीं ली थी?"

"भन्ते! हाँ! लेकिन हमारे साथी कुटुम्बियपुत्त तिस्स स्थविर ने, असमय पर, बड़ी तेज़ी के साथ योगाभ्यास करना शुरू किया, और ऊँघते हुए उलट कर गिर पड़ा, जिससे उसने जाँघ की हड्डी तुड़ा ली, उसके कारण हमारा जाना न हो सका।"

शास्ता ने 'भिक्षुओ! न केवल अभी इसने अपनी उत्साह-हीनता के कारण, असमय पर बड़ी तेजी के साथ योगाभ्यास (=वीर्य्य) करते हुए, तुम्हारे जाने में बाधा डाली है; पहले भी इसने तुम्हारे जाने में बाधा डाली थी' कह, उनके प्रार्थना करने पर पूर्व जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में **गान्धार** देशस्थ तक्षशिला में, बोधिसत्त्व लोकप्रसिद्ध आचार्य हो कर, पाँच सौ माणवकों (=शिष्यों) को विद्या (=शिल्प) सिखाते थे। एक दिन वे माणवक लकड़ी लाने के लिए जंगल में जाकर, लकड़ियाँ चुगने लगे। उनके बीच में एक आलसी माणवक था। उसने एक बड़े भारी वरुण-वृक्ष को देख, सोचा—'यह सूखा वृक्ष है, अभी थोड़ा सोकर, पीछे वृक्ष पर चढ़, लकड़ियाँ तोड़कर चलूँगा।' वह अपनी चादर बिछा, लेट-कर गाढ़ी निद्रा में सो गया। बाकी माणवक लकड़ियों का बोझा बाँध, लेकर जाते समय, उसकी पीठ में पैर से ठोकर लगा, उसे जगा कर चले गये।

आलसी माणवक आँखें मलते मलते उठा; और बिना नींद उतरे ही, वृक्ष पर चढ़, शाखा को अपनी ओर खींच कर तोड़ने लगा। उस समय टूटी शाखा के झटके से नोक उछल कर उसकी आँख में लगी। उसने एक हाथ से आँख को दबाया; और दूसरे हाथ से गीली लकड़ियाँ तोड़ीं। वृक्ष से उतर, लकड़ियों की गाँठ बाँध, जल्दी से जाकर (उसने उन्हें) औरों की गिराई लकड़ियों के ऊपर डाल दिया। उस दिन दीहात के एक ग्राम के किसी कुल से आचार्य्य को अगले दिन पाठ (=ब्राह्मण वाचनकं) करने का निमन्त्रण आया था। आचार्य्य ने विद्यार्थियों को कहा—'तात! कल एक गाँव में जाना है। तुम खाली पेट न जा सकोगे। (इस लिए) प्रातःकाल ही यवागु पकवा कर वहाँ जाना; तथा अपना और हमारा हिस्सा, सब लेकर चले आना।

उन्होंने प्रातःकाल ही यवागु पकाने के लिए, दासी को उठा कर कहा—'हमारे लिए जल्दी से यवागु बना।' उसने लकड़ी लेते समय, ऊपर रक्खी हुई वरुण की गीली लकड़ी ले ली। बार बार फूंक मार कर भी आग न जल सकी। जिस के कारण, दिन चढ़ आया। विद्यार्थी, 'बहुत दिन चढ़ आया, अब जाना नहीं हो सकेगा' (सोच) आचार्य्य के पास गये। आचार्य्य ने पूछा—"तात! क्या नहीं गये?"

"हाँ आचार्य्य। नहीं गये।"

"क्या कारण?"

"अमुक नाम का आलसी विद्यार्थी हमारे साथ लकड़ी लेने के लिए जंगल गया था। वह वरुण-वृक्ष के नीचे सो गया। पीछे जल्दी से वृक्ष पर चढ़, आँख फुड़वा ली, और वरुण की गीली लकड़ियाँ लाकर, हमारी लाई हुई लकड़ियों के ऊपर डाल दीं। यवागु पकाने वाली, उन्हें सूखी लकड़ियाँ समझ, (जलाने लगी, किन्तु) सूर्य्योदय तक आग न जला सकी। इस कारण से हमारे गमन में बाधा हुई।"

आचार्य्य ने, माणवक की करतूत सुन, 'अन्धे-मूर्खों के काम से इसी प्रकार हानि होती है' (कह) यह गाथा कही—

यो पुब्बे करणीयानि पच्छा सो कातुमिच्छति,
वरणकट्ठभञ्जोव स पच्छा मनुतप्पति॥

[जो पहले करने योग्य है, उसे जो पीछे करना चाहता है; वह वरुण की लकड़ी तोड़ने वाले की तरह, पीछे पश्चात्ताप को प्राप्त होता है।]

स पच्छा मनुतप्पति, जो कोई आदमी 'यह पहले करना चाहिए, यह पीछे,' इसका बिना विचार किये **पुब्बे करणीयानि,** पहले करने योग्य कार्यों को **पच्छा** (=पीछे) करता है, वह **वरणकट्ठभञ्जो,** हमारे माणवक की तरह, मूर्ख आदमी, पीछे पश्चात्ताप करता है, शोक करता है, रोता है।

इस प्रकार बोधिसत्त्व अपने शिष्य को यह बात कह, दान आदि पुण्य-कर्म कर, जीवन की समाप्ति पर, (अपने) कर्मानुसार परलोक गया।

शास्ता ने 'भिक्षुओ! न केवल अभी यह तुम्हारा बाधक हुआ है, पहले भी हुआ था' (कह) यह धर्मदेशना ला, मेल मिला, जातक का सारांश निकाल दिया। (उस समय का) आँख खुभा लेने वाला विद्यार्थी, (अब का) जाँघ तोड़ लेने वाला भिक्षु था, शेष माणवक (अब की) बुद्ध परिषद्, और आचार्य्य ब्राह्मण तो मैं ही था।

७२. सीलवनागराज जातक

"**अकतञ्ञुस्स पोसस्स...**" यह (गाथा) शास्ता ने वेळुवन में विहार करते समय देवदत्त के सम्बन्ध में कही।

क. वर्तमान कथा

धर्म सभा में बैठे भिक्षु कह रहे थे—"आवुसो! देवदत्त अकृतज्ञ है, तथागत के गुणों को नहीं जानता।" शास्ता ने आकर, 'भिक्षुओ! अब

बैठे क्या बातचीत कर रहे हो!' पूछ, 'यह बात थी' कहने पर, 'भिक्षुओ! न केवल अभी देवदत्त अकृतज्ञ है, पहले भी अकृतज्ञ ही रहा है। उसने कभी मेरे गुणों को नहीं जाना' कह उनके प्रार्थना करने पर पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में **बाराणसी** में (राजा) **ब्रह्मदत्त** के राज्य करते समय बोधिसत्त्व हिमालय प्रदेश में; हाथी की योनि में पैदा हुआ था। वह माता की कोख से निकलते समय चाँदी की राशि सा सर्वश्वेत था, आँखें, मणि की गोलियों के सदृश प्रकाश फैलाने वाली तथा पाँच प्रसन्नताओं से युक्त; मुख, रक्त-वर्ण कम्बल के समान; सूँड़, लाल सोने की बूँदों जड़ी चाँदी की माला के सदृश; चारों पैर लाख से रंगे हुए जैसे थे; इस प्रकार उसका शरीर दस पारमिताओं से अलंकृत तथा अति सुन्दर था। सो, उसके सयाने होने पर, सारे हिमालय के हाथी, इकट्ठे होकर, उसकी सेवा में रहने लगे। इस प्रकार हिमालय प्रदेश में अस्सी-हज़ार हाथियों के साथ रहते हुए, पीछे, जमात के साथ रहने में दोष देख, और जमात से पृथक्, अकेले रहने में शारीरिक-शान्ति (=विवेक) का लाभ देख, जंगल में अकेले ही रहना शुरू कियां। शीलवान्, सदाचारी होने के कारण, उसका नाम सीलव नागराज पड़ गया। (उस समय) **बाराणसी-वासी** एक बनचर, हिमालय प्रदेश में प्रवेश कर, अपनी आजीविका के लिए चीजें (=भाण्ड) खोज रहा था। दिशा भ्रम हो जाने से वह रास्ता भूल कर, मरने के भय से भयभीत हो बाँहों में सिर दे रोता-काँदता फिरता था।

बोधिसत्त्व उसका रोना पीटना सुन, 'इस आदमी को दुःख से छुड़ाना चाहिए'—इस करुणा के भाव से प्रेरित हो, उसके पास गया। वह उसे देखते ही, डर के मारे भाग चला। बोधिसत्त्व उसे भागते देख, वहीं ठहर गया। वह आदमी बोधिसत्त्व को रुका देख, खड़ा हो गया। बोधिसत्त्व फिर (आगे) गया। वह (आदमी) फिर भागा। उसके ठहरने पर, खड़ा होकर सोचने लगा—"यह हाथी, मेरे भागने पर खड़ा हो जाता है, खड़े होने पर आता है, यह मुझे हानि नहीं पहुँचाना चाहता। यह मुझे, इस दुःख से ही

छुड़ाना चाहता होगा।" (यह सोच) वह हिम्मत करके, खड़ा हो गया। बोधिसत्त्व ने उसके पास जाकर पूछा—'भो! पुरुष! तू किस लिए रोता फिर रहा है?"

"स्वामी! दिशा-भ्रम हो जाने से, मार्ग भूल, मरने के भय से।"

बोधिसत्त्व उसे अपने निवास-स्थान पर ले जा, कुछ दिन तक फल-मूल से सेवा कर 'भो पुरुष! डर मत। मैं तुझे बस्ती (=मनुष्य-पथ) में ले जाऊँगा' (कह) उसे अपनी पीठ पर बिठा, बस्ती की ओर ले चला। वह मित्र-द्रोही आदमी 'यदि कोई पूछने वाला होगा तो बताना होगा' (सोच) बोधिसत्त्व की पीठ पर बैठा ही बैठा, वृक्षों की, पर्वतों की निशानी करता जाता था। बोधिसत्त्व ने उसे जंगल से निकाल, बाराणसी को जाने वाले महामार्ग पर छोड़ कर कहा "भो! पुरुष इस रास्ते से चला जा। लेकिन मेरा निवास-स्थान, चाहे कोई पूछे, चाहे न पूछे, किसी को न कहना"। (यह कह) उसे बिदा कर, वह अपने निवासस्थान पर चला आया।

वह आदमी बाराणसी पहुँचा। घूमते हुए, हाथी-दाँत-बाज़ार में शिल्पियों को हाथी-दाँत की चीज़ें बनाते देख कर उसने पूछा—'भो! यदि जीवित हाथी का दाँत मिले, तो क्या उसे भी खरीदोगे?"

"भो! क्या कहते हो? जीवित हाथी का दाँत, मृत हाथी के दाँत से अधिक मूल्यवान् होता है।"

"तो मैं जीवित हाथी का दाँत लाऊँगा" (कह) रास्ते के लिए आवश्यक (खाने का) सामान तथा तेज़ आरी लेकर, बोधिसत्त्व के निवास स्थान को गया। बोधिसत्त्व ने उसे देखकर पूछा—"किस लिए आया है?"

"स्वामी! मैं निर्धन हूँ, दरिद्र हूँ। जीने का उपाय नहीं। आप के पास इसलिए आया हूँ, कि यदि आप दें, तो आप से दन्त-खण्ड माँग कर ले जाऊँ, और उन्हें बेचकर, उस धन से निर्वाह करूँ।"

"अच्छा! भो! मैं तुझे दन्त-खण्ड दूँगा, यदि (तेरे पास) दाँत काटने के लिए आरी हो।"

"स्वामी! मैं आरी लेकर आया हूँ"

"तो दाँतों को आरी से काट कर ले जा।" बोधिसत्त्व पाँव को सुकेड़ कर, गौ की तरह बैठ गये। उसने, उस के दोनों अगले दाँत काट लिए। बोधिसत्त्व ने उन दाँतों को सोण्ड में ले, 'भो! पुरुष! मैं यह दाँत इसलिए नहीं

दे रहा हूँ कि यह दाँत मुझे अप्रिय हैं, अच्छे नहीं लगते; बल्कि, मुझे इनसे हज़ार दर्जे, लाख दर्जे प्रिय-तर हैं, सब धर्मों का बोध कराने वाले बुद्धत्व ज्ञान रूपी दाँत। सो मेरा यह दाँतों का दान, बुद्धज्ञान के बोध का कारण हो।" इस प्रकार (उसने) बुद्ध-ज्ञान का ध्यान धर, वह दाँतों की जोड़ी दे दी।

वह उन्हें ले गया। उन्हें बेंचकर, उस धन के खतम होने पर, फिर बोधिसत्त्व के पास आकर बोला—'स्वामी! तुम्हारे उन दाँतों को बेंच कर मैं केवल अपना क़र्ज़ा उतार सका। शेष दाँत भी दे दें।' बोधिसत्त्व ने 'अच्छा' कह स्वीकार कर, पहली ही तरह से कटवा कर, शेष दाँत भी दे दिये। उसने उन्हें भी बेंच कर फिर आकर कहा—'स्वामी! गुज़ारा नहीं चलता। मुझे मूल दाढ़ें दे दें।" बोधिसत्त्व 'अच्छा' कह, पूर्व प्रकार से ही बैठ गये। वह पापी पुरुष, महासत्त्व की चाँदी की माला सदृश सूण्ड को मरदन करते हुए, कैलाश कूट सदृश सिर (=कुम्भ) पर चढ़ कर, दोनों दाँतों की पंक्तियों को एड़ी से प्रहार देते हुए, माँस को हटा कर, सिर पर चढ़, तेज आरी से मूल दाढ़ें काट कर ले गया।

उस पापी पुरुष के, बोधिसत्त्व की दृष्टि से ओझल होते ही होते, दो लाख चालीस हज़ार योजन घनी पृथ्वी जो सुमेरु, युगन्धर सदृश (पर्वतों) का महाभार, तथा मल-मूत्र आदि घृणित दुर्गन्धियाँ उठा सकती है उसने भी, उस (की) दुर्गुणराशि को उठाने में असमर्थता प्रकट की; और फटकर (उसे) विवर दे दिया। उसी समय अवीची महानरक से ज्वाला ने निकलकर, उस आदमी को, **घर के कम्बल**[१] में लपेटने की तरह, घेर कर (अपने में) ले लिया। इस प्रकार उस पापी पुरुष के पृथ्वी में प्रविष्ट होने के समय, उस जंगल के अधिकारी वृक्ष देवता ने, उस बन को उन्नादित करते हुए 'अकृतज्ञ, मित्र द्रोही आदमी को चक्रवर्त्ती राज्य देकर भी सन्तुष्ट नहीं किया जा सकता'—इस धर्म का उपदेश करके, यह गाथा कही—

अकतञ्ञुस्स पोसस्स निच्चं विवरदस्सिनो,
सब्बं चे पठविं दज्जा नेव नं अभिराधये ॥

[१] 'कुलसन्तकेन' तथा 'कुसलन्तकेन' दोनों पाठ सन्तोषजनक नहीं।

[अकृतज्ञ, सदा दोष ढूंढ़ने वाले आदमी को सारी पृथ्वी देकर भी सन्तुष्ट नहीं किया जा सकता।]

अकतञ्ञुस्स, जो अपने पर किये उपकार को न जाने; **पोसस्स,** मनुष्य को; **विवर दस्सिनो,** जो छिद्र=खाली जगह ही देखता रहे; छिद्रान्वेषी को। **सब्बं चे पठविं दज्जा,** वैसे आदमी को यदि सारा चक्रवर्त्ती राज्य अथवा महापृथ्वी को पलट कर, इस पृथ्वी का सार भी दे दिया जाये; **नेव नं अभिराधये,** ऐसा करने पर भी, इस प्रकार के अकृतज्ञ मनुष्य को कोई सन्तुष्ट वा प्रसन्न नहीं कर सकता।

इस प्रकार उस देवता ने उस वन को उन्नादित करते हुए धर्मोपदेश दिया। बोधिसत्त्व, जितनी आयु थी, उतने काल तक जीवित रह कर, कर्मानुसार परलोक गया।

शास्ता ने 'भिक्षुओ! न केवल अभी देवदत्त अकृतज्ञ है, पहले भी अकृतज्ञ रहा है' कह, इस धर्मदेशना को ला, जातक का सारांश निकाल दिया। उस समय का मित्रद्रोही आदमी (अब का) देवदत्त हुआ। वृक्ष देवता (अब के) सारिपुत्र। सीलवनागराजा तो मैं ही था।

७३. सच्चंकिर जातक

"सच्चं किरेवमाहंसु..." यह (गाथा) शास्ता ने वेळुवन में विहार करने के समय, वध करने के प्रयत्न के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

धर्म-सभा में बैठे भिक्षु (-संघ) 'आवुसो! देवदत्त, शास्ता के गुणों को नहीं जानता, (और उनके) वध करने का ही प्रयत्न करता है' (कह) **देवदत्त**

के अवगुण कह रहे थे। शास्ता ने आकर, 'भिक्षुओ ! इस समय बैठे क्या बात-चीत कर रहे थे' पूछ, 'यह बातचीत' कहने पर, 'भिक्षुओ ! न केवल अभी **देवदत्त**, मेरे बध का प्रयत्न करता है, (उसने) पहले भी किया था' कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में बाराणसी में, (राजा) **ब्रह्मदत्त** के राज्य करने के समय, उसका **दुष्टकुमार** नाम का (एक) पुत्र था—परुष, कठोर, तथा ताड़ित-विषैले सर्प सदृश। वह बिना गाली दिये, बिना मारे किसी से बात ही न करता था। वह डरका कारण था और अन्दर बाहर के आदमियों को वैसे ही अच्छा न लगता था, जैसे आँख में पड़ा हुआ रज-कण, अथवा खाने के लिए आया पिशाच। एक दिन जल-क्रीड़ा करने की इच्छा से, वह अनेक अनुयायियों के साथ नदी के तट पर गया। उस समय ज़ोर के बादल आये। चारों ओर अन्धकार छा गया। उसने नौकरों-चाकरों को कहा—'भणे ! आओ। मुझे नदी के बीच में ले जाकर नहला लाओ।' वे उसे वहाँ ले जाकर, 'राजा हमारा क्या कर लेगा ? हम इसे यहीं मार डालें' सलाह कर, 'चल रे मनहूस कहीं के' (करके) उसे पानी में डुबो, (अपने) ऊपर किनारे पर आ खड़े हुए। (लोगों के) 'कुमार कहाँ है ?' पूछने पर, उत्तर दिया—"हम कुमार को नहीं देखते; बादल आया देख, पानी में डुबकी लगा (निकल कर) आगे चला आया होगा।"

अमात्य-जन राजा के पास गये। राजा ने पूछा—"मेरा पुत्र कहाँ है ?"

"देव ! हमें मालूम नहीं, 'बादल आया देख, आगे आगे चला आया होगा' (सोच) हम चले आये।" राजा ने द्वार खुलवा, नदी के किनारे जा, 'खोज करो' कह, जहाँ तहाँ खोज करवाई। किसी ने कुमार को न देख पाया। उस काली बदली और वर्षा में, नदी में बहता एक लक्कड़ देख, वह उसपर बैठ, मरने से भयभीत हो रोता जा रहा था।

उस समय एक बाराणसी-निवासी सेठ, नदी के किनारे चालीस करोड़ धन गाड़ कर उस धन के लोभ से, (वहीं) उस धन के ऊपर, सर्प होकर

उत्पन्न हुआ था। एक और (सेठ) उसी प्रदेश में तीस करोड़ धन गाड़ कर, धन-तृष्णा के कारण, वहीं चूहा होकर उत्पन्न हुआ था। उनके निवास-स्थान में भी पानी आ घुसा था; और वे, जिस रस्ते से पानी आया था, उसी रस्ते से निकल, (पानी की) धार को काट कर जिस लक्कड़ पर वह राज-कुमार बैठा था, उसी लक्कड़ पर पहुँच गये, और उस लक्कड़ के एक सिरे पर एक, दूसरे सिरे पर दूसरा बैठ रहा। उसी नदी के किनारे एक सेमल वृक्ष था, जिसपर एक तोते का बच्चा रहता था। वह वृक्ष भी, पानी द्वारा जड़ उखड़ जाने से उसी नदी में गिर पड़ा। पानी के बरसते रहने के कारण, वह तोते का बच्चा भी न उड़ सकने से, उस लक्कड़ के ही एक ओर जाकर लग रहा। इस प्रकार, वह चारों जने इकट्ठे बहते जा रहे थे।

बोधिसत्त्व भी उस समय **काशी** राष्ट्र के (एक), **उदीच्च**[1] ब्राह्मण-कुल में पैदा हो, बड़े होने पर ऋषि प्रव्रज्या के अनुसार प्रव्रजित हुए थे, और नदी के मोड़ पर पर्णशाला बनाकर रहते थे। उसने आधी रात को टहलते समय, उस राजकुमार का ज़ोर का रोने का शब्द सुना और सोचा—'मेरे सदृश मैत्री और दया से युक्त तपस्वी के देखते देखते इस पुरुष का मरना उचित नहीं। मैं पानी में कूद कर, इसे जीवन-दान दूँगा।' उसने 'डर मत। डर मत।' का आश्वासन दिया; और पानी के स्रोत को काटते हुए जा कर, उस लक्कड़ को एक सिरे से पकड़, खैंचते हुए, हाथी सदृश बल से, एक ही झटके में किनारे पर पहुँचा दिया। फिर कुमार को उठाकर, किनारे पर बिठाया। पीछे सर्पादि को भी देख, उठाकर आश्रम में ले जा, उनके लिए आग जला दी। उसने 'यह सर्पआदि दुर्बल हैं' (करके) पहले उनके शरीर को सुखाया, पीछे राजकुमार के शरीर को सुखा, उसे भी आरोग्य प्रदान किया। (फिर) आहार देते समय भी, पहले सर्प आदि को ही देकर, पीछे उसके लिए फल-मूल लाकर दिये।

'यह कूट तपस्वी, मेरे राजकुमार होने का ख्याल न कर, इन पशुओं का सम्मान करता है' (सोच) राजकुमार, बोधिसत्त्व का बैरी बन गया। उसके

---

[1] **उदिच्च=उत्तर के**

कुछ दिन बाद, जब उन सब के शरीर में ताक़त आ गई, और नदी की बाढ़ उतर गई, तो सर्प ने तपस्वी को प्रणाम करके कहा—"भन्ते ! आपने मुझ पर बड़ा उपकार किया है। मैं दरिद्र नहीं हूँ। अमुक स्थान पर मेरा चालीस करोड़ (का) सोना गड़ा हुआ है। यदि आपको धन की आवश्यकता हो तो, मैं वह सब धन आपको दे सकता हूँ। उस स्थान पर आकर 'दीर्घ' कह कर पुकारना।" (कह) चला गया। चूहा भी, उसी प्रकार तपस्वी को निमन्त्रित कर 'अमुक स्थान पर खड़े हो कर 'उन्दुर' कह कर पुकारना' कह चला गया। लेकिन तोते ने तपस्वी को प्रणाम कर कहा—"भन्ते ! मेरे पास धन नहीं है। लेकिन यदि आप को रक्त वर्ण शाली (=धान) की आवश्यकता हो, तो मैं अमुक जगह रहता हूँ, वहाँ आकर 'सुवा' कहकर पुकारना। मैं अपने रिश्तेदारों को कह कर, अनेक गाड़ी रक्त-वर्ण शाली मँगा कर दे सकता हूँ।" यह कह कर, वह भी चला गया। लेकिन वह जो मित्र द्रोही बाक़ी रहा, उसने यथोचित कुछ भी न कह कर 'इसे अपने पास आने पर मरवाऊँगा' (सोच) कहा—"भन्ते ! मेरे राजा होने पर, आप आना, मैं आप का चारों प्रत्ययों से सत्कार करूँगा।" यह कह, (वह भी) चला गया।

वह जाकर, कुछ ही समय बाद, राजा हुआ। 'अच्छा ! परीक्षा करूँ' (सोच) बोधिसत्त्व ने, पहले, साँप के पास जाकर, नज़दीक खड़े हो पुकारा—'दीर्घ !' उसने एक आवाज़ पर ही निकल, बोधिसत्त्व को प्रणाम कर कहा—"भन्ते ! इस जगह पर चालीस करोड़ (का) सोना है, वह सारा का सारा, निकाल कर ले लें।"

"अच्छा ! ऐसे ही रहे। आवश्यकता पड़ने पर देखूँगा" (कह) उसे रोक, चूहे के पास जाकर आवाज़ दी। चूहे ने भी वैसे ही किया। बोधिसत्त्व ने, उसे भी रोक, तोते के पास जाकर 'सुवा !' करके आवाज़ दी। उसने एक ही आवाज़ में वृक्ष पर से उतर बोधिसत्त्व को प्रणाम करके पूछा—"भन्ते ! क्या मैं अपने रिश्तेदारों को कह कर, हिमवन्त प्रदेश से आपके लिए, स्वयं उत्पन्न हुई शाली मँगवाऊँ ?"

बोधिसत्त्व ने 'आवश्यकता होने पर देखूँगा' (कह) उसे भी रोका। फिर 'अब राजा की परीक्षा करूँगा' (सोच) जाकर, राजोद्यान में रह अगले दिन वस्त्र आदि ठीक-ठाक करके, भिक्षा माँगते हुए, नगर में प्रवेश किया।

उस समय, वह मित्र-द्रोही राजा, अलंकृत हाथी के कन्धे पर बैठ, अनेक अनुयायियों के साथ नगर की सैर कर रहा था। उसने दूर से ही बोधिसत्त्व को आते देख, 'यह कूट (=बनावटी) तपस्वी, मेरे पास, (मुफ़्त में) खाते हुए, रहने के लिए आ रहा है। इससे पहले कि यह परिषद् में, मुझ पर किये अपने उपकार को प्रगट करे, मुझे इसका सिर कटवा देना चाहिए' (सोच) अपने आदमियों की ओर देखा। "देव! क्या करें?"

वह बोला—"मालूम होता है, यह कूट तपस्वी मुझ से कुछ माँगने के लिए आ रहा है। इस कूट तपस्वी को मेरे सामने मत आने दो, और पकड़ कर, पीछे से बाँहें बाँध कर, चौरस्तों चौरस्तों पर प्रहार देते हुए, नगर से निकालो; तथा मारने के स्थान पर ले जा, इसका सिर काट, शरीर को शूल पर चढ़ा दो।" उन्होंने 'अच्छा' कह स्वीकार किया, और जाकर, निरपराध महात्मा को बाँध, चौरस्ते चौरस्ते पर मारते हुए, बध-स्थान की ओर ले जाना शुरू किया। बोधिसत्त्व, जब जब मार पड़ती 'माँ, बाप' कुछ न चिल्ला कर, निर्विकार रह यह गाथा कहते—

सच्चं किरेवमाहंसु नरा एकच्चिया इध,
कट्ठं विप्लावितं सेय्यो नत्वेवेकच्चियो नरो॥

[कुछ (बुद्धिमान्) आदमियों ने सत्य ही कहा कि किन्हीं किन्हीं आदमियों को पानी से निकालने की अपेक्षा, लकड़ी का निकालना अच्छा है।]

सच्चं किरेवमाहंसु, यथार्थ ही ऐसा कहते हैं। **नरा एकच्चिया इध**, कुछ बुद्धिमान् आदमी। **कट्ठं विप्लावितं सेय्यो**, नदी में बहती जाती सूखी लकड़ी, उबारनी=निकाल कर स्थल पर ला रखनी, श्रेय है, सुन्दर तर है; ऐसे कहने वाले वह आदमी सत्य ही कहते हैं। किस कारण से? वह यवागु भात आदि पकाने के लिए, शीत से पीड़ित आदमियों के तापने के लिए तथा औरों की भी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए होती है।

नत्वेव एकच्चियो नरो, लेकिन किसी किसी मित्र-द्रोही, अकृतज्ञ, पापी आदमी को, बाढ़ में बहे जाते हुए, हाथ से पकड़ कर उबारना अच्छा नहीं; जैसे मैंने इस पापी आदमी को उबार कर, अपने ऊपर यह दुःख ले लिया।

इस प्रकार जब जब मार पड़ती तब तब यह गाथा कहता।

यह सुन उनमें जो पण्डित आदमी थे, उन्होंने पूछा—"भो! प्रव्रजित! क्या तूने हमारे राजा का कोई उपकार किया है?"

बोधिसत्त्व ने वह हाल सुना कर कहा—'सो! इसे बाढ़ से निकाल कर, मैंने स्वयं ही अपने लिए दुःख लिया। मैंने पुराने बुद्धिमान् आदमियों के कथनानुकूल आचरण नहीं किया' याद कर यह (गाथा) कहता हूँ। उसे सुन क्षत्रिय ब्राह्मण आदि नगर निवासियों ने सोचा—"यह मित्र-द्रोही राजा, इस प्रकार के गुणवान्, अपने को प्राणदान देने वाले व्यक्ति का, उपकार मात्र भी नहीं जानता; इसके कारण हमारी क्या उन्नति होगी?' (यह सोच) 'उसे धरो' कह, क्रोध में चारों ओर से उठ खड़े हुए और उन्होंने तीर, शक्ति, पत्थर, मुद्गर आदि के प्रहार से, हाथी के कन्धे पर बैठे उसे, मार पकड़, पैरों से घसीट, खाई के ऊपर डाल दिया। (फिर) बोधिसत्त्व का अभिषेक कर, उसे राजा बना लिया।

उसने धर्मानुसार राज्य करते हुए, फिर एक दिन सर्प आदि की परीक्षा करने के विचार से, बहुत से अनुयायियों के साथ, सर्प के निवास स्थान पर जा कर आवाज़ दी—"दीर्घ!" सर्प ने आकर, प्रणाम कर कहा—"स्वामी यह तुम्हारा धन है, लो।" राजा ने चालीस करोड़ (का) सोना अमात्यों को सौंप कर, चूहे के पास जा 'उन्दुर!' कह आवाज़ दी। उसने भी आकर, प्रणाम कर, तीस करोड़ धन लाकर दिया। राजा ने वह भी अमात्यों को सौंप, तोते के निवास स्थान पर जा, 'सुवा' कह आवाज दी। उसने भी आकर, चरणों में प्रणाम कर पूछा—"स्वामी! क्या शाली मँगवाऊँ?" राजा 'शाली की आवश्यकता होने पर, मँगवाना, आओ चलें' कह, सत्तर करोड़ (के) सोने के साथ, उन तीनों जनों को लिवा कर, नगर में पहुँचा; और श्रेष्ठ प्रासाद के महातल पर चढ़, धन को सुरक्षित रखवा, सर्प के रहने के लिए एक सोने की नाली, चूहे के लिए स्फटिक की गुफा और तोते के लिए सोने का पिंजरा बनवाया। वह सर्प और तोते के भोजन के लिए प्रतिदिन, सोने की थाली में, मीठे खील, और चूहे के लिए सुगन्धित धान्य के तण्डुल दिलवाता तथा दान आदि पुण्य करता था। इस प्रकार वह चारों जने, आयु रहते, मिल जुलकर प्रसन्नता पूर्वक रहे; आयु के अन्त में यथा कर्म (परलोक) गये।

शास्ता ने 'भिक्षुओ ! न केवल अभी देवदत्त मेरे बध करने के लिए प्रयत्न करता है, (उसने) पहले भी किया है' कह, यह धर्मदेशना ला, मेल मिला, जातक का सारांश निकाला। उस समय का दुष्ट राजा (अब का) देवदत्त था। सर्प (अब का) सारिपुत्र था। चूहा (अब का) मौद्गल्यायन था। तोता (अब का) आनन्द था। राज्य-प्राप्त धर्म-राजा तो मैं ही था।

७४. रुक्खधम्म जातक

"साधु सम्बहुला ञाति..." शास्ता जेतवन में विहार करते थे; उस समय ञाति वालों (शाक्य और कोलियों) का पानी के लिए झगड़ा हो गया। भगवान् उनका महाविनाश समीप आया जान, आकाश-मार्ग से जाकर, रोहिणी नदी के ऊपर पालथी मार कर बैठे और (शरीर से) नीली रश्मियाँ फैलाते ञाति वालों को चकित कर, आकाश से उतर आये। फिर नदी के किनारे बैठ कर उन्होंने उस झगड़े के बारे में उक्त गाथा कही। यह, यहाँ पर संक्षेप है, विस्तार कुणाल जातक[1] में आयेगा।

क. वर्तमान कथा

उस समय शास्ता ने (अपने) ञातियों को सम्बोधित कर, "महाराजाओ ! तुम परस्पर नातेदार हो। नातेदारों को आपस में मिल कर, प्रसन्नता-पूर्वक रहना चाहिए। ञातियों की परस्पर एकता रहने से, शत्रुओं को मौक़ा नहीं मिलता। मनुष्यों की बात रहने दो, अचेतन वृक्षों को भी परस्पर एकता से रहने की ज़रूरत है। पूर्व समय में हिमवन्त प्रदेश में शालवन पर महा-वायु

---

[1] जातक ५३६

(=आँधी) ने आक्रमण किया। लेकिन उस शालवन के वृक्ष-गाछ-गुम्फ लता आदि के एक दूसरे से सम्बद्ध रहने के कारण, वह एक वृक्ष को भी न गिरा सका और, ऊपर ही ऊपर चला गया। लेकिन उसने मैदान में खड़े (एक) शाखा-टहनी आदि से युक्त महा-वृक्ष को, दूसरे वृक्षों से असम्बद्ध होने के कारण, समूल उखाड़ कर ज़मीन पर गिरा दिया। इस वजह से तुम्हें भी मिल जुल कर, प्रसन्नता पूर्वक रहना चाहिए' कह, उनके याचना करने पर पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में **बाराणसी** में (राजा) **ब्रह्मदत्त** के राज्य करने के समय, पहले का कुबेर-राजा मर गया। **शक्र** (=इन्द्र) ने दूसरा **कुबेर** स्थापित कर दिया। इस (पहले के) कुबेर के स्थानापन्न होने पर, पीछे के कुबेर ने सब वृक्ष-गाछ-गुम्फ लता आदि को संदेश भेजा कि वह जहाँ जहाँ अच्छा लगे, वहाँ वहाँ अपना अपना निवासस्थान ग्रहण कर लें।

उस समय बोधिसत्त्व, हिमवन्त प्रदेश के एक शालवन में वृक्ष-देवता होकर, उत्पन्न हुए थे। उन्होंने अपने ज्ञातियों को कहा—"तुम विमान (=वास-स्थान) ग्रहण करते हुए, मैदान में (अकेले) खड़े वृक्षों पर, विमान न ग्रहण करो। इस शालवन में, जहाँ मैं विमान ग्रहण करूँ, उसके इर्द-गिर्द ही (तुम) विमान ग्रहण करो।" सो, बोधिसत्त्व की बात मानने वाले पण्डित (=बुद्धिमान्) देवताओं ने, बोधिसत्त्व के विमान को घेर कर ही, विमान ग्रहण किये। लेकिन मूर्खों ने सोचा—"हमें जंगल में विमान ग्रहण करने से क्या लाभ ? हम आबादी में, ग्राम-निगम-राजधानियों के द्वारों पर विमानों को ग्रहण करेंगे। ग्राम आदि के पास रहने वाले देवताओं को लाभ तथा यश की प्राप्ति होती है।" (यह सोच) उन्होंने आबादी में खुले स्थानों में उगे महावृक्षों पर विमान ग्रहण किये।

एक दिन बड़ा आँधी-पानी आया। हवा के बड़ी तेज़ होने से, जमी हुई जड़ वाले, जंगल के पुराने वृक्ष भी टहनी टूट, समूल गिर पड़े। लेकिन, एक दूसरे के आश्रित खड़े शालवन को इधर उधर से प्रहार देकर भी (आँधी) एक भी वृक्ष न गिरा सकी। जिनके विमान टूट गये, उन देवताओं ने, आश्रय-

रहित हो, बच्चों को हाथ में ले, हिमवन्त जा कर, शालवन के देवताओं को अपना हाल कहा। उन्होंने उनका आना, बोधिसत्त्व से कहा। बोधिसत्त्व ने 'पण्डितों की बात न मान, अविश्वस्त स्थान पर जाने वालों का यही हाल होता है' कह, धर्मोपदेश करते हुए, यह गाथा कही—

साधु सम्बहुला ञाती अपि रुक्खा अरञ्ञजा,
वातो वहति एकट्ठं ब्रहन्तम्पि वनस्पतिं ॥

[ञातियों का सम्मिलित रहना श्रेयस्कर है, अरण्य में उत्पन्न होने वाले वृक्षों तक का भी। क्योंकि महा-वृक्ष तक को अकेले खड़े होने पर, हवा उड़ा ले जाती है।]

सम्बहुला ञाती, चार से ऊपर . . . एक लाख तक भी ञाती (=नातेदार) सम्बहुला ही (कहलाते हैं)। इस प्रकार सम्बहुला का अर्थ है, एक दूसरे के आश्रित बसे हुए ञातिगण। **साधु**=शोभायमान=प्रशंसित; मतलब, दूसरों से अनिन्दित। **अपि रुक्खा अरञ्ञजा**, मनुष्यों की बात रहे, जंगल में उत्पन्न हुए वृक्ष भी, एक दूसरे के आश्रय से ही अच्छी तरह खड़े रहते हैं। वृक्षों के लिए भी विश्वस्तता आवश्यक है। **वातो वहति एकटठं**, पुर्वा आदि हवा चलने पर, मैदान में स्थित **एकटठं**, (=अकेले खड़े) **ब्रहन्तम्पि वनस्पतिं**, शाखा-टहनी से युक्त महावृक्ष को भी, उड़ा ले जाती है; उखाड़ कर गिरा देती है।

बोधिसत्व यह बात कह, आयु क्षय होने पर, कर्मानुसार, परलोक गये।

शास्ता ने भी, 'महाराजाओ! इस प्रकार ञातियों को मिलकर ही रहना चाहिए। सो, आप, मेल से, प्रसन्नचित्त, खुशी से रहें।'—यह धर्म-देशना ला, जातक का सारांश निकाल दिया।

उस समय के देवता (अब की) बुद्ध परिषद् हुई। लेकिन पण्डित-देवता मैं ही था।

७५. मच्छ जातक

"**अभित्थनय पज्जुन्न...**" यह (गाथा) शास्ता ने **जेतवन** में विहार करते समय, अपनी बरसाई हुई वर्षा के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

एक समय **कोसल** देश में वर्षा न बरसी। खेतियाँ कुम्हला गईं। जहाँ तहाँ स्थित तालाब, पुष्करणियाँ सूख गईं। **जेतवन** के फाटक (द्वार-कोट्ठ) के पास की जेतवन पुष्करिणी का पानी भी छीज गया। कौए चील आदि (पक्षी) गहरे कीचड़ में जाकर पड़े हुए मछली, कछुओं को तीर की नोक जैसी अपनी तीखी चोंच से मार मार कर, ले जाकर, चिल्लाते हुए खाने लगे। मछली कछुओं के उस दुःख को देख, महाकरुणा से बुद्ध का हृदय द्रवीभूत हो गया, और वह सोचने लगे—"आज मुझे वर्षा बरसानी चाहिए।" (यह सोच) रात्रि के प्रभात होने पर, उन्होंने शारीरिक कृत्य समाप्त किया। भिक्षा-चार के समय का ख्याल कर, महान् भिक्षु-संघ को साथ ले, बुद्ध-लीला से उन्होंने **श्रावस्ती** में भिक्षाटनके लिए प्रवेश किया। भिक्षाटन कर भोजन से निवृत्त हो लौट, **श्रावस्ती** से बिहार को जाते हुए जेतवन-पुष्करिणी की सीढ़ी पर खड़े हो कर **आनन्द** स्थविर को आमन्त्रित किया—"आनन्द! नहाने का वस्त्र ले आ। जेतवन पुष्करिणी में नहाऊँगा।"

"भन्ते! क्या जेतवन-पुष्करिणी में पानी खतम नहीं हो गया? क्या केवल कीचड़ बाक़ी नहीं रह गया?"

"आनन्द! बुद्ध-बल महान् बल है। जा, तू नहाने का वस्त्र ले आ।"

स्थविर ने (कपड़ा) लाकर दिया। शास्ता (वस्त्र के) एक सिरे को (कंधे पर) रख, दूसरे सिरे को बदन पर पहन जेतवन-पुष्करिणी में नहाने की इच्छा से सीढ़ी पर खड़े हुए।

उसी समय शक्र का पाण्डु कम्बल शिलासन गर्म हुआ। उसने 'क्या कारण है ?' सोचते हुए उस कारण को जान प्रजुण्ह[1] (=वर्षा के बादलों के देवता) देवपुत्र को बुलवा कर कहा—"तात! शास्ता जेतवन-पुष्करिणी में स्नान की इच्छा से सबसे ऊपर की सीढ़ी पर खड़े हैं। तू, जल्दी से वर्षा बरसा कर, सारे कोसल देश को जलमय कर दे।" वह 'अच्छा' कह स्वीकार कर, एक बादल को (कंधे पर) रख, एक बादल को पहन, मेघ-गीत गाते हुए, पूर्व दिशा में जा कूदा। पूर्व दिशा में उसने खलियान जितना (बड़ा) एक बादल का टुकड़ा उठाया; फिर उसे सैकड़ों गुणा, सहस्र गुणा कर, फैला,बिजली चमकाते हुए, नीचे मुंह करके रक्खे घड़े की तरह, बरसते हुए, सारे कोसल राष्ट्र को, समुद्र की तरह पानी से सराबोर कर दिया। देव ने मूसलाधार बरसते हुए, ज़रा ही देर में जेतवन की पुष्करिणी को भर दिया। पानी, ऊपर की सीढ़ी तक चला आया।

शास्ता पुष्करिणी में स्नान कर, रक्त-वर्ण वस्त्र धारण कर, कमर-पट्टी (=काय-बन्धन,) बाँध, सुगत का महाचीवर एक कंधे पर रख, भिक्षुसंघ सहित गन्धकुटी परिवेण में गये; और श्रेष्ठ, बिछे, बुद्धासन पर बैठ, भिक्षुसंघ के अपना अपना सम्मान प्रदर्शित करने पर, उठ, मणिमय सीढ़ी के फट्टे पर खड़े हो, भिक्षुसंघ को उपदेश दिया, उत्साहित किया; फिर सुगन्धित गन्धकुटी में चले गये। वहाँ, दक्षिण पासे पर, सिंह-शय्या से शयन करके, शाम को धर्म सभा में एकत्रित हुए भिक्षुओं के, 'आवुसो! दश-बल की क्षान्ति, मैत्री तथा दया (रूपी) सम्पत्ति को देखो। अनेक खेतों के कुम्हलाने पर, नाना जलाशयों के सूख जाने पर, मछलियों-कछुओं के अत्यन्त दुख पाने पर, वह करुणा से प्रेरित हो जन(-समूह) को दुख से मुक्त करने की इच्छा से स्नान-वस्त्र ले, जेतवन की पुष्करिणी की सब से ऊपर की सीढ़ी पर खड़े हुए और ज़रा सी देर में, सारे कोसल देश को महा समुद्र में डबोते हुए की तरह वर्षा बरसा कर, जन(-समूह) को शारीरिक तथा मानसिक दुख से मुक्त कर, बिहार में प्रवेश किया'—यह कथा, कहते समय, (भगवान

---

[1] पर्जन्य देवता

ने) गन्धकुटी से निकल, धर्म सभा में आकर पूछा—"भिक्षुओ ! इस समय, बैठे क्या बातचीत कर रहे थे ?"

"यह कथा," कहने पर (शास्ता ने) "भिक्षुओ ! न केवल अभी तथागत ने जन-(समूह) को दुख पाते देख वर्षा बरसाई। पहले पशु योनि में उत्पन्न हो, मत्स्य-राजा रहने के समय भी वर्षा बरसाई थी" कह, पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में इसी **कोसल** देश में, इसी **श्रावस्ती** में, इसी जेतवन पुष्करिणी की जगह, घनी लताओं से घिरी हुई एक कन्दरा थी। उस समय बोधिसत्व मछली की योनि में उत्पन्न हो, मछली गण से घिरे हुए वहीं रहते थे। जैसे अब, इसी प्रकार उस समय भी, देश में वर्षा नहीं हुई। मनुष्यों के खेत कुम्हला गये। वापी आदि में पानी सूख गया। मछली-कछुवे गाढ़े कीचड़ में घुस गये। इस कन्दरा की मछलियाँ भी, गहरे कीचड़ में घुस जहाँ तहाँ छिप गईं। कौवे आदि, चोंच से उन्हें मार मार कर, ले जा कर खाने लगे।

बोधिसत्व ने ञाति-संघ (=भाई बिरादर) का दुख देख, सोचा—"मुझे छोड़, और कोई इन्हें दुःख से मुक्त नहीं कर सकता। सो, मैं सच्च-किरिया[1] कर, देव (=वर्षा) को बरसा, ञातियों को मृत्यु-दुःख से मुक्त करूँगा।" (यह सोच) काले काले कीचड़ को बीच में से फाड़, (बाहर) निकल, (उस) सुरमे के रंग के महामत्स्य ने स्वच्छ रक्तवर्ण मणि जैसी आँखों को खोल, आकाश की ओर देख, पर्जन्य देवपुत्र देवेन्द्र को आवाज़ दी, "भो। पर्जन्य ! मैं (अपने) भाई-बिरादरों के कारण दुखी हूँ। तू मेरे (सदृश) सदाचारी के दुख पाते हुए भी, किस लिए वर्षा नहीं बरसाता है। मैं ने आपस में एक दूसरे को खानेवाली योनि में उत्पन्न होकर भी, चावल भर माँस तक नहीं खाया, और भी मैं ने किसी प्राणी की हिंसा नहीं की। (मेरे इस) सत्य (-बल) से, वर्षा बरसा कर, मेरे भाई-बिरादरी को दुख से मुक्त कर"

[1] अपने सचाई की शपथ खाकर किसी की हितकामना करना।

कहू, (अपने) सेवक को आज्ञा देने की तरह आज्ञा देते हुए पर्जन्य देवपुत्र को सम्बोधित कर यह गाथा कही—

अभित्थनय पज्जुन्न ! निधिं काकस्स नासय ,
काकं सोकाय रन्धेहि मञ्च सोका पमोचय ।।

[पर्जन्य ! गर्ज; कौओं की निधि का नाश कर; कौओं को शोक में लपेट और मुझे शोक से मुक्त कर।]

अभित्थनय पज्जुन्न, 'पञ्जुन्न' कहते हैं मेघ को। मेघ होने से, बरसने वाले बादलों के देवता को इस नाम से सम्बोधित किया गया है। यही इसका अभिप्राय है। बिना गरजे, बिना बिजली चमकाये, केवल बरसने से 'देव' नाम शोभा नहीं देता; इस लिए तू गरजते हुए, बिजली चमकाते हुए बरस। **निधिं काकस्स नासय,** कौऐ, कीचड़ में पड़ी हुई मछलियों को मार मार ले जाकर खाते हैं, इस लिए कीचड़ में पड़ी मछलियों को उन (कौओं) की निधि (=खज़ाना) कहा गया है। उस कौओं की निधि को वर्षा बरसा कर, पानी से ढक कर, नाश कर। **काकं सोकाय रन्धेहि,** काक-समूह, इस कन्दरा के पानी से भर जाने पर, मछलियों के न मिलने से शोक को प्राप्त होगा। सो, तू इस कन्दरा को पानी से भर कर, काक-संघ को शोक में लपेट, शोक-प्राप्त कर। अर्थात् जैसे (वे) भीतर जला देने वाले शोक को प्राप्त हों, वैसा कर। **मञ्च सोका पमोचय,** यहाँ 'च' जोड़ने के लिए है, सो मुझे और मेरे भाई-बिरादरी को इस मृत्यु-भय से मुक्त कर। इस प्रकार बोधिसत्व ने (अपने) सेवक को आज्ञा देने की भाँति, पर्जन्य को कह, सारे **कोसल** देश में भारी वर्षा बरसवा, जन(-समूह) को मृत्यु-भय से मुक्त किया, और आयु (=जीवन) की समाप्ति पर वह यथा-कर्म (परलोक को) गये।

शास्ता ने, 'भिक्षुओ ! न केवल अभी तथागत ने वर्षा बरसाई है, पूर्व समय में मत्स्य योनि में उत्पन्न होकर भी बरसाई थी' कह, इस धर्मदेशना को ला कर, मेल मिला, जातक का सारांश निकाल दिया।

उस समय की मत्स्य-मण्डली (अब की) बुद्ध-परिषद् थी। पर्जन्य देवता (अब के) **आनन्द** स्थविर थे। मत्स्य-राज तो मैं ही था।

७६. असंकिय जातक

असंकियोम्हि गामम्हि" यह (गाथा) शास्ता ने **जेतवन** में विहार करते समय, एक श्रावस्ती वासी उपासक के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

वह (उपासक) स्रोतापन्न, आर्यश्रावक था। (एक बार) बैल गाड़ियों के बंजारों (शकट-सार्थवाह) के साथ वह यात्रा कर रहा था। उस समय, जंगल में बैलों को खोल, तम्बू लगाने पर, वह, कारवाँ से कुछ दूर, एक वृक्ष के नीचे टहलने लगा। अपना मौका देख, पाँच सौ चोरों ने पड़ाव को लूटने की इच्छा से, धनुष, मुद्गर आदि (शस्त्र) हाथ में ले, उस स्थान को घेर लिया। उपासक भी टहल रहा था। चोरों ने उसे देख, सोचा—"यह, अवश्य पड़ाव का पहरेदार होगा। इस के सोने पर लूटेंगे।" (यह सोच) वह लूटने का मौक़ा न पाते हुए जहाँ तहाँ खड़े रहे। वह उपासक, प्रथम याम (=पहर) में, मध्यम याम में, तथा आख़िरी याम में भी टहलता ही रहा। प्रातः हो जाने से, चोर मौक़ा न पा, हाथ में के पत्थर, मुद्गर आदि को छोड़ भाग गये। उपासक ने अपना काम समाप्त कर, फिर श्रावस्ती लौटकर, शास्ता को प्रणाम कर पूछा—"भन्ते! क्या अपनी रक्षा करने वाले दूसरों के (भी) रक्षक होते हैं?"

"उपासक! हाँ! अपनी रक्षा करने वाला, दूसरों की रक्षा करता है, दूसरों की रक्षा करने वाला, अपनी रक्षा करता है।'

उसने कहा—"भन्ते! आप का कथन ठीक है। मैं ने एक काफले के साथ रास्ता चलते, वृक्ष के नीचे टहलते हुए, अपनी रक्षा करने के विचार से सारे कारवाँ की रक्षा की।"

शास्ता ने, "उपासक ! पूर्व समय में भी, अपनी रक्षा करते हुए पण्डितों ने, दूसरों की रक्षा की है" कह, उसके प्रार्थना करने पर, पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में बाराणसी में (राजा) ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय, बोधिसत्व ब्राह्मण-कुल में उत्पन्न हुए। जवान होने पर, काम-भोग (के जीवन) में दोष देख ऋषी-प्रव्रज्या के अनुसार प्रव्रजित हो वह हिमालय चले गये। वहाँ से खट्टा-नमकीन सेवन करने के लिए बस्ती में आये, और बस्ती में विचरते, एक कारवाँ के साथ साथ मार्ग चलने लगे। कारवाँ के, एक जंगल में पड़ाव डालने पर, वह, कारवाँ के समीप, एक वृक्ष के नीचे ध्यान-सुख में समय बिताते हुए टहलने लगे। सो शाम का भोजन खा चुकने के समय, पाँच सौ चोरों ने उस कारवाँ को लूटने की इच्छा से आकर घेर लिया। उस तपस्वी को टहलते देख कर, उन्होंने सोचा—"यदि यह हमें देख लेगा, तो कारवाँ को कह देगा। सो इसके सोने के समय लूटेंगे।" (यह सोच) वह वहीं खड़े रहे। तपस्वी सारी रात टहलता ही रहा। चोर मौक़ा न मिलने पर, हाथ में के मुद्गर, पाषाण आदि को छोड़, चले गये; और जाते जाते कह गये—"ओ ! क़ाफले वालो ! यदि आज यह वृक्ष के नीचे टहलने वाला तपस्वी न रहता, तो (तुम) सब लूट लिये जाते। कल, तपस्वी का महान् सत्कार करना।" उन्होंने रात के बाद प्रभात होने पर, चोरों के छोड़े हुए मुद्गर, पाषाण आदि देख, भयभीत हो, बोधिसत्व के पास जा, प्रणाम कर, पूछा—"भन्ते ! आपने चोरों को देखा ?"

"हाँ ! आवुसो ! देखा।"

"भन्ते ! इतने चोरों को देख कर, भय या डर नहीं लगा ?"

बोधिसत्व ने कहा—"आवुसो ! धनी (आदमी) को चोरों से भय होता है। मैं निर्धन हूँ। सो, मैं किस लिए डरूँगा ? मुझे, गाँव में रहते हुए, वा जंगल में रहते हुए न कोई भय है, न डर है।" यह कह, उन्हें धर्मोपदेश करते हुए, यह गाथा कही—

असङ्कियोम्हि गामम्हि अरञ्ञे नत्थि मे भयं ,
उजुमग्गं समारूळ्हो मेत्ताय करुणाय च ॥

[मैं ग्राम में भय रहित हूँ; जंगल में मुझे भय नहीं है। मैं मैत्री और करुणा से युक्त, सीधे मार्ग का पथिक हूँ।]

असङ्कियोम्हि गामम्हि, शंका में नियुक्त, प्रतिष्ठित, =शंका-युक्त (=सङ्कियो); न सङ्कियो=आशङ्का-रहित (=असङ्कियों)'; मैं ग्राम में रहता हुआ भी शङ्का में अप्रतिष्ठित होने से, आशङ्का-रहित (असङ्कियो) निर्भय, निःशङ्का हूँ। **अरञ्ञे** ग्रामोपचार से रहित स्थान में (=जंगल में)। **उजुमग्गं समारूळ्हो मेत्ताय करुणाय च;** मैं तृतीय, चतुर्थ ध्यान सम्बन्धी मैत्री, करुणा से युक्त, तथा शारीरिक कुकर्म से विरहित, ऋजु, सीधे, ब्रह्मलोक के मार्ग पर आरूढ़ हूँ। अथवा शील शुद्ध होने से, शारिरीक, वाचिक तथा मानसिक टेढ़ेपन से रहित, ऋजु, देवलोक-गामी मार्ग पर आरूढ़ हूँ। और भी, मैत्री तथा करुणा में प्रतिष्ठित होने से ऋजु, ब्रह्मलोक गामी मार्ग पर आरूढ़ हूँ। ध्यान-प्राप्त (मनुष्य) के निश्चय-पूर्वक ब्रह्मलोक गामी होने के कारण, मैत्री करुणा आदि को ऋजु-मार्ग कहा गया है।

इस प्रकार बोधिसत्व ने इस गाथा से धर्मोपदेश कर, उन संतुष्ट-चित्त मनुष्यों से सत्कृत हो, पूजित हो, आयु रहते चारों ब्रह्म-बिहारों की भावना कर, ब्रह्मलोक में जन्म लिया।

शास्ता ने इस धर्मदेशना को ला, मेल मिला, जातक का सारांश निकाल दिया। उस समय के कारवाँ-वाले अब की बुद्ध-परिषद् थे। लेकिन तपस्वी मैं ही था।

७७. महासुपिन जातक

लापूनि सीदन्ति..." यह (गाथा) **शास्ता** ने **जेतवन** में विहार करते समय, सोलह महास्वप्नों के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

एक दिन **कोसल** महाराजा ने सोते समय, (रात्रि के) आखिरी पहर में सोलह महास्वप्न देखे; जिनसे भय-भीत, चकित, हो जागकर, 'इन स्वप्नों को देखने के कारण मुझे क्या (भुगतना) होगा?' (सोच), मृत्यु-भय से डर कर शय्या पर बैठे ही बैठे (रात्रि) बिताई। रात्रि का प्रभात होने पर, ब्राह्मण पुरोहितों ने उन के पास आकर पूछा—"महाराज! सुख से तो सोये?"

"आचार्यों! मुझे, सुख कहाँ! आज प्रातःकाल, मैं ने सोलह महा-स्वप्न देखे। उनके देखने के समय से, मैं भय-भीत हूँ। आचार्यों! (कुछ) कहो।" उनके '(स्वप्नों को) सुनकर, बतलायेंगे' कहने पर, राजा ने उन देखे स्वप्नों को कह, पूछा—'इन स्वप्नों को देखने के कारण मुझे क्या (भुगतना) होगा?'

ब्राह्मणों ने हाथ मले।

"आप किसलिए हाथ मल रहे हैं?"

"महाराज! स्वप्न अच्छे नहीं।"

"तो इनका क्या फल होगा?"

"राज्य को खतरा, जीवन का खतरा तथा भोग-सम्पत्ति का खतरा—इन तीन खतरों में से कोई एक होगा।"

"यह स्वप्न स-उपाय (=सपटिकम्म) हैं, अथवा निरुपाय?"

"यद्यपि अपनी कठोरता के कारण, यह (स्वप्न) निरुपाय हैं, तो भी हम

इनका उपाय करेंगे, यदि हम इनका कुछ उपाय न कर सकें, तो हमारी विद्या किस काम आयेगी?"

"इनका उपाय कैसे करोगे?"

"महाराज! चारों (चीजों) से यज्ञ करेंगे।"

राजा बोला—"अच्छा! तो आचार्य्यो, मेरा जीवन तुम्हारे हाथ में है, शीघ्र ही मुझे निरुपद्रव (=स्वस्थ) करो।"

'बहुत धन मिलेगा, बहुत खाद्य-भोज्य ले जायेंगे' सोच प्रसन्न चित्त हो ब्राह्मण, 'महाराज! चिन्ता न करें' कह, राजा को आश्वासन दे, राज-भवन से निकले। उन्होंने नगर के बाहर यज्ञ-कुण्ड बनवा, बहुत से पशुओं को यज्ञ-यूप से बँधवाया; (तथा) पक्षी-गणों को मँगवा, 'यह चाहिए, यह चाहिए, करके बार बार, आवा जाही करने लगे। मल्लिका देवी ने उस बात को जान, राजा के पास जाकर पूछा—"महाराज! ब्राह्मण किस लिए आवा जाही कर रहे हैं?"

"तू (अपने) सुख से है। हमारे कान के पास विषैला सर्प घूम रहा है, सो भी नहीं जानती।"

"महाराज! यह क्या?"

"मैंने ऐसा दुस्स्वप्न देखा है, ब्राह्मणों का कहना है कि तीन खतरों में से एक खतरा दिखाई देता है, सो 'उसे रोकने के लिए यज्ञ करेंगे' (करके) वह बारबार आवा जाही कर रहे हैं।"

"महाराज! क्या आपने देवताओं सहित सारे लोक में अग्र-ब्राह्मण से स्वप्न का प्रतिकार पूछा?"

"भद्रे। देवताओं सहित सारे लोक में यह अग्र-ब्राह्मण कौन है?"

"देवता सहित सारे लोक में, पुरुषोत्तम, सर्वज्ञ, विशुद्ध, क्लेश (= (=विकार)-रहित महा-ब्राह्मण को तुम नहीं जानते? महाराज! जाओ, वह भगवान् स्वप्नों के भेद को जानते हैं, उन्हें पूछो।"

"देवी! अच्छा" कह, राजा, बिहार जा, शास्ता को प्रणाम करके बैठा।

शास्ता ने मधुरवाणी से पूछा—"क्यों महाराज! आज कैसे सवेरे ही आये?"

"भन्ते ! मैंने आज ही तड़के ही, सोलह महास्वप्न देखकर, भय-भीत हो ब्राह्मणों से पूछा।" 'महाराजा ! स्वप्न, अशुभ (=कक्खल) हैं, इनके प्रतिघात के लिए, चारों (चीजों) से यज्ञ करेंगे' (करके) वह यज्ञ की तैयारी कर रहे हैं, बहुत से प्राणी मरने के भय से भयभीत हैं। आप देवताओं सहित सारे लोक में सर्वश्रेष्ठ पुरुष हैं। अतीत-भविष्य-वर्त्तमान, कोई ऐंसी बात नहीं है, जो आपके ज्ञान से अगोचर हो। भगवान् ! मुझे इन स्वप्नों का फल कहें।"

"महाराज ! ऐसा ही है, मुझे छोड़, देवताओं सहित सारे लोक में कोई भी, इन स्वप्नों का भेद या फल नहीं जान सकता। मैं तुझे बताऊँगा, लेकिन, (पहले) तू जैसे देखा है, वैसा ही, उन स्वप्नों को बयान कर।" 'भन्ते। अच्छा' कह, राजा ने जैसे जैसे देखा था, वैसे ही कहते हुए, इस प्रकार कहा—

उसभा रुक्खा गावियो गवा च
अस्सो कंसो सिगाली च कुम्भो
पोक्खरणी च अपाकचन्दनं
लापूनि सीदन्ति सिला प्लवन्ति
मण्डूकियो कण्हसप्पे गिलन्ति;
काकं सुवण्णा परिवारयन्ति
तसावका एळकानं भया हि ॥

[साँड़, वृक्ष, गौवें, बैल, घोड़ा, काँसा, स्यारी, घड़ा, पुष्करिणी, अपक्व चन्दन, तूँबे डूबते हैं, शिलायें तैरती हैं, मेंड़कियाँ काले सर्पों को निगलती हैं, राज-हंस कौओं के पीछे चलते हैं, भेड़िए बकरियों से डरते हैं।]

"कैसे ? भन्ते। एक स्वप्न तो ऐसे देखा—सुरमे जैसे काले चार साँड़ (=लड़ने की इच्छा से चारों दिशाओं से राजाङ्गण में आये। बैलों की लड़ाई देखने की इच्छा से, जन-समूह) के एकत्रित होने पर, लड़ने का ढंग दिखा, नादकर, गर्जना कर, बिना लड़े ही वह वापिस लौट गये। यह स्वप्न देखा। इसका क्या फल है ?"

"महाराज ! इस स्वप्न का फल न तेरे समय में होगा, न मेरे समय में, किन्तु भविष्य में अधार्मिक, कंजूस राजाओं तथा अधार्मिक मनुष्यों के समय में

(होगा)। लोक के बदलने पर, धर्म के घटने पर, अधर्म के बढ़ने पर, लोक की अवनति होने के समय, अच्छी तरह वर्षा नहीं बरसेगी, बादल फट जायेंगे, खेत कुम्हला जायेंगे, अकाल पड़ेगा। बादल, जैसे बरसने वाले हों, वैसे चारों दिशाओं से उठेंगे। स्त्रियाँ धूप में फैलाये हुए धान्य आदि भीगने के डर से अन्दर ले जाने लगेंगी। आदमी टोकरी-कुदाली हाथ में लेकर मेड़ बाँधने के लिए निकलेंगे। (फिर वह बादल) बरसने का ढंग दिखा गरज कर, बिजली चमका कर, उन बैलों की तरह बिना लड़े (अर्थात्) बिना बरसे ही भाग जायेंगे। यह इसका फल होगा। लेकिन इसके कारण, तुझे किसी प्रकार का ख़तरा नहीं है। यह जो स्वप्न देखा है, सो यह भविष्य-सम्बन्धी है। ब्राह्मणों ने जो कहा है, सो अपनी जीविका-वृत्ति के लिए कहा है।"

इस प्रकार शास्ता ने स्वप्न का फल बतला कर कहा—"महाराज! दूसरा स्वप्न कहें।"

"भन्ते! दूसरा (स्वप्न) इस प्रकार देखा—'पृथ्वी से निकलते ही गाछ वृक्ष, एक या दो बालिश्त के होने से भी पहले ही फलने फूलने लगे। यह दूसरा स्वप्न देखा, इसका क्या फल है?"

"महाराज! इसका भी फल, लोक की अवनति होने तथा मनुष्यों की आयु कम (=परिमित) होने पर होगा। भविष्य के प्राणी बड़े रागी होंगे। कुमारियाँ आयु-प्राप्त होने से पहले ही, आदमियों से संसर्ग कर, ऋतुमती तथा गर्भिणी हो, बेटा-बेटी की बृद्धि करेंगी। क्षुद्र वृक्षों के पुष्पित होने की तरह ही, उनका ऋतुमती होना है, और फलित होने की तरह बेटा-बेटी वाली होना है। इसके कारण भी, महाराज! तुम्हें ख़तरा नहीं। तीसरा स्वप्न कहें।"

"भन्ते! उसी दिन उत्पन्न (अपनी) बछड़ियों का दूध गौवें पी रही थीं। यह मेरा तीसरा स्वप्न है। इसका क्या फल है?"

इसका भी फल भविष्य में जब मनुष्य बड़ों का आदर-सत्कार करना छोड़ देंगे, तभी होगा। भविष्य में लोग, मातापिता तथा सास ससुर के प्रति निर्लज्ज हो, अपने आप ही कुटुम्ब का पालन करेंगे। बड़े बूढ़ों को खाना कपड़ा देने की इच्छा रहेगी देंगे, न देने की इच्छा रहेगी नहीं देंगे। वृद्ध जन अनाथ हो, पराधीन हो, बच्चों को संतुष्ट करके जीवित रह सकेंगे, जैसे उसी

दिन उत्पन्न हुई बछड़ियों का दूध पीती गौवें। इसके कारण भी, तुम्हें खतरा-नहीं है, चौथा (स्वप्न) कहें।"

"भन्ते ! उठाने ढोने की सामर्थ्य रखने वाले, महाबैलों को युग-परम्परा में न जोत कर, तरुण बछड़ों के धुरि में जोते जाते देखा; वे धुर को न खींच सकने के कारण छोड़ कर खड़े हो गये, गाड़ियाँ न चलीं। यह मैंने चौथा स्वप्न देखा। इसका क्या अर्थ है?"

"इसका भी फल, भविष्य में अधार्मिक राजाओं के ही समय में होगा। भविष्य में, अधार्मिक कृपण राजा, पंडितों को, परम्परागत दक्षों को, कार्य्य सम्पादन करने की सामर्थ्य रखने वालों को, महाबुद्धिमानों को यश न देंगे और धर्मसभा तथा न्यायालयों में भी पंडित, व्यवहार कुशल, वृद्ध अमात्य को नहीं रखेंगे, किन्तु इसके विरुद्ध तरुण तरुणों को यश देंगे, और वैसों को ही न्यायालयों में रक्खेंगे। वे राज कार्य तथा योग्य अयोग्य के न जानने के कारण, न तो उस यश को रख सकेंगे, न ही राज-कार्य का बेड़ा पार लगा सकेंगे। न कर सकने पर वह कार्य्य (–धुर) को छोड़ देंगे। वृद्ध-पंडित अमात्य यश के न मिलने पर, कार्य्य सम्पादन कर सकने की सामर्थ्य रखने पर भी, सोचेंगे—"हमें इससे क्या? हम बाहर के हो गये, अन्दर वाले तरुण लड़के जानें।" (यह सोच)वह, जो जो काम पड़ेंगे, उन्हें नहीं करेंगे। इस प्रकार सर्वत्र उन राजाओं की हानि ही होगी। सो यह धुरि खींचने में असमर्थ बछड़ों को धुरे में जोतने, और धुरा खींचने में समर्थ महाबैलों को युग परम्परा से न जोतने के जैसा होगा। इसके कारण भी, तुझे कोई खतरा नहीं। पाँचवाँ (स्वप्न) कह।"

"भन्ते ! एक दोनों ओर मुंह वाले घोड़े को देखा। उसे दोनों ओर से चारा दिया जाता था, और वह दोनों मुखों से खाता था। यह मेरा पाँचवाँ स्वप्न है। इसका क्या फल है?"

"इसका भी फल, भविष्य में अधार्मिक राजाओं के ही समय में होगा। भविष्य में अधार्मिक मूर्ख राजा, अधार्मिक लोभी मनुष्यों को न्यायाधीश बनायेंगे। वे मूर्ख पाप-पुण्य का भेद न कर, सभा में बैठ न्याय करते हुए, दोनों प्रत्यर्थियों से रिश्वत लेकर खायेंगे, जैसे कि उस घोड़े का दोनों मुँह से चारा खाना। इससे भी, तुझे खतरा नहीं है, छठा (स्वप्न) कह।"

"भन्ते ! बहुत से आदमी, लाख (मुद्रा) के मूल्य की एक सोने की थाली को मांज कर लाये, और उसमें पेशाब करने के लिए एक बूढ़े गीदड़ के सामने रक्खा। (मैंने) उसे उसमें पेशाब करते देखा। यह मेरा छठा स्वप्न है। इसका क्या फल है ?"

"इसका भी फल, भविष्य में ही होगा। भविष्य में अधार्मिक, विजातीय राजा, जाति-सम्पन्न कुलपुत्रों पर शंका करके, उन्हें यश (=दर्जा) न देंगे; अकुलीनों की ही उन्नति करेंगे। इस प्रकार ऊँचे ऊँचे कुल दुर्गति को प्राप्त होंगे और नीच-कुल ऐश्वर्य्य को। वे कुलीन पुरुष उपाय न देख जीविका प्राप्त करने की इच्छा से इन पर निर्भर होकर जीयें, (सोच), अकुलीनों को (अपनी) लड़कियाँ देंगे। सो यह उन कुलीन लड़कियों का अकुलीनों के साथ सहवास, वृद्ध शृगाल के सोने की थाली में पेशाब करने के सदृश होगा। इसके कारण भी, तुझे खतरा नहीं। सातवाँ (स्वप्न) कह।"

"भन्ते ! एक आदमी रस्सी बाँट बाँट कर पैरों में डालता था। वह, जिस पीढ़े पर बैठा था, उसके नीचे बैठी एक भूखी गीदड़ी, उस (आदमी) को बिना ही पता लगे, उस (रस्सी को) खा रही थी। मैंने ऐसा देखा। यह मेरा सातवाँ स्वप्न था। इसका क्या फल होगा ?"

"इसका भी फल, भविष्य में ही होगा। भविष्य में स्त्रियाँ, पुरुष-लोभी, शराब (=सुरा) लोभी, आभरण-लोभी, (रात को) बाज़ारों में घूमने की लोभी, लौकिक-चीज़ों की लोभी तथा दुश्शील दुराचारिणी होंगी। वे स्वामी के खेती गोरक्षा आदि कर्म से, बड़ी कठिनाई से कमाये धन को जारों के साथ शराब पीकर, माला-गन्ध-विलेपन लगाकर (नाश कर देंगी)। वे घर के अन्दर के अत्यन्त आवश्यक कार्य्य का भी ध्यान न रक्खेंगी, और घर की चहर दीवारी के ऊपर से, छिद्रों तक में से (अपने) जार को देखेंगी। (वे) कल बोने के लिए रक्खे हुए बीज को भी कूट कर, उसका यवागु-भत्त-खाजा आदि बना, खाकर उड़ा देंगी, जैसे कि वह पीढ़े के नीचे पड़ी भूखी गीदड़ी, बाँट बाँट कर पैरों में रक्खी जाती रस्सी को। इससे भी तुझे खतरा नहीं। आठवें (स्वप्न) को कह।"

"भन्ते ! राज द्वार पर, बहुत से खाली घड़ों के बीच में रक्खे हुए, एक बड़े से भरे हुए घड़े को देखा। चारों वर्णों के लोग चारों दिशाओं

से तथा चारों अनुदिशाओं से, घड़ों में जल ला ला कर, उस भरे हुए, घड़े को ही भरते थे। लबालब भरा पानी, किनारों पर से होकर गिरता जाता था, लेकिन फिर भी बार बार उसीमें पानी डाल रहे थे। खाली घड़ों की ओर, कोई देखता तक न था। यह मेरा आठवाँ स्वप्न है। इसका क्या फल होगा ?"

"इसका फल भी, भविष्य में ही होगा। भविष्य में लोक की अवनति होगी। राष्ट्र सार-रहित हो जायेगा। राजा, दुर्गत, कृपण हो जायेंगे। जो ऐश्वर्य शाली होगा, उसके खज़ाने में केवल एक लाख कार्षापण रहेंगे। इस प्रकार दुर्गति को प्राप्त हो, वह, सब जनपद-वासियों से अपना ही काम करवायेंगे। पीड़ित मनुष्य अपने काम-काज छोड़ कर राजाओं के ही लिए पूर्व-अन्न, अपर-अन्न (आषाढ़ी—श्रावणी) बोते, राखी करते, काटते, दलाई करते, ढुवाते, ऊख की खेती करते, यन्त्र बनाते, यन्त्र चलाते, गुड़ आदि पकाते पुष्पोद्यान तथा फलोद्यान लगाते, वहाँ वहाँ उत्पन्न पूर्व-अन्न आदि को लाकर, राजा के कोठों को ही भरेंगे। अपने घरों के खाली कोठों की ओर देखेंगे तक नहीं। यह ऐसा ही होगा, जैसे खाली घड़ों की ओर न देख कर, भरे घड़ों को ही भरना। इस कारण से भी, तुझे खतरा नहीं। नवाँ (स्वप्न) कह।"

"भन्ते ! पाँचों पद्मों से आच्छन्न, गम्भीर सब ओर तीर्थ (पत्तन) वाली, एक पुष्करिणी देखी। चारों ओर से द्विपद-चतुष्पद उतर कर, उसमें पानी पीते थे। उसके बीच मे गहराई में (तो) पानी गदला था, (लेकिन) किनारे पर, द्विपद-चतुष्पदों के आने-जाने की जगह मैंने उसे शुद्ध, स्वच्छ तथा साफ ही देखा। यह मेरा नौवाँ स्वप्न है। इसका क्या फल है ?"

"इसका भी फल, भविष्य में ही होगा। भविष्य में राजा अधार्मिक होंगे। पक्षपात पूर्वक राज्य करेंगे। धर्मानुकूल न्याय न करेंगे। रिश्वत लेने वाले होंगे। (उन्हें) धन का लोभ (होगा)। प्रजा (=राष्ट्र वासियों) के प्रति, उनकी क्षान्ति, मैत्री, करुणा, कुछ न होगी। निर्दयी तथा कठोर होंगे; ऊख के यन्त्र में ऊख की गाँठ को पेलने की तरह, मनुष्यों को पेल पेल कर, नाना प्रकार के टैक्स (=बलि) लगा कर, धन ग्रहण करेंगे। मनुष्य टैक्सों से पीड़ित हो कर, कुछ भी दे सकने में असमर्थ होने पर, ग्राम निगम आदियों को छोड़, सीमान्त (=देश) में जाकर रहने लगेंगे। मध्यम-देश (युक्त प्रान्त बिहार) सूना हो जायगा, प्रत्यन्त घना-वसा; जैसे पुष्करिणी के बीच में पानी

गँदला है, किनारों पर साफ। इस कारण से भी, तुझे ख़तरा नहीं है। दसवाँ (स्वप्न) कह।

"भन्ते! एक ही देगची में पके हुए, भात को कच्चा देखा, मानो फाड़ कर, बाँट कर, तीन तरह पकाया गया हो; एक ओर बहुत कच्चा, एक ओर अध-कच्चा, एक ओर खूब पका हुआ। यह मेरा दसवाँ स्वप्न है। इसका क्या फल है?

"इसका भी फल भविष्य में ही होगा। भविष्य में राजा अधार्मिक होंगे। उनके अधार्मिक होने से राजकर्मचारियों, ब्राह्मण-गृहपतियों, निगम तथा जनपद (=दीहात) के रहने वालों से लेकर, श्रमण ब्राह्मणों तक सब मनुष्य अधार्मिक हो जायेंगे। उससे उनके आरक्षक-देवता, बलि ग्रहण करने वाले देवता, वृक्षों के देवता, (तथा) आकाश स्थित देवता, इस प्रकार देवता भी अधार्मिक हो जायेंगे। अधार्मिक राजाओं के राज्य में विषम, कठोर हवायें चलेंगी। उनसे आकाश स्थित विमान कम्पित होंगे। उनके कम्पित होने से, देवता क्रोधित हो, वर्षा न बरसने देंगे। बरसने पर भी वह सब जगह हल चलाई (=कृषिकर्म) या बुवाई के लिए उपकारी होकर न बरसेगा, जैसे राष्ट्र में, वैसे ही जनपद में भी, ग्राम में भी, तालाब तथा सरोवर में भी—हर जगह एक जोर से नहीं बरसेगा। तालाब के ऊपर के हिस्से में बरसने पर, निचले हिस्से में न बरसेगा, निचले हिस्से में बरसने पर, ऊपरले हस्से में न बरसेगा। एक हिस्से में खेती अधिक वर्षा से नष्ट हो जायगी, एक हिस्से में वर्षा के अभाव से कुम्हला जायगी, एक हिस्से में खूब वर्षा होकर अच्छी खेती होगी। इस प्रकार एक ही राजा के राज्य में बोई खेती तीन प्रकार की होगी जैसे एक देगची का चावल; इस कारण से भी, तुझे ख़तरा नहीं। ग्यारहवाँ (स्वप्न) कह।

"भन्ते! लाख (मुद्रा) की क़ीमत का चन्दन-सार, सड़े हुए मट्ठे के बदले में विकता देखा। यह मेरा ग्यारहवाँ स्वप्न है। इसका क्या फल होगा?"

"इसका फल भी, भविष्य में, मेरे शासन (=धर्म) की अवनति होने के समय ही होगा? भविष्य में वस्तु (=प्रत्यय) लोभी, बे-शर्म भिक्षु बहुत होंगे, वे उस धर्म का जिसे मैंने प्रत्यक्ष लोभ के नाश करने के लिए उपदेश किया है, चीवर आदि प्रत्ययों की आशा से, औरों को उपदेश करेंगे। (वे)

प्रत्यय (की आशा) से मुक्त हो, (संसार-सागर से) निस्तार के पक्ष में स्थित हो, निर्वाणाभिमुख धर्म का उपदेश न कर सकेंगे। 'हमारे शब्दों तथा मधुर स्वर को सुन कर (लोग) चीवर आदि देंगे या देने की इच्छा करेंगे' (सोच) (वह) उपदेश करेंगे। अन्य (भिक्षु) बाज़ार, चौरस्तों (तथा) राजद्वार आदि में बैठ, **कार्षापण**[1], **अर्ध-पाद**[1], **माषक**[1] तथा **रूपी**[1] आदि तक के लिए उपदेश करेंगे। सो यह धर्म, जिसे मैंने निर्वाण की क़ीमत करके उपदेश किया है, जब वे चार प्रत्ययों तथा **कार्षापण, अर्धकार्षापण,** के लिए उपदेश देंगे, तब यह ऐसा ही होगा, जैसे लाख के मूल्य के चन्दन-सार को सड़े, मट्ठे के बदले में बेचना। इस कारण से भी तुझे ख़तरा नहीं है। बारहवाँ (स्वप्न) कह।"

"भन्ते ! ख़ाली तुम्बों को पानी में डूबते देखा। इसका क्या फल है?"

"इसका फल भी भविष्य में, अधार्मिक राजाओं के समय, लोक में तब्दीली आने पर होगा। तब राजा कुलीन कुलपुत्रों को दर्जा (=यश) न दे, अकुलीनों को ही देंगे। वे (=अकुलीन) ऐश्वर्यशाली होंगे तथा दूसरे दरिद्र। राजा के सन्मुख, राजद्वार में, अमात्यों के सन्मुख तथा न्यायालय में (उन) ख़ाली तुम्बों के समान अकुलीनों का ही कथन, स्थल पर बैठ जाने की तरह, स्थिर, निश्चल तथा सुप्रतिष्ठित होगा। संघ सम्मेलनों में, सांघिक कर्म वा गणकर्म करने की जगहों में तथा पात्र, चीवर, परिवेण आदि के सम्बन्ध में (तथा) न्याय करने के स्थान पर भी, दुश्शील, पापी लोगों का ही कथन कल्याणकारी माना जायेगा, लज्जा-वान् भिक्षुओं का कथन नहीं। इस प्रकार सब जगह ख़ाली तुम्बे के डूबने के समान होगा। इस कारण से भी, तुझे ख़तरा नहीं। तेरहवाँ (स्वप्न) कह।"

"भन्ते ! बड़ी बड़ी, कूटागार (कोठे) सदृश, मोटी शिलाओं को, नौका की तरह पानी पर तैरते देखा। इसका क्या फल है ?"

"इसका भी फल, वैसे ही समय में होगा। उस समय अधार्मिक राजा अकुलीनों को यश देंगे, (जिस से) वह ऐश्वर्य शाली होंगे तथा कुलीन (लोग) दरिद्र। उन (कुलीनों) के प्रति कोई गौरव प्रदर्शित न करेगा, दूसरों

[1] यह चारो उस समय के सिक्के थे।

का ही गौरव होगा। राजा के सामने, अमात्यों के सामने तथा न्यायालय में, न्याय करने में समर्थ, घनी शिला सदृश कुलपुत्रों का कथन प्रमाण न माना जायेगा। उनके कुछ कहने पर 'यह क्या बोलते हैं' करके, दूसरे लोग मखौल ही उड़ायेंगे। भिक्षुओं के सम्मेलन में भी उक्त स्थानों पर, सदाचारी भिक्षुओं का सम्मान न होगा और उनका कथन भी प्रमाण न माना जायेगा। सो, वह शिलाओं के तैरने सदृश होगा। उससे भी, तुझे खतरा नहीं। चौदहवाँ (स्वप्न) कह।"

"भन्ते ! छोटे मधुक पुष्प जितनी बड़ी मेंडकियों को तेजी से बड़े बड़े काले साँपों का पीछा कर, उन्हें कँवल की नाल की भाँति तोड़ तोड़ कर, उनका मांस निगलते देखा। इसका क्या फल है?"

"इसका फल भी, लोक की अवनति होने जाने के समय, भविष्य में ही होगा ! उस समय लोग तीव्र-रागी हो, विकारों का अनुकरण कर, अपनी तरुण तरुण भार्य्याओं के वशीभूत होकर रहेंगे। घर के नौकर-चाकर, गौ-भैंस, तथा हिरण्य-सोना आदि सब उन्हीं के अधीन रहेगा। "अमुक हिरण्य-सोना अथवा मोती आदि कहाँ हैं?" पूछने पर "कहीं भी हों। तुम्हें इससे क्या मतलब ? मेरे घर में क्या है, और क्या नहीं है, यह तुम जानना चाहते हो?" कह, नाना प्रकार से गाली दे, मुख रूपी शक्ती (=आयुध) चुभा चुभा कर, (उन्हें) नौकर-चाकरों की तरह अपने वश में कर, अपना ऐश्वर्य चलायेंगी। सो यह मधुक पुष्प जितनी बड़ी मेंडक की बच्चियों का, ज़हरीले, काले सर्पों को निगलने जैसा होगा। इससे भी तुझे खतरा नहीं। पन्द्रहवाँ (स्वप्न) कह।"

"भन्ते ! दस असद्धर्मों (=अवगुणों) से युक्त ग्रामचारी कौए को, कञ्चन-वर्ण होने से 'सुवर्ण' कहलाने वाले, सुवर्ण राज-हंसों से घिरा देखा। इसका क्या फल है?"

"इसका भी फल, भविष्य में दुर्बल राजाओं के समय में होगा। भविष्य में राजा लोग हस्ती शिल्प आदि में अकुशल (तथा) युद्ध में अविशारद होंगे। वे अपने राज्य पर आपत्ति आने की आशंका से, (अपने) समान जातिक कुलपुत्रों को ऐश्वर्य न देकर, अपने चरणों में रहने वाले नाई, दरजी आदि को देंगे। जाति गोत्र सम्पन्न कुल-पुत्र, राज-कुल में प्रतिष्ठा न पाकर, जीविका चलाने में

असमर्थ हो, ऐश्वर्य्य शाली (किन्तु) जाति-गोत्र हीन, अकुलीनों की सेवा में रहेंगे। सो यह, सुवर्ण-राजहंसों के, कौओं के अनुयायी बनने के सदृश होगा। इस कारण से भी, तुझे खतरा नहीं है। सोलहवें (स्वप्न) को कह।"

"भन्ते ! पहले (तो) शेर बकरियों को खाते थे, लेकिन मैंने बकरियों को शेर का पीछा कर, उसे मुरमुरे (करके) खाते देखा। और अन्य भेड़िये बकरियों को दूर से देख कर, त्रसित तथा भयभीत हो; बकरियों के भय से भागकर, गहन जंगलों में घुस कर छिप रहे। ('हि' यहाँ निपात मात्र है)। सो मैंने ऐसा देखा इसका क्या फल है ?"

"इसका फल भी, भविष्य में अधार्मिक राजाओं के ही समय में होगा। उस समय अकुलीन (मनुष्य) राज्य के स्वामी तथा ऐश्वर्य-शाली होंगे और कुलीन (मनुष्य) अप्रसिद्ध तथा दरिद्र होंगे। वे राज-स्वामी (लोग) राजाओं को अपना विश्वासी बना, न्यायालय आदि स्थानों में शक्ति-शाली हो, 'कुलीनों के परम्परागत खेत वस्तु आदि हमारी सम्पत्ति हैं' ऐसा अभि-योग लगाकर, उन (कुलीनों) के 'यह तुम्हारे नहीं, हमारे हैं' करके, न्यायालयों में आकर विवाद करने पर, (उन्हें) बेतों से पिटवा, गरदन से पकड़ कर, धक्के दिलवा कर, "तुम अपनी हैसियत नहीं जानते ? हमारे साथ विवाद करते हो ? अभी, राजा से कह कर, हाथ पैर कटवा देंगे" कह, डरायेंगे। वह, उनसे डर कर, अपनी चीजों को 'लो, यह तुम्हारी ही है' करके (उन्हें) सौंप, अपने अपने घर पर डर के मारे पड़ रहेंगे। पापी भिक्षु भी शीलवान् भिक्षुओं को जैसा चाहेंगे, वैसा तंग करेंगे। वे सदाचारी भिक्षु, कोई आश्रय न मिलने से, जंगल में जाकर घनी जगहों पर छिप रहेंगे। इस प्रकार हीन-जाति के (लोगों) का पीड़ित, (ऊँची) जाति-वाले कुलपुत्रों को और पापी भिक्षुओं का सदाचारी भिक्षुओं को भगा देना, बकरियों के शेर भगा देने के समान होगा। इस कारण से भी तुझे खतरा नहीं है। यह स्वप्न भी, तूने भविष्य के ही सम्बन्ध में देखा है। हाँ, ब्राह्मणों ने जो कहा, सो तेरे प्रति स्नेह से, धर्मानुकूल नहीं कहा। उन्होंने 'बहुत धन मिलेगा' सोच, लौकिक वस्तुओं पर नज़र रख, जीविका के ही ख्याल से कहा।"

इस प्रकार बुद्ध ने सोलह महास्वप्नों का फल कह कर 'महाराज ! न केवल तूने ही, अभी इन स्वप्नों को देखा है। पुराने राजाओं ने भी देखा है

(उस समय भी) ब्राह्मणों ने, इन स्वप्नों को इसी प्रकार लेकर यज्ञ के सिर मढ़ दिया था। तब पण्डितों की सलाह के अनुसार, बोधिसत्व से जाकर पूछा। पुराने (राजाओं) ने भी (उनको) यह स्वप्न कहते समय, इसी प्रकार कहा'—यह कह, उनके याचना करने पर पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में **बाराणसी** में (राजा) **ब्रह्मदत्त** के राज्य करते समय, बोधिसत्व उदीच्य ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हुआ। उमर होने पर, वह ऋषि प्रव्रज्या के अनुसार प्रव्रजित हो गया; अभिज्ञा तथा समापत्तियों को प्राप्त कर, हिमवन्त प्रदेश में ध्यान-क्रीड़ा में रत रह कर विचरता था। उस समय बाराणसी में (राजा) ब्रह्मदत्त ने इसी प्रकार इन स्वप्नों को देख, ब्राह्मणों को पूछा। ब्राह्मणों ने भी इसी प्रकार यज्ञ करना आरंभ किया। उनमें जो पुरोहित था, उसके बुद्धिमान् स्पष्ट-वक्ता, माणव-शिष्य ने आचार्य्य से निवेदन किया—"आपने मुझे **तीनों वेद** सिखाये। उनमें कहीं भी एक (जने) को मार कर, दूसरे को सुखी करने का उल्लेख नहीं है न?"

"तात! इस ढंग से हमें बहुत धन मिलेगा। मालूम होता है, तू राजा के धन की रक्षा करना चाहता है।"

"आचार्य्य! तो आप अपना काम करें; मैं आपके पास रह कर क्या करूँगा," कह, माणवक, घूमता घामता राजा के उद्यान में आ पहुँचा।

उसी दिन बोधिसत्व भी उस वृत्तान्त को जान, 'आज मेरे आबादी की ओर जाने से, जन (-समूह) की बन्धन से मुक्ति होगी' (सोच) आकाश से जाकर, उद्यान में उतर, मंगल-शिलातल पर स्वर्ण-प्रतिमा की भाँति बैठे। माणवक ने बोधिसत्व के पास पहुँच प्रणाम कर, एक ओर बैठ, कुशल-क्षेम पूछा।

बोधिसत्व ने भी, उसके साथ मधुर बात-चीत करके पूछा—"माणवक! यह राजा धर्म से राज्य करता है?"

"भन्ते! राजा तो धार्मिक है, लेकिन ब्राह्मण उसे डुबो रहे हैं। राजा ने सोलह स्वप्न देख, ब्राह्मणों से निवेदन किया। ब्राह्मणों ने 'यज्ञ करेंगे' कह,

यज्ञ करना आरम्भ किया। सो भन्ते ! क्या आपका कर्त्तव्य नहीं कि आप राजा को इन स्वप्नों का फल बताकर जनसमूह को भय से मुक्त करें ?"

"माणवक ! हम राजा को नहीं जानते, और राजा हमें नहीं जानता। हाँ, यदि वह यहाँ आकर पूछे तो हम उसे कहेंगे।"

माणवक ने 'भन्ते ! मैं लाऊँगा आप मेरे आने की प्रतीक्षा करते हुए, थोड़ी देर बैठें' (कह) बोधिसत्व को जतला, राजा के पास जाकर कहा—"महाराज एक आकाश-चारी तपस्वी आपके उद्यान में उतरे हैं, और आपको बुलाते हैं कि आपके देखे हुए स्वप्नों का फल बतलायेंगे।"

राजा उसकी बात सुन, उसी समय बहुत से अनुयाइयों को साथ ले उद्यान में आया और तपस्वी को प्रणाम कर, एक ओर बैठ पूछा—"भन्ते ! क्या आप मेरे देखे स्वप्नों का फल जानते हैं ?"

"महाराजा हाँ।"

"तो कहें।"

"महाराज ! मैं कहूँगा। (पहले) मुझे स्वप्नों को जैसे जैसे देखा है, वैसे सुनाओ।"

"भन्ते ! अच्छा" कह, राजा ने, राजा प्रसेनजित के द्वारा कहे गये स्वप्नों की ही तरह स्वप्न कहे—

उसभा रुक्खा गावियो गवा च
अस्सो कंसो सिगाली च कुम्भो
पोक्खरणी च अपाकचन्दनं।
लापूनि सीदन्ति सिला प्लवन्ति
मण्डूकियो कण्हसप्पे गिलन्ति
काकं सुवण्णा परिवारयन्ति
तसावका एळकानं भया हि ॥

[अर्थ पहले कहा ही गया है।]

जैसे शास्ता ने इस समय, उन स्वप्नों का फल कहा, वैसे ही उस समय बोधिसत्व ने भी उन स्वप्नों का फल कह, अन्त में यह कहा—

विपरियासो वत्तति न इधमत्थि (=उलटा पड़ेगा, अब नहीं है)

महाराज ! यह, इन स्वप्नों की उत्पत्ति है। यह जो, उनके प्रतिघात के लिए यज्ञ-कर्म है, सो वह (**विपरियासो वत्तति**) विपरीत पड़ेगा, उल्टा पड़ेगा। किस लिए? उन (स्वप्नों) का फल लोक में तब्दीली होने के समय, अकारण (बात) को कारण मानने के समय, कारण को अकारण (समझकर) छोड़ने के समय, अभूत (=असत्य) को सत्य मानने के समय, सत्य को असत्य (समझकर) छोड़ने के समय; अलज्जी (=बेशर्मों) के उन्नति पर होने के समय, तथा लज्जियों (=शरम वालों) की अवनति होने के समय ही होगा। **नयिध-मत्थि**, इस समय, मेरे वा तेरे समय में, इस पुरुष-युग में, यह फलीभूत न होंगे। इसलिए, इनके प्रतिघात (=रोकने) के लिए किया जाने वाला यज्ञ-कर्म उलटा होगा। उसकी आवश्यकता नहीं। इन (स्वप्नों) के फल स्वरूप, तुझे कोई खतरा वा डर नहीं।

इस प्रकार महापुरुष, राजा को आश्वासन दे, जन-समूह, को बंधन से मुक्त कर (अपने) फिर आकाश में ठहर, राजा को उपदेश दे, (उसे) पाँच शीलों में प्रतिष्ठित कर, 'महाराज! अब से ब्राह्मणों के साथ मिलकर पशु-घात (वाले) यज्ञ-कर्मों को न करें'—ऐसा धर्मोपदेश कर, आकाश मार्ग से ही अपने निवास स्थान को चले गये।

राजा भी उनके उपदेश के अनुकूल चल कर, दान आदि पुण्य-कर्म करके, (अपने) कर्मानुसार (परलोक) गया। शास्ता ने यह देशना ला, 'यज्ञ के कारण से तुझे खतरा नहीं, इस यज्ञ को हटा' कह, उस यज्ञ को हटवा, जन (-समूह) को जीवन दान दे, मेल मिला, जातक का सारांश निकाल दिया। उस समय के राजा (अब के) **आनन्द** थे। माणवक (अब के) **सारिपुत्र** थे लेकिन तपस्वी मैं ही था।

भगवान् के परिनिर्वाण प्राप्त होने पर, **सङ्गीति-कारकों** ने उसभा, रुक-खादि....ग्यारह शब्दों की अट्ठकथा (=टीका) कर, 'लापूनी' आदि पाँच पदों की 'गाथा' बना '**एकक निपात**' में संगृहीत की।

७८. इल्लीस जातक

"**उभो खञ्जा**.." यह (गाथा) बुद्ध ने जेतवन में विहार करते समय, (एक) **मच्छरिय कोसिय** श्रेष्ठी के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

राजगृह नगर के समीप **सक्खर** नामक (एक) निगम था; उसमें **मच्छरिय कोसिय** नाम का एक अस्सी करोड़ की सम्पत्ति वाला सेठ रहता था। वह दूसरों को तिनके की नोक पर तेल की बूंद तक नहीं देता (और) न अपने ही खाता था। सो उसका वह धन न तो उसके स्त्री-बच्चों के काम आता था, न श्रमण-ब्राह्मणों के। राक्षस अधिकृत पुष्करिणी की तरह व्यर्थ पड़ा था।

एक दिन प्रातःकाल ही बुद्ध ने महा करुणा समापत्ति से उठ, सकल **लोक-धातु** में, उस दिन, अवबोध प्राप्त कर सकने वाले बंधुओं को देखते हुए, पन्तालीस योजन की दूरी पर रहने वाले सेठ और उसकी भार्य्या के **स्रोतापत्ति फल** प्राप्त कर सकने की सम्भावना को देखा। उससे एक दिन पहले वह (श्रेष्ठी) राजा के उपस्थान के लिए राज-भवन को गया। राजा की सेवा में जा, वापिस लौटते हुए, भूख से पीड़ित एक नागरिक को, कलमास (कुलथी) भरे पूड़े खाते देखा और उनमें तृष्णा उत्पन्न कर घर जाकर सोचने लगा—"यदि मैं कहूँगा कि मैं पूड़े खाना चाहता हूँ, तो बहुत से (लोग) मेरे साथ खाने वाले हो जायेंगे। इस प्रकार मेरा बहुत सा चावल, घी, तथा गुड़ आदि खर्च हो जायगा। सो, मैं किसी को नहीं कहूँगा।"

वह तृष्णा को (मन ही मन) सहते हुए, रहने लगा, (जिससे) समय गुज़रने पर (वह) पाण्डु-वर्ण हो गया, गात धमनियों को लग गया। तब

तृष्णा को (अधिक) न सह सकने के कारण, वह घर में घुस कर, चारपाई पर मुँह लपेट कर पड़ रहा। इतना होने पर भी धन हानि होने के डर से उसने, किसी को कुछ न कहा।

उसकी भार्य्या ने उसके पास जा पीठ मलते हुए पूछा—"स्वामी! क्या रोग है?"

"मुझे, कोई रोग नहीं।"

"क्या राजा क्रुद्ध हो गया है?"

"राजा, मुझ से क्रुद्ध नहीं हुआ है।"

"तो क्या तेरे बेटी बेटा से अथवा नौकर चाकरों से कुछ अपराध हो गया है?"

"ऐसा भी (कुछ) नहीं।"

"किसी (चीज़) में, तेरी तृष्णा (=इच्छा) है?" ऐसा पूछने पर, धन हानि के भय से निशब्द हो, पड़ा रहा। तब उसे भार्य्या ने पूछा—"स्वामी! तेरी तृष्णा किस चीज़ में है।

उसने शब्दों को निगलते हुए की तरह कहा—"मेरी एक तृष्णा है"

"स्वामी क्या तृष्णा है?"

"पूड़े (पूए) खाने की इच्छा है।"

"तो कहते क्यों नहीं? क्या तुम दरिद्र हो? अब इतने पूड़े पका दूँगी कि सारे सक्खर निगम-वासियों के लिए पर्य्याप्त हों।"

"तुझे उनसे क्या? वह अपने कमा कर खायेंगे।"

"अच्छा तो उतने ही पकाऊँगी, जो एक गली के लोगों के लिए पर्य्याप्त हों।"

"जानता हूँ, कि तू बड़ी धनवान् है।"

"अच्छा, तो उतने ही पकाऊँगी, जो इस घरवाले सब के लिए पर्य्याप्त हों।"

"जानता हूँ, कि तू बड़ी उदार है!"

"अच्छा, तो उतने ही पकाऊँगी, जो तेरे स्त्री-बच्चों भर के लिए पर्य्याप्त हों।"

"तुझे, इन से क्या?"

"अच्छा, तो उतने ही बनाऊँगी, जो तेरे लिए और मेरे लिए पर्य्याप्त हों।"

"तू क्या करेगी ?"

"अच्छा, तो उतने ही बनाऊँगी, जो अकेले तेरे लिए पर्याप्त हों।"

"यहाँ पकाने से बहुत लोग आशा लगायेंगे। सो, तू और सब चावलों को छोड़ केवल कनियाँ (=टूटे चावल), चूल्हा, कड़ाही आदि और थोड़ा दूध, घी, मधु तथा गुड़ ले, सात-तल प्रासाद के ऊपर महातल्ले पर चढ़ कर पका। वहाँ मैं अकेला बैठ कर खाऊँगा।"

उसने 'अच्छा' कह, स्वीकार कर, जो लेना था, वह लिवा कर, प्रासाद के ऊपर चढ़, दासियों को हटा सेठ को बुलवाया। पहले (दरवाज़े) से लेकर सब दरवाज़ों को बन्द करते हुए सब द्वारों में ताले-कुण्डे लगा, सातवें तले पर चढ़, वहाँ भी वह दरवाज़ा बन्द करके बैठा। उसकी भार्य्या ने भी, चूल्हे में आग जला, उसपर कड़ाही रख, पूड़े पकाने शुरू किये।

बुद्ध ने प्रातःकाल ही **महामोग्गल्लान** स्थविर को आमन्त्रित किया—"**मोग्गल्लान**! राजगृह के समीप के **सक्खर** निगम का **मच्छरिय कोसिय** नामक यह सेठ 'कड़ाही के पूए खाऊँगा' (करके) औरों के देख लेने के भय से, सात तलों वाले प्रासाद के ऊपर पूए पकवाता है। तू वहाँ जाकर, उस सेठ का दमन कर, उसे निर्विषकर, पति-पत्नी दोनों जनों से पूए और दूध-घी-मधु-गुड़ आदि लिवा कर, अपने बल से, उन्हें **जेतवन** ले आ। आज मैं पाँच सौ भिक्षुओं सहित विहार में ही रहूँगा, और पूओं का ही भोजन करूँगा।"

स्थविर 'भन्ते! अच्छा' कह, शास्ता का कथन स्वीकार कर, उसी समय ऋद्धिबल से, उस निगम में पहुँच, उस प्रासाद के छज्जे पर, (अपने ठीक) से पहने, ठीक से ढके हुए आकाश में स्थिर होकर, मणि की मूर्ति की भाँति ठहरे।

स्थविर को देख, सेठ का हृदय काँपा। उसने 'मैं ऐसों के ही डर से, इस जगह आया, सो यह आकर खिड़की पर खड़ा हो गया है' (सोच) हाथ में लेने योग्य कुछ न ले सकने पर, आग में डाली निमक की डली की तरह, गुस्से से चिट चिट करते हुए कहा—"श्रमण; आकाश में खड़े रहने से तुझे क्या मिलेगा? आकाश में जहाँ पैरों का चिन्ह नहीं है, वहाँ पैरों को दिखाते हुए चङ्क्रमण करने से भी कुछ न मिलेगा।" स्थविर उसी जगह इधर-उधर चङ्क्रमण करने लगे।

तृष्णा को (अधिक) न सह सकने के कारण, वह घर में घुस कर, चारपाई पर मुँह लपेट कर पड़ रहा। इतना होने पर भी धन हानि होने के डर से उसने, किसी को कुछ न कहा।

उसकी भार्य्या ने उसके पास जा पीठ मलते हुए पूछा—"स्वामी! क्या रोग है?"

"मुझे, कोई रोग नहीं।"

"क्या राजा क्रुद्ध हो गया है?"

"राजा, मुझ से क्रुद्ध नहीं हुआ है।"

"तो क्या तेरे बेटी बेटा से अथवा नौकर चाकरों से कुछ अपराध हो गया है?"

"ऐसा भी (कुछ) नहीं।"

"किसी (चीज़) में, तेरी तृष्णा (=इच्छा) है?" ऐसा पूछने पर, धन हानि के भय से निशब्द हो, पड़ा रहा। तब उसे भार्य्या ने पूछा—"स्वामी! तेरी तृष्णा किस चीज़ में है।

उसने शब्दों को निगलते हुए की तरह कहा—"मेरी एक तृष्णा है"

"स्वामी क्या तृष्णा है?"

"पूड़े (पूए) खाने की इच्छा है।"

"तो कहते क्यों नहीं? क्या तुम दरिद्र हो? अब इतने पूड़े पका दूँगी कि सारे सक्खर निगम-वासियों के लिए पर्य्याप्त हों।"

"तुझे उनसे क्या? वह अपने कमा कर खायेंगे।"

"अच्छा तो उतने ही पकाऊँगी, जो एक गली के लोगों के लिए पर्य्याप्त हों।"

"जानता हूँ, कि तू बड़ी धनवान् है।"

"अच्छा, तो उतने ही पकाऊँगी, जो इस घरवाले सब के लिए पर्य्याप्त हों।"

"जानता हूँ, कि तू बड़ी उदार है!"

"अच्छा, तो उतने ही पकाऊँगी, जो तेरे स्त्री-बच्चों भर के लिए पर्य्याप्त हों।"

"तुझे, इन से क्या?"

"अच्छा, तो उतने ही बनाऊँगी, जो तेरे लिए और मेरे लिए पर्य्याप्त हों।"

"तू क्या करेगी ?"

"अच्छा, तो उतने ही बनाऊँगी, जो अकेले तेरे लिए पर्याप्त हों।"

"यहाँ पकाने से बहुत लोग आशा लगायेंगे। सो, तू और सब चावलों को छोड़ केवल कनियाँ (=टूटे चावल), चूल्हा, कड़ाही आदि और थोड़ा दूध, घी, मधु तथा गुड़ ले, सात-तल प्रासाद के ऊपर महातल्ले पर चढ़ कर पका। वहाँ मैं अकेला बैठ कर खाऊँगा।"

उसने 'अच्छा' कह, स्वीकार कर, जो लेना था, वह लिवा कर, प्रासाद के ऊपर चढ़, दासियों को हटा सेठ को बुलवाया। पहले (दरवाज़े) से लेकर सब दरवाज़ों को बन्द करते हुए सब द्वारों में ताले-कुण्डे लगा, सातवें तले पर चढ़, वहाँ भी वह दरवाज़ा बन्द करके बैठा। उसकी भार्य्या ने भी, चूल्हे में आग जला, उसपर कड़ाही रख, पूड़े पकाने शुरू किये।

बुद्ध ने प्रातःकाल ही **महामोग्गल्लान** स्थविर को आमन्त्रित किया—"**मोग्गल्लान** ! राजगृह के समीप के **सक्खर** निगम का **मच्छरिय कोसिय** नामक यह सेठ 'कड़ाही के पूए खाऊँगा' (करके) औरों के देख लेने के भय से, सात तलों वाले प्रासाद के ऊपर पूए पकवाता है। तू वहाँ जाकर, उस सेठ का दमन कर, उसे निर्विषकर, पति-पत्नी दोनों जनों से पूए और दूध-घी-मधु-गुड़ आदि लिवा कर, अपने बल से, उन्हें **जेतवन** ले आ। आज मैं पाँच सौ भिक्षुओं सहित विहार में ही रहूँगा, और पूओं का ही भोजन करूँगा।"

स्थविर 'भन्ते ! अच्छा' कह, शास्ता का कथन स्वीकार कर, उसी समय ऋद्धिबल से, उस निगम में पहुँच, उस प्रासाद के छज्जे पर, (अपने ठीक) से पहने, ठीक से ढके हुए आकाश में स्थिर होकर, मणि की मूर्ति की भाँति ठहरे।

स्थविर को देख, सेठ का हृदय काँपा। उसने 'मैं ऐसों के ही डर से, इस जगह आया, सो यह आकर खिड़की पर खड़ा हो गया है' (सोच) हाथ में लेने योग्य कुछ न ले सकने पर, आग में डाली निमक की डली की तरह, गुस्से से चिट चिट करते हुए कहा—"श्रमण; आकाश में खड़े रहने से तुझे क्या मिलेगा ? आकाश में जहाँ पैरों का चिन्ह नहीं है, वहाँ पैरों को दिखाते हुए चङ्क्रमण करने से भी कुछ न मिलेगा।" स्थविर उसी जगह इधर-उधर चङ्क्रमण करने लगे।

सेठ ने कहा—"चङ्क्रमण करने पर तो क्या मिलेगा ? आकाश में पालथी मार कर बैठने पर भी न मिलेगा।" स्थविर पालथी मारकर बैठ गये।

तब उसने (कहा)—"बैठने पर तो क्या मिलेगा ? आकर देहली पर खड़े होने से भी न मिलेगा।" स्थविर (आकर) देहली पर खड़े हो गये।

तब उसने (कहा)—"खड़े होने से तो क्या मिलेगा। धुआं निकालने से भी न मिलेगा।"

स्थविर ने धुआँ निकाला। सारा प्रासाद एक-धूम्र हो गया। सेठ की आँख में जैसे सूइयाँ चुभने लगी, लेकिन घर के जलने के डर से उसने 'जलने पर भी न मिलेगा' न कह, सोचा—'यह श्रमण, अच्छा पीछे पड़ा है, बिना लिए नहीं जायेगा। सो, इसे एक पूआ दिलवाऊँ।" (यह सोच) उसने भार्य्या को कहा—"भद्रे ! एक छोटा सा पूआ पका, श्रमण को दे, इसे बिदा कर।"

उसने कड़ाही में ज़रा सी पिट्ठी डाली। उसका एक बड़ा सारा, फूला हुआ पूआ बन कर, सारी कड़ाही में फैल गया। सेठ ने उसे देख, 'तू ने बहुत पिट्ठी ले ली होगी' (कह) अपने ही कड़छी के कोने पर ज़रा सी पिट्ठी लेकर, डाली। (यह) पूआ पहले पूए से भी बड़ा हो गया। इस प्रकार जैसे जैसे वह पकाता, वैसे वैसे वह पहले से भी बड़ा हो जाता।

उसने दुःखी होकर कहा—"भद्रे ! दे इसे एक पूआ ।" उसके टोकरी से एक पूआ निकालने के समय, सारे पूए एक साथ लग गये। उसने सेठ को कहा—"स्वामी ! सब पूए एक साथ जुड़ गये। उन्हें पृथक् नहीं कर सक रही हूँ।" "मैं करूँगा" (करके) वह भी न कर सका; दोनों जने, दोनों सिरे पकड़ कर खैंचने पर भी पृथक् न कर सके। इस प्रकार व्यायाम करते हुए उसके शरीर से पसीना बहने लगा, और उसकी प्यास (=तृष्णा) बुझ गई।

तब उसने भार्य्या को कहा—"भद्रे ! मुझे पूए नहीं चाहिए। उन्हें, टोकरी सहित, इस भिक्षु को दे दो।" वह टोकरी लेकर स्थविर के पास गई। स्थविर ने दोनों को धर्मोपदेश किया; त्रिरत्न के गुण कहे। दिये हुए का, यज्ञ का, दान आदि का फल आकाश में (प्रकाशित) चन्द्रमा की भाँति दिखाया। उसे सुन प्रसन्न-चित्त सेठ ने कहा—"भन्ते ! आकर, इस पलंग पर बैठ कर, पूए खायें।"

स्थविर ने कहा—"सेठ जी ! 'पूए खायेंगे' (करके) पाँच सौ भिक्षुओं

सहित सम्यक् सम्बुद्ध बिहार में बैठे हैं। यदि तेरी इच्छा हो तो अपनी भार्य्या सहित पूए और दूध आदि को लिवा चल। हम बुद्ध के पास जायेंगे।"

"भन्ते! इस समय शास्ता कहाँ हैं?"

"सेठ! यहाँ से पन्तालीस योजन की दूरी पर, जेतवन विहार में।"

"भन्ते! बिना, (भोजन के) समय[1] का उल्लंघन किये, हम इतनी दूर कैसे जायेंगे?"

"सेठ! तुम्हारी इच्छा रहने पर, मैं अपने ऋद्धि-बल से ले जाऊँगा। तुम्हारे प्रासाद (=महल) की सीढ़ी का आरम्भ तो (उसके) अपने स्थान पर ही होगा, (लेकिन) अन्त जेतवन द्वार के कोठे पर जा कर होगा। ऊपर के महल से, नीचे के महल पर उतरने भर की देरी में जेतवन ले जाऊँगा।"

उन्होंने 'भन्ते! अच्छा' कह, स्वीकार किया। स्थविर ने अधिष्ठान (=दृढ निश्चय) किया—?"सीढ़ी का ऊपर का सिरा, वैसे ही होकर, नीचे का सिरा, जेतवन द्वार के कोठे में जा लगे।" वैसे ही हो गया।

इस प्रकार स्थविर ने सेठ और उसकी भार्य्या को प्रासाद के ऊपर से नीचे उतरने के समय से भी कम समय में **जेतवन** पहुँचा दिया। उन दोनों ने बुद्ध के पास जा, (भोजन का) समय निवेदन किया। भिक्षु-संघसहित बुद्ध, दान-शाला में प्रविष्ट हो, बिछे श्रेष्ठ बुद्धासन पर बैठे। सेठ ने बुद्ध प्रमुख भिक्षुसंघ को दक्षिणा का जल दिया। भार्य्या ने तथागत के पात्र में पूए रक्खे। बुद्ध ने उतने ही लिये, जितने (अपने लिए) काफी हों। पाँच सौ भिक्षुओं ने भी वैसे ही लिए। सेठ दूध, घृत, मधु तथा शक्कर देता गया।

पाँच सौ भिक्षुओं सहित बुद्ध ने भोजन समाप्त किया। सेठ ने भी भार्य्या सहित, आवश्यकता-भर खाये; लेकिन पूए खतम होते न दिखाई देते थे। सारे बिहार के भिक्षुओं तथा भिखमंगों आदि को देने पर भी खतम होते न दिखाई देते थे। (उन्होंने) भगवान् से कहा—"भन्ते! पूए खतम नहीं

[1] बौद्ध भिक्षुओं के लिये मध्यान्हान्तर भोजन करना निषिद्ध है।

होते !" "तो, उन्हें जेतवन द्वार के कोठे में फेंक दो।" सो, उहोंने द्वार-कोठे के समीप एक गढ़े में डाल दिये। आज भी वह स्थान कपल्लपूव-**पब्भार** ही कहलाता है। भार्य्या सहित महासेट्ठि, भगवान् के पास जा, एक ओर खड़ा हुआ। भगवान् ने (दान) अनुमोदन[1] किया। अनुमोदन की समाप्ति पर, दोनों जने श्रोतापत्ति फल में प्रतिष्ठित हो, बुद्ध को प्रणाम कर, द्वार कोट्ठे से सीढ़ी पर चढ़कर, अपने प्रासाद में जा पहुँचे (=प्रतिष्ठित हुए)।

उस समय से वह अस्सी करोड़ धन, बुद्धशासन के ही लिए खर्च करने लगा। एक दिन, सम्यक् सम्बुद्ध **श्रावस्ती** में भिक्षा माँग, **जेतवन** आ, भिक्षुओं को सुगतोपदेश दे, **गन्धकुटी** में प्रवेश कर, ध्यानावस्थित रह, शाम को धर्म-सभा में आये। उस समय धर्म-सभा में इकट्ठे बैठे हुए भिक्षु (**मोग्गल्लान**) स्थविर की प्रशंसा कर रहे थे—"आवुसो! **महामोग्गल्लान** स्थविर का प्रताप देखो। वह, मच्छरिय (=कंजूस) सेठ को ज़रा सी देर में दमन कर निर्विषकर, पूए लिवा कर, **जेतवन** ले आया, और बुद्ध के सम्मुख (उपस्थित) कर, **श्रोतापत्ति** फल में प्रतिष्ठित कर दिया। अहो! स्थविर महा प्रतापवान् हैं।" बुद्ध ने आकर पूछा—"भिक्षुओ! इस समय बैठे क्या बात-चीत कर रहे हो?" "यह (बातचीत)" कहने पर, बुद्ध ने, 'भिक्षुओ! जिस भिक्षु को किसी कुल का दमन करना हो, वह बिना कुल को पीड़ा दिये, बिना तंग किये, जैसे भ्रमर फूल से रेणु ग्रहण करता है उसी तरह (कुल के) पास जा, बुद्ध-गुणों का परिचय दे' कह स्थविर की प्रशंसा करते हुए, (यह गाथा कही)—

यथापि भमरो पुप्फं वण्णगन्धं अहेठयं,
पलेति रसमादाय एवं गामे मुनी चरे।[2]

[जिस प्रकार फूल के वर्ण या गन्ध को बिना हानि पहुँचाये भ्रमर रस को लेकर चल देता है, उसी प्रकार मुनि गाँव में विचरण करे।]

[1] भोजनान्तर गृहस्थों को दिया जाने वाला उपदेश।
[2] धम्मपद (पुप्फ वग्ग)।

इस धर्मपद में आई हुई गाथा को कह, स्थविर की और भी प्रशंसा करने के लिए "भिक्षुओ! न केवल अभी मोग्गल्लान ने मच्छरिय सेठ का दमन किया, पहले भी उसका दमन कर, उसे कर्म-फल सम्बन्ध का ज्ञान (=परिचय) कराया है" कह, पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में बाराणसी में (राजा) ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय, बाराणसी में इल्लीस नाम का एक सेठ था। उसके पास अस्सी करोड़ धन था; (लेकिन) वह पुरुष के दुर्गुणों से युक्त लँगड़ा, लूला तथा बेंहगा; अश्रद्धा वान्, अप्रसन्न-चित्त तथा कंजूस; न किसी को देता, न अपने खाता था। उस का घर ऐसा ही था, जैसे राक्षस-गृहीत पुष्करिणी! हाँ, उसके माता-पिता सात पीढ़ी तक, दान-शील (=दाता) तथा दान-पति रहे थे। उसने कुल-मर्यादा का नाश कर, दान-शाला को जला, याचकों को पीट कर (बाहर) निकाल, केवल धन ही संग्रह किया।

एक दिन, राजा की सेवा में जाकर, अपने घर लौटते समय उसने रास्ते में एक थके हुए नागरिक को एक शराब की सुराही ले, पीढ़े पर बैठ, उस खट्टी शराब से कसोरे भर सड़ी हुई मछली खा खा कर, पीते देखा। यह देख, उसके मन में शराब (=सुरा) पीने की इच्छा हुई, और वह सोचने लगा—"यदि, मैं सुरा पीऊँगा, तो मेरे पीने पर (और) बहुत (लोग) पीने की इच्छा करेंगे। इस प्रकार मेरा धन खर्च होगा।" तृष्णा को मन में रखकर घूमने से, कुछ समय बीतने पर, (उसे) न सह सकने के कारण, उसका शरीर धुनी हुई रूई की तरह सफ़ेद हो गया, और उसका गात धमनी को जा लगा।

सो, एक दिन, वह घर में घुस कर, चारपाई पर सिमट कर पड़ रहा?

उसकी भार्य्या ने आकर पीठ मलते हुए पूछा—"स्वामी! क्या रोग (=कष्ट) है?" (इसके आगे) सब उक्त प्रकार से जानना चाहिए।

'अच्छा! तो उतनी शराब बनाऊँगी, जितनी तेरे अकेले के लिए काफी हो' कहने पर, 'घर में शराब बनवाने पर, बहुत लोग आशा लगायेंगे; दूकान से मँगवा कर भी यहाँ बैठ कर नहीं पी सकता' (सोच), उसने, केवल एक

मासक[1] दे, दूकान से शराब की सुराही मँगवाई; फिर नौकर से उठवा, नगर से निकल नदी के किनारे गया और महामार्ग के पास एक गुल्म (=घनी जगह) में घुस, सुराही को रखवाया, फिर 'तू जा' कह कर, नौकर को दूर बिठा, कसोरे भर भर कर, शराब पीनी शुरू की।

दानादि करने के कारण, इसका पिता देव-लोक में शक्र (=इन्द्र) होकर उत्पन्न हुआ था। उसने उस समय ध्यान लगा कर देखा, कि मेरा (चलाया हुआ) दान अभी भी दिया जा रहा है वा नहीं? उसका चालू न रहना, पुत्र का कुल-मर्यादा को नष्ट कर, दान-शाला को जला देना, याचकों को पीट कर निकाल देना तथा कंजूस बन, 'औरों को देनी पड़ जायगी' के भय से घने स्थान में घुस, अकेले बैठ कर शराब पीना, जान उसने सोचा— मैं जाकर, उसे क्षुब्ध कर, (उसका) दमन कर, (उसे) कर्म-फल-सम्बन्ध का ज्ञान करा, (उसके हाथ से) दान दिलवा, (उसे) देव-लोक में उत्पन्न होने योग्य बनाऊँ। यह सोच, वह, (मनुष्यों की) आबादी में उतर, ठीक इल्लीस सेट्ठी जैसा, लंगड़ा-लूला-बेहंगा रूप बना राजगृह नगर में प्रविष्ट हो, राजा के निवासस्थान पर खड़ा हो, अपने आने की सूचना भिजवा, 'प्रवेश करो' कहने पर भीतर गया और राजा को प्रणाम कर, (एक ओर) खड़ा हुआ।

राजा ने पूछा—"सेठ जी! कहो अ-समय पर कैसे आये?"

"देव! मेरे घर में अस्सी करोड़ धन है, (मैं चाहता हूँ) कि आप उसे मँगवा कर, अपने खज़ाने भर लें।"

"रहने दो सेठ जी हमारे घर में तुम्हारे धन से कहीं अधिक धन है।"

"देव! यदि आप को आवश्यकता नहीं है, तो मैं उसे लेकर यथेच्छ दान देता हूँ?"

"सेठ जी दें।"

"देव! अच्छा" कह राजा को प्रणाम कर, निकल आया और इल्लीस सेट्ठी के घर गया। सब नौकर-चाकर घेर कर खड़े हो गये। कोई एक भी यह न जान सका कि यह इल्लीस नहीं है। उसने घर में प्रवेश कर, देहली के

[1] कार्षापण का बीसवाँ हिस्सा।

भीतर खड़े हो, द्वार-पाल को बुलवा आज्ञा दी—"यदि कोई ठीक मेरे जैसी शकल वाला आकर, 'यह मेरा घर है' करके प्रवेश करना चाहे, तो उसकी पीठ पर प्रहार दे, उसे निकाल देना।" यह कह, प्रासाद के ऊपर चढ़, अत्यन्त मूल्यवान् आसन पर बैठ, श्रेष्ठि भार्य्या को बुलवा, मुस्करा कर, कहा—"भद्रे ! दान दें।" यह सुन सेठानी, लड़के-लड़कियाँ तथा नौकर चाकर कहने लगे। "इतने समय तक कभी दान देने का विचार तक नहीं आया। आज शराब पीने के कारण मृदु-चित्त हो, दान देने की इच्छा उत्पन्न हो गई होगी।"

सो, सेठानी ने कहा—"स्वामी ! यथारुचि दें।" "तो मुनादी करने वाले को बुलवा कर, सारे नगर में मुनादी करवा दो कि जिस को चाँदी, सोना, मणि-मोती की आवश्यकता हो, वह इल्लीस सेठ के घर जावे।" उसने वैसा करवा दिया। लोग झोली, थैली लेकर द्वार पर आ इकट्ठे हुए। शक्र ने सात रत्नों से भरे हुए कमरों को खोल कर कहा—"यह सब तुम्हें देता हूँ। जितनी जितनी ज़रूरत हो, ले जाओ।" लोग धन को निकाल, महातल पर ढेर लगा, लाये हुए बरतनों को भर भर कर ले जाने लगे।

एक जनपदवासी, इल्लीस सेठ के बैल, इल्लीस सेठ के ही रथ में जोतकर, उसे सात रत्नों से भर, नगर से निकल, महा-मार्ग पर जाता हुआ, उस घने स्थान से कुछ ही दूर पर रथ को हाँकते हुआ सेट्ठी की प्रशंसा करता जाता था—"स्वामी ! इल्लीस सेठ ! तेरी सौ वर्ष की आयु हो। तेरे कारण, अब मैं जन्म भर, बिना काम किये भी जी सकता हूँ। तेरा ही रथ, तेरे ही बैल, तेरे ही घर के सात (प्रकार के) रत्न। न मा ने दिये न बाप ने दिये, स्वामी; तेरे ही कारण मिले।" इल्लीस ने वह शब्द सुन, भयभीत हो सोचा—"यह मेरा नाम लेकर, यह यह कहता है, क्या राजा ने मेरा धन लोगों में बाँट दिया है ?" (यह सोच) घने-स्थान से निकल, बैलों तथा रथ को पहचान, "अरे ! चेटक ! यह मेरे ही बैल और मेरा ही रथ" कह, जा कर बैलों की नकेल पकड़ ली। गृहपति रथ से उतर, 'अरे ! दुष्ट चेटक ! इल्लीस महासेठ सारे नगर को दान देता है, तू क्या लगता (=होता) है' ? कह, झटक कर, बिजली गिराते हुए की तरह, कंधे पर प्रहार दे, रथ लेकर चल दिया।

उसने काँपते हुए उठ कर, धूलि (=रेत) को झाड़, तेज़ी से जाकर,

(फिर) रथ को पकड़ा। गृहपति (रथ से) उतर, बालों से पकड़, झुका, बाँस की चपटी की मार से मार, गले से पकड़, जिधर से आया था, उधर मुँह कर धक्का दे, (अपने) चल दिया।

इतने में उसका शराब का नशा उतर गया।

उसने काँपते काँपते जल्दी से घर जा, धन लेकर जाते हुए मनुष्यों को देख, 'भो! यह क्या? राजा मेरा धन लुटवा रहा है?' कह, जिस किसी को पकड़ना शुरू किया। जिस किसी को पकड़ता, वही उसे पीट कर, पैरों में गिरा देता। वेदना से पीड़ित हो, उसने घर में घुसना चाहा। द्वारपालों ने—'अरे! दुष्ट गृहपति! कहाँ घुसता है?' (कह) बाँस की चपटियों से पीट, गर्दन से पकड़ निकाल दिया।

'अब राजा को छोड़ कर, और मुझे, किसी की शरण नहीं' सोच, उसने राजा के पास जा कर पूछा—"देव! आप मेरा घर लुटवा रहे हैं?"

"सेठ जी! मैं नहीं लुटवा रहा हूँ। क्या तुमने ही अभी आकर नहीं कहा था कि यदि आप नहीं लेते तो मैं अपने धन को दान दूँगा, और नगर में मुनादी करा कर दान दिया?"

"देव! मैं आपके पास नहीं आया। क्या आप मेरे कंजूस होने की बात नहीं जानते? मैं किसी को तिनके के कोने से (एक) तेल की बूँद तक नहीं देता। देव! जो यह दान दे रहा है, उसे बुला कर परीक्षा करें।"

राजा ने शक्र को बुलवा भेजा। न तो राजा को ही, न मन्त्रियों को ही, दोनों जनों में कुछ भेद दिखाई दिया। मच्छरिय सेठ ने पूछा—"देव! यह सेठ है, कि मैं सेठ हूँ?"

"हम नहीं पहचानते, तुझे, कोई पहचानने वाला है?"

"देव! मेरी भार्य्या।"

भार्य्या को बुलाकर पूछा गया कि तेरा स्वामी कौन है?

वह 'यह' कह कर, शक्र के ही पास जा खड़ी हुई। लड़के लड़कियों नौकर-चाकरों को बुला कर पूछा गया। सब शक्र के ही पास जाकर खड़े हुए।

तब सेठ ने सोचा—"मेरे सिर में बालों से छिपी एक फुंसी है, उसे केवल नाई ही जानता है, सो उसे बुलवाऊँ।" (यह सोच) उसने कहा—"देव!

मुझे नाई पहचानता है, उसे बुलवावें।" उस समय बोधिसत्त्व (ही) उसके नाई (होकर उत्पन्न हुए) थे। राजा ने उसे बुलवा कर पूछा—"इल्लीस सेठ को पहचानते हो?"

"देव! सिर को देख कर पहचान सकूँगा।"

"अच्छा! तो दोनों के सिर को देख।" शक्र ने उसी क्षण सिर में फुंसी पैदा कर ली। बोधिसत्त्व ने दोनों के सिर में फुंसी देख, "महाराज! दोनों के सिर में फुंसी है। इस लिए मैं इन दोनों में से किसी को नहीं कह सकता कि यह इल्लीस है" कह, यह गाथा कही—

उभो खञ्जा उभो कुणी उभो विसमचक्खुला,

उभिन्नं पिलका जाता, नाहं पस्सामि इल्लिसं॥

[दोनों लंगड़े (हैं), दोनों लूले (हैं), दोनों बैहंगे (हैं), और दोनों के (सिर में) फुँसियाँ हैं। मैं इल्लीस को नहीं पहचानता (=देखता)।]

उभो, दोनों जने। **खञ्जा**, लंगड़े (=कुण्ठकपाद), **कुणी**, लूले (=कुण्ठहत्था) **विसम चक्खुला**, जिनकी आँख की पुतलियाँ विषम हैं। **पिलका**, दोनों के सिर में एक ही जगह, एक ही जैसी फुन्सियाँ हो गईं। **नाहं पस्सामि**, मैं इनमें यह इल्लीस है (करके) नहीं पहचानता, अर्थात् एक को भी 'इल्लीस' नहीं मानता।

बोधिसत्त्व की बात सुन, सेठ काँपने लगा, और धन-शोक के करण, अपने को न सँभाल सकने से वहीं गिर पड़ा। उस समय शक्र, "महाराज! मैं इल्लीस नहीं हूँ, मैं शक्र हूँ" कह, शक्र-लीला से आकाश में जा खड़ा हुआ। इल्लीस का मुँह पोंछ कर, उस पर पानी छिड़का गया। वह उठकर, देवेन्द्र शक्र को प्रणाम कर, खड़ा हुआ। तब शक्र ने कहा—"इल्लीस! यह धन मेरा है, न कि तेरा। मैं तेरा पिता हूँ, तू मेरा पुत्र। मैं ने दानादि पुण्य कर्म करके शक्र की पदवी प्राप्त की, लेकिन तूने मेरे वंश (की मर्य्यादा) को तोड़, अदान-शीली हो, कंजूस बन, दानशाला को जला, याचकों को निकाल, (खाली) धन संग्रह किया। उसे, न तू आप खाता है, न दूसरे। वह ऐसे पड़ा है, जैसे राक्षस के अधिकार में हो। यदि, जैसे पहले थी, वैसे ही मेरी दानशाला

बनवा कर दान देगा, तो तेरा कुशल है, यदि नहीं देगा, तो तेरे सब धन को अन्तर्ध्यान कर, इस इन्द्र-वज्र से तेरा सिर फोड़, तेरी जान निकाल दूँगा ?"

इल्लीस सेठ ने मरने के भय से संत्रसित हो, प्रतिज्ञा की कि अब से दान दूँगा। शक्र उसकी प्रतिज्ञा ग्रहण कर, आकाश में बैठे ही बैठे धर्मोपदेश दे, उसे (पञ्च) शीलों में प्रतिष्ठित कर, अपने स्थान को चला गया। इल्लीस भी दान आदि पुण्य-कर्म कर स्वर्ग-गामी हुआ।

बुद्ध ने 'भिक्षुओ ! न केवल अभी मोग्गल्लान ने मच्छरिय सेठ का दमन किया है, पहले भी इसने इसे दमन किया है' कह, इस धर्मदेशना को ला, मेल मिला, जातक का सारांश निकाल दिया।

उस समय इल्लीस, मच्छरिय सेठ हुआ। देवेन्द्र शक्र, मोग्गल्लान। राजा, आनन्द। लेकिन नाई मैं ही था।

७९. खरस्सर जातक

"**यतो विलुत्ता च हता च गावो..**" यह (गाथा) बुद्ध ने जेतवन में विहरते समय एक अमात्य के सम्बन्ध में कही।

क. वर्तमान कथा

कोशल-नरेश के एक अमात्य ने राजा को प्रसन्न कर प्रत्यन्त-ग्रामों की **राज-बलि**[1] ले, चोरों के साथ मिलकर 'मैं मनुष्यों को ले कर जंगल में चला जाऊँगा, तुम गाँव को लूट कर, आधी (लूट) मुझे देना' (कह), मनुष्यों को इकट्ठा किया। फिर जंगल ले जा, चोरों के आ, गौवों को मार,

[1] राजा को प्राप्य राज-कर।

मांस खा, गाँव लूट कर चले जाने पर, शाम को मनुष्यों को साथ लिये हुए आया। उसके कुछ ही देर बाद, उसका यह भेद खुल गया। मनुष्यों ने राजा से कहा। राजा ने उसे बुलवा अपराध का निश्चय कर, उसका अच्छी प्रकार निग्रह कर, (उसकी जगह) एक दूसरे ग्राम-भोजक (=मुखिया) को भेज, (अपने) **जेतवन** जाकर, भगवान् को वह समाचार कहा। भगवान् ने 'महाराज! न केवल अभी यह ऐसा करने वाला है, पहले भी यह ऐसा ही करने वाला रहा है' कह, उसके याचना करने पर पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में **बाराणसी** में (राजा) **ब्रह्मदत्त** के राज्य करते समय, राजा ने एक अमात्य को एक प्रत्यन्त गाँव दिया।.....सब उक्त प्रकार से। उस समय बोधिसत्व, वाणिज्य के लिए घूमते हुए, उस गाँव में ठहरे हुए थे। उन्होंने, शाम के समय, बहुत से लोगों के साथ भेरी बजते बजते, ग्राम-भोजक को आते देख 'यह दुष्ट **ग्राम-भोजक** चोरों के साथ मिल, गाँव लुटवा कर, चोरों के भाग कर जंगल में घुस जाने पर, अब शान्त-स्वभाव की तरह, भेरी के बाजे के साथ आ रहा है' सोच यह गाथा कही—

यतो विलुत्ता च हता च गावो
दड्ढानि गेहानि जनो च नीतो,
अथागमा पुत्तहताय पुत्तो
खरस्सरं डेण्डिमं वादयन्तो ॥

[जब (चोर) गौवों को लूट तथा गौवों को मार कर, घरों को जलाकर, (और) आदमियों को बाँध कर ले गये, उस समय यह मृतपुत्र का पूत, इस कर्ण कठोर ढोल को बजवाते आया है।]

यतो=जब। **विलुत्ता च हता च**, लूट कर ले गये तथा मांस खाने के लिए मार डालीं। **गावो**=गौवें। **दड्ढानि**, आग लगाकर जला दिये। **जनो च नीतो**, कसकर, बाँध कर ले गये। **पुत्तहताय पुत्तो**, अपुत्ती (=मृतपुत्र का पुत्र) अर्थात निर्लज्ज। जिसको लज्जा-भय नहीं, उसकी माता नहीं, सो वह उस

(पुत्र) के जीवित रहते भी, अपुत्ती (=मृत-पुत्र) ही समझी जाती है। **खरस्सरं,** कठोर शब्द। **देण्डिमं,** ढोल (=पटह भेरि)।

इस प्रकार बोधिसत्व ने इस गाथा से, उसका परिहास किया। शीघ्र ही, उसका भेद खुल गया। राजा ने उसके अपराध के अनुसार उसे दण्ड दिया।

शास्ता ने, 'महाराज! न केवल अभी यह ऐसा करने वाला है, पहले भी यह ऐसा ही करने वाला रहा है' (कह), यह धर्म देशना ला मेल मिला, जातक का सारांश निकाल दिया।

उस समय का अमात्य ही, अब का अमात्य है। गाथा से उदाहरण देने वाला पण्डित मनुष्य, तो मैं ही था।

८०. भीमसेन जातक

"यं ते पविकत्थितं पुरे" यह (गाथा) शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय, एक आत्म-प्रशंसक भिक्षु के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

एक भिक्षु, 'आवुसो! हमारी जाति सदृश जाति, हमारे गोत्र सदृश गोत्र, (कोई) नहीं। हम ऐसे..महाक्षत्रिय कुल में पैदा हुए। गोत्र की या कुल-प्रदेश की दृष्टि से, हमारे सदृश कोई नहीं। हमारे यहाँ सोने चाँदी का कोई हिसाब (=अन्त) नहीं। हमारे नौकर-चाकर (तक) शाली-मांसोदन खाते हैं, **काशी** का (बना) वस्त्र पहनते हैं; (और) **काशी** के चन्दन से विलेपन करते हैं। इस समय प्रव्रजित हो जाने से हम इस प्रकार के रूखे सूखे भोजन खाते हैं; रूखे सूखे चीवर पहनते हैं' कह वृद्ध-मध्यम-

तरुण (=नवीन) भिक्षुओं के बीच, अपनी बड़ाई करते, जाति आदि का अभिमान दिखाते, (औरों को) ठगते हुए घूमता था।

एक भिक्षु ने उसके कुल-प्रदेश की परीक्षा कर, उसके गप मारने की बात भिक्षुओं से कही। धर्म सभा में इकट्ठे हुए भिक्षु, उसकी निन्दा करने लगे—"आयुष्मानो! अमुक भिक्षु, इस प्रकार के कल्याणकारी शासन में प्रव्रजित होकर भी, गप्प मारता, आत्म-प्रशंसा करता, (और) ठगता फिरता है।"

बुद्ध ने आकर पूछा—"भिक्षुओ! इस समय बैठे क्या बातचीत कर रहे हो?" "यह! बातचीत" कहने पर, "भिक्षुओ! न केवल अभी वह भिक्षु, (इस प्रकार) गप्प मारता, आत्म-प्रशंसा करता, ठगता फिरता है, पहले भी वह (इसी प्रकार) गप मारता, आत्म-प्रशंसा करता, ठगता फिरता रहा है" कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में **बाराणसी** में (राजा) **ब्रह्मदत्त** के राज्य करते समय, बोधिसत्त्व एक निगम ग्राम में, (एक) प्रसिद्ध ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हो, आयु होने पर, **तक्षशिला** में जा, लोक प्रसिद्ध आचार्य के पास तीनों वेद तथा अठारह विद्यायें सीख, सब शास्त्रों (=शिल्पों) में सम्पूर्णता प्राप्त कर, **चुल्लधनुग्गह** पण्डित नाम से (प्रसिद्ध) हुआ। **तक्षशिला** से निकल, वह सब (दूसरे) समयों (=आगम, शास्त्र) तथा शिल्पों की परीक्षा करता हुआ **महिंसक राष्ट्र**[1] (=देश) को गया। इस जन्म में बोधिसत्त्व थोड़े छोटे (=ह्रस्व) क़द के, तथा झुके हुए थे। उन्होंने सोचा—"यदि मैं किसी राजा के पास जाऊँगा, तो वह कहेगा 'तू ऐसे छोटे क़द वाला हमारा क्या (काम) कर सकेगा?' इसलिए मैं किसी डील-डौल वाले सुन्दर मनुष्य को आगे करके, (अपने) उसकी ओट में होकर जीविका कमाऊँ।"

सो, उसने, वैसे आदमी की खोज करते हुए, **भीमसेन** नामक एक जुलाहे के कपड़ा बुनने के स्थान पर जा उसके साथ कुशल-क्षेम की बातचीत कर

[1] नर्मदा के दक्षिण तट पर, इन्दौर से क़रीब चालीस मील महिष्मती।

पूछा—"सौम्य ! तेरा क्या नाम है ?"

"मेरा नाम **भीमसेन** है।"

"तू इस प्रकार के सौन्दर्य से युक्त हो, यह तुच्छ काम करता है ?"

"जीविका (का और उपाय) न होने से।"

उसने "सौम्य ! इस काम को मत कर। मेरे समान धनुषधारी, सारे जम्बूद्वीप में नहीं है, (लेकिन) यदि मैं किसी राजा के पास जाऊँ, तो शायद वह क्रोधित हो जाये कि यह इतने छोटे क़द वाला हमारा क्या (काम) कर सकेगा। तू राजा के पास जाकर कह कि मैं धनुषधारी हूँ। राजा, तुझे खर्चा दे, तेरी बँधी-वृत्ति लगा देगा। जो जो वह तुझे करने को कहेगा मैं उसे करता हुआ, तेरी ओट में रहूँगा। इस प्रकार (हम) दोनों जने सुखी रहेंगे' (कह) पूछा—"मानता है मेरी बात ?" जुलाहे ने 'अच्छा' कह स्वीकार किया।

उसने उसे **बाराणसी** ले जा, अपने आप चुल्ल-धनु-उपस्थायक (= सेवक) बन, उसे आगे कर, राज-द्वार पर जा, राजा को कहलवाया। "आजाये" कहने पर, दोनों जने जा, राजा को प्रणाम कर, खड़े हुए। "किस लिए आये ?" पूछने पर, भीमसेन बोला—"मैं धनुष-धारी हूँ। सारे **जम्बूद्वीप** में, मेरे सदृश धनुष-धारी नहीं।"

"क्या मिलने पर हमारी सेवा में रहोगे ?"

"देव ! अर्ध-मास में हज़ार (मुद्रा) मिलने पर रह सकेंगे।"

"यह पुरुष, तेरा कौन होता है ?"

"देव ! चुल्ल उपट्ठाक (=छोटा सेवक)।"

"अच्छा ! तो सेवा में रहो।"

उस समय से भीमसेन, राजा की सेवा में रहने लगा; जो जो काम पड़ता, उसे बोधिसत्त्व ही करता।

उस समय **काशी** राष्ट्र के एक जंगल में बहुत से मनुष्यों के आने जाने का मार्ग (एक) व्याघ्र ने छुड़ा दिया था। वह मनुष्यों को पकड़ पकड़ कर खा जाता था। (लोगों ने) वह समाचार राजा को कहा। राजा ने भीमसेन को बुलाकर पूछा—"तात ! उस व्याघ्र को पकड़ सकेगा ?"

"देव ! तो मेरा नाम धनुषधारी ही क्या, यदि मैं उस व्याघ्र न को

पकड़ सकूँ।"

"राजा ने उसे खर्चा दे कर भेजा। उसने घर जा कर बोधिसत्त्व को कहा। बोधिसत्त्व ने कहा—"अच्छा! सौम्य! जा।"

"लेकिन तू नहीं जायेगा?"

"हाँ मैं नहीं जाऊँगा, लेकिन तुझे उपाय बताऊँगा।"

"सौम्य! (उपाय) बता।"

"तू सहसा व्याघ्र के निवास स्थान पर अकेला न जाना। जनपद के मनुष्यों को इकट्ठा करवा, एक दो सहस्र धनुष (साथ) लिवा, वहाँ जाकर, 'व्याघ्र उठा है,' मालूम होते ही भाग कर किसी घने-झाड़ (=गुम्ब) में घुस कर, पेट के बल लेट रहना। जन-पद के लोग ही व्याघ्र को मार कर, पकड़ लेंगे। उनके व्याघ्र को मार चुकने पर, तू दाँतों से एक बेल (=लता) काट, (उसके) एक सिरे को (हाथ में) ले, मृत व्याघ्र के पास जा, कहना, "भो! इस व्याघ्र को किसने मार डाला? मैं इसे लता से बाँध कर, बैल की तरह राजा के पास ले जाने के लिए, लता लाने को घने-झाड़ में गया था। मेरे लता लाने से पहले किसने इसे मार डाला?" तब डर के मारे, जनपद के लोग 'स्वामी! राजा से मत कहना' (करके) बहुत धन देंगे। व्याघ्र को तू ही ले जायेगा, सो राजा से भी तुझे बहुत धन मिलेगा।"

उसने 'अच्छा' कह, जाकर, बोधिसत्त्व के बताये उपाय से ही व्याघ्र को पकड़, जंगल को भय-रहित कर, बहुत से जनों के साथ **बाराणसी** को लौट, राजा को देख कर कहा—"देव! मैंने व्याघ्र पकड़ लिया। जंगल निर्भय कर दिया।" राजा ने प्रसन्न हो, बहुत धन दिया।

फिर एक दिन एक भैंसे ने एक मार्ग छुड़ा दिया। (लोगों ने) राजा को कहा। राजा ने वैसे ही, **भीमसेन** को भेजा। वह, बोधिसत्त्व के बताये उपाय से, उसे भी व्याघ्र की तरह ले आया। राजा ने फिर बहुत सा धन दिया। (इससे) बहुत सम्पत्ति हो गई। ऐश्वर्य के मद से मत्त (=मस्त) हो, वह बोधिसत्त्व की अवज्ञा करने लगा। उसके कहने को न मानता। 'मैं कोई इस पर, निर्भर होकर जीता हूँ' सोच 'क्या तू ही आदमी है?' आदि कठोर वाक्य कहता।

कुछ ही दिनों के बाद, एक शत्रु-राजा ने आकर **बाराणसी** को घेर, राजा के पास संदेश भेजा। "या तो राज्य दें, या युद्ध करें।"

राजा ने "जा, लड़" (करके), **भीमसेन** को भेजा। वह सब शस्त्र बाँध योधा का भेष धारण कर अच्छी प्रकार कसे हुए हाथी की पीठ पर बैठा। बोधिसत्त्व भी, उसके मरने के भय से, सब शस्त्र बाँध, **भीमसेन** के पीछे आसन पर बैठा। जन (-समूह) से घिरा हुआ हाथी, नगर-द्वार से निकल संग्राम-भूमि में आया। भीमसेन ने युद्ध-भेरी का शब्द सुनते ही काँपना आरम्भ किया। बोधिसत्त्व ने 'अब यह हाथी की पीठ से गिर कर मरेगा' सोच, **भीमसेन** को रस्सी से घेर कर बाँध रक्खा। **भीमसेन** ने लड़ाई की जगह देख, मरने से भयभीत हो, हाथी की पीठ को मल-मूत्र से खराब कर दिया। बोधिसत्त्व ने 'भीमसेन! तेरा पहला (आचरण) और वर्तमान (आचरण) मेल नहीं खाता। तू पहले संग्राम-योधा की भाँति था, (लेकिन) अब हाथी की पीठ को खराब करता है' कह, यह गाथा कही—

यं ते पविकत्थितं पुरे
अथ ते पूतिसरा सजन्ति पच्छा,
उभयं न समेति भीमसेन!
युद्धकथा च इदञ्च ते विहञ्ञं॥

[भीमसेन! वह जो तेरी पहली बड़ाई थी, और यह जो अब पीछे मल-मूत्र बहा रहा है; वह युद्धकथा और यह कष्ट पाना, दोनों मेल नहीं खाते।]

यं ते पविकत्थितं पुरे, जो तू ने पहले अभिमान पूर्वक कहा था कि क्या तू ही आदमी है, मैं भी संग्राम-योधा नहीं हूँ', यह तेरा कथन। **अथ ते पूति सरा सजन्ति पच्छा,** सो यह गन्दी (=पूति) होने से तथा बहने वाली (=सरति) होने से **'पूति-सरा'** कही जाने वाली मल-मूत्र धारायें, बहती हैं, ढलकती हैं, चूती हैं। **पच्छा,** पहले कथन के बाद, अब इस संग्राम-भमि में। **उभयं न समेति भीमसेन!** हे भीमसेन! यह दोनों मेल नहीं खाते। कौन? **युद्ध कथा च इदंच ते विहञ्ञं** वह जो पहले कही थी, सो युद्ध-कथा; और यह जो अब तेरी पीड़ा=कष्ट पाना, हाथी की पीठ खराब करने जैसा विघात।

इस प्रकार बोधिसत्त्व ने उसकी भर्त्सना कर, 'सौम्य ! डर मत। मेरे रहते तुझे डर किस बात का ?' कह **भीमसेन** को हाथी की पीठ से उतार, 'नहाकर, घर जा' कह, भेजा। फिर 'आज मुझे प्रगट होना चाहिए' (सोच) संग्राम में प्रवेश करके, उन्नाद किया, सेना का व्यूह तोड़ कर, शत्रु-राजाओं को जीवित ही पकड़ ले जाकर, **बाराणसी**-नरेश के पास गया। राजा ने सन्तुष्ट हो, बोधिसत्त्व को बहुत ऐश्वर्य दिया। उस समय से **चुल्लधनुग्गह पण्डित,** सारे **जम्बूद्वीप** में प्रसिद्ध हो गया। वह, **भीमसेन** को खर्चा दे, उसे (उसके) निवास स्थान पर भेज, दान आदि पुण्य कर्म करके, यथा-कर्म (परलोक) गया।

बुद्ध ने 'भिक्षुओ ! न केवल अभी यह भिक्षु अपनी बड़ाई करता है, (इसने) पहले भी की है' कह इस धर्म-देशना को ला, मेल मिला, जातक का सारांश निकाल दिया। उस समय का भीमसेन (अब का) गप्पी (=आत्म प्रशंसक) भिक्षु था। लेकिन **चुल्लधनुग्गह** पण्डित मैं ही था।

पहला परिच्छेद

९. अपायिम्ह वर्ग

८१. सुरापान जातक

"**अपायिम्ह अनच्चिम्ह**. ." यह गाथा बुद्ध ने **कोशाम्बी** के पास **घोसिताराम** में विहरते समय, **सागत** स्थविर के सम्वन्ध में कही।

क. वर्तमान कथा

भगवान् के **श्रावस्ती** में वर्षावास समाप्त कर, चारिका करते हुए **भद्रवती** नाम के निगम पर पहुँचने पर, ग्वालों, पशुपालों, कृषकों तथा राहियों ने शास्ता को देख, प्रणाम कर कहा—?"भन्ते! भगवान् **अम्बतीर्थ** को मत जायें। अम्बतीर्थ में, जटिल के आश्रम में **अम्बतीर्थक** नामक (एक) नाग, विषैला सर्प, घोर विषैला सर्प (है)। वह कहीं भगवान् को कष्ट (न) पहुँचाये।"

भगवान्, जैसे उनकी बात सुनी ही न हो, वैसे, उनके तीन बार मना करने पर भी चले ही गये।

उस समय, भगवान् के **भद्रवती** से कुछ ही दूर एक बन-खंड में विहार करते समय, उस समय के बुद्ध उपस्थायक **सागत** नामक स्थविर, जो लौकिक ऋद्धि से युक्त थे, उस आश्रम में जा, उस नाग राज के निवास स्थान पर तिनकों का आसन बिछा, पालथी मार कर बैठे। नाग ने हसद के मारे धुआँ निकालना आरम्भ किया। स्थविर ने भी धुआँ निकाला। नाग प्रज्वलित हुआ। स्थविर भी प्रज्वलित हुए। नाग के तेज से स्थविर को कष्ट नहीं होता था; लेकिन स्थविर का तेज नाग को कष्ट देता था। इस प्रकार वे (एक) क्षण में ही नाग-राजा का दमन कर, उसे **त्रि-शरण** तथा **पञ्चशील** में प्रतिष्ठित कर, शास्ता के पास चले आये।

बुद्ध भी **भद्रवतिका** में यथा रुचि विहार कर **कोशाम्बी** चले गये। **सागत** स्थविर द्वारा नाग के दमन किये जाने की बात सारे जनपद में फैल गई। **कोशाम्बी**वासी (लोग) बुद्ध की अगवानी कर, बुद्ध को प्रणाम कर, **सागत** स्थविर के पास जा, प्रणाम कर, एक ओर खड़े हो कहने लगे—"जो आपको दुर्लभ हो, वह कहें। हम वही तैयार कर देंगे।" स्थविर चुप रहे। लेकिन **छः वर्गीय** (भिक्षुओं) ने कहा—"आवुसो! प्रव्रजितों को कबूतरी शराब दुर्लभ होती है, और अच्छी लगती है। यदि तुम स्थविर पर प्रसन्न हो तो कबूतरी शराब तैयार करो।" उन्होंने 'अच्छा' कह स्वीकार कर बुद्ध को अगले दिन के लिए निमन्त्रण दे, नगर में प्रवेश कर 'अपना अपना घर स्थविर को दिखायेंगे' (सोच) कबूतरी शराब तैयार कर, स्थविर को निमंत्रित कर, घर में शराब दी। स्थविर पीकर, शराब के नशे में मस्त हो, नगर से निकलते हुए, द्वार के बीच में ही गिर कर, (वहाँ) बकवास करते हुए पड़े रहे।

बुद्ध भोजन समाप्त कर, नगर से निकलते समय, स्थविर को उस प्रकार पड़े देख, 'भिक्षुओ! **सागत** को उठा लो', कह, उसे लिवा कर, आराम (=निवास स्थान) पर आये। भिक्षुओं ने स्थविर का सिर तथागत के चरणों में करके, उसे लिटा दिया। वह पलट कर, तथागत की ओर पैर करके, लेट रहा। बुद्ध ने भिक्षुओं से पूछा—"भिक्षुओ! **सागत** का जो पहले मेरे प्रति गौरव था, सो अब है?"

"भन्ते! नहीं।"

"भिक्षुओ। **अम्बतीर्थ** के नाग-राज का किसने दमन किया?"

"भन्ते! **सागत** ने।"

"भिक्षुओ! क्या **सागत** अब पानी के साँप का भी दमन कर सकता है?"

"भन्ते! नहीं।"

"तो क्या भिक्षुओ! ऐसी चीज़ का पीना उचित है, जिसे पीकर बेहोश हो जाय?"

"भन्ते! अनुचित।"

सो भगवान्, स्थविर की निन्दा कर, भिक्षुओं को आमन्त्रित कर "सुरा-

मेरय पान में पाचित्ति (=दोष) है[1]" (करके) शिक्षापद (=नियम) बना, आसन से उठ कर, **गन्धकुटी** में चले गये। धर्मसभा में एकत्र हुए भिक्षु शराब के दोष कहने लगे—"आवुसो! शराब कितनी खराब है; जिसने प्रज्ञावान् ऋद्धिवान् **सागत** स्थविर को ऐसा कर दिया कि उसे **तथागत** के गुण तक की होश न रहे।"

शास्ता ने आकर पूछा—"भिक्षुओ! इस समय बैठे क्या बात-चीत कर रहे हो?" उनके 'यह बातचीत' कहने पर, (शास्ता ने) 'भिक्षुओ! शराब पीकर न केवल अभी प्रव्रजित बेहोश होते हैं, पहले भी हुए हैं' कह, पूर्व जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में **बाराणसी** में (राजा) **ब्रह्मदत्त** के राज्य करते समय, बोधिसत्व, **काशी** राष्ट्र के एक उदीच्य ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हो, बड़े होने पर, ऋषि प्रव्रज्या के अनुसार प्रव्रजित हो, अभिञ्ञा और समापत्तियों का लाभ कर, ध्यान क्रीड़ा में रत रहते, **हिमवन्त** में निवास करते थे। उनके साथ पाँच सौ शिष्य थे। सो, वर्षा का समय आने पर शिष्यों ने पूछा—आचार्य्य! आबादी में जा कर निमक-खटाई का सेवन करके आवें।

"आवुसो! मैं तो यहीं रहूँगा। तुम जाकर शरीर को संतुष्ट करो। वर्षा (ऋतु) के बीतने पर चले आओ।"

वे 'अच्छा' कह, आचार्य को प्रणाम कर बाराणसी जा, (वहाँ) राजा के उद्यान में ठहरे।

अगलेदिन, नगर के बाहर ही बाहर भिक्षा माँग, संतुष्ट हो, (उससे) अगले दिन नगर में प्रवेश किया। मनुष्यों ने प्रसन्नता-पूर्वक भिक्षा दी। कुछ दिन बीतने पर (लोगों ने) राजा को कहा—"देव! हिमवन्त से पाँच सौ ऋषि आकर उद्यान में ठहरे हुए हैं। वे घोर तपस्वी हैं, संयतेंद्रिय हैं, तथा शीलवान् हैं।" राजा उनकी प्रशंसा सुन, उद्यान में गया। उन्हें प्रणाम कर, कुशल क्षेम पूछ वर्षा ऋतु के चारों महीने वहीं रहने का वचन ले, निमन्त्रण

[1] प्रायश्चित्त करने योग्य दोष है (भिक्षु प्रातिमोक्ष)

दिया। उस दिन से वह राज-भवन में भोजन करते (और) उद्यान में रहते थे।

एक दिन नगर में शराब पीने का उत्सव था। 'प्रव्रजितों को शराब दुर्लभ होती है' सोच राजा ने उन्हें अत्युत्तम शराब दिलवाई। तपस्वी शराब पी, उद्यान में जाकर, शराब से बदमस्त हो, कोई कोई उठ कर नाचने लगे, कोई कोई गाने लगे। नाच कर, गाकर, खारी आदि फैला कर सो रहे। शराब के नशे के उतरने पर उठकर अपने उस विकार को देख, 'हम ने प्रव्रजित जीवन के अनुकूल नहीं किया' (सोच) रोने पीटने लगे। फिर 'हमने आचार्य्य-रहित होने के कारण ही, ऐसा पाप किया' (सोच), उसी क्षण उद्यान को छोड़ हिमवन्त को जा, परिष्कारों (=चीवर आदि) को ठीक से कर, आचार्य्य को प्रणाम कर, उनके 'तात ! आबादी में बिना भिक्षा के कष्ट के सुख से तो रहे ? आपस में मेल से तो रहे' पूछने पर 'आचार्य्य सुख से तो रहे। लेकिन हमने न पीने योग्य चीज़ पीकर, बेहोश हो स्मृति को न सँभाल सकने के कारण नाचा और गाया।" यह हाल कहते हुए इस गाथा को कहा—

अपायिम्ह अनच्चिम्ह अगायिम्ह रुदिम्ह च,
विसञ्ञकरणिं पीत्वा दिट्ठा ना हुम्ह वानरा॥

[शराब पी, नाचे, गाये और रोये। खुशी इतनी है कि इस बेहोश बना देनेवाली को पीकर हम बानर नहीं बन गये।]

अपायिम्ह, सुरा पी। **अनच्चिम्ह,** उसे पी, हाथ पैरों को झटका झटका कर नाचे। **अगायिम्ह,** मुँह को खोल कर लम्बे स्वर से गाया। **रुदिम्ह,** फिर पश्चात्ताप से, 'हमने ऐसा किया' (सोच) रोये। **दिट्ठा ना हुम्ह बानरा,** इस प्रकार बेहोश होने पर **विसञ्ञकरणिं** (=बेहोश करने वाली सुरा) को पीकर, यही अच्छा हुआ कि हम बानर नहीं बन गये।

इस प्रकार उन्होंने अपने दुर्गुण कहे। बोधिसत्व 'आचार्य्य से पृथक् होन पर ऐसा होता ही है' कह, उन तपस्वियों की निन्दा कर 'अब फिर ऐसा न करना' कह, उनको उपदेश दे, ध्यान-युक्त रह, ब्रह्मलोकगामी हुए।

बुद्ध ने इस धर्मदेशना को कह जातक का सारांश निकाल दिया। इससे आगे 'मेल मिलाकर'—यह भी नहीं कहेंगे।

उस समय के ऋषि गण (अब की) बुद्ध-परिषद् थी। गण का गुरु तो मैं ही था।

८२. मित्तविन्द जातक

"**अतिक्कम्म रमणकं..**" यह (गाथा) बुद्ध ने **जेतवन** में विहार करते समय एक बात न मानने वाले भिक्षु के सम्बन्ध में कही।

क. वर्तमान कथा

इस जातक की काश्यप सम्यक् सम्बुद्धकालीन कथा दसवें निपात (=परिच्छेद) में महामित्तविन्दक जातक[1] में आयेगी।

ख. अतीत कथा

उस समय बोधिसत्व ने यह गाथा कही—

अतिक्कम्म रमणकं सदामत्तं च दूभकं,
स्वासि पासाणमासीनो यस्मा जीवं न मोक्खसि॥

["रमणकं", "सदामत्तं" और "दूभकं"—इन तीनों प्रासादों को छोड़ कर, तू एक ऐसे पत्थर से चिमट गया, जिससे अपने को जीते जी न छुड़ा सकेगा।]

रमणकं उस समय स्फटिक को कहते थे, मतलब तू स्फटिक के प्रासाद को छोड़ आया। **सदामत्तंच,** "रजत" का नाम है, मतलब तू रजत के प्रासाद

---

[1] जातक (४३९)

को छोड़ आया। **दूभकं,** मणि का नाम है, मतलब तू मणिमय प्रासाद को छोड़ आया। **स्वासि,** वह (=सो) है तू। **पासाणमासीनो,** उरचक्र पत्थर का होता है, चाँदी का होता है अथवा मणि का होता है, लेकिन वह पत्थर का था, सो वह उस पत्थर के उरचक्र से धर लिया गया (=**आसीनो, अभिनिविष्टो=अज्जोत्थटो**)। पाषाण से धर लिये जाने (=**आसीनता**) के कारण **पासाणासीनो**। व्यंजन सन्धि के कारण 'म' का आगम कर, **पासाण-मासीनो'** कहा। अथवा पासाण को आसीन हो, अर्थात् उस उरचक्र को पहुँच—प्राप्त हो, खड़ा हुआ। **यस्मा जीवं न मोक्खसि**—जिस उरचक्र[1] से जब तक तेरे पाप का नाश न होगा, तब तक जीते जी मुक्त न होगा, सो वैसे पत्थर से चिमटा है।

यह (गाथा) कह, बोधिसत्व, अपने देवस्थान को चले गये।

मित्रविन्दक भी उरचक्र को धारण कर, महादुःख सहता हुआ, पापकर्म के क्षीण होने पर, कर्मानुसार गया।

बुद्ध ने यह धर्म-देशना कह, जातक का सारांश निकाल दिया। उस समय का मित्रविन्दक (अब का) बात न मानने वाला भिक्षु था। लेकिन देव-राजा मैं ही था।

८३. कालकण्णि जातक

"**मित्तो हवे सत्तपदेन होति..**" यह (गाथा) बुद्ध ने **जेतवन** में विहार करते समय, **अनाथपिण्डिक** के एक मित्र के बारे में कही।

[1] **देखो मित्रविन्दक जातक (१०४)।**

क. वर्तमान कथा

वह **अनाथपिण्डक** का लंगोटिया यार था। दोनों ने एक ही आचार्य्य के पास (इकट्ठे) शिल्प सीखा था। उसका नाम था **कालकण्णी** (=मनहूस)। समय बीतते बीतते वह दुर्गति को प्राप्त हो, (आसानी से) न जी सकने के कारण सेठ के पास चला आया। सेठ ने उसे आश्वासित कर, खर्चा दे, उसके परिवार का पालन किया। वह सेठ का उपकारी हो, उसके सब काम करने लगा। जब वह सेठ के पास आता, तो उसे कहा जाता—"कालकण्णी! खड़ा हो; कालकण्णी! बैठ; कालकण्णी! खा।" सो एक दिन सेठ के दोस्तों ने सेठ के पास आकर कहा—"सेठ! इसे अपने पास मत रखें। 'कालकण्णी! खड़ा हो; कालकण्णी! बैठ; कालकण्णी! खा।' इस शब्द (को सुनने) से यक्ष भी भाग जाये। यह तेरे योग्य नहीं। यह दरिद्र है, कुरूप है—तुम्हें इस से क्या?"

अनाथपिण्डक (ने उत्तर दिया)—"नाम व्यवहार-मात्र है। पण्डित-जन उसका ख्याल नहीं करते। **श्रुत-माङ्गलिक**[1] नहीं होना चाहिए। केवल नाम के कारण, मैं अपने लंगोटिया-यार को नहीं छोड़ सकता।"

उनकी बात न मान, एक दिन वह अपने भोग-ग्राम में जाते समय, उसे अपने घर का राखा बना कर गया।

"सेठ गाँव गया है। इसका घर लूटें" (सोच) चोरों ने, हाथ में नाना प्रकार के आयुध ले, रात को आकर, घर घेर लिया। वह (=राखा) भी, चोरों के आने की आशंका से, जागता बैठा था। उसने, चोरों को आया जान, मनुष्य को जगा, 'तू शंख बजा', 'तू ढोल (=आलिङ्ग) बजा' कह महासमज्ज (=मेला) करवाते हुए की तरह, सारे घर को एक शब्द कर दिया। 'घर खाली है, यह हमारी खबर गलत है। सेठ यहीं है' (सोच) चोर पाषाण, मुद्गर आदि वहीं छोड़; भाग गये।

[1]माङ्गलिक शब्दों का श्रवणमात्र श्रेयस्कर मानने वाले को श्रुत-माङ्गलिक कहते हैं।

अगले दिन लोगों ने जहाँ तहाँ पड़े, पाषाण मुद्गर आदि को देख, संविग्न-चित्त हो, "यदि आज इस प्रकार का बुद्धिमान् गृह-रक्षक न होता तो चोर घर में घुस, इसे यथारुचि लूट कर ले जाते। इस दृढ़-मित्र के कारण सेठ की हानि नहीं हुई उन्नति हुई" उसकी प्रशंसा कर, सेठ के गाँव से लौटने पर, उसे सब हाल कहा।

सठ ने उन्हें उत्तर दिया—"तुम मेरे ऐसे गृह-रक्षक मित्र को निकलवाते थे। यदि, तुम्हारी बात मान, मैंने इसे निकाल दिया होता, तो आज मेरा कुछ भी (बाक़ी) न रहता। नाम नहीं चाहिए, हितैषी-चित्त ही चाहिए।" यह कह, उसे और भी खर्चा दे 'अब मेरे पास यह कहने-योग्य बात है' सोच बुद्ध के पास जा कर आरम्भ से लेकर सब हाल कह सुनाया।

बुद्ध ने 'हे गृहपति ! न केवल अभी कालकण्णी-मित्र ने अपने मित्र के घर के माल-असबाब की रक्षा की, पहले भी रक्षा की है' कह, उसके याचना करने पर पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में **बाराणसी** में (राजा) **ब्रह्मदत्त** के राज्य करने के समय, बोधिसत्व महान् ऐश्वर्यवान् सेठ था। उसका **कालकण्णी** नाम का मित्र था।. शष सब (कथा) प्रत्युत्पन्न (=वर्त्तमान)—कथा सदृश ही। बोधिसत्व ने भोग-ग्राम से लौट, वह समाचार सुन, 'यदि मैंने तुम्हारी बात मान, ऐसे मित्र को निकाल दिया होता, तो आज मेरा कुछ भी न रहता' कह, यह गाथा कही—

मित्तो हवे सत्तपदेन होति
सहायो पन द्वादसकेन होति,
मासद्धमासेन च ञाति होति
तत्तुत्तरिं अत्तसमोपि होति ॥
सोहं कथं अत्तसुखस्स हेतु
चिरसन्थुतं कालकण्णिं जहेय्यं ॥

[सात कदम साथ चलने से (आदमी) मित्र हो जाता है, बारह (दिन)

साथ रहने से 'सहायक' हो जाता है, महीना आधा महीना (साथ रहने) से, 'ञाति' (=रिश्तेदार) हो जाता है, और उस से अधिक (साथ) रहने से अपने जैसा (=आत्म-समान) भी हो जाता है। सो मैं अपने आत्म-सुख के लिए, चिर काल तक साथ रहे, इस कालकण्णि (मित्र) को कैसे छोड़ दूं ?]

हवे, निपात-मात्र है। मैत्री करने वाला मित्र है—अर्थात् (मित्र) मैत्री करता है, स्नेह करता है। सो यह (मित्र) **सत्तपदेन** होति, सात क़दम इकट्ठे चलने से (भी) होता है, **सहायो पन द्वादसकेन होति,** सब कृत्यों को इकट्ठा करने से, सभी अवस्थाओं में साथ (=सह) जाने वाला, 'सहायक' सो यह, बारह दिन इकट्ठे रहने से होता है। **मासद्धमासेन च** महीना या आधा महीना (साथ रहने) से। **ञाति होति,** ञाति (=रिश्तेदार)—सदृश होता है। **तत्तुत्तरिं,** उस से अधिक साथ रहने से **अत्तसमोपि होति** (=अपने जैसा भी होता है)। **जहेय्यं,** इस प्रकार के मित्र को कैसे छोड़ूं ? मित्रता के रस की प्रशंसा करता है।

उसके बाद से फिर कोई भी, उनके बीच में कुछ बोलने वाला नहीं हुआ।

शास्ता ने यह धर्म-देशना कह जातक का सारांश निकाल दिया।

उस समय का **कालकण्णी,** (अब का) **आनन्द** था। **बाराणसी सेट्ठी** तो मैं ही था।

८४. अत्थस्सद्वार जातक

'आरोग्यमिच्छे परमं च लाभं. ." यह (गाथा) बुद्ध ने **जेतवन** में विहार करते समय, एक 'अर्थ-कुशल' पुत्र के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

श्रावस्ती के एक अत्यन्त वैभवशाली श्रेष्ठी का एक पुत्र था, जिसकी आयु सात वर्ष की थी (और) जो अत्यन्त प्रज्ञावान् और 'अर्थ-कुशल' था। उसने एक दिन पिता के पास जाकर 'अर्थ का द्वार'—प्रश्न पूछा। वह उस प्रश्न (के उत्तर) को नहीं जानता था। उसने सोचा—"यह प्रश्न अत्यन्त सूक्ष्म है। सम्यक् सम्बुद्ध को छोड़ कर और कोई भी, ऊपर **भवाग्र** से लेकर, नीचें **अवीची** (नरक) तक के लोक में, इस प्रश्न का उत्तर नहीं दे सकता।" वह पुत्र को ले, बहुत सा माला-गन्ध-विलेपन साथ लिवा, **जेतवन** जाकर बुद्ध की पूजा-प्रणाम कर, एक ओर बैठ, भगवान् से कहने लगा—"भन्ते! यह बालक बुद्धिमान् है। अर्थ-कुशल है। इस ने मुझे अर्थ के द्वार के विषय में प्रश्न पूछा है। मैं इस प्रश्न को न जानने के कारण, आपके पास आया हूँ। अच्छा हो, यदि भगवान्, मुझे इसका उत्तर दें।" बुद्ध ने 'उपासक! इस कुमार ने पहले भी मुझ से यह प्रश्न पूछा था, और मैंने इसे कह दिया था। उस समय यह इस प्रश्न का उत्तर जानता था; लेकिन जन्मान्तर की बात होने से अब इसे वह याद नहीं' कह, उसके याचना करने पर, पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में **बाराणसी** में (राजा) **ब्रह्मदत्त** के राज्य करने के समय, बोधिसत्व महावैभवशाली श्रेष्ठी हुए। उनका एक पुत्र था, जिसकी आयु सात वर्ष की थी, और जो प्रज्ञावान् तथा 'अर्थ-कुशल' था। उसने एक दिन पिता के पास जाकर 'तात! अर्थ का द्वार कौन सा है?' करके, अर्थ-द्वार-प्रश्न पूछा। उसके पिता ने उस प्रश्न (के उत्तर) को कहते हुए, यह गाथा कही—

आरोग्यमिच्छे परमं च लाभं
सीलं च वुद्धानुमतं सुतं च,
धम्मानुवत्ती च अलीनता च
अत्थस्स द्वारा पमुखा छळेते॥

[आरोग्यता, जो कि परम लाभ है, (सर्व प्रथम) उसकी इच्छा करे; शील (=सदाचार); ज्ञान-वृद्धों का उपदेश; (बहु) श्रुतता, धर्मानुकूल आचरण, अनासक्ति—यह छः अर्थ (=उन्नति) के प्रमुख द्वार हैं।]

आरोग्यमिच्छे परमं च लाभं, 'च' निपातमात्र है। तात! सर्व प्रथम आरोग्य नामक परम लाभ की इच्छा करे! इस अर्थ को इस प्रकार स्पष्ट किया गया है—'आरोग्य कहते हैं, शरीर तथा मन दोनों का आरोग्य होना, अनातुरता। शरीर के रोग से पीड़ित होने पर, न तो अप्राप्त लाभ प्राप्त किया जा सकता है, न प्राप्त (भोग) का उपभोग किया जा सकता है। लेकिन अनातुर (=स्वस्थ) होने पर यह दोनों कर सकता है। चित्त के क्लेश (=विकार) से पीड़ित होने पर, न तो अप्राप्त ध्यान आदि लाभ प्राप्त किया जा सकता है, न प्राप्त ध्यान फिर समापत्ति-रूप से भोग किया जा सकता है। इसके अस्वस्थ रहने पर, अप्राप्त लाभ प्राप्त नहीं होता, जो मिला है सो भी निष्प्रयोजन होता है। लेकिन इसके (आतुर) न होने पर, अप्राप्त लाभ होता है, प्राप्त लाभ सार्थक होता है। सो, आरोग्य परम लाभ है, सर्व प्रथम उसकी इच्छा करनी चाहिए। उन्नति का यह एक (मुख्य) द्वार है। **सीलं च,** आचारशील इससे मतलब है लौकिक बरताव। **वुद्धानुमतं,** गुणवृद्धों की, पण्डितों की मति, मतलब है गुणियों का, गुरुओं का उपदेश। **सुतं च,** उपयोगी श्रुत, इससे स्पष्ट किया है कि इस लोक में अर्थ-निश्चित (=उपयोगी) **बहुसच्चं** (=बहुश्रुतता, ज्ञेय) है। **धम्मानुवत्ती च,** त्रिविध, सुचरित्र धर्म के अनुसार चलना, **अलीनता च,** चित्त की अलीनता, अनीचता, इससे चित्त का असंकुचित होना, श्रेष्ठ होना, उत्तम होना स्पष्ट किया है। **अत्थस्स द्वारा पमुखा छळेते** अर्थ=उन्नति, इस 'अर्थ' कहलाने वाली लौकिक, लोकोत्तर उन्नति के यह छः मुख्य द्वार हैं, उपाय हैं, प्रवेश-मार्ग हैं।

इस प्रकार बोधिसत्व ने पुत्र के अर्थ-द्वार प्रश्न का उत्तर दिया। उस समय से वह, उन छः धर्मों के अनुसार आचरण करने लगा।

बोधिसत्त्व भी दान आदि पुण्य-कर्म करके (अपने) कर्मानुसार (परलोक) गये।

बुद्ध ने यह धर्म-देशना कह जातक का सारांश निकाल दिया। उस समय का पुत्र ही यह (अब का) पुत्र था। महासेठ तो मैं ही था।

८५. किम्पक्क जातक

"**आयतिदोसं नाञ्ञाय..**" यह (गाथा) बुद्ध ने जेतवन में विहरते हुए एक आसक्त-चित्त भिक्षु के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

एक कुल पुत्र बुद्ध शासन में अत्यन्त श्रद्धा से प्रव्रजित हो, एक दिन श्रावस्ती में भिक्षा माँगते हुए, एक अलंकृत स्त्री को देखकर आसक्त हो गया। उसके आचार्य्य उपाध्याय उसे बुद्ध के पास लाये।

बुद्ध ने पूछा—"भिक्षु! क्या तू सचमुच उत्कण्ठित है?" उसके "सचमुच" कहने पर बुद्ध ने कहा 'हे भिक्षु! यह पाँच काम-गुण (=भोग) भोगने के समय सुन्दर लगते हैं। लेकिन, उनका भोगना निरय आदि में उत्पत्ति का कारण होने से, वह किम्पक्कफल सदृश हैं। किम्पक्कफल, वर्ण-गन्ध तथा रस से युक्त होता है, लेकिन खाने पर आँतों को टुकड़े टुकड़े कर, प्राणों का नाश कर देता है। पहले बहुत से आदमी उसके दोष को न जान (=देख), उसके वर्ण-गन्ध तथा रस में आसक्त हो उस फल को खाकर, प्राण गँवा बैठे।' यह कह, पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में **बाराणसी** में (राजा) **ब्रह्मदत्त** के राज्य करने के समय,

बोधिसत्त्व ने सार्थवाह हो, पाँच सौ गाड़ियों के साथ **पूर्व** से **पश्चिम** को जाते हुए, एक जंगल के द्वार पर पहुँच, मनुष्यों को एकत्र कर, उपदेश दिया— "इस जंगल में विष-वृक्ष हैं। मेरे बिना पूछे, कोई किसी ऐसे फल को न खाये, जिसे उसने पहले न खाया हो।"

मनुष्यों ने जंगल को पार कर, उसके द्वार पर फलों से लदा हुआ एक **किम्पक्क** वृक्ष देखा। उसके टहने, शाखाएँ, पत्ते तथा फल, आकार, वर्ण, रस और गन्ध की दृष्टि से आम के सदृश ही थे। उनमें से कुछ (आदमियों) ने वर्ण, गन्ध तथा रस की ओर खिंच, उन्हें आम के फल समझ कर खाया। कुछ जने 'सार्थवाह को पूछ कर खायेंगे,' (करके) लिये खड़े रहे। बोधिसत्त्व ने वहाँ पहुँच, जो फल लिये खड़े थे, उन से वह फल फेंकवा, जिन्होंने खा लिये थे, उन्हें वमन करा दवाई दी। उन में से कुछ तो निरोग हो गये, लेकिन जो बहुत पहले खा चुके थे, वे मर गये। बोधिसत्त्व सकुशल इच्छित स्थान पर पहुँच, (वहाँ) मुनाफा कमा, फिर अपने स्थान पर आकर, दान आदि पुण्य करके, कर्मानुसार (परलोक) गया। शास्ता ने वह कथा कह, अभिसम्बुद्ध हो, यह गाथा कही—

आयतिदोसं नाञ्ञाय यो कामे पतिसेवति,
विपाकन्ते हनन्ति नं किम्पक्कमिव भक्खितं ॥

[जो (आदमी) काम-भोगों के भविष्य के दुष्परिणाम को बिना ख्याल किये काम-भोगों का सेवन करता है, उस आदमी को, उसके काम-भोग, फल देने के समय वैसे ही मार डालते हैं, जैसे खाये हुए किम्पक्क-फल ने (मार डाला)।]

आयतिदोसं नाञ्ञाय, अनागत (=भविष्य) के दुष्परिणाम को न जान कर। **यो कामे पतिसेवति,** जो (आदमी) वस्तुकामों तथा क्लेश-कामों का सेवन करता है। **विपाकन्ते हनन्ति नं,** वे काम-भोग उस आदमी को अपने विपाक (=फल) देने के समय अर्थात् अन्त में, निरय आदि में उत्पत्ति (तथा) नाना प्रकार के दुःखों से युक्त कर मारते हैं। कैसे? **किम्पक्कमिव भक्खितं** जैसे खाने के समय वर्ण-रस-गन्ध सम्पत्ति के कारण

रुचिकर **किम्पक्कफलं**, यदि भविष्य का दुष्परिणाम न देख कर खा लिया जाये, तो अन्त में मार डालता है, प्राणों का नाश कर देता है; इसी प्रकार परिभोग के समय यद्यपि काम-भोग रुचिकर लगते हैं, तो भी विपाक देने के समय मार डालते हैं।

इस उपदेश को मेल मिलने तक पहुँचा, (आर्य) सत्यों को प्रकाशित किया। (आर्य-) सत्यों (के प्रकाशन) के अन्त में उत्कण्ठित भिक्षु श्रोतापत्ति फल का लाभी हुआ। शेष परिषद् में से भी कुछ श्रोतापन्न हुए, कुछ सकृदागामी, कुछ अनागामी, कुछ अर्हत् हुए। बुद्ध ने भी यह धर्म-देशना कह, जातक का सारांश निकाल दिया। उस समय की परिषद् (अब की) बुद्ध-परिषद् थी। सार्त्थवाह (=कारवाँ का सरदार) तो मैं ही था।

८६. सीलवीमंस जातक

"**सीलं किरेव कल्याणं**.." यह (गाथा) शास्ता ने **जेतवन** में विहरते समय, एक शील (=सदाचार) विचारक ब्राह्मण के सम्बन्ध में कही।

क. वर्तमान कथा

उसकी जीविका **कोशल** राजा पर निर्भर थी। वह त्रिशरण-गत, अखंड पंचशीली तथा तीनों वेदों में पारंगत था। यह शीलवान् (=सदाचारी) है, (करके) राजा उसका विशेष सम्मान करता था। वह सोचने लगा—"यह राजा, अन्य ब्राह्मणों की अपेक्षा, मेरा विशेष सम्मान करता है, विशेष रूप से गौरव प्रदर्शित करता है। क्या यह मेरा सम्मान मेरी जाति, गोत्र, कुल, प्रदेश, तथा शिल्प सम्पत्ति (=ज्ञान) के कारण करता है, अथवा शील-सम्पत्ति (=सदाचार) के कारण ? अच्छा, इस की परीक्षा करूँगा।"

एक दिन उसने, राजा की सेवा में जा, वापिस घर लौटते समय, एक सराफ (की दुकान) के फट्टे पर से, बिना उसे पूछे, एक कार्षापण उठा लाया। सराफ, ब्राह्मण के प्रति गौरव का भाव होने से, बिना कुछ बोले (चुप) बैठा रहा। अगले दिन, दो कार्षापण उठा लाया। सराफ ने वैसे ही सहन कर लिया। तीसरे दिन कार्षापणों की मुट्ठी उठा ली। 'आज तुझे राजकीय-माल लूटते तीसरा दिन हो गया है' (करके) सराफ ने, 'मैं ने राजकीय-माल लूटने वाला चोर पकड़ा है'—तीन बार शोर मचाया। मनुष्य, इधर उधर से आकर 'बहुत देर से तू सदाचारी बना फिरता था' (करके) दो तीन प्रहार दे, राजा के पास ले गये।

राजा ने अफसोस करते हुए, 'ब्राह्मण ! किस लिए ऐसा पाप-कर्म करता है' कह, आज्ञा दी, 'जाओ ! इसको राज-दण्ड दो।'

ब्राह्मण बोला—"महाराज ! मैं चोर नहीं हूँ।"

"तो फिर किस लिए राजकीय सामान के अधिकारी के फट्टे पर से कार्षापण उठाये ?"

"तुम्हारे, मेरा अत्यन्त सम्मान करने पर, मेरे मन में सन्देह था कि यह जो राजा मेरा सम्मान करता है, वह मेरी जाति आदि के कारण, अथवा शील (=सदाचार) के कारण ? सो, इसकी परीक्षा करने के लिए, मैंने ऐसा किया। अब मुझे सम्पूर्णतः विश्वास हो गया, कि तू ने जो मेरा सम्मान किया, वह (मेरे) शील के ही कारण किया, न कि जाति आदि के कारण। सो, इस कारण (=बात) से, मैं इस निश्चय पर पहुँचा कि लोक में शील (=सदाचार) ही उत्तम है, शील ही प्रमुख है। घर में रह कर काम-भोगों का उपभोग करते हुए मैं इस शील के (नियमों के) अनुसार नहीं रह सकता। इस लिए, मैं आज ही **जेतवन** जा कर बुद्ध के पास प्रव्रजित होऊँगा। देव ! मुझे प्रव्रज्या (की आज्ञा) दें।" यह कह, राजा की स्वीकृति ले, **जेतवन** की ओर चला गया।

उसके जाति-सुहृद-बन्धुओं ने उसे रोकने का प्रयत्न किया; लेकिन जब वह न रोक सके, तो लौट गये।

उसने बुद्ध के पास जा, प्रव्रज्या की याचना कर, प्रव्रज्या तथा उपसम्पदा पा, कर्मस्थान (=योगाभ्यास) में लगे रह, विदर्शना (=ज्ञान) की वृद्धि से,

अर्हत्व प्राप्त किया। तब बुद्ध के पास जा अञ्ञा (=अर्हत्व) का व्याकरण (=प्रकाशन) किया—भन्ते! मेरी प्रव्रज्या का उद्देश पूरा हो गया।

उसका वह 'अर्हत्व-प्रकाशन' भिक्षुसंघ में प्रगट हो गया। सो एक दिन धर्म-सभा में बैठे भिक्षु उसकी प्रशंसा कर रहे थे—"आवुसो! राजा का अमुक उपस्थायक ब्राह्मण, अपने शील का विचार कर, राजा से पूछ, प्रव्रजित हो, अर्हत्व में प्रतिष्ठित हुआ।"

शास्ता ने आकर पूछा—"भिक्षुओ! इस समय बैठे क्या बातचीत कर रहे हो?" "यह (बातचीत)" कहने पर, (शास्ता ने) कहा—"भिक्षुओ! न केवल अभी इस ब्राह्मण ने अपने शील का विचार कर, प्रव्रजित हो, अपनी प्रतिष्ठा (=अर्हत्व लाभ) की; पहले भी पण्डितों ने अपने शील का विचार कर, प्रव्रजित हो, अपनी प्रतिष्ठा की है।" यह कह, पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में **बाराणसी** में (राजा) **ब्रह्मदत्त** के राज्य करने के समय, बोधिसत्त्व उसके पुरोहित थे। वे दानी थे, सदाचारी थे; तथा अखंड-पञ्च-शीली थे। राजा, अन्य ब्राह्मणों की अपेक्षा, उनका विशेष सम्मान करता था।.....सब पूर्व सदृश ही। लेकिन बोधिसत्त्व को बाँध कर, राजा के पास ले जाने के समय, रास्ते में सँपेरे साँप का खेल करते हुए, उसे पूँछ से पकड़ते, गरदन पर डालते तथा गले में लपेटते थे। उन्हें देख, बोधिसत्त्व ने कहा—"तात! इसे पूँछ से मत पकड़ो; इसे गले में गरदन में मत लपेटो। अरे, यह डस कर, प्राणों का नाश कर देगा।" सँपेरे बोले—"ब्राह्मण यह सर्प, शीलवान् है; सदाचारी है; वैसा दुशील नहीं है। तू अपनी दुशीलता अनाचार के कारण 'राजकीय माल लूटने वाला चोर' (कहकर), बाँध कर ले जाया जा रहा है।" वह सोचने लगा—"डसना छोड़ने पर, कष्ट देना छोड़ने पर, जब साँप भी 'शीलवान्' कहलाते हैं; तो फिर आदमी का तो क्या कहना? लोक में शील ही उत्तम है। उससे बढ़ कर और कुछ नहीं।"

(लोग) उसे राजा के पास ले गये।

राजा ने पूछा—"तात! यह क्या?"

"देव! राजकीय धन लूटने वाला चोर।"

"तो इसे राज-दण्ड दो।"

ब्राह्मण बोला—"महाराज! मैं चोर नहीं हूँ।"

"तो फिर किस लिए कार्षापण उठाये?" पूछने पर, उक्त प्रकार से ही सब कहते हुए; कहा: "सो, मैं इस कारण से इस निश्चय पर पहुँचा, कि इस लोक में शील ही उत्तम है, शील ही प्रमुख है। और तो रहने दो, यह विषैला सर्प भी, न डसने पर, न कष्ट देने पर 'शीलवान्' कहलाता है। इस कारण से भी शील ही उत्तम है, शील ही श्रेष्ठ है।" इस प्रकार शील की प्रशंसा करते हुए, यह गाथा कही—

सीलं किरेव कल्याणं सीलं लोके अनुत्तरं,
पस्स घोरविसो नागो सीलवाति न हञ्ञति॥

[शील ही कल्याण-कर है; लोक में शील से बढ़कर कुछ नहीं। देखो! यह घोर विषैला सर्प (भी) शीलवान् (है) करके, मारा नहीं जाता।]

"सीलं किरेव.." शरीर-वाणी तथा मन से सदाचार (के नियमों) का उल्लंघन न करना, आचार-शील। **किर,** परम्परा से कहा जाता है। **कल्याणं,** सुन्दरतर। **अनुत्तरं,** ज्येष्ठ, सब गुणों का दाता। **पस्स,** अपनी देखी बात को सामने करके कहता है। **सीलवा'ति न हञ्ञति,** घोर विषैला सर्प भी, केवल न डसने, न कष्ट देने भर से, 'शीलवान्' करके प्रशंसित होता है। न हञ्ञति, मारा नहीं जाता। इस कारण से भी, शील ही उत्तम है।

इस प्रकार बोधिसत्त्व, इस गाथा से, राजा को धर्मोपदेश कर, काम-भोगों को छोड़, ऋषि प्रव्रज्या के अनुसार प्रव्रजित हो, हिमवन्त में प्रवेश कर, पाँच अभिज्ञा, तथा आठ समापत्तियाँ प्राप्त कर, ब्रह्मलोकगामी हुए।

बुद्ध ने यह धर्म-देशना कह जातक का सारांश निकाल दिया। उस समय की राज परिषद् (अब की) बुद्ध परिषद् थी। पुरोहित तो मैं ही था।

८७. मंगल जातक

"यस्स मङ्गला समूहता" यह (गाथा) बुद्ध ने **वेळुवन** में विहार करते समय, एक ऐसे ब्राह्मण के बारे में कही, जो वस्त्र में (अच्छे-बुरे) लक्षण देखता था।

क. वर्तमान कथा

राजगृह-वासी एक ब्राह्मण शगुनों में विश्वास करता था। वह **त्रिरत्न** (=बुद्ध-धर्म-संघ) से अप्रसन्न तथा मिथ्या-विचार वाला था; (लेकिन) था धनी, अत्यन्त धनी, बहुत भोग-सम्पत्ति वाला। उसके सन्दूक में रक्खे हुए वस्त्रों के जोड़े को चूहे काट गये। (जब) नहाकर, 'वस्त्र ले आओ' कहा, तो बताया कि उन्हें चूहे काट गये।

उसने सोचा—"यदि यह चूहों का खाया कपड़ों का जोड़ा, इस घर में रहेगा, तो महाविनाश होगा। यह अमाङ्गलिक है, मनहूसीयत है; इसे लड़के-लड़की, नौकर चाकरों को भी नहीं दिया जा सकता, क्योंकि जो कोई इसे लेगा, उसका सब कुछ विनाश हो जायगा। इसे कच्चे श्मशान में फिकवाऊँगा। लेकिन इसे नौकर चाकरों के हाथ में नहीं दे सकता; कहीं वे लोभ के मारे इसे रख लें, और इस प्रकार विनाश को प्राप्त हों। इसे अपने पुत्र के हाथ भेजूंगा।" उसने अपने पुत्र को बुलवा, वह बात समझा कर भेजा—'लेकिन तात! तू भी इसे बिना हाथ से छुए, डण्डे पर डाल कर ले जा, और कच्चे श्मशान में फेंक, सिर से नहा कर, लौट आ।"

बुद्ध भी उस दिन प्रातःकाल ही ऐसे बन्धुओं को देखते हुए, जिनके (आर्य) मार्ग पर आने की सम्भावना हो, पिता-पुत्र के **स्रोतापत्ति फल** प्राप्त करने की सम्भावना देख, मृगों के शिकारी के मृगों की जगह जाने की तरह,

कच्चे श्मशान के द्वार पर जाकर छः वर्ण की रश्मियों को विसर्जित करते हुए बैठे। माणवक (अपने) पिता की बात मान, उस जोड़े-वस्त्र को, घर में आ घुसे साँप की तरह लकड़ी पर डालकर कच्चे श्मशान के द्वार पर लाया।

बुद्ध ने पूछा—"माणवक! क्या करता है?"

"भो गौतम! यह चूहों का खाया हुआ जोड़ा-वस्त्र (है), (यह) मनहूसीयत है, (यह) हलाहल-विष के समान है। मेरे पिता ने इस डर से कि कहीं दूसरा (कोई) फेंकने जाकर लोभ के मारे ले न ले, मुझे (इसे फेंकने) भेजा है। मैं इसे फेंक कर, सिर से नहाने के लिए आया हूँ।!"

"अच्छा! तो फेंक दे।"

माणवक ने फेंक दिया। शास्ता 'अब यह हमारे योग्य है' (कह) उसके सामने ही, उसके 'भो गौतम! यह अमाङ्गलिक है, यह मनहूसीयत है; इसे मत लें, इसे मत लें' मना करते रहने पर भी, उठा कर **वेळुवन** की ओर चले गये। माणवक ने जल्दी से जाकर पिता को कहा—"तात! मैंने जिस जोड़े-वस्त्र को कच्चे श्मशान में फेंका, उसे मेरे मना करने पर भी श्रमण गौतम 'हमारे योग्य है' (कह) ले **वेळूवन** चला गया।

ब्राह्मण ने सोचा—"वह जोड़ा वस्त्र अमाङ्गलिक है, मनहूसियत है। उसे पहनने से श्रमण गौतम भी नष्ट होगा, विहार भी नष्ट होगा। उस से हमारी निन्दा होगी। सो मैं श्रमण गौतम को और दूसरे बहुत से वस्त्र दे कर, वह वस्त्र फिकवाऊँ।"

वह बहुत से वस्त्र लिवा, पुत्र सहित वेळुवन जा, शास्ता को देख एक ओर खड़े होकर बोला—"भो गौतम! क्या तू ने सचमुच, कच्चे श्मशान में से जोड़ा-वस्त्र लिया है?"

"हाँ, ब्राह्मण! सचमुच"

"भो गौतम! वह वस्त्र जोड़ा अमाङ्गलिक है। उसे पहनने से तुम नष्ट होगे, सारा विहार नष्ट होगा। यदि ओढ़ना, बिछौना पर्य्याप्त न हो, तो इन वस्त्रों को लेकर, उसे फेंकवा दो।"

बुद्ध ने 'ब्राह्मण! हम प्रव्रजित हैं। कच्चे श्मशान में, गली में, कूड़े में, नहाने के घाट (=तीर्थ) पर तथा महामार्ग में—ऐसी ही जगहों पर फेंके हुए या गिरे हुए चीथड़े हमारे योग्य हैं। और तू तो, न केवल अभी, किन्तु

पहले भी इसी विचार का था' कह, उसके प्रार्थना करने पर पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में **मगध** देश (=राष्ट्र) के **राजगृह** नगर में धार्मिक मगध-नरेश राज्य करते थे। उस समय बोधिसत्त्व एक उदीच्य ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हुए थे। ज्ञान प्राप्त करने के बाद ऋषि प्रव्रज्या के अनुसार प्रव्रजित हो गये। अभिञ्ञा तथा समापत्तियाँ लाभ कर, हिमवन्त में रहते समय, एक बार हिमवन्त से निकल, **राजगृह** नगर में राजोद्यान में पहुँचे। वहाँ रह, दूसरे दिन भिक्षा माँगने के लिए नगर में प्रवेश किया। राजा ने उसे देख कर बुलवाया और प्रासाद में बिठा, भोजन खिला, (उससे) राजोद्यान में ही रहने का वचन लिया। बोधिसत्त्व राज-भवन में भोजन करते हुए उद्यान में रहने लगे।

उस समय राजगृह नगर में एक ऐसा ब्राह्मण था, जो वस्त्रों में (अच्छे-बुरे) लक्षण देखता था। उसके बक्से में रक्खा हुआ जोड़ा वस्त्र...सब पूर्वोक्त सदृश ही। हाँ, माणवक के श्मशान को जाने के समय, बोधिसत्त्व पहले से ही जा कर, श्मशान द्वार पर बैठे रह, उसका फेंका हुआ जोड़ा-वस्त्र लेकर उद्यान चले गये। माणवक ने जाकर पिता को कहा। पिता ने 'राजा का विश्वस्त तपस्वी नष्ट न हो जाये' सोच बोधिसत्त्व के पास जाकर कहा—तपस्वी ! जिन वस्त्रों को तू ने लिया है, (उन्हें) छोड़ नष्ट न हो।

तपस्वी ने उत्तर दिया—श्मशान में छोड़े हुए चिथड़े, हमारे अनुकूल (=योग्य) हैं। हम शकुन मानने वाले (=कोतूहल मङ्गलिका) नहीं। फिर बुद्ध, प्रत्येक-बुद्ध, बोधिसत्त्व, किसी ने शकुन मानने की प्रसंसा नहीं की। इस लिए बुद्धिमान् को शकुन मानने वाला नहीं होना चाहिए। (यह) कह, ब्राह्मण को धर्मोपदेश दिया।

ब्राह्मण ने धर्म सुन, पूर्व-विचार (=दृष्टि) त्याग बोधिसत्त्व की शरण ग्रहण की। बोधिसत्त्व भी अविनष्ट-ध्यान रह, ब्रह्मलोकगामी हुआ। बुद्ध ने भी पूर्व-जन्म की इस कथा को ला, अभिसम्बुद्ध हुए रहने की अवस्था में, ब्राह्मण को धर्मोपदेश देते हुए, यह गाथा कही—

यस्स मङ्गला समूहता
उप्पाता सुपिना च लक्खणा च,
स मङ्गलदोसवीतिवत्तो
युगयोगाधिगतो न जातुमेति ॥

[जिस (आदमी) के मंगल (माङ्गलिक, अमाङ्गलिक सम्बन्धी विश्वास) उत्पात (=सूर्य्यग्रहण, चन्द्रग्रहण आदि उत्पात); स्वप्न (शुभ स्वप्न, अशुभ स्वप्न आदि); तथा लक्षण (चिन्ह, शुभ-अशुभ)—यह सब समूल नष्ट हो गये हैं; वह, इन मङ्गल-दोषों को लाँघ जाने वाले, इन द्वन्द धर्मों को जीत लेने वाला=, निश्चय पूर्वक (फिर) इस संसार में जन्म ग्रहण नहीं करता।]

जिस अर्हत्=क्षीणाश्रव के दृष्ट-मङ्गल, श्रुत-मङ्गल, मुत-मङ्गल—यह तीनों प्रकार के मङ्गल समूल उच्छिन्न हो गये हैं। **उप्पाता सुपिना च लक्खणा च,** 'इस प्रकार का चन्द्रग्रहण होगा, इस प्रकार का सूर्य्य-ग्रहण होगा, इस प्रकार का नक्षत्र-ग्रहण होगा, इस प्रकार का तारा (=उल्का) गिरेगा, तथा इस प्रकार का दिशा-दाह (=दिशा में आग लगना) होगा' यह पाँच महा-उत्पात हैं; नाना प्रकार के स्वप्न; शुभ-लक्षण, अशुभ-लक्षण, स्त्री-लक्षण, पुरुष-लक्षण, दास-लक्षण, दासी-लक्षण, असि-लक्षण, वृषभ-लक्षण, आयुध-लक्षण, वस्त्र-लक्षण, इस प्रकार के लक्षण जिसके यह मिथ्या विश्वास (=दृष्टि-स्थान) समूल नष्ट हो गये हैं, वह (आदमी) इन उत्पात आदि से अपना मङ्गल (=कल्याण) होना वा अमङ्गल होना नहीं विश्वास करता। **स मङ्गल दोस-वीतिवत्तो,** वह क्षीणाश्रव, सब मङ्गलों के दोषों का अतिक्रमण कर गया, लाँघ गया। **युगयोगाधिगतो न जातुमेति इति,** क्रोध तथा उपनाह (=बद्ध-वैर), म्रक्ष[1], पलास[2] आदि करके दो-दो एक साथ आये हुए क्लेश (=चित्त विकार) 'युग' कहलाते हैं। काम-योग, भव-योग, दृष्टियोग अविद्या-योग, यह चारों, संसार में जोतने वाले (=योजन भावतो) होने से

[1] **म्रक्ष—दूसरे के गुणों को नष्ट करना।**

[2] **प्लास—अपनी दूसरे गुणी के साथ तुलना करना।**

'योग' कहलाते हैं। वे युग तथा योग, युगयोग, उन्हें अधिगत करने वाला, जीतने वाला, लाँघ जाने वाला, सम्यक् अतिक्रान्त कर जाने वाला, क्षीणाश्रव भिक्षु, **न जातुमेति** फिर जन्म-ग्रहण करके, निश्चय से इस लोक में नहीं आता।

इस प्रकार बुद्ध ने इस गाथा से ब्राह्मण को धर्मोपदेश कर फिर, (आर्य) सत्यों को प्रकाशित किया। (आर्य-) सत्यों (के प्रकाशन) के अन्त में, वह सपुत्र ब्राह्मण श्रोतापत्ति-फल में प्रतिष्ठित हुआ।

बुद्ध ने जातक का सारांश निकाला। उस समय (भी) यही (दोनों जने) पिता पुत्र थे। तपस्वी तो मैं ही था।

८८. सारम्भ जातक

"**कल्याणिमेव मुञ्चेय्य...**" यह (गाथा) बुद्ध ने **श्रावस्ती** में विहार करते समय गाली सम्बन्धी शिक्षा-पद (=नियम) के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

दोनों कथायें, पूर्वोक्त **नन्दि विशाल**[1] जातक के समान ही हैं। लेकिन इस जातक में बोधिसत्त्व, गन्धार देश (=राष्ट्र) के तक्षशिला (नगर) में एक ब्राह्मण का सारम्भ नामक बैल हुआ।

ख. अतीत कथा

बुद्ध ने पूर्व-जन्म की यह कथा कह, अभिसम्बुद्ध हुए रहने की अवस्था में

[1] नन्दिविशाल जातक (२८)

यह गाथा कही—

कल्याणिमेव मुञ्चेय्य नहि मुञ्चेय्य पापिकं,
मोक्खो कल्याणिया साधु मुत्वा तपति पापिकं॥

[कल्याणकर वाणी को (मुँह से) छोड़े। पापी वाणी को (मुँह से) न छोड़े। कल्याण कर वाणी का छोड़ना श्रेयस्कर (=साधु) है, पापी वाणी को (मुंह से) छोड़ने वाला (पीछे) तपता है।]

कल्याणिमेव मुञ्चेयय्य. . ." असत्य, कठोर, व्यर्थ, चुगली (की बात)—इन चार दोषों से मुक्त, कल्याणकर, सुन्दर, दोष रहित वाणी ही (मुँह से) निकाले, छोड़े, बोले। **नहि मुञ्चेय्य पापिकं,** पापी, बुरी, दूसरों को अप्रिय, अरुचिकर, (वाणी) न निकाले, न बोले। **मोक्खो कल्याणिया साधु,** कल्याणकारी वाणी का बोलना ही, इस लोक में अच्छा है, सुन्दर है, भद्र है। **मुत्वा तपति पापिकं,** पापी, कठोर वाणी को छोड़कर, निकाल कर, कह कर, वह आदमी संताप को प्राप्त होता है, सोचता है, दुःख पाता है।

इस प्रकार बुद्ध ने यह धर्म-देशना ला, जातक का सारांश निकाला। उस समय का ब्राह्मण (अब का) **आनन्द** था, ब्राह्मणी (अब की) **उत्पलवर्णा** (**भिक्षुणी**) थी, (लेकिन) **सारम्भ** तो मैं ही था।

८६. कुहक जातक

"**वाचाव किर ते आसि**", यह (गाथा) बुद्ध ने जेतवन में विहरते समय, एक ढोंगी=पाखण्डी के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

कुहक-कथा उद्दाल जातक[1] में आयेगी।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में बाराणसी में (राजा) ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय, एक ग्राम के आश्रय में एक कुटिल-हृदय, ढोंगी जटिल तपस्वी रहता था। एक गृहस्थ (कुटुम्बी) उसके लिए, जंगल में एक पर्णशाला बनवा उसे वहाँ बसा, अपने घर में, उसकी प्रणीत-भोजन से सेवा करता था। उस (गृहस्थ) ने, उस कुटिल जटिल (=तपस्वी) को, 'यह सदाचारी है' विश्वास कर, चोरों के डर से, सोने के सौ सिक्के उसकी पर्णशाला में ले जाकर, वहाँ ज़मीन में गाड़ कर, कहा—"भन्ते! इसे देखते हैं?" तपस्वी बोला—"आवुस! प्रव्रजितों को इस प्रकार कहना अनुचित है। हमें पराई चीज़ में लोभ का नाम नहीं।" "भन्ते! अच्छा" कह उसकी बात पर विश्वास कर वह चला गया।

दुष्ट तपस्वी ने 'इतने से गुज़ारा चल सकता है' (सोच), कुछ दिन बिता कर, उस सोने को ले, रास्ते के बीच में एक जगह रख, आकर पर्णशाला ही में रह, फिर एक दिन उस (गृहस्थ) के घर में भोजन कर चुकने पर कहा—आवुसो! हमने चिर-काल तक तुम्हारा आश्रय ग्रहण किया। चिरकाल तक एक ही स्थान पर रहने से मनुष्यों से संसर्ग (=लगाव) हो जाता है। प्रव्रजितों के लिए संसर्ग (=मोह) चित्त का मैल है। इस लिए, (अब) हम जाते हैं।

बार बार आग्रह करने पर भी, उसने (अधिक) ठहरना स्वीकार न किया। 'ऐसा है, तो पधारें भन्ते!' कह, वह उसे ग्राम के द्वार तक छोड़ कर लौट आया।

तपस्वी थोड़ी दूर जाकर 'इस गृहस्थ को, मुझे धोखा देना चाहिए' (सोच) अपनी जटाओं के अन्दर एक तिनका रख कर लौट आया।

गृहस्थ ने पूछा—"भन्ते! क्यों लौट आये?"

"आवुसो! तुम्हारे घर की छत में से मेरी जटाओं में एक तिनका

[1] उद्दाल जातक (४८७)

गिर पड़ा। बिना दी हुई चीज़ लेना, प्रव्रजित के लिए मुनासिब नहीं। उस (तिनके) को लेकर आया हूँ।"

गृहस्थ ने 'भन्ते ! छोड़ कर जायें' कह 'अहो ! आर्य्य कितने सन्देहशील हैं; पराया तिनका तक नहीं लेते' (सोच) प्रसन्न हो, प्रणाम कर विदा किया।

उस समय बोधिसत्त्व ने, सामान के लिए प्रत्यन्त (=देश) को जाते हुए, उसी गृहस्थ के घर में निवास किया था। तपस्वी की बात सुन 'इस दुष्ट तपस्वी ने, अवश्य इस गृहस्थ का कुछ न कुछ उड़ाया होगा' सोच, पूछा—सौम्य ! क्या तू ने इस तपस्वी के पास कुछ रक्खा है ?

"सौम्य ! है, सोने के सौ सिक्के।"

"तो जा, उस की ख़बर ले।"

उसने पर्णशाला जाकर, उसे वहाँ न देख, जल्दी से आकर कहा—"सौम्य ! नहीं है।"

"तेरे सोने को और किसी ने नहीं लिया, उस कूट-तपस्वी ने ही लिया है, आ उसका पीछा करें, उसे पकड़ें।"

(दोनों ने) वेग से जाकर, कुटिल तपस्वी को पकड़, हाथों और पैरों से पीट कर, उससे सोना मँगवा कर, लिया।

बोधिसत्त्व ने सोने को देख 'सौ सिक्के ले जाते लज्जा नहीं आई, तिनके में शक हुआ' कह, उसकी निन्दा कर, यह गाथा कही—

वाचाव किर ते आसि सण्हा सखिलभाणिनो,
तिणमत्ते असज्जित्थो नो च निक्खसतं हरं॥

[प्रियभाषी ! तेरी वाणी भर ही मधुर थी। तृण-भर ले जाते तो तुझे शक हुआ, लेकिन सौ सिक्के (सोना) ले जाते नहीं।]

वाचाव किर ते आसि सण्हा सखिलभाणिनो, 'प्रव्रजितों को बिना दिया तिनका भी लेना नामुनासिब है' इस प्रकार मृदु वचन बोलते हुए की, तेरी केवल बात चिकनी थी। **तिणमत्ते असज्जित्थो,** कुटिल तपस्वी ! एक तिनके में सन्देह (=कौकृत्य) करता हुआ, तू उसमें आसक्त (=लग्न) हुआ जाता

था, **नो च निक्खसतं हरं**, लेकिन इन सौ सिक्कों को ले जाते हुए तू, अनासक्त निर्लग्न ही रहा !

इस प्रकार बोधिसत्त्व उसकी निन्दा कर, 'हे कुटिल जटिल (=तपस्वी)! अब ऐसा मत करना' कह, उपदेश दे, स्वकर्मानुसार (परलोक) गया ।

बुद्ध ने यह धर्म देशना ला 'भिक्षुओ ! न केवल अभी यह भिक्षु पाखंडी है, पहले भी पाखंडी ही रहा है', कह, जातक का सारांश निकाला। उस समय का कुटिल तपस्वी (अब का) पाखण्डी-भिक्षु था। पण्डित पुरुष तो मैं ही था।

९०. अकतञ्ञु जातक

"**यो पुब्बे कतकल्याणो**..." यह (गाथा) बुद्ध ने **जेतवन** में विहार करते समय, **अनाथपिण्डिक** के सम्बन्ध में कही।

क. वर्तमान कथा

प्रत्यन्त (-देश) वासी एक सेठ उसका अदृष्ट मित्र था। उसने प्रयन्त देश की पैदावार से पाँच सौ गाड़ियाँ भरकर, अपने आदमियों को कहा—"भो ! जाओ ! इस सामान को **श्रावस्ती** ले जाकर, हमारे मित्र बड़े सेठ अनाथ-पिण्डिक की उपस्थिति में बेच कर, इसके बदले में सामान ले आओ।"

उन्होंने 'अच्छा' कह, उसकी बात स्वीकार कर, श्रावस्ती जा, बड़े सेठ से मिल, उसे भेंट दे, वह बात कही।

बड़े सेठ ने 'स्वागत है' कह, उनको निवास स्थान और खर्चा (=सीधा) दिलवा, मित्र का कुशल समाचार पूछ (उस) सामान को बेच उसके बदले में

सामान दिलवाया। उन्होंने प्रत्यन्त देश वापिस लौट, वह हाल अपने सेठ को कहा।

आगे चलकर, **अनाथपिण्डिक** ने भी, उसी तरह पाँच सौ गाड़ियाँ वहाँ भेजीं। मनुष्य वहाँ जाकर, भेंट दे प्रत्यन्त (-देश) के सेठ से मिले। उसने 'कहाँ से आये?' पूछा।

"**श्रावस्ती** से, तुम्हारे मित्र **अनाथपिण्डिक** के पास से"।

होगा किसी आदमी का नाम **अनाथपिण्डिक**—कह, उनकी हँसी की। फिर भेंट लेकर, 'तुम जाओ' कहा और चलता किया। न निवास-स्थान ही दिया, न खर्चा। उन्होंने अपने आप सामान बेंच उसके बदले में सामान ले, **श्रावस्ती** आकर, सेठ को सब हाल कह सुनाया।

उस प्रत्यन्त-वासी (सेठ) ने फिर एक बार उसी तरह पाँच सौ गाड़ियाँ **श्रावस्ती** भेजीं। मनुष्यों ने भेंट लेकर बड़े सेठ से भेंट की। उन्हें देख, **अनाथपिण्डिक** के घर के आदमी 'स्वामी! इनके निवास, भोजन तथा खर्चे का हम ख्याल रक्खेंगे' कह, उनकी गाड़ियों को नगर के बाहर, ऐसे वैसे ही स्थान पर खुलवा कर 'तुम यहीं रहो। तुम्हारा यागु-भात और खर्चा यहीं होगा' कह, जाकर नौकर चाकरों को इकट्ठा कर, आधीरात के समय, पाँच सौ की पाँच सौ गाड़ियाँ लुटवा, उनके ओढ़ने बिछावने भी फाड़, बैलों को भगा, गाड़ियों को बिना पहिये की कर, ज़मीन पर डाल, पहियों तक को लेकर चले गये। प्रत्यन्तवासी, अपने वस्त्रों तक से हाथ धो, डर के मारे जल्दी से भाग कर प्रत्यन्त-देश पहुँचे। सेठ के आदमियों ने, बड़े सेठ को वह हाल कहा। उसने 'यह कहने योग्य बात है' सोच, बुद्ध के पास जाकर, वह सब हाल, आरम्भ से सुनाया।

बुद्ध ने 'हे गृहपति! न केवल अभी वह प्रत्यन्त-वासी ऐसा है, वह पहले भी ऐसा ही था' कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में बाराणसी में (राजा) **ब्रह्मदत्त** के राज्य करने के समय, बोधिसत्त्व **बाराणसी** में महावैभवशाली सेठ हुआ। एक प्रत्यन्त-वासी सेठ

उसका अदृष्ट मित्र था।......सारी अतीत-कथा, वर्तमान कथा के सदृश ही। अपने आदमियों द्वारा 'आज हमने ऐसा किया' कहने पर बोधिसत्त्व ने 'जो अपने पर पहले किये उपकार को नहीं याद रखते, उनको पीछे ऐसा ही (फल) मिलता है' कह, सम्प्राप्त मनुष्यों को धर्मोपदेश देते हुए, यह गाथा कही—

यो पुब्बे कतकल्याणो कतत्थो नावबुज्झति,
पच्छा किच्चे समुप्पन्ने कत्तारं नाधिगच्छति ॥

[जो कोई उपकृत, पहले किये उपकार को याद नहीं रखता; उसको (फिर) पीछे काम पड़ने पर, (कोई) उपकार करने वाला नहीं मिलता।]

क्षत्रियादि (वर्णों) में **यो** (=जो) कोई आदमी **पुब्बे** (=पहले) प्रथमतर दूसरे से **कतकल्याणो** किये उपकार वाला (=उपकृत) **कतत्थो**, काम समाप्त होने पर, दूसरे का अपने पर किया उपकार और अर्थ न जानता है, वह **पच्छा** अपने **किच्चे समुप्पन्ने** (=काम पड़ने पर) उस काम का **कत्तारं** (=करनेवाला) **नाधिगच्छति** नहीं पाता है।

इस प्रकार बोधिसत्त्व, इस गाथा से धर्मोपदेश दे, दानादि पुण्यकर्म करके, कर्मानुसार (परलोक) गये। बुद्ध ने यह धर्म-देशना ला, जातक का सारांश निकाला। उस समय के प्रत्यन्त वासी ही अब के भी प्रत्यन्त-वासी हैं। लेकिन बाराणसी सेठ मैं ही था।

पहला परिच्छेद

१०. लित्त वर्ग

९१. लित्त जातक

"**लित्तं परमेन तेजसा**" यह (गाथा) बुद्ध ने जेतवन में विहार करते समय बिना सोचे विचारे उपयोग करने के सम्बन्ध में कही।

क. वर्तमान कथा

उस समय भिक्षुओं को, जो चीवर आदि मिलते थे, वे उन्हें प्रायः बिना सोचे विचारे ही उपयोग में लाते थे। (चीवर आदि) चारों प्रत्ययों[१] को बिना सोचे समझे उपयोग में लाने के कारण, वे निरय (=नरक) तिरिश्चीन योनियों से मुक्त न होते थे। बुद्ध ने इस बात को जान, भिक्षुओं को अनेक प्रकार से धर्म-कथा कह, बिना सोचे विचारे (किसी चीज़) के उपयोग में लाने के दुष्परिणाम दिखा कर कहा—"भिक्षुओ! एक भिक्षु के लिए, चारों प्रत्ययों के मिलने पर, उन्हें बिना सोचे समझे उपयोग में लाना अनुचित है। इस लिए अब से, सोच विचार कर, उपयोग में लाया करो।" (यह कह) प्रत्यवेक्षणा (=सोच विचार) की विधि (=क्रम) स्पष्ट करते हुए—

"भिक्षुओ! यहाँ भिक्षु सोच विचार कर चीवर का सेवन (=उपयोग) करता है, शीत के प्रतिघात के लिए..."[२] को पाँति (तंति) करके 'भिक्षुओ! चारों प्रत्ययों का सोच विचार कर सेवन करना उचित है। बिना सोचे

[१] चीवर (=वस्त्र,) २ पिण्डपात (भोजन), ३ शयनासन (ओढ़न-बिछावन), ४ गिलान प्रत्यय (=भैषज्य आदि)।

[२] इध भिक्खवे भिक्खु पटिसंखा योनिसो.... (खुद्दक पाठ)।

विचारे उपयोग में लाना हलाहल-विष को उपयोग में लाने के सदृश है। पुराने (समय में) आदमियों ने बिना सोचे विचारे उपयोग (=परिभोग) करने के दुष्परिणाम को न जान कर विष खा लिया, और उस से विपाक (=फल) मिलने के समय, महान् दुःख भोगा" कह, पूर्व जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में **बाराणसी,** में (राजा) **ब्रह्मदत्त** के राज्य करने के समय, बोधिसत्त्व, एक महान् धनवान् कुल में उत्पन्न होकर, आयु बड़ी होने पर जुआरी हो गये। एक दूसरा कुटिल जुआरी बोधिसत्त्व के साथ खेलते समय, जब उसकी अपनी जीत होने लगती, तब तो धाँधली न करता लेकिन जब हार होती दीखती, तो गोटी को मुँह में डाल कर, गोटी खो गई (करके) खेल में धाँधली मचा चल देता।

बोधिसत्त्व ने उसका कारण जान 'अच्छा ! इसका उपाय करूँगा' सोच, गोटियाँ ले, उन्हें अपने घर ले जाकर हलाहल विष से रंग, बार बार सुखा कर, उन्हें ले, उसके पास जाकर कहा—"सौम्य ! आ जुआ खेलें।"

उसने 'सौम्य ! अच्छा' कह, क्रीड़ा-मण्डल तैयार कर, उसके साथ खेलते हुए, अपनी हार होती देख एक गोटी मुँह में डाल ली। बोधिसत्त्व ने उसे ऐसा करते देख "निगल, पीछे पता लगेगा कि यह क्या है ?" कह, उसे दोष देने के लिए यह गाथा कही—

लित्तं परमेन तेजसा
गिलमक्खं पुरिसो न बुज्झति,
गिल रे ! गिल पापधुत्तक !
पच्छा ते कटुकं भविस्सति ॥

[बड़े तेज (विष) से लिपटी हुई गोटी को निगलने वाला, उसे उस समय नहीं जानता। अरे ! पापी धूर्त ! निगल, निगल ! पीछे तू इसका कड़वा फल भोगेगा।]

लित्तं, माखी हुई, रंगी हुई। **परमेन तेजसा,** उत्तम तेज हलाहल विष से। **गिलं,** निगलते हुए। **अक्खं,** गोली (=गोटी)। **न बुज्झति,** नहीं जानता कि

यह निगलने से, मेरा क्या करेगी। गिल रे, अरे निगल। गिल, फिर कहता है, ज़ोर डालने के लिए। पच्छा ते कटुकं भविस्सति, तेरे इस गोटी को निगलने के बाद, यह विष तीक्ष्ण होगा।

बोधिसत्त्व के कहते ही कहते, वह विष के जोर से मूर्च्छित हो, आँखें बदल, शरीर को झुका गिर पड़ा।

बोधिसत्त्व 'अब इसे जीवनदान देना चाहिए' (सोच) दवाई मिलाकर, उल्टी की औषधि दे, वमन करा, घी, गुड़, मधु, शक्कर आदि खिला, अरोगी कर, 'फिर ऐसा न करना'—यह उपदेश दे, दान आदि पुण्य कर्म कर, अपने (कर्मानुसार) परलोक गये।

बुद्ध ने इस धर्म-देशना को ला "भिक्षुओ! बिना सोचे समझे, (प्रत्ययों का) परिभोग, वैसा ही होता है, जैसे बिना सोचे समझे हलाहल (विष) का परिभोग" कह जातक का सारांश निकाला।

उस समय पण्डित धूर्त मैं ही था। कुटिल धूर्त यहाँ नहीं कहा गया। जैसे यहाँ, वैसे ही हर जगह। जो इस समय (=बुद्ध के समय) नहीं है, वह नहीं कहा गया है।

९२. महासार जातक

"उक्कट्ठे सूरमिच्छन्ति..." यह (गाथा) बुद्ध ने जेतवन, में विहार करते समय, आयुष्मान् आनन्द के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

एक समय कोशल-नरेश की स्त्रियों ने सोचा—"(लोक में) बुद्ध का उत्पन्न होना दुर्लभ है। वैसे ही मनुष्य-जन्म का लाभ दुर्लभ है, और फिर सम्पूर्ण-

न्द्रियों वाला होना और भी दुर्लभ है। हम ऐसा दुर्लभ अवसर पाकर भी, अपनी रुचि के अनुसार न विहार जाने पाती हैं न धर्म सुनने, न पूजा करने और न दान देने। ऐसे रहती हैं, जैसे सन्दूक़ में बन्द करके रक्खी गई हों। सो, हम राजा को कहकर, एक ऐसे भिक्षु को बुलवाकर जो हमें धर्मोपदेश देने के योग्य हो, उस से धर्म सुनें। उस से जो (ग्रहण) कर सकेंगी, करेंगी, दान आदि पुण्य-कर्म करेंगी। इस प्रकार हमारा यह सुअवसर सफल होगा।"

उन सब ने राजा के पास जा, अपना विचार कहा। राजा ने 'अच्छा' कह स्वीकार किया।

एक दिन राजा ने उद्यान क्रीड़ा खेलने की इच्छा से माली को बुलाकर कहा—"उद्यान साफ करो।" माली ने उद्यान साफ करते हुए एक वृक्ष के नीचे बुद्ध को बैठे देख, राजा के पास जाकर कहा—"देव! उद्यान साफ है। और एक वृक्ष के नीचे भगवान् बैठे हैं।"

राजा, 'सौम्य! अच्छा, बुद्ध के पास धर्म भी सुनेंगे' (कह) सजे रथ पर चढ़, उद्यान पहुँच बुद्ध के पास गया।

उस समय **छत्रपाणी** नामक एक **अनागामी** उपासक बुद्ध के पास बैठा धर्म सुन रहा था। राजा, उसे देख, कुछ देर संदिग्ध खड़े रह, फिर 'यह बुरा आदमी न होगा, यदि बुरा होता, तो बुद्ध के पास बैठ कर धर्म न सुनता। सो यह अच्छा ही आदमी होगा' सोच, बुद्ध के पास जा, प्रणाम कर, एक ओर बैठ गया। उपासक ने, बुद्ध का अगौरव होने के डर से, राजा के आने पर खड़ा होना, वा प्रणाम करना, आदि कुछ नहीं किया। इससे राजा उसके प्रति असन्तुष्ट हुआ।

बुद्ध ने 'राजा असन्तुष्ट हुआ' जान, उपासक की प्रशंसा की—"महाराज! यह उपासक बहुश्रुत है, आगम (=धर्म) का ज्ञाता है, और काम-भोगों में वीतरागी है।"

राजा ने 'यह कोई ऐसा ही नहीं होगा, जिसकी बुद्ध प्रशंसा कर रहे हैं' सोच कर कहा—"उपासक! जिस किसी चीज़ की ज़रूरत हो, कहना"। उपासक ने 'अच्छा' कह, स्वीकार किया। राजा, बुद्ध के पास धर्मोपदेश सुन, बुद्ध की प्रदक्षिणा कर चला गया।

एक दिन प्रासाद के ऊपर खिड़की खोले हुए, खड़े उसने देखा

कि प्रातःकाल का भोजन करके, छतरी हाथ में लिये वह उपासक, जेतवन जा रहा है। उसने उसे बुलवा कर कहा—"उपासक! तू बहु-श्रुत है। हमारी स्त्रियाँ धर्म सुनना और सीखना चाहती हैं। अच्छा हो, यदि तू उन को धर्म सुनावे।"

"देव! राजा के अन्तःपुर में, गृहस्थों का धर्मोपदेश देना या बाँचना, मुनासिब नहीं; आर्यों (=भिक्षुओं) का ही मुनासिब है।"

राजा ने 'यह सत्य ही कहता है' (सोच), उसे भेज, स्त्रियों को बुलवाकर पूछा—"भद्रे! मैं तुम्हें धर्मोपदेश करने के लिए तथा बाँचने के लिए, बुद्ध के पास जा कर, एक भिक्षु माँगता हूँ। अस्सी महास्थविरों में से किस भिक्षु को माँगूं?" उन सब ने सलाह करके धर्म भाण्डागारिक आनन्द स्थविर को ही पसन्द किया।

राजा ने बुद्ध के पास जा, प्रणाम कर, एक ओर बैठ कर, कहा—"भन्ते! हमारे घर की स्त्रियाँ आनन्द स्थविर से धर्म सुनना और सीखना चाहती हैं। अच्छा हो, यदि स्थविर हमारे घर में उपदेश दें और बाँचें।"

बुद्ध ने 'अच्छा' कह, स्वीकार कर स्थविर को आज्ञा दी।

उस समय से लेकर राजा की स्त्रियाँ, स्थविर के पास धर्म सुनती और सीखतीं। एक दिन राजा की चूड़ामणि खो गई। राजा ने उसको खोया जान सुन, अमात्यों को बुला कर आज्ञा दी कि अन्तःपुर के सब आदमियों को पकड़ कर, उनसे चूड़ामणि निकलवाओ। अमात्य स्त्रियों से आरम्भ करके, चूड़ामणि खोजते हुए, उसके न मिलने पर, लोगों को तंग करने लगे। उस दिन आनन्द स्थविर राजभवन में गये। जैसे पहले स्त्रियाँ स्थविर को देखते ही हृष्ट-तुष्ट हो धर्म सुनती और सीखती थीं, उस दिन वैसा न कर वे सब दुःखित-चित्त ही रहीं।

स्थविर के 'आज तुम, ऐसी कैसे हो गईं?' पूछने पर, वे बोलीं—"भन्ते! राजा की चूड़ामणि खो गई (करके) अमात्य स्त्रियों से लेकर राज-भवन के अन्दर के सभी आदमियों को तंग करते हैं। नहीं जानतीं कि उसका क्या होगा? सो उसी से हम दुःखी हैं।"

स्थविर ने 'चिन्ता न करो' कह, उन्हें आश्वासन दे, राजा के पास जा, बिछे आसन पर बैठ कर पूछा—"महाराज! क्या तुम्हारी मणि खो गई?"

"भन्ते ! हाँ।"

"महाराज ! क्या उसे खोजवा सके ?"

"भन्ते ! अन्दर के सभी लोगों को पकड़, कष्ट देकर भी, नहीं खोजवा सका।"

"महाराज बिना लोगों को कष्ट दिये ही, ढूँढ़ निकालने का एक उपाय है।"

"भन्ते ! कौन सा उपाय ?"

"महाराज ! पिण्ड-दान।"

"भन्ते ! कैसा पिण्ड-दान ?"

"महाराज ! जिन जिन पर सन्देह हो, उन सब को गिन कर, एक एक के हाथ में एक एक पराल (=फूस) का गोला वा मिट्टी का गोला देकर, उन्हें कहा जाना चाहिए कि प्रातःकाल ही इन (गोलों) को लाकर अमुक स्थान पर डालें। जिसने (चूड़ामणि) लिया होगा, वह उस में डाल कर ले आयेगा। यदि पहले ही दिन लाकर डाल दें, तो अच्छा और यदि न डालें तो दूसरे दिन, तीसरे दिन भी वैसा ही किया जाना चाहिए। इस प्रकार लोगों को कष्ट भी न होगा, और मणि भी मिल जायगी।" ऐसा कह कर स्थविर चले गये।

राजा ने (स्थविर के) कथनानुसार तीन दिन डलवाये। (लोग) मणि नहीं लाये। स्थविर ने तीसरे दिन आकर पूछा—"महाराज ! क्या मणि डाल दी ?"

"भन्ते ! नहीं डालते।"

"तो महाराज ! (प्रासाद के) महान तल्ले पर ही, किसी छिपे हुए स्थान में पानी की भरी हुई मटकी रखवा कर, उसके गिर्द क़नात तनवा कर, राजभवन के स्त्री-पुरुषों को कहें कि, वह सब चादर ओढ़ ओढ़ कर एक एक करके, क़नात के अन्दर घुस, हाथ धोकर आयें।" यह उपाय बता कर, स्थविर चले गये। राजा ने वैसा ही करवाया।

मणि चुराने वाले ने सोचा—"यह असम्भव है कि धर्म-भाण्डागारिक इस मुक़दमे को अपने हाथ में ले कर, बिना मणि निकलवाये रुक रहें। अब मणि डाल देनी चाहिए।" (यह सोच) वह मणि को छिपा कर ले जा

क़नात के अन्दर घुस, चाटी में डाल कर निकल आया। सब के (बाहर) निकल आने पर, पानी फेंकने पर, मणि मिल गई।

राजा सन्तुष्ट हुआ कि स्थविर के कारण, बिना लोगों को कष्ट दिये ही मणि मिल गई। (महल) के अन्दर के आदमी भी प्रसन्न हुए कि स्थविर के कारण हम महादुःख से मुक्त हो गये। 'स्थविर के प्रताप से राजा की मणि मिल गई' (करके) स्थविर का प्रताप सारे नगर और भिक्षु-संघ में प्रसिद्ध हो गया। धर्म-सभा में बैठे भिक्षु (आनन्द) स्थविर की प्रशंसा करने लगे—"आवुसो! आनन्द स्थविर ने अपने बहु-श्रुतपन से, पाण्डित्य से, उपाय-कुशलता से, बिना लोगों को कष्ट होने दिये, ढंग से ही राजा की मणि खोजवा दी।"

बुद्ध ने आकर पूछा—"भिक्षुओ! इस समय बैठे क्या बातचीत कर रहे हो?" "यह बात-चीत" कहने पर, (बुद्ध ने) "भिक्षुओ! न केवल अब आनन्द ही ने दूसरों के हाथ पड़ी हुई चीज़, निकलवाई, पूर्व समय में भी पण्डितों ने बिना लोगों को कष्ट दिये, ढंग (=उपाय) से ही तिरश्चीनों के हाथ में पड़ी हुई चीज़ निकलवाई थी" कह, पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में **बाराणसी** में (रजा) **ब्रह्मदत्त** के राज्य करने के समय, बोधिसत्त्व सब शिल्पों (=शास्त्रों) में सम्पूर्णता प्राप्त कर, उसी (राजा) के अमात्य हुए। एक दिन राजा ने, अनेक अनुयाइयों के साथ, उद्यान में जा (वहाँ) जंगल में घूम, जलक्रीड़ा करने की इच्छा से, मङ्गल-पुष्करिणी में उतर, अन्तःपुर की स्त्रियों को भी पुकारा। स्त्रियाँ, अपने अपने सिर के, तथा गले के गहनों को उतार (अपने अपने) ओढ़नों में डाल, (उन्हें) पेटियों पर रख, दासियों को सौंप, पुष्करिणी में उतरीं।

उस बाग़ में रहने वाली, शाखा पर बैठी हुई एक बन्दरी देवी को, ज़ेवरों को उतार, चादर में डाल पेटी पर रखते देख, उसके मुक्ताहार को पहनने की इच्छा से बैठकर देखने लगी कि दासी कब गहनों की ओर से लापरवाह होती है। उनकी रखवाली करती हुई दासी इधर उधर देखती हुई, बैठी ही बैठी ऊँघने लगी। बन्दरी उसे लापरवाह देख हवा के वेग से उतर, महा

मुक्ताहार को (अपनी) गरदन में डाल, हवा की तेज़ी से उछल, एक शाखा पर जा, दूसरी बन्दरियों के देख लेने के डर से, उस (हार) को एक वृक्ष की खोल में छिपा, खुशी खुशी बैठ कर, उसकी रखवाली करने लगी।

उस दासी ने भी जाग कर, मुक्ताहार को न देख, काँपते हुए और कोई उपाय न देख ज़ोर से चिल्लाना शुरू किया—"आदमी, देवी का मुक्ताहार ले कर भाग गया।"

पहरेदारों ने जहाँ तहाँ से इकट्ठे हो, उसकी बात सुन, राजा से निवेदन किया। राजा ने कहा—"चोर को पकड़ो।" आदमी बाग़ से निकल 'चोर को पकड़ो', 'चोर को पकड़ो' करके, इधर उधर देखने लगे।

एक उगाही करने वाले दिहाती आदमी ने, उस शब्द को सुना, तो वह काँपता हुआ भागा। उसे देख, राजकीय आदमियों ने 'यही चोर होगा' सोच, उसका पीछा कर, पकड़, (उसे) पीटा—"अरे! दुष्ट चोर! इस प्रकार का महा-मूल्यवान् गहना (=कण्ठा) लिये जाता है।"

उसने सोचा—"यदि मैंने कहा कि मेरे पास नहीं है, तो आज मेरी जान न बचेगी। (यह लोग) मुझे पीट पीट कर ही मार देंगे। इसे स्वीकार कर लूँ।" उसने कहा—"स्वामी! हाँ, मैंने लिया है।" उसे बाँध कर राजा के पास ले गये। राजा ने भी पूछा—"लिया है तू ने महा-मूल्यवान् कण्ठा?"

"देव! हाँ।"

"अब, वह कहाँ है?"

"देव! मैंने कभी पहले, कोई क़ीमती मिंजा (=पलंग) भी नहीं देखा। सेठ ने मुझे (कह कर) मुझ से, महामूल्यवान् कण्ठे की चोरी कराई है। सो, मैंने वह लेकर, उसे दे दिया। (अब) वह जानता है।"

राजा ने सेठ को बुलवा कर पूछा—"तूने इसके हाथ से महामूल्यवान् कण्ठा लिया है?"

"देव! हाँ।"

"वह कहाँ है?"

"मैं ने पुरोहित को दे दिया।"

पुरोहित को भी बुलवा कर, वैसे ही पूछा। उसने भी स्वीकार कर कहा—"मैंने गन्धर्व को दिया।" उसे भी बुलवा कर पूछा—"तू ने पुरोहित के हाथ

से महा-मूल्यवान् कण्ठा लिया ?"

"देव ! हाँ।"

"वह कहाँ है ?"

"मैंने चित्त-विकृति के कारण वर्ण-दासी (=वेश्या) को दे दिया।" उसे भी बुलवा कर पूछा—उसने कहा—"नहीं लिया।" उन पाँच जनों को पूछते ही पूछते सूर्य्यास्त हो गया।

'अब विकाल हो गया, कल देखेंगे' (सोच) उन पाँचों जनों को अमात्यों को दे, राजा नगर को चला गया। बोधिसत्त्व ने सोचा—"यह कण्ठा अन्दर के आदमियों में खोया गया है, और यह गृहपति बाहर का आदमी है। द्वार पर कड़ा पहरा है, इस लिए अन्दर का आदमी भी उसे लेकर भाग नहीं सकता। इस लिए न तो बाहर के आदमी ने लिया है, न अन्दर (घर) के। मालूम होता है उद्यान में ही घूमने वाले किसी ने उड़ाया है। इस दरिद्र आदमी ने 'मैंने सेठ को दिया' अपने को बचाने के लिए कह दिया होगा, और सेठ ने भी 'मैंने पुरोहित को दिया,' इकट्ठे होकर मुक्त होंगे सोच, कह दिया होगा, और पुरोहित ने भी 'मैंने गवैय्ये (=गन्धर्व) को दिया' कारागार में गवैय्ये के कारण सुख से रहेंगे, सोच, कह दिया होगा, और गवैय्ये ने भी 'मैंने वेश्या को दिया' (कारागार में) अनुत्कण्ठित रहेंगे, सोच, कह दिया होगा। यह पाँचों के पाँचों चोर नहीं होंगे। उद्यान में बन्दर बहुत हैं। कण्ठा, एक न एक बन्दरी के हाथ लगा होगा।"

उसने राजा के पास जा कर कहा—"महाराज ! चोरों को मेरे जिम्मे करें। मैं चोरी का पता लगाऊँगा" राजा ने 'अच्छा ! पण्डित ! पता लगा' (कह) उसको चोर सौंपे।

वोधिसत्त्व ने अपने नौकरों (=दासों) को बुलवा कर आज्ञा दी कि उन पाँचों आदमियों को एक जगह रख, उनके चारों ओर पहरा लगा, जो वह एक दूसरे को कहें, (उसे) कान देकर, (सुन) मेरे पास आकर कहें। यह कह बोधिसत्त्व चले गये। उन आदमियों ने वैसा ही किया।

तब, उन मनुष्यों के इकट्ठे होकर बैठने के समय, सेठ ने उस गृहपति से पूछा—"अरे दुष्ट गृहपति ! तू ने मुझे, या मैंने तुझे इस से पहले कहाँ देखा ? तू ने मुझे कण्ठा कब दिया ?" "स्वामी ! मैं महा-मूल्यवान् वृक्ष के पाँवों के

मिंजे (=पलंग) तक को नहीं जानता। आप के कारण मैं छूट जाऊँगा। (सोच) मैंने ऐसा कहा। स्वामी ! क्रोध न करें।" पुरोहित ने भी सेठ से पूछा—सेठ जो तुझे इसने नहीं दिया, वह तूने मुझे कैसे दिया ?

"हम दोनों बड़े आदमी हैं; हम दोनों के इकट्ठे होने से काम जल्दी होगा, सोच कहा।" गवैय्ये ने भी पुरोहित से पूछा—ब्राह्मण ! तूने मुझे कण्ठा कब दिया ?

"मैं, तेरे कारण, रहने की जगह सुख से रहूँगा, सोच, कह दिया।"

वर्ण-दासी (=वेश्या) ने भी गन्धर्व (=गवैय्ये) से पूछा—"अरे ! दुष्ट गन्धर्व ! मैं कब तेरे पास गई, या कब तू मेरे पास आया ? तूने मुझे कण्ठा कब दिया ?" "भगिनि ! क्रुद्ध क्यों होती है ? 'हमारे पाँचों के इकट्ठे रहने से गृहस्थी हो जायगी, अनुत्कण्ठित हो, सुख से रहेंगे' सोच, कह दिया।"

बोधिसत्त्व ने अपने नियोजित आदमियों से यह बात चीत सुन, वह आदमी चोर नहीं हैं, यह निश्चय पूर्वक जान 'बन्दरी का लिया हुआ कण्ठा उस से ढंग से गिरवाऊँगा' सोच, लाल रंग की ऊन की बहुत सी कण्ठियाँ बनवा, उद्यान की बन्दरियों को पकड़वा, वे कण्ठियाँ, उनके हाथ, पैर गरदन आदि में पहनवा, उन्हें छोड़ दिया। वह बन्दरी कण्ठे की रखवाली करती हुई, उद्यान में ही बैठी रही।

बोधिसत्त्व ने आदमियों को आज्ञा दी—"तुम बाग़ में जाकर, सब बन्दरियों की परीक्षा करो। जिस के पास वह कण्ठा देखो, उसे त्रास दिखा कर, उस से वह कण्ठा ले लो।" उन बन्दरियों ने भी, 'हमें कंठियाँ मिलीं' सोच प्रसन्न हो, उद्यान में घूमते घूमते उस बन्दरी के पास जाकर कहा—"देखो ! हमारे जेवर।" वह ईर्षा को सहन न कर सकने के कारण 'इस लाल रंग के धागे के जेवरों से क्या ?' कह, (अपना) मुक्ताहार पहन कर निकली।

उन आदमियों ने उसे देख, उस से कण्ठा छुड़वा, बोधिसत्त्व को लाकर दिया। उसने राजा के पास ले जाकर, दिखा कर कहा—"देव ! यह है तुम्हारा कण्ठा। वह पाँचों आदमी निर्दोष हैं। इसे, उद्यान की बन्दरी ने लिया था।"

"लेकिन, हे पण्डित ! तूने कैसे जाना कि यह बन्दरी के हाथ लग गया, (और फिर) कैसे तू ने लिया ?"

उसने सब कह सुनाया।

राजा ने सन्तुष्ट चित्त हो, 'संग्राम-भूमि आदि में शूर वीरों आदि की आवश्यकता पड़ती है' कहते हुए, बोधिसत्त्व की प्रशंसा स्वरूप यह गाथा कही—

उक्कट्ठे सूरमिच्छन्ति मन्तीसु अकुतूहलं,
पियञ्च अन्नपानम्हि अत्थे जाते च पंडितं ॥

[संग्राम में शूर (आदमी) मिले, ऐसी इच्छा होती है, सलाह करने में अकुतूहल (=जो बात प्रगट न करे, ऐसा) आदमी मिले, ऐसी इच्छा होती है, खाने पीने की सामग्री रहने पर, प्रिय (=सम्बन्धी) आदमी मिले, ऐसी इच्छा होती है, और कोई समस्या आ पड़ने पर, पण्डित (=बुद्धिमान्) आदमी मिले, ऐसी इच्छा होती है।]

उक्कट्ठे, काम आ पड़ने पर (=उपकट्ठे) दोनों ओर से कट्ठ होने पर, संग्राम में, सम्प्रहार होते रहने पर। **सूरमिच्छन्ति,** माथे पर बिजली गिर पड़ने पर भी न भागने वाले शूर की इच्छा करते हैं, उस समय इस प्रकार के संग्राम योधा की आवश्यकता पड़ती है। **मन्तीसु अकुतूहलं,** कर्तव्याकर्तव्य के आ पड़ने पर, मन्त्रियों में जो अकुतूहल=मुँह न खोलने वाला=बात न प्रगट कर देने वाला हो, उसकी इच्छा करते हैं, वैसे की उस समय पर आवश्यकता पड़ती है। **पियञ्च अन्नपानम्हि,** मधुर खाने पीने की चीज़ पास होने पर, साथ खाने के लिए प्रिय आदमी की इच्छा करते हैं, वैसे की उस समय आवश्यकता पड़ती है। **अत्थे जाते च पण्डितं,** गम्भीर अर्थ गम्भीर धर्म (=समस्या) किसी भी बात वा प्रश्न के उत्पन्न होने पर पण्डित, विचक्षण (=बुद्धिमान्) आदमी की इच्छा करते हैं, वैसे समय पर उसी की आवश्यकता पड़ती है।

इस प्रकार राजा, बोधिसत्त्व की प्रशंसा कर, स्तुति कर, जोर की वर्षा बरसाने वाले बादल की तरह, सात (प्रकार के) रत्नों से पूजा कर, उसके उपदेशानुसार आचरण कर, दान आदि पुण्य कर्म करके, कर्मानुसार (परलोक) गया।

बोधिसत्त्व भी कर्मानुसार गये। शास्ता ने इस धर्म-देशना को ला, स्थविर की प्रशंसा कर, जातक का सारांश निकाला। उस समय, राजा (अब का) आनन्द था। बुद्धिमान् अमात्य तो मैं ही था।

९३. विस्सासभोजन जातक

"न विस्ससे अविस्सत्थे" यह (गाथा) बुद्ध ने जेतवन में विहार करत समय, विश्वस्त-भोजन के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

उस समय भिक्षु प्रायः 'यह हमें माता ने दिया है, यह पिता ने दिया है, यह भाई ने दिया है, यह बहन ने, चाची ने, चाचा ने, मामा ने (तथा) मामी ने दिया है' (करके) रिश्तेदारों के दिये हुए चारों प्रत्ययों में विश्वस्त होने के कारण, उन्हें बिना सोचे विचारे ही उपयोग में लाते थे। शास्ता ने, 'मुझे भिक्षुओं को उपदेश करना उचित है' सोच, भिक्षुओं को एकत्र करवा कहा—"भिक्षुओ! भिक्षु को चाहिए कि वह चारों प्रत्ययों को—चाहे वह रिश्तेदार के दिये हों, चाहे बे-रिश्तेदार के—सोच विचार कर ही उपयोग में लावे। बिना सोचे विचारे उपयोग करने वाला भिक्षु मरने पर यक्षयोनि वा प्रेत-योनि से नहीं छूटता। बिना सोचे विचारे करना, वैसा ही है, जैसा विष परिभोग करना। विष; चाहे वह विश्वासी (=रिश्तेदार) ने दिया हो, चाहे अविश्वासी ने, वह मार ही डालता है। पूर्व समय में भी, विश्वस्त का दिया विष खा कर प्राण गँवाया।" यह कह, उनके याचना करने पर पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में बाराणसी, में (राजा) ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय, बोधिसत्त्व (एक) महाधनवान् सेठ हुए। उनका एक ग्वाला (=गोपालक) घनी खेती के दिनों में गौम्रों को ले, भ्ररण्य में जा, वहाँ मचान (=गोपल्लिक) बनाकर, गौओं की रखवाली करता हुआ रहने लगा। समय समय पर, वह सेठ के लिए गोरस (=दूध-घी) लाया करता था। उसके मचान से थोड़ी ही दूर पर एक सिंह आकर रहा करता था। सिंह के त्रास से कुम्हलाने (=डरने) के कारण, गौओं का दूध कम हो गया। उसके एक दिन घी लेकर आने पर, सेठ ने पूछा—"क्यों सौम्य! गोपालक! घी कम (क्यों) है? उसने कारण कहा। "सौम्य! क्या कोई ऐसा है, जिसपर वह सिंह आसक्त हो?"

"स्वामी! हाँ! उसका एक हरिणी (=मृगमाता) के साथ संसर्ग है।"

"क्या उसे पकड़ा जा सकता है?"

"हाँ! स्वामी! (पकड़ा) जा सकता है।" "तो उसे पकड़ कर उसके सिर से पैरों तक के बालों को ज़हर से माख (=रंग) कर, उन्हें सुखा कर, दो तीन दिन गुज़ार कर, उस हरिणी को छोड़ देना। वह (सिंह) स्नेह के मारे उसके शरीर को चाटने से मर जायगा। तब उसका चमड़ा नाखून, दाढ़ें और चर्बी, यहाँ लेकर आना।" यह कह, उसे हलाहल विष देकर भेजा। उस ग्वाले ने जाल फेंक कर, ढंग से उस हरिणी को पकड़ कर, वैसा ही किया। सिंह, उसे देखते ही अत्यन्त स्नेह से उसके शरीर को चाट कर मर गया। ग्वाला भी चर्म आदि ले कर, बोधिसत्त्व के पास पहुँचा। बोधिसत्त्व ने उस वृत्तान्त को जान (कहा) दूसरों से स्नेह नहीं करना चाहिए। इस प्रकार का बलवान् सिंह मृगराज भी विकार-युक्त चित्त से संसर्ग करने के लिए मृगमाता का शरीर चाटते हुए विष चाट कर मर गया। यह कह, उपस्थित परिषद को धर्मोपदेश देते हुए यह गाथा कही—

न विस्ससे अविस्सत्थे विस्सत्थेपि न विस्ससे,
विस्सासा भयमन्वेति सीहंव मिगमातुका॥

[अविश्वास करने योग्य में विश्वास न करे। विश्वास करने योग्य में

भी विश्वास न करे। विश्वास करने से भय उत्पन्न होता है जैसे मृगमाता से सिंह को हुआ।]

जो पहले मित्र रहा हो लेकिन अब अविश्वसनीय हो उस **अविस्सत्थे** (=अविश्वसनीय में); और जिस से पहले भी भय नहीं रहा तथा जो अब भी विश्वसनीन है उसका भी विश्वास न करे। किस कारण से? **विस्सासा भयमन्वेति;** मित्र तथा अमित्र किसी में भी विश्वास किया जाए, उस से भय ही पैदा होता है। कैसे? **सीहंव मिगमातुका** जैसे मित्रता के कारण मृग-माता का विश्वास करने से सिंह को भय ही उत्पन्न हुआ; अथवा विश्वास के कारण मृग-माता सिंह के पास गई।

इस प्रकार बोधिसत्त्व उपस्थित परिषद को धर्मोपदेश दे दानादि पुण्य कर कर्मानुसार परलोक सिधारे।

शास्ता ने यह धर्मदेशना सुना जातक का सारांश निकाल दिया। उस समय महासेठ मैं ही था।

६४. लोमहंस जातक

सो तत्तो सो सीनो[1]. . ." यह (गाथा) शास्ता ने **वैशाली** के समीप **पाटिकाराम** में विहार करते हुए **सुनक्षत्र** के बारे में कही।

[1] मूल में सीतो है, जो कि सिंहल अक्षरों में 'त' और 'न' की समानता के कारण प्रमाद वश आया प्रतीत होता है। देखें मज्झिम निकाय, १२ सूत्र।

क. वर्तमान कथा

एक समय **सुनक्षत्र** (नामक) भिक्षु शास्ता का उपस्थायक बन पात्र चीवर ले (शास्ता के साथ साथ) घूमता हुआ **कोर** क्षत्रिय के धर्म को पसन्द कर बुद्ध का पात्र चीवर (उन्हें) सौंप **कोर** क्षत्रिय के पास रहने लगा। फिर उसके **कालकञ्जक** असुर-योनि में पैदा होने के समय **सुनक्षत्र** गृहस्थ होकर वैशाली की तीनों प्राकारों के अन्दर घूमता हुआ शास्ता की यह कह कर निन्दा करता था कि श्रमण **गौतम** के पास मनुष्योत्तर कोई बात नहीं, विशेष आर्य-ज्ञान नहीं; श्रमण गौतम तर्क सिद्ध धर्मोपदेश करता है, विचार-सिद्ध तथा आत्मानुभव के आधार पर किन्तु जिन दुक्खों के क्षय करने के उद्देश्य से धर्मोपदेश दिया जाता है, धर्मानुसार चलने वाले को वह उन दुक्खों के एकान्त क्षय के उद्देश्य तक ले जाता है।

आयुष्मान् **सारिपुत्र** ने भिक्षा के लिए घूमते समय उसे उस प्रकार निन्दा करते हुए सुन भिक्षाटन से लौट कर भगवान् से निवेदन किया। भगवान् ने कहा—"**सारिपुत्र** ! क्रोधी मूर्ख **सुनक्षत्र** ने क्रोध के मारे ऐसा कहा है। क्रोध के वशीभूत हो कर वह 'धर्मानुसार चलने वाले को दुक्ख क्षय तक ले जाता है' कहते हुए भी वह अनजाने में मेरी प्रशंसा ही करता है। वह मूर्ख मेरे गुणों को नहीं जानता। **सारिपुत्र** ! मुझे छः अभिज्ञा प्राप्त हैं। यह भी मनुष्योत्तर धर्म है=दस बल हैं। चार वैशारद्य-ज्ञान हैं। चार प्रकार का योनि-परिच्छेदक ज्ञान है। पाँच प्रकार का गति-परिच्छेदक ज्ञान है। यह भी मेरा मनुष्योत्तर धर्म है। इस प्रकार मनुष्योत्तर-धर्मों से युक्त मुझे यदि कोई यूं कहे कि श्रमण गौतम मनुष्योत्तर-धर्म प्राप्त नहीं हैं, तो वह यदि उस कथन को न छोड़ दे, उस विचार को न छोड़ दे, उस मत को न छोड़ दे, तो वह ऐसा ही होगा जैसे नरक में उठा लाकर डाल दिया हो। इस प्रकार अपने में विद्यमान मनुष्योत्तर-धर्म की प्रशंसा करते हुए कहा—"**सारिपुत्र** ! **सुनक्षत्र कोर** क्षत्रिय की दुष्कर क्रिया तथा मिथ्या-तप से प्रसन्न हो उसकी ओर आकृष्ट हुआ है। मिथ्या-तप से प्रसन्न होने वाले को, मिथ्या तप से आकृष्ट होने वाले को भी मेरी ही ओर आकृष्ट होना चाहिए। क्योंकि अब से इकानवे कल्प पहले 'इसमें कुछ सार है वा नहीं ?" देखने की इच्छा से मैंने बाहरी

मिथ्यातपों की परीक्षा करते हुए चारों अङ्गों से युक्त ब्रह्मचर्य्य-वास किया। उस समय में तपस्वियों में परम तपस्वी, रुक्ष जीवन व्यतीत करने वालों में परम् रूखा जीवन व्यतीत करने वाला, जिगुप्सा करने वालों में परम् घृणावान् तथा एकान्त-वासियों में परम् एकान्त-सेवी था।[1] सारिपुत्र स्थविर के प्रार्थना करने पर बुद्ध ने पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

"इकानवे कल्प पूर्व बोधिसत्त्व 'बाहरी तप की परीक्षा करूँगा' सोच आजीविकों की प्रव्रज्या के अनुसार प्रव्रजित होकर निर्वस्त्र रहा, धूल लपेटे रहा। एकान्त प्रिय रहा, एकान्त-वासी—आदमियों को देख कर मृग की तरह भाग जाता। महाविकट भोजन खाने वाला हुआ। बछड़े का गोबर आदि खाया। अप्रमाद-युक्त विहार करने के लिए जंगल में, एक भयानक बन-खंड में रहा। वहाँ रहते हुए, हिम गिरने के समय बीच के आठ दिनों में रात को बन-खंड से निकल खुले आकाश के नीचे विचर सूर्य्य के उदय होने पर बन-खंड में प्रवेश करता था। जिस प्रकार रात को खुले आकाश के नीचे ओस से भीगता था, उसी प्रकार दिन में बन-खंड से पिघल कर गिरती हुई बून्दों से भीगता था। इस प्रकार रात दिन सर्दी का दुःख सहता। लेकिन गर्मी के अन्तिम महीने में दिन में खुले में घूमकर रात को बन-खंड में दाखिल होता। जिस प्रकार दिन में खुले में धूप में जलता, उसी तरह रात को वायु रहित बन-खंड में जलता। शरीर से पसीने की धार बहती। तब यह अश्रुत-पूर्व गाथा सूझी—

सोतत्तो सोसीनो एको भिंसनके वने।
नग्गो न चग्गीमासीनो एसनापसुतो मुनि ॥

[वह तप्ता था। वह अत्यन्त भीगा था। वह भयानक बन में रहता था। वह नग्न रहता था (और) वह आग के पास नहीं बैठता था। इस प्रकार मुनि (सत्य की) खोज में लगा हुआ था]

---

[1] महासिंहनाद सुत्त (मज्झिम निकाय)

सोतत्तो, *सूर्य्य ताप से मुतप्त ।* **सोसीनो,** *ओस के पानी से भीगा,* **अच्छी** प्रकार भीगा हुआ । **एको भिंसनके वने,** जहाँ प्रवेश करने पर प्रायः लोगों के रोम खड़े हो जाते हैं, इस प्रकार के भयानक बन में अकेला अद्वितीय ही प्रविष्ट हुआ । **नग्गो नचग्गिमासीनो,** उस प्रकार शीत से पीड़ित होते हुए भी न ओढ़ने बिछाने का वस्त्र लिया और न आग के ही पास बैठा । **एसनापसुतो,** उस अब्रह्मचर्य्य को भी ब्रह्मचर्य्य मान यही श्रेष्ठ-जीवन है, यही खोज है, यही गवेषणा है, यही ब्रह्मलोक का मार्ग है—इस प्रकार ब्रह्मचर्य्य की खोज में लगा था । **मुनि,** यह मुनि मौन का प्रयत्न कर रहा है, इस लिए लोगों द्वारा आदृत हुआ ।

इस प्रकार चार अंगों से युक्त ब्रह्मचर्य्य का आचरण करके बोधिसत्त्व मरने के समय नरक का दृश्य दिखाई देने पर 'यह व्रत धारण निरर्थक है' जान उसी क्षण उस मत को छोड़ सम्यक् दृष्टि ग्रहण कर देव-लोक में उत्पन्न हुआ ।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला जातक का सारांश निकाल दिया । मैं ही उस समय में वह आजीवक था ।

९५. महासुदस्सन जातक

"**अनिच्चा वत सङ्खारा...**" यह (गाथा) शास्ता ने परिनिर्वाण शय्या पर लेटे समय **आनन्द** स्थविर के "भन्ते ! भगवान् इस छोटे से नगर में परि-निर्वाण को प्राप्त न हों" इत्यादि वचनों के सम्बन्ध में कही ।

क. वर्तमान कथा

तथागत के **जेतवन** में विहार करने के समय **सारिपुत्र** स्थविर **कार्तिक** मास की **पूर्णिमा** के दिन **नालक ग्राम** में उत्पन्न होने के कोठे में ही परिनिर्वाण

को प्राप्त हुए। **महामौद्गल्यायन** भी **कार्तिक** महीने में ही **कृष्ण पक्ष** की **अमावस्या** को। इस प्रकार दोनों प्रधान शिष्यों के परिनिर्वाण प्राप्त होने पर 'मैं भी **कुसीनगर** में परिनिर्वाण प्राप्त होऊँगा' (सोच) भगवान् क्रम से चारिका करते हुए वहाँ (**कुसीनगर**) पहुँच जोड़े शाल वृक्षों के बीच उत्तर दिशा की ओर बिछी शय्या पर फिर न उठने का संकल्प करके लेटे।

आयुष्मान **आनन्द** स्थविर ने कहा—"भन्ते! भगवान् इस क्षुद्र नगर में, इस विसम नगर में, इस जंगली नगर में, इस शाखा नगर में निर्वाण को प्राप्त न होवें। भगवान् दूसरे **चम्पा राजगृह**[1] आदि बड़े नगरों में से किसी एक नगर में परिनिर्वाण प्राप्त करें।"

भगवान् बोले—"**आनन्द!** इसे क्षुद्र नगर, जंगली नगर, शाखा नगर मत कहो। मैं पहले **सुदर्शन** चक्रवर्ती राजा होने के समय इसी नगर में रहा हूँ। उस समय यह बारह योजन की रत्नों से सुसज्जित चार दीवारी से घिरा हुआ महानगर था।" यह कह स्थविर के याचना करने पर पूर्व-जन्म की कथा कहते हुए **महासुदर्शन**[2] सूक्त कहा।

ख. अतीत कथा

उस समय **महासुदस्सन** नाम का राजा **सुधर्म** प्रासाद से उतर कर नजदीक ही सात रत्नों से युक्त ताड़वन में बिछी योग्य शय्या पर दाहिनी करवट से लेटा था। उसे फिर न उठने के संकल्प से लेटा देख **सुभद्रा** देवी ने कहा—"देव! यह तेरे चौरासी हजार नगर हैं, जिन में **कुशावती** राजधानी प्रमुख है। इन को प्रेम करो।" **महासुदर्शन** ने उत्तर दिया—"देवि! यह मत कहो! मुझे ऐसा उपदेश दो कि इन में प्रेम मत करो, इनकी अपेक्षा मत करो।" देवी ने पूछा "क्यों?" "आज मेरा मृत्यु-दिवस है।"

वह देवी रोती हुई, आँखें पोंछती हुई बड़ी कठिनाई से वैसे कह कर

[1] **चम्पा, राजगृह, श्रावस्ती, साकेत, कौशाम्बी, बाराणसी। (महा परिनिर्वाण सुत्त, दीर्घनिकाय)।**

[2] **महासुदस्सन सुत्त (दीर्घ निकाय १७)**

रोने पीटने लगी। बाकी चौरासी हजार स्त्रियाँ भी रोटने पीटने लगीं। अमात्य आदि में कोई एक भी न सहन कर सका। सभी रोने लगे।

बोधिसत्त्व ने रोका—"भणे ! शब्द मत करो।" फिर देवी को सम्बोधन कर कहा—"देवी ! तू मत रो। देवी ! तू मत पीट। तिल के फल जितना भी संस्कार नित्य नहीं है। सभी संस्कार अनित्य हैं। सभी संस्कार नाश होने वाले हैं।" इस प्रकार देवी को उपदेश देते हुए यह गाथा कही—

अनिच्चा वत सङ्खारा उप्पादवयधम्मिनो,
उप्पज्जित्वा निरुज्झन्ति तेसं वूपसमो सुखो ॥

[संस्कार अनित्य हैं। उत्पन्न होना, निरोध होना उनका धर्म है। वे उत्पन्न हो कर निरोध को प्राप्त होते हैं। उनका उपशमन सुख है।]

अनिच्चा वत सङ्खारा, भद्रे ! सुभद्रा देवी ! जितने भी किन्हीं भी प्रत्ययों से बने हुए स्कन्ध आयतन आदि संस्कार हैं, वे सब अनित्य ही हैं। इन में रूप अनित्य है, (चक्षु–) विज्ञान अनित्य है, चक्षु अनित्य है, सब (धर्म =अस्तित्व) अनित्य हैं। जितने भी सविज्ञाण, अविज्ञाण रत्न हैं, वह सव अनित्य हैं। इस लिए 'सभी संस्कार अनित्य हैं', यही ग्रहण कर। क्यों **उप्पाद वय धम्मिनो,** सभी उत्पन्न होने वाले हैं, सभी व्यय (खर्च) होने वाले हैं, सभी बनने वाले हैं, सभी बिगड़ने वाले हैं, इस लिए (वे) अनित्य हैं, यही जानना चाहिए। क्योंकि अनित्य हैं इसलिए **'उप्पज्जित्वा निरुज्झन्ति'** उत्पन्न होकर, स्थिति को प्राप्त होकर भी निरोध को प्राप्त होते हैं। यह सभी बनने पर उत्पन्न हुए कहलाते हैं, टूटने पर निरुद्ध हुए कहलाते हैं। उनके उत्पन्न होने पर 'स्थिति' होती है, 'स्थिति' होने पर 'भङ्ग' होता है; जो उत्पन्न न हो उसकी 'स्थिति' नहीं, जिसकी 'स्थिति' है उसका भंग न हो ऐसा नहीं। इस प्रकार सभी संस्कार तीन लक्षणों वाले (उत्पत्ति, स्थिति, भङ्ग) होकर निरोध को प्राप्त होते हैं। इसलिए यह सभी अनित्य हैं, क्षणिक हैं, परिवर्तनशील हैं, अध्रुव हैं, भङ्ग होने वाले हैं, अस्थिर हैं, कंपनशील हैं. . . . कुछ देर के लिए हैं, निस्सार हैं, 'कुछ ही देर के लिए' इस अर्थ में माया के समान हैं, मरीचि के समान हैं, फेण के समान हैं। भद्रे ! सुभद्रा देवी। इनको तू क्यों 'सुख' समझती है। इस

प्रकार सीख कि **तेसं वूपसमो सुखो,** सब संसार चक्र का उपशमन होने से सब के उपशमन का अर्थ है निर्वाण। वही असल में केवल एक सुख है। और सुख नहीं।

सो **महासुदर्शन** अमृत-महा-निर्वाण सम्बन्धी उत्कृष्ट देशना कर बाकी जन-समूह को भी 'दान दो सदाचारी बनो, उपोसथ (=व्रत) करो' उपदेश दे देवलोक को गया।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला जातक का सारांश निकाल दिया।

उस समय की **सुभद्रादेवी** अब **राहुलमाता** हुई। **प्रधान अमात्य राहुल** था। शेष परिषद बुद्ध-परिषद। लेकिन **महासुदस्सन** मैं ही था।

९६. तेलपत्त जातक

"समतित्तिकं अनवसेसकं. . ." यह (गाथा) शास्ता ने **सुम्भ** राष्ट्र में **सेतक** नामक निगम के पास एक वन-खण्ड में विचरते हुए **जनपदकल्याणी** सूत्र के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

उस सूत्र में भगवान् ने "भिक्षुओ! जैसे जनपद-कल्याणि, जनपद-कल्याणि नाम सुनकर जन-समूह इकट्ठा हो। वह जन-पदकल्याणि नाचने गाने में बहुत दक्ष हो। 'जन-पद कल्याणि नाचती हैं, जनपदकल्याणि गाती हैं' सुनकर और भी प्रसन्न होकर जन-समूह उमड़ आये। तब एक पुरुष आए, जो जीना चाहता हो, मरना न चाहता हो, सुख चाहता हो, दुःख न चाहता हो। उस आदमी को ऐसे कहें—'हे पुरुष! यह तेल का लबालब भरा हुआ पात्र है। इसे जनसमूह और जनपदकल्याणि के बीच से होकर ले चलो। तुम्हारे पीछे पीछे एक आदमी तलवार उठाए चलेगा। जहाँ जरा

सा भी तेल गिरेगा, वहीं तेरा सिर काट डालेंगे।' 'तो भिक्षुओ! क्या समझते हो, वह आदमी उस तेल के पात्र को, लापरवाही से, प्रमाद-पूर्वक ले चलेगा ?'

'नहीं भन्ते!'

'भिक्षुओ! यह मैंने अर्थ समझाने के लिए उपमा दी है। भावार्थ यह है। तेल से लबालब भरा हुआ पात्र, भिक्षुओ, **कायानुस्मृति** का दूसरा नाम है। इस लिए भिक्षुओ! यही सीखना चाहिए कि हमारी **कायानुस्मृति** की भावना अच्छी प्रकार बढ़ेगी।' इस प्रकार शास्ता ने **जनपदकल्याणि** सूत्र[1] की उसके शब्दों तथा अर्थों के साथ व्याख्या की।

जनपदकल्याणि का मतलब है जनपद भर में कल्याणि=उत्तम—छः शरीर-दोषों से मुक्त और पाँच उत्तम-बातों से युक्त। वह न अधिक लम्बी, न अधिक छोटी, न अधिक पतली न अधिक मोटी, न अधिक काली, न अत्यधिक सफेद—मानुषी वर्णों से बढ़ कर लेकिन दैवी वर्ण तक नहीं पहुँची हुई। इस लिए छः शरीर दोषों से मुक्त। उत्तम-चमड़ी, उत्तम-मांस, उत्तम नसें, उत्तम हड्डियाँ तथा उत्तम-आयु (तरुण) इन पाँच उत्तम बातों से युक्त होने के कारण पाँच उत्तम बातों से युक्त कही गई। उसे बाहरी चमक की ज़रूरत न थी। अपने शरीर की चमक से ही बारह हाथ की जगह को प्रकाशित करती थी। वह पियंगु-रंग की वा सोने के रंग की थी। यह उसकी चमड़ी की उत्तमता रही। उसके हाथ-पैर तथा मुँह लाख से चित्रित की तरह वा लाल मूँगे या लाल कम्बल की तरह थे। यह उसके मांस की उत्तमता रही। बीसों नाखूनों तक पहुँची हुई, मांस के साथ जहाँ जहाँ लगी हुई वहाँ वहाँ लाख के रस से भरी हुई सी, जहाँ जहाँ मांस से मुक्त वहाँ वहाँ दूध की धार के समान उसकी नसें थीं: यह उस की नसों की उत्तमता रही। बत्तीस दाँत चिकनी सफेद वज्र पंक्ति की तरह चमकते थे। यह उसकी हड्डियों की उत्तमता रही। बीस वर्ष की होने पर भी सोलह वर्ष की सी ही प्रतीत होती थी। यह उसकी आयु की उत्तमता रही। **परमपासाविनि**—पसवनं= पसव=ढंग। जिसका परम (=उत्तम) ढंग है सो परमपासाविनि। नृत्य,

[1] **सतिपट्ठान संयुक्त (संयुक्त निकाय)**

गीत में उत्तम ढंग अर्थात् उसका नाच, उसका गाना श्रेष्ठ ही था। **अथ पुरिसो आगच्छेय्य**—अपनी मरजी से नहीं आए। इस का मतलब है कि जनता के बीच में जनपदकल्याणि के नाचते हुए लोगों के 'साधु, साधु'[1] कह कर चिल्लाने, अंगुलियाँ चटखाने, चोलियाँ उछालने का समाचार सुनकर राजा ने जेलखाने से एक आदमी को मँगवाया। उसकी बेड़ियाँ कटवा, तेल से लबालब भरा पात्र उसके हाथ में दे, एक आदमी को जिसके हाथ में तलवार थी आज्ञा दी 'इसे जहाँ **जनपदकल्याणि** का नाच हो रहा है वहाँ ले जाओ। यदि ला परवाही के कारण यह एक बूँद तेल भी गिरा दे, तो वहीं इसका सिर काट दो।' वह आदमी तलवार उठाकर उसको धमकाता हुआ वहाँ ले गया। उसने मरने के भय से भयभीत हो जीवित रहने की इच्छा के कारण, असावधानी से उसे भूल, एक बार भी आँख खोल कर **जनपदकल्याणि** को नहीं देखा। इस प्रकार यह भूतपूर्व कथा है। सूत्र में तो यह संक्षेप में आई है। **उपमा खो म्यायं**, यहाँ तेलपात्र की कायानुस्मृति से उपमा दी ही गई है। इसमें राजा को कर्म की तरह समझना चाहिए। तलवार की तरह चित्त की कलुषता। तलवार उठाए आदमी की तरह मार। तेल पात्र हाथ में लिए हुए आदमी की तरह **कायानुस्मृति** की भावना करने वाला विदर्शना-भावना में रत योगाभ्यासी।

सो इस प्रकार यह सूत्र लाकर भगवान् ने **कायानुस्मृति**, की भावना करने वाले मनुष्य के लिए हाथ में तेलपात्र लिए रहने वाले आदमी की तरह सावधान रह कर **कायानुस्मृति**, की भावना करने की आवश्यकता बताई। भिक्षुओं ने इस सूत्र और उसके अर्थ को सुनकर यूं कहा—"भन्ते ! उस आदमी ने बहुत बड़ी बात की जो बिना उस तरह की **जनपदकल्याणि**, को देखे तेलंपात्र को लेकर चला गया।"

"भिक्षुओ, उस आदमी ने बहुत कठिन काम नहीं किया, यह तो आसान ही था। क्यों ? क्योंकि उसे तलवार उठाए एक आदमी धमकाता हुआ ले

[1] वाह, वाह या हुर्रा हुर्रा की तरह प्रसन्नता सूचक घोष

जा रहा था। लेकिन पूर्व समय में पण्डित लोगों ने अप्रमाद से स्मृति को न भूल कर, बनाए हुए दिव्यरूप को भी इन्द्रियों को चंचल करके बिना देखे जाकर राज्य प्राप्त किए। यह कठिन कार्य्य था" कह पूर्व समय की बात कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में **बाराणसी** में राजा **ब्रह्मदत्त** के राज्य करते समय बोधिसत्त्व उस राजा के सौ पुत्रों में सब से छोटे होकर पैदा हुए। क्रम से बढ़ते बढ़ते बालिग हो गए। उस समय राजा के घर में **प्रत्येक-बुद्ध** भोजन किया करते थे। बोधिसत्त्व उनकी सेवा में रहते। एक दिन बोधिसत्त्व ने सोचा—"मेरे भाई बहुत हैं। मुझे इस नगर में अपने कुल का राज्य मिलेगा वा नहीं?" फिर उसे विचार हुआ कि यह बात प्रत्येक बुद्धों से पूछ कर जानूँगा।

दूसरे दिन प्रत्येक बुद्धों के आने पर उसने धर्म्मकरक[1] ले, पानी छान, पाँव धो, तेल लगा, उनके भोजन कर चुकने पर, प्रणाम कर एक ओर बैठ वह बात पूछी। उन्होंने कहा—"कुमार! तुझे इस नगर में राज्य नहीं मिलेगा। लेकिन यहाँ से एक सौ वीस योजन की दूरी पर **गन्धार,** राष्ट्र में तक्कसिला (=**तक्षशिला**) नाम का नगर है। वहाँ जा सकने पर आज से सातवें दिन राज्य प्राप्त करेगा। लेकिन रास्ते में बड़े भारी जंगल में से जाने में खतरा है। उस जंगल को छोड़ कर जाने से सौ योजन चलना होगा, सीधे (जंगल में से) जाने से पचास योजन। वह जंगल अमनुष्य-कान्तार है। उसमें रास्ते में यक्षिणियाँ ग्राम और शालायें बनाकर, ऊपर सुनहरे तारों से सजे हुए मँडुवे, उनके नीचे कीमती पलंग बिछवा, नाना प्रकार की रेशमी कनातें लगवा, अपने आप को दिव्य अलंकारों से सजाकर रहती हैं। जाते हुए आदमी को देखकर वह उसे मधुर वाणी से आमन्त्रित करती हैं "आप थके हुए मालूम देते हैं। यहाँ आकर, थोड़ा विश्राम करके, पानी पीकर जाएँ।" आदमी के आने पर, उसे आसन दे, अपने हास-विलास से मुग्धकर, अपने साथ रमण करने पर

[1] पानी छानने का बर्तन।

वहीं उसे खून निचुड़ते हुए खाकर मार डालती हैं। जिसका रूप के प्रति आकर्षण होता है, उसे रूप के द्वारा ग्रहण करती हैं। जिसका शब्द के प्रति आकर्षण होता है, उसे मधुर गाने बजाने के शब्द से, जिसका गन्ध के प्रति उसे दिव्य गन्धों से, जिसका रस के प्रति उसे नाना प्रकार के स्वादिष्ट भोजनों द्वारा और जिसका स्पर्श के प्रति आकर्षण होता है उसे दोनों ओर लाल रंग के तकियों वाले दिव्य-शयनासनों से ग्रहण करती हैं। यदि इन्द्रियों को बिना चंचल किए, उनकी ओर बिना ध्यान दिए, स्मृति को सावधान रख जाएगा, तो सातवें दिन राज्य लाभ करेगा।"

बोधिसत्त्व ने कहा—"भन्ते ! वे रहें ! अब मैं आपका उपदेश ग्रहण करके क्या उनकी ओर देखूँगा ?" फिर प्रत्येक-बुद्धों से **परित्राण-धर्मदेशना**[1], कहलवा परित्त की बालू, परित्त का पानी, तथा परित्त-सूत्र लेकर **प्रत्येक-बुद्धों**, तथा माता पिता को प्रणाम कर घर में जाकर अपने आदमियों को कहा—"मैं **तक्षशिला** में राज्य पाने जा रहा हूँ। तुम यहीं रहो।"

उसके आदमियों में से पाँच ने कहा—"हम भी जाएंगे।"

"तुम नहीं चल सकोगे। रास्ते में यक्षिणियाँ रूप आदि से आकर्षित होने वाले आदमियों को इस इस प्रकार रूपादि का लोभ दिखा फँसा लेती है। बड़ा खतरा है। मैं तो अपने बल को देख कर जा रहा हूँ।"

"देव ! क्या तुम्हारे साथ जाते हुए हमें जो रूप अच्छे लगेंगे हम उधर देखेंगे। हम भी आप की तरह ही चलेंगे।"

"तो अप्रमादी होकर रहना" कह बोधिसत्त्व उन पाँच आदमियों को ले रास्ते पर चल पड़े।

यक्षिणियाँ ग्राम आदि बनाकर बैठी थीं। उनमें जो रूप के प्रति आकर्षित होने वाला आदमी था, वह उन यक्षिणियों को देख उनके रूप पर मुग्ध हो थोड़ा रुका।

बोधिसत्त्व ने पूछा—"भो ! क्यों ? थोड़ा रुक क्यों गए हो ?"

"देव ! मेरे पाँव दरद करते हैं। थोड़ी देर शाला में बैठ कर आता हूँ।"

[1] कुछ विशेष सूत्रों का पाठ, जो आपत्ति में रक्षक होता है।

"भो ! यह यक्षिणियाँ हैं। इनकी इच्छा मत करो।"

"जो होना है सो हो, देव ! मैं तो अब चल नहीं सकता हूँ।"

"अच्छा तो पता लगेगा" कह बोधिसत्त्व बाकी चारों को लेकर चल दिए।

रूप पर आकर्षित हुआ वह आदमी उनके पास गया। यक्षिणियों ने उसे अपने साथ रमण करने पर उसी तरह मार कर आगे जाकर दूसरी शाला बनाई।

उस शाला में वह नाना प्रकार के बाजों को लेकर गाती हुईं बैठीं। वहाँ शब्द के प्रति आकर्षित होने वाला रुका। उसे भी खाकर आगे जाकर नाना प्रकार के सुगन्धि से पूर्ण भाजनों की दूकान लगा कर बैठीं। वहाँ सुगन्धि के प्रति आकर्षित होने वाला रुका। उसे भी खाकर आगे जा नाना प्रकार के स्वादिष्ट भोजनों से बर्त्तनों को भर भोजन की दूकान लगाकर बैठीं। वहाँ रस के प्रति आकर्षित होने वाला रुका। उसे भी खाकर आगे जा दिव्य पलंग बिछा कर बैठीं। वहाँ स्पर्श के प्रति आकर्षित होने वाला रुका। उसे भी खा गईं। बोधिसत्त्व अकेले रह गये।

तब एक यक्षिणी ने सोचा—'यह बड़ा करारा आदमी है। मैं इसे खाकर ही लौटूंगी।" वह बोधिसत्त्व के पीछे पीछे चली।

जंगल के अगले हिस्से में, जंगल में काम करने वाले आदमियों ने यक्षिणी को देख कर पूछा "यह तेरे आगे आगे जाने वाला तेरा क्या लगता है?"

"आर्य ! यह मेरे प्रिय हैं।"

लोगों ने बोधिसत्त्व से कहा—"भो ! यह सुकुमार, फूलों की माला सदृश, सुन्दर बालिका अपने घर को छोड़कर तुम्हारा ही आश्रय देख निकली। इसे बिना थकाये साथ साथ लेकर क्यों नहीं जाते?"

"आर्य्यो ! यह मेरी भार्य्या नहीं है। यह यक्षिणी है। यह मेरे पाँच आदमियों को खा गई।"

"आर्य्यो ! जब पुरुष क्रुद्ध होते हैं, तो अपनी भार्य्या को यक्षिणी भी बनाते हैं, प्रेतिनी भी बनाते हैं।"

उसने चलते चलते गर्भिणी की शकल बना और फिर पुत्र की माँ होने का सा रंग-ढंग कर गोद में पुत्र को लिए लिए बोधिसत्त्व का अनुगमन किया।

जो देखता वही पहले की तरह से पूछता। बोधिसत्त्व भी उसी तरह उत्तर देते हुए तक्षशिला पहुँचे।

वह यक्षिणी पुत्र को अन्तर्ध्यान कर अकेली ही पीछे पीछे चली।

बोधिसत्त्व नगर-द्वार में प्रवेश कर एक शाला में बैठे। वह बोधिसत्त्व के तेज के कारण प्रविष्ट न हो सकी और दिव्य रूप बना शाला के द्वार पर ठहरी।

उस समय तक्षशिला से निकलकर उद्यान जाते हुए राजा ने उसे देख, उस पर अनुरक्त हो एक आदमी को भेजा कि देखे कि उसका कोई स्वामी है वा नहीं? उसने पास जाकर पूछा—"तेरा कोई स्वामी है?"

"हाँ, आर्य! यह शाला में बैठे हुए मेरे स्वामी हैं।"

बोधिसत्त्व ने कहा, "यह मेरी भार्य्या नहीं है। यह यक्षिणी है। यह मेरे पाँच आदमियों को खा गई।" उसने कहा—"पुरुष जब क्रुद्ध हो जाते हैं, तब जो चाहते हैं बोलते हैं।"

राज-पुरुष ने दोनों की बात राजा से निवेदन की। राजा ने 'जिसका कोई स्वामी नहीं, वह वस्तु राजा की होती है' कह यक्षिणी को बुलवा उसे एक हाथी की पीठ पर चढ़वा, नगर की प्रदक्षिणा कर, महल में जा पट-रानी बनाया।

शाम को स्नान और सुगन्धित लेपों के अनन्तर भोजन कर राजा सुन्दर पलंग पर लेटा। वह यक्षिणी भी अपने अनुकूल आहार खा, सज कर राजा के साथ पलंग पर लेटी। लेकिन जब राजा रति-सुख अनुभव करने लगा, तो वह एक तरफ पलट कर रोने लगी।

राजा ने पूछा—"भद्रे रोती क्यों है?"

"देव! तुम मुझे रास्ते में देखकर ले आए। तुम्हारे घर में बहुत स्त्रियाँ हैं। वे सपत्नीक स्त्रियाँ जब बात चलने पर मुझे कहेंगी 'तेरे माता, तेरे पिता, तेरे गोत्र, वा तेरी जाति को कौन जानता है? तू रास्ते में देखकर ले आई गई है' तो मैं सीस पकड़ कर दबा दी गई की तरह शर्मिंदा हो जाऊँगी। यदि तुम मुझे सारे राष्ट्र का ऐश्वर्य और हुकूमत दे दो, तो कोई मेरे चित्त को दुखी करके ऐसी बात न कह सकेगा।"

"भद्रे! सारे राष्ट्र के निवासियों पर मेरा कुछ अधिकार नहीं। मैं

उनका स्वामी नहीं। हाँ, जो राजाज्ञा के विरुद्ध नहीं करना चाहिए ऐसा कोई काम करते हैं, उन्हीं का मैं स्वामी हूँ। इसलिए मैं तुझे सारे राष्ट्र का ऐश्वर्य और हुकूमत नहीं दे सकता।"

"अच्छा देव! यदि राष्ट्र वा नगर का शासन मुझे नहीं सौंप सकते, तो जो घर के अन्दर के लोग हैं, घर के अन्दर रहने वाले हैं वे लोग मेरी हुकूमत में रहें, ऐसी आज्ञा दें।"

उसके दिव्य स्पर्श-सुख में बँधे हुए राजा की सामर्थ्य नहीं हुई कि अस्वीकार कर सके। उसने कहा—"भद्रे! अच्छा! मैं घर के अन्दर रहने वालों को तेरे अधीन करता हूँ। तू उनपर हकूमत कर।"

वह "अच्छा" कह राजा के सो जाने पर यक्ष-नगर गई। वहाँ से यक्षों को बुला लाई। अपने राजा को मार कर हड्डी मात्र बाकी छोड़ सब नसें, चमड़ा, मांस तथा रक्त खा गई। बाकी यक्षों ने प्रधान द्वार के अन्दर जितने भी थे—मुर्गे और कुत्ते तक—सब को खाकर हड्डियाँ ही हड्डियाँ बाकी छोड़ीं।

अगले दिन लोगों ने दरवाज़ों को बन्द देख कुल्हाड़ियों से दरवाज़ों को तोड़, अन्दर घुस कर सारे घर को हड्डियों से भरा हुआ पाकर कहा—"वह आदमी ठीक ही कहता था कि यह मेरी भार्य्या नहीं है। यह यक्षिणी है। राजा ने बिना कुछ जाने ही उसे घर में रख अपनी भार्य्या बना लिया। वह यक्षों को बुलाकर सबको खाकर चली गई होगी।"

बोधिसत्त्व ने उस दिन उस शाला में **परित्त-बालुका** सिर पर रख **परित्त-सूत्र से** अपने आपको घेर खड्ग लिए खड़े ही खड़े सूर्य्य उगा दिया।

आदमियों ने सारे राज-महल को शुद्ध कर, गोबर से लीप और उसके ऊपर सुगन्धित लेप कर फूल बिखेर, पुष्पमालाएँ टाँग, धूप दे, नई मालाएँ बाँध सलाह की—"भो! जिस आदमी ने दिव्य रूप धारण करके पीछे पीछे आती हुई यक्षिणी को इन्द्रियों को चंचल कर देखा तक नहीं, वह बहुत ही महान् धृतिमान् तथा ज्ञानवान् प्राणी है। उस तरह के आदमी के राजा बनने पर सारा राष्ट्र सुखी होगा। उसे राजा बनाएँ।"

तब सब अमात्यों तथा नगर-निवासियों ने एक राय हो बोधिसत्त्व के पास जा कहा—"देव! आप इस राज्य को सँभालें।" फिर उन्हें नगर में ले जा रत्नों के ढेर में विठा, अभिषेक कर **तक्षशिला** का राजा बनाया। वह

चार अगति-गामी कर्मों को छोड़, दस राज-धर्मों के विरुद्ध आचरण न कर धर्मानुसार राज्य करता हुआ दानादि पुण्य-कर्म कर कर्मानुसार परलोक सिधारा।

शास्ता ने यह पूर्व-जन्म की कथा कह बुद्ध होने पर यह गाथा कही—

समतित्तिकं अनवसेसकं
तेलपत्तं यथा परिहरेय्य,
एवं सचित्तमनुरक्खे
पत्थयानो दिसं अगतपुब्बं॥

[जिस प्रकार किनारे तक लबालब भरे हुए तेल के पात्र को ले चले, उसी प्रकार निर्वाण की इच्छा करने वाले को चाहिए कि अपने चित्त की रक्षा करे।]

समतित्तिकं—किनारे तक भरा हुआ। **अनवसेसकं**, लबालब भरा हुआ। छानने के लिए कुछ बाकी न रख। **तेलपत्तं**—तिल का तेल डाला हुआ पात्र **परिहरेय्य**, हरण करे, लेकर जाए। **एवं सचित्तमनुरक्खे**, उस तेल भरे पात्र की तरह अपने चित्त को **कायानुस्मृति** तथा **सम्प्रयुक्तानुस्मृति** के बीच में रख मुहूर्त भर के लिए भी बाहर (किसी दूसरे विषय की ओर) न जाने दे। उस तरह योगाभ्यासी पण्डित को चाहिए कि वह (अपने चित्त की) रक्षा करे, सँभाल कर रक्खे। क्यों? इसीलिए कि—

दुन्निग्गहस्स लहुनो यत्थकामनिपातिनो,
चित्तस्स दमथो साधु चित्तं दन्तं सुखावहं॥

[कठिनाई से निग्रह किये जा सकने वाले, शीघ्रगामी, जहाँ चाहे वहाँ चले जाने वाले चित्त का दमन करना अच्छा है। दमन किया गया चित्त सुख देने वाला होता है।]

इसलिए—

सुदुद्दसं सुनिपुणं यत्थकामनिपातिनं,
चित्तं रक्खेथ मेधावी, चित्तं गुत्तं सुखावहं॥

[बुद्धिमान् मनुष्य दुष्करता से दिखाई देने वाले, अत्यन्त चालाक, जहाँ

चाहे वहाँ जाने वाले चित्त की रक्षा करे। सँभाल कर रक्खा गया चित्त सुख देने वाला होता है।]

यही—

दूरङ्गमं एकचरं असरीरं गुहासयं,
ये चित्तं सञ्ञमेस्सन्ति मोक्खन्ति मारबन्धना ॥

[जो दूरगामी, अकेले विचरने वाले, निराकार, गुह्याशय चित्त का संयम करेंगे, वे ही मार के बन्धन से मुक्त होंगे।]

लेकिन दूसरे—

अनवट्ठितचित्तस्स सद्धम्मं अविजानतो,
परिप्लवपसादस्स पञ्ञा न परिपूरति ॥

[जिसका चित्त स्थिर नहीं, जो सद्धर्म को जानता नहीं, जिसका चित्त प्रसन्न नहीं वह कभी प्रज्ञावान् नहीं हो सकता।]

लेकिन जिसका कर्मस्थान स्थिर है—

अनवस्सुतचित्तस्स अनन्वाहतचेतसो,
पुञ्ञपापपहीनस्स नत्थि जागरतो भयं ॥

[जिसका चित्त आसक्ति-रहित है, जिसका चित्त स्थिर है, जो पाप-पुण्य से परे है, उस जागरूक पुरुष के लिए भय नहीं।]

इसलिए—

फन्दनं चपलं चित्तं दुरक्खं दुन्निवारयं,
उजुं करोति मेधावी उसुकारो व तेजनं ॥

[चित्त चंचल है, चपल है, दुर्-रक्ष्य है, दुर्-निवार्य है। मेधावी-पुरुष इसे उसी प्रकार सीधा करता है, जैसे बाण बनानेवाला बाण को।]

इस प्रकार सीधा करते हुए अपने चित्त की रक्षा करे। **पत्थयानो दिसं अगतपुब्बं,** इस कायानुस्मृति कर्मस्थान को आरम्भ करके बिना सिरे के संसार में अगतपूर्व दिशा की प्रार्थना करते हुए, उसे चाहते हुए अपने चित्त की रक्षा करे। लेकिन यह अगतपूर्व (=जहाँ पहले नहीं गये) दिशा कौन सी दिशा है—

मातापिता दिसापुब्बा आचरिया दक्खिणा दिसा
पुत्तदारा दिसा पच्छा मित्ता मच्चा च उत्तरा
दासकम्मकरा हेट्ठा उद्धं समणब्राह्मणा,
एता दिसा नमस्सेय्य अलमत्थो कुले गिही ॥

[माता पिता पूर्व-दिशा हैं, आचार्य दक्षिण दिशा। पुत्र-स्त्री पश्चिम दिशा है, मित्र-अमात्य उत्तर दिशा। दास-कर्मकर नीचे की दिशा हैं, श्रमण-ब्राह्मण ऊपर की दिशा। हैसियत वाला गृहस्थ अपने कुल में इन दिशाओं को नमस्कार करे।]

यहाँ तो पुत्र स्त्री आदि दिशाएँ कहीं गईं।

दिसा चतस्सो विदिसा चतस्सो,
उद्धं अधो दसदिसा इमायो ॥
कतमं दिसं तिट्ठति नागराजा,
यमद्दसा सुपिने छब्बिसाणं ॥

[चार दिशाएँ, चार अनु-दिशाएँ, ऊपर और नीचे इस प्रकार यह दस दिशाएँ हैं। वह छः दाँतों वाला नागराजा किस दिशा में रहता है ?]

यहाँ पूर्व आदि दिशाओं को दिशा कहा गया है।

अगारिनो अन्नदपाणवत्थदा
अव्हायिका नम्पि दिसं वदन्ति,
एसा दिसा परमा सेतकेतु !
यं पत्वा दुक्खी सुखिनो भवन्ति ॥

[भोजन और वस्त्र देने वाले निमन्त्रण देने वाले गृहस्थों को भी 'दिशा' कहते हैं। लेकिन हे सेतकेतु ! वही दिशा परम दिशा है जिसे प्राप्त कर दुखी सुखी हो जाते हैं।]

यहाँ 'निर्वाण' को दिशा कहा गया है। यहाँ भी निर्वाण से ही मतलब है। वह क्षय तथा विराग में दिखाई देती है (दिस्सति) इसीलिए दिशा कहा है। इस बिना सिरे के संसार में कोई मूर्ख पृथक-जन स्वप्न में भी कभी उधर नहीं गया, इसलिए अगत-पूर्व दिशा कहा। उसकी इच्छा करने वाले को कायानुस्मृति का अभ्यास करना चाहिए।

इस प्रकार शास्ता ने अपने उपदेश को निर्वाण पर समाप्त कर जातक का सारांश निकाला।

उस समय की राज परिषद अब की बुद्ध परिषद थी। राज्य-प्राप्त कुमार तो मैं ही था।

९७. नामसिद्धि जातक

जीवकञ्च मतं दिस्वा, यह (गाथा) शास्ता ने **जेतवन** में विहार करते हुए एक **नाम-सिद्धि** भिक्षु के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

एक तरुण का नाम ही था **पापक**। वह श्रद्धा से बुद्ध-शासन में प्रव्रजित हो गया। भिक्षु उसे बुलाते—"आयुष्मान् पापक आओ, आयुष्मान् पापक ठहरो।" वह सोचने लगा—"दुनिया में 'पापक' नाम बहुत खराब है, मनहूस है। मैं दूसरा अच्छा रखवाऊँगा।"

उसने आचार्य्य उपाध्यायों के पास जाकर कहा—"भन्ते! मेरा नाम अमाङ्गलिक है। मुझे दूसरा नाम दें।"

उन्होंने कहा—आयुष्मान्! नाम प्रज्ञप्ति-मात्र है। बुलाने भर को है। नाम से कोई अर्थ-सिद्धि नहीं होती। जो नाम है उसी से संतुष्ट रह।

उसने बार बार आग्रह किया। भिक्षु संघ में सभी जान गए कि इसे अच्छे नाम का आग्रह है।

तब एक दिन धर्मसभा में बैठे भिक्षुओं ने बात-चीत चलाई 'आयुष्मानो! अमुक भिक्षु नाम में सिद्धि समझता है और अच्छा नाम ढूँढ़ता है।'

तब शास्ता ने धर्म-सभा में आकर पूछा—"भिक्षुओ, बैठे क्या बातचीत कर रहे थे?"

"यह बातचीत।"

"भिक्षुओ, वह केवल अभी नाम सिद्धिक नहीं है, वह पहले भी नाम में ही सिद्धि समझता रहा है।"—यह कह पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में **तक्षशिला** में बोधिसत्त्व अत्यन्त विख्यात आचार्य हुए। ये **पाँच सौ** शिष्यों को मन्त्र (=वेद) पढ़ाते थे। उनके एक शिष्य का नाम था **'पापक'**। उसे लोग बुलाते, "**पापक**! आ। **पापक**! जा।"

उसने सोचा—मेरा नाम अमाङ्गलिक है। मैं दूसरा नाम रखवाऊँगा।

वह आचार्य्य के पास जाकर बोला, "आचार्य्य! मेरा नाम अमाङ्गलिक है। मुझे दूसरा नाम दें।"

आचार्य ने कहा, "तात! जा, देश में घूम कर जो तुझे अच्छा लगे, ऐसा एक माङ्गलिक नाम ढूँढ़ कर ला। आने पर तेरा नाम बदल दूँगा।"

वह 'अच्छा' कह, रास्ते के लिए खुराकी ले निकल, एक गाँव से दूसरे गाँव घूमता हुआ, एक नगर में पहुँचा।

वहाँ, **'जीवक'** नाम का एक आदमी मर गया था। उसे उसके रिश्ते-दार जलाने के लिए ले जा रहे थे। उसने देख कर पूछा 'इसका क्या नाम रहा?

"इसका नाम **'जीवक'** था।"

"क्या 'जीवक' भी मरता है?"

"'जीवक' भी मरता है, और 'अजीवक' भी। नाम तो पुकारने भर को होता है। मालूम होता है कि तू मूर्ख है।"

यह बात सुन, वह नाम के प्रति कुछ उदासीन हो नगर में गया। वहां एक दासी को उसके मालिक काम करके मज़दूरी[1] न ला देने के कारण दरवाज़े पर बिठा कर रस्सी से पीट रहे थे। उस दासी का नाम था **'धनपाली'**।

[1] पूर्व समय में दासियों को रखकर उनसे "मजदूरी" करवाते थे। भृति शब्द का यहाँ यही अर्थ है।

उसने गली में से गुज़रते हुए उसे पिटते देख कर पूछा। "इसे क्यों पीट रहे हैं ?"

"यह मज़दूरी नहीं ला कर दे सक रही है।"

"इसका नाम क्या है ?"

"इसका नाम है धनपाली ?"

"नाम से धनपाली है, तो भी मज़दूरी मात्र भी (कमाकर) नहीं (ला) दे सकती है ?"

"धनपाली भी दरिद्र होती है अधनपाली भी। नाम बुलाने भर को होता है। मालूम होता है तू मूर्ख है।"

वह नाम के प्रति कुछ और उदासीन हो नगर से निकला। रास्ते में उसने एक आदमी को देखा जो रास्ता भटक गया था। उसने पूछा "तुम क्या करते घूम रहे हो ?"

"स्वामी ! मैं रास्ता भूल गया हूँ।"

"तुम्हारा नाम क्या है ?"

"पन्थक"।

"पन्थक भी रास्ता भूलते हैं ?"

"पन्थक भी भूलते हैं, अपन्थक भी भूलते हैं। नाम पुकारने भर के लिए है। मालूम होता है तू मूर्ख है।"

वह नाम के प्रति बिलकुल उदासीन हो बोधिसत्त्व के पास गया। बोधिसत्त्व ने पूछा—"क्यों तात ! अपनी रुचि का नाम ढूँढ़ लाये ?"

"आचार्य ! जीवक भी मरते हैं अजीवक भी। धनपाली भी दरिद्र होती है अधनपाली भी। पन्थक भी रास्ता भूलते हैं, अपन्थक भी। नाम बुलाने भर को होता है। नाम से सिद्धि नहीं है। कर्म से ही सिद्धि होती है, मुझे दूसरे नाम की ज़रूरत नहीं है। मेरा जो नाम है, वही रहे।"

बोधिसत्त्व ने उसके देखे और किए को मिलाकर यह गाथा कही—

जीवकञ्च मतं दिस्वा धनपालिञ्च दुग्गतं,
पन्थकञ्च वने मूळ्हं पापको पुनरागतो॥

[जीवक को मरा देख, धनपाली को दरिद्र देख, पन्थक को जंगल में भटकता देख, 'पापक' फिर लौट आया।]

पुनरागतो—इन तीन बातों को देख कर पुनः लौट आया। 'र' सन्धि के कारण है।

शास्ता ने यह पूर्व जन्म की कथा सुना 'भिक्षुओ, यह केवल इसी जन्म में नामसिद्धिक नहीं है, पहले भी नामसिद्धिक ही रहा है' कह जातक को मिलाया।

उस समय का नामसिद्धिक अब का नामसिद्धिक ही है। आचार्य की परिषद अब की बुद्ध-परिषद। आचार्य तो मैं ही था।

९८. कूटवाणिज जातक

साधु खो पण्डितो नाम, यह (गाथा) शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक ठग बनिये के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

श्रावस्ती में दो जने साझे में व्यापार करते थे। वे गाड़ियों में सामान लेकर दीहात गए और वहाँ से नफा कमाकर लौटे। उनमें से ठग बनिए ने सोचा—"यह (बनिया) बहुत दिन तक भोजन और शय्या के ठीक ठीक न मिलने से कष्ट पाता रहा है। अब घर में नाना प्रकार के स्वादिष्ट भोजन पेट भर खा अजीर्ण से मरेगा। इसलिए मैं सब सामान के तीन हिस्से कर एक उसके बच्चों को दूँगा। दो हिस्से स्वयं लूँगा!"

वह 'आज बाँटता हूँ, कल बाँटता हूँ' करता हुआ सामान का बटवारा नहीं करना चाहता था। पंडित बनिये ने उस अनिच्छुक बनिए पर जोर डाल उससे बटवारा कराया। तब वह विहार गया। वहाँ शास्ता को प्रणाम कर

कुशल क्षेम पूछे जाने पर शास्ता ने कहा—"तूने देर की। चिरकाल से आकर भी बुद्ध की सेवा में इतनी देर से उपस्थित हुआ।"

उसने वह सब बात बुद्ध से निवेदन की।

शास्ता बोले—"उपासक ! यह बनिया केवल अभी ठग बनिया नहीं है। यह पहले भी ठग बनिया ही था। अब इसने तुझे ठगने की इच्छा की। पूर्व समय में भी पंडितों को ठगने का प्रयत्न किया।" यह कह पूर्व जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में **बाराणसी** में राजा **ब्रह्मदत्त** के राज्य करते समय बोधिसत्त्व **बाराणसी** में बनिए के कुल में पैदा हुए। नाम रखने के दिन उसका नाम **'पण्डित'** रक्खा गया। आयु बढ़ने पर वह एक दूसरे बनिए के साथ साझे में व्यापार करने लगा। उस (दूसरे बनिए) का नाम **अतिपण्डित** था। वे **बाराणसी** से पाँच सौ गाड़ियों पर सामान लाद दीहात में जा, व्यापार कर नफा कमाकर **बाराणसी** लौटे।

उनके सामान का बटवारा करते समय अतिपंडित ने कहा—"मुझे दो हिस्से मिलने चाहिए। क्यों ? तू पंडित है। मैं **अतिपण्डित**। पंडित को एक हिस्सा मिलना चाहिए। अतिपंडित को दो।"

"क्या हम दोनों की पूँजी (भण्ड-मूल) और बैल आदि बराबर बराबर नहीं रहे हैं; फिर तुझे दो हिस्से क्यों मिलने चाहिए ?"

"अतिपंडित होने के कारण।" इस प्रकार उन दोनों ने बात बढ़ाकर झगड़ा (शुरू) किया। तब **अतिपण्डित**, ने 'एक उपाय है' सोच कर अपने पिता को एक खोखले वृक्ष में रख कर कहा—"हमारे दोनों के आने पर, तू कहना कि अतिपंडित को दो हिस्से मिलने चाहिए।"

यह कह बोधिसत्त्व के पास जा कर कहा—"सौम्य ! मुझे दो हिस्सा मिलना उचित है, वा अनुचित, इस बात को यह वृक्ष-देवता जानता है। आ, उससे पूछें।" (फिर) उसे वहाँ ले जाकर कहा—'आर्य ! वृक्ष-देवता ! हमारे झगड़े का निर्णय आप करें।'

उसके पिता ने स्वर बदल कर कहा—"तो (झगड़ा) कहो।"

"आर्य ! यह पंडित है, मैं 'अतिपंडित' हूँ। हमने साझा व्यापार किया है। सो किसे क्या मिलना चाहिए ?"

"पंडित को एक हिस्सा, अतिपंडित को दो हिस्से।"

बोधिसत्त्व ने झगड़े का यह फैसला सुन कर, "यहाँ देवता है कि अदेवता, जानना चाहिए" (सोच) पुआल (घास) ला, वृक्ष के खोखले में भर आग लगा दी। अति-पंडित के पिता ने आग लगनी शुरू होने पर अध-जले शरीर से (वृक्ष) के ऊपर चढ़ शाखा पकड़, लटकते हुए, पृथ्वी पर गिर कर यह गाथा कही—

साधु खो पण्डितो नाम नत्वेव अतिपण्डितो,
अतिपण्डितेन पुत्तेन मनम्हि उपकूलितो

['पंडित' अच्छा है, 'अति-पंडित' अच्छा नहीं। (इस) 'अति-पंडित' पुत्र ने मुझे, क्षण भर में जला ही दिया था।]

साधु खो पण्डितो नाम, इस लोक में पाण्डित्य से युक्त, कारण अकारण का ज्ञाता आदमी अच्छा है, शोभा देता है। **अतिपण्डितो**, नाम मात्र से अति-पंडित, कुटिल आदमी अच्छा नहीं। **मनम्हि उपकूलितो**, (मतलब) थोड़े में और जल गया होता, अधजला ही छुटा हूँ।

उन दोनों ने बीच में से बाँट कर, बराबर बराबर का हिस्सा लिया। (फिर) यथा-कर्म (परलोक) गये।

शास्ता ने 'पहले भी यह कुटिल-व्यापारी ही था' कह इस पूर्वजन्म की कथा को ला, जातक का सारांश निकाल दिया।

उस समय का कुटिल-व्यापारी, अबका कुटिल-व्यापारी था। बुद्धिमान व्यापारी तो मैं ही था।

६६. परोसहस्स जातक

"परोसहस्सम्पि समागतानं" यह गाथा शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय, एक अज्ञ (पृथक्-जन) द्वारा पूछे गये प्रश्न के उत्तर में कही।

क. वर्तमान कथा

(इसकी) कथा (=वस्तु) **सरभङ्ग जातक**[1] में आयेगी।

एक बार धर्मसभा में एकत्र बैठे हुए भिक्षु 'आवुसो! बुद्ध के संक्षिप्त उपदेश को धर्म सेनापति **सारिपुत्र** ने विस्तार से कहा' करके (सारिपुत्र) स्थविर की प्रशंसा कर रहे थे। शास्ता ने आकर पूछा—"भिक्षुओ! इस वक्त बैठे क्या बात कर रहे थे?" उनके "यह (बात)" कहने पर, शास्ता ने, 'भिक्षुओ! न केवल अभी सारिपुत्र, मेरे संक्षिप्त कथन की विस्तार से व्याख्या करता है, उसने पहले भी की थी', कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में **बाराणसी** में (राजा) **ब्रह्मदत्त** के राज्य करने के समय, बोधिसत्त्व (एक) उदीच्य ब्राह्मण-कुल में उत्पन्न हुआ था। उसने **तक्षशिला** में सभी शिल्पों (विद्याओं) को सीखा; फिर विषय-भोगों को छोड़, ऋषि प्रव्रज्या के अनुसार प्रव्रजित हो, पाँच अभिज्ञा और आठ समापत्तियों को प्राप्त कर, हिमालय में रहने लगा। पाँच सौ तपस्वी, इसके अनुयायी थे; उसका प्रधान-शिष्य, वर्षाकाल में, आधे (ढाई सौ) ऋषि-गण को लेकर, लोणम्बिल (निमक-खटाई) खाने के लिए बस्ती (मनुष्य पथ) में चला आया।

[1] **सरभङ्ग जातक** (५२२)

उस समय बोधिसत्त्व का अन्तिम-समय समीप आ गया था। उसके (बाक़ी) शिष्यों ने 'अधिगम'[1] पूछा—"आपने कौनसा गुण प्राप्त किया ?" 'कुछ नहीं' कह आभास्वर ब्रह्मलोक में उत्पन्न हुआ। (अरूप-)ध्यान लाभी होने पर भी, बोधिसत्व, (अरूप-लोक) उनके अनुकूल न होने से अरूप-लोक में उत्पन्न नहीं होते।

शिष्यों ने 'आचार्य को 'अधिगम' नहीं है, सोच दाह करने के समय (विशेष) सत्कार नहीं किया। प्रधान शिष्य ने लौटकर पूछा—"आचार्य कहाँ हैं ?"

"काल कर गये।"

यह सुन उसने कहा—"क्या आचार्य से 'अधिगम' पूछा ?"

"हाँ ! पूछा।"

"(आचार्य ने) क्या कहा ?"

"उन्होंने कहा 'कुछ नहीं,' सो हमने उनका (विशेष) सत्कार नहीं किया।" प्रधान शिष्य ने कहा—"तुमने आचार्य के अर्थ को नहीं समझा, आचार्य आकिञ्चञ्ञायतन ध्यान के लाभी थे।" उन्होंने उसके बार बार कहने पर भी विश्वास न किया। बोधिसत्त्व ने, यह बात मालूम होने पर 'यह अन्धे-मूर्ख, मेरे प्रधान शिष्य के कहने का विश्वास नहीं करते, इन्हें यह बात प्रगट करूँगा' (सोच) ब्रह्मलोक से आकर, आश्रम के ऊपर बड़ी शान से, आकाश में खड़े हो, (अपने) शिष्य की बुद्धि की प्रशंसा करते हुए यह गाथा कही—

परोसहस्सम्पि समागतानं
कन्देय्युं ते वस्ससतं अपञ्ञा,
एकोव सेय्यो पुरिसो सपञ्ञो,
यो भासितस्स विजानाति अत्थं ॥

[सहस्राधिक भी अप्रज्ञावान (आदमी) आकर सैकड़ों वर्ष चिल्लाते रहें, उन सबसे (वह) एक ही प्रज्ञावान् अच्छा है, जो भाषित (=कहे) के अर्थ को समझता है।]

[1] ध्यान-विशेष की प्राप्ति-अप्राप्ति विषयक प्रश्न।

परोसहस्सम्पि, सहस्राधिक, **समागतानं,** इकट्ठे हुए हुओं का, कही बात के अर्थ को न समझ सकने वाले मूर्खों का। **कन्देय्युं ते वस्ससतं अपञ्ञा,** वे, इस प्रकार आये हुए, इन मूर्ख तपस्वियों की तरह, सौ वर्ष तक भी, हजार वर्ष तक भी चिल्लाते रहें, पीटते रहें, वे चिल्लाते हुए भी इस अर्थ (=मतलब) को नहीं जान सकेंगे। **एकोव सेय्यो पुरिसो सपञ्ञो,** इस प्रकार के सहस्राधिक मूर्खों की अपेक्षा पंडित आदमी अकेला ही श्रेष्ठ है, श्रेष्ठ-तर है। कैसा प्रज्ञावान् ? **यो भासितस्स विजानाति अत्थं,** जो भाषित का अर्थ जानता है, जैसे यह प्रधान शिष्य।

इस प्रकार महासत्त्व (=बोधिसत्त्व), आकाश में खड़े ही खड़े, धर्मोपदेश दे, तपस्वी के गुण का बोध (=जानकारी) करवा, ब्रह्मलोक को चले गये। वे तपस्वी भी जीवन के अन्त में ब्रह्मलोकगामी ही हुए।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला, जातक का सारांश निकाला। उस समय का प्रधान शिष्य (अब का) **सारिपुत्र** ही था। लेकिन महा-ब्रह्मा मैं ही था।

१००. असातरूप जातक

"असातं सातरूपेन" यह (गाथा) शास्ता ने (शाक्य देश के) **कुण्डिय नगर** के पास, **कुण्डधान** वन में विहार करते समय, **कोलिय** राज-कुमारी उपासिका **सुप्पवासा** के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

उस समय वह सात-वर्ष तक अपनी कोख में गर्भ-धारण कर, एक सप्ताह से गर्भ बिगड़ जाने के कारण (दुखी थी)। उसको अत्यंत वेदना हो रही थी।

लेकिन वैसी पीड़ा होने पर भी 'वह भगवान् सम्यक् सम्बुद्ध हैं, वे इस प्रकार के दुःख के नाशार्थ धर्मोपदेश देते हैं; उन भगवान् का श्रावक संघ सुप्रतिपन्न है, जो इस प्रकार के दुःख के नाश के लिए प्रयत्नशील है, निर्वाण (ही) सुख है जहाँ इस प्रकार का दुःख नहीं है'—इन तीन विचारों पर विचार कर, दुःख को सहती रही। फिर उसने अपने स्वामी को बुला, शास्ता के पास भेजा ताकि वह (शास्ता से) उसका प्रणाम और हाल कहे।

शास्ता ने उसका प्रणाम करना सुनते ही कहा—"**कोलिय**-कुमारी **सुप्पवासा,** सुखी हो। (स्वयं) सुखी हो, वह अरोगी पुत्र को जन्म दे।"

भगवान् के (मुँह से) वचन (निकलने) के साथ ही, कोलिय-कुमारी **सुप्पवासा** सुखी हो गई और उसने स्वस्थ पुत्र को जन्म दिया। उसके स्वामी ने घर जाकर उसे प्रसूता देख, कहा 'भो ! आश्चर्य है ! अत्यन्त आश्चर्य है। तथागत के प्रताप से अत्यन्त आश्चर्य कर, अद्भुत तथा विचित्र बात हुई।'

सुप्पवासा ने पुत्र को जन्म दे (अपने स्वामी को) फिर शास्ता के पास भेजा ताकि वह बुद्ध-प्रमुख भिक्षुसंघ को एक सप्ताह के दान का निमन्त्रण दे आये।

उस समय **महामौद्गल्यायन** के उपस्थायक (=सेवक) ने बुद्ध-प्रमुख संघ को निमंत्रित किया हुआ था। शास्ता ने सुप्पवासा के लिए दान देने की जगह निकालने को, स्थविर को उस (उपस्थायक) के पास भेज, उसे सूचना दिलवा, सुप्पवासा का दान अपने और संघ के लिए स्वीकार किया। सुप्पवासा ने सातवें दिन **सीवली-कुमार** पुत्र को सजाकर उससे शास्ता और भिक्षु-संघ को प्रणाम कराया। उसे क्रम से **सारिपुत्र** स्थविर के पास ले जाने पर सारिपुत्र स्थविर ने उससे कुशल-समाचार पूछा—"क्यों **सीवली** ! अच्छी तरह से तो हो ?" उसने 'भन्ते ! मुझे सुख कहाँ ? मैं सात वर्ष तक लोह-कुम्भि (नरक) में रहा' कह स्थविर के साथ इस प्रकार बातचीत की।

उसकी बातचीत सुन 'मेरा सात दिन का जाया (=पुत्र) अनुबुद्ध, धर्म-सेनापति के साथ मन्त्रणा (=बातचीत) करता है' सोच (सुप्पवासा) अत्यंत प्रसन्न हुई। शास्ता ने पूछा—"सुप्पवासे ! और भी इस प्रकार के पुत्रों की इच्छा है ?"

"भन्ते ! यदि इस प्रकार के और सात पुत्र मिलें, तो सातों को चाहूँगी।" शास्ता उदान कह, (दान का) अनुमोदन कर चले गये। सीवली-कुमार सात ही वर्ष की आयु में शासन में अत्यंत श्रद्धा-पूर्वक प्रव्रजित हुआ, (बीस) वर्ष पूरे होने पर, उपसम्पदा प्राप्तकर, पुण्यवान् (चीवर आदि) पाने वालों में अग्र हुआ और पृथ्वी को उन्नादित कर, अर्हत्पद प्राप्त कर, पुण्यवानों में प्रथम स्थान प्राप्त किया।

एक दिन धर्म-सभा में बैठे हुए भिक्षुओं ने बातचीत चलाई—"आवुसो ! सीवली स्थविर इस प्रकार के महापुण्यवान् हैं। उनकी इच्छा सम्पूर्ण हुई है। वह अन्तिम देह-धारी हैं ! (लेकिन फिर भी) वह सात वर्ष तक लोह-कुम्भि नरक में रहे, सप्ताह तक गर्भ के विगाड़ में रहे, जिससे, अहो ! माता-पुत्र ने अत्यंत दुःख पाया। ऐसा उन्होंने क्या (पाप-) कर्म किया था ?"

शास्ता ने वहाँ जाकर पूछा—"भिक्षुओ ! इस समय बैठे क्या बातचीत कर रहे थे ?"

"यह (बात)" कहने पर शास्ता ने "भिक्षुओ ! **सीवली,** का महापुण्य-वान् होना, सात वर्ष तक **लोह-कुम्भि** नरक में रहना, सप्ताह भर तक गर्भ का बिगाड़ रहना, यह उसके अपने किये कर्म का ही फल है; और **सुप्पवासा,** का भी सात वर्ष तक गर्भ-ढोये फिरने का दुःख, तथा सात दिन तक गर्भ के बिगड़े रहने का दुःख, उसके अपने किये कर्म का ही फल है' कह, उनके प्रार्थना करने पर पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में **बाराणसी,** में (राजा) **ब्रह्मदत्त,** के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व ने उसकी पटरानी की कोख में जन्म ग्रहण किया। सयाने हो **तक्षशिला,** में सब शिल्पों को सीखा; और पिता के मरने पर राज्य प्राप्त कर वह धर्मानुकूल राज्य करने लगा। उस समय **कोसल**-नरेश ने बड़ी भारी सेना के साथ आ, **बाराणसी** को जीत, राजा को मार डाला और उसकी ही पटरानी को अपनी पट-रानी बनाया। **बाराणसी** राजा के पुत्र ने, पिता के मरने के समय, चोर-दरवाजे से भाग, सेना एकत्र कर, **बाराणसी,**

पहुँच, (उससे) थोड़ी दूर पर बैठ, राजा के पास सन्देश भेजा कि चाहे युद्ध दो अथवा राज्य ? उसने प्रत्युत्तर भेजा—युद्ध दूँगा। राजा की माता ने उस खबर को सुन सन्देश भेजा—"युद्ध करने की आवश्यकता नहीं। सब रास्तों को रोक कर, चारों ओर से **बाराणसी** नगर को घेर लो। उससे लकड़ी, पानी, अनाज (=भात) की कमी होने से मनुष्य तंग आ जायेंगे। (फिर) तू बिना युद्ध के भी नगर को ले सकेगा।"

उसने माता का सन्देश पा, रास्तों को रोक कर, सात दिन तक नगर को घेरे रक्खा। नगर-निवासियों ने रास्ता न पाने पर, सातवें दिन, उस राजा का सिर ले जाकर कुमार को दिया। कुमार ने नगर में प्रवेश कर, राज्य ग्रहण किया। आयु समाप्ति होने पर वह कर्मानुसार (परलोक) सिधारा। उस समय के सात दिन तक (लोगों का) रास्ता बंद कर, नगर को घेर कर जीतने के कर्म-फल स्वरूप, वह इस समय, सात वर्षों तक लोह-कुम्भि नरक में रह कर, सात दिन तक गर्भ के विगाड़ में रहा। लेकिन जो **पदुमुत्तर** (पद्मोत्तर बुद्ध) के समय, महादान देकर 'मैं (प्रत्यय) लाभियों में अव्वल नम्बर होऊँ' करके, उनके चरणों में प्रार्थना (=बलवती इच्छा) की, और जो, **विपस्सी**, बुद्ध के समय, नगर निवासियों सहित सहस्र के मूल्य का गुड़-दहि दे कर, प्रार्थना की, उसके प्रताप से, वह (वस्तु) लाभियों में प्रथम हुआ। शास्ता ने यह पूर्व-जन्म की कथा ला, बुद्ध हुए रहने पर यह गाथा कही—

असातं सातरूपेन पियरूपेन अप्पियं,
दुक्खं सुखस्स रूपेन पमत्तमतिवत्तति ॥

[असात (=अमधुर) मधुर स्वरूप; अप्रिय प्रिय स्वरूप; दुःख सुख स्वरूप होकर(, प्रमादी आदमी को जीत लेता है।]

असातं सातरूपेन, अमधुर ही, मधुर से जो कि उल्टा है। **पमत्तमतिवत्तति,** अमधुर, अप्रिय, दुःख—इन तीनों को इस मधुर-स्वरूप आदि आकार से, स्मृति की अस्थिरता के कारण, प्रमादी (=आलसी) आदमी को लाँघ जाते हैं, जीत लेते हैं, नीचा दिखा देते हैं।

यह जो भगवान् ने कहा, सो यह, "माता-पुत्र के इस गर्भ-धारण या गर्भ-निवास नामक प्रतिकूल वेदना से पहले नगर को रोकने आदि की अनुकूल (वेदना) के दब जाने के सम्बन्ध में, और यह जो उपासिका ने उस असात (=प्रतिकूल), अप्रिय, दुःख, (स्वरूप) प्रेम-वस्तु-भूत पुत्र (के पाने की वेदना) के, अनुकूल-वेदना से दब जाने पर कहा, सो उसके सम्बन्ध में—इस प्रकार—इन सब के सम्बन्ध में कहा; ऐसा जानना चाहिए।

शास्ता ने इस धर्म देशना को ला, जातक का सारांश निकाल दिया।

उस समय नगर को रोक कर राज्य प्राप्त करने वाला कुमार (अब का) **सीवली** था। माता, सुप्पवासा थी। लेकिन पिता बाराणसी-राजा तो मैं ही था।

सहायक ग्रन्थों की सूची

१. **जातक पालि (सिंहल लिपि)**—सात खंड; प्रकाशक, तिपिटक पब्लिकेशन प्रेस, कोलम्बु।

२. **जातक (रोमन लिपि) वी० फोसबोल द्वारा सम्पादित**—सात खंड, प्रकाशक, ट्रूवनेर एण्ड कम्पनी, लन्दन।

३. **जातक (बङ्गला)**—छः खंड, अनुवादक श्री ईशान् चन्द्र घोष।

४. **जातक (अंग्रेजी)**—छः खंड, सम्पादक ई० बी० कौवेल।

५. **जातक (स्यामी लिपि)**—दो खंड।

६. **पन् सिय पणस जातक पोत् (सिंहल)**—पाँच सौ पचास जातक ग्रन्थ।

७. **जातक गाथा सन्नय (सिंहल)**—जातक गाथाओं पर टीका। आचार्य्य बद्देगम धर्मरत्न कृत।

८. **महावंस (हिन्दी) अमुद्रित**—अनुवादक, आनन्द कौसल्यायन।

९. **दीघनिकाय (हिन्दी)**—अनुवादक, रा० सांकृत्यायन तथा ज० काश्यप।

१०. **मज्झिम निकाय (हिन्दी)**—अनुवादक, राहुल सांकृत्यायन।

११. **विनय पिटक (हिन्दी)**—अनुवादक, राहुल सांकृत्यायन।

१२. **विसुद्धिमग्गो**—सम्पादक, धर्मानन्द कोसम्बी; प्रकाशक, भारतीय विद्या भवन, बम्बई।

१३. **अभिधर्मकोश (वसुबन्धु प्रणीतः)**—राहुल सांकृत्यायन विरचितया टीकया सहितः; प्रकाशक, काशी विद्यापीठ, बनारस।

१४. **मिलिन्द-प्रश्न (हिन्दी)**—अनुवादक, जगदीश काश्यप; प्रकाशक भिक्षु ऊ० कित्तिम स्थविर, सारनाथ।

१५. **भगवान् बुद्ध (मराठी)** लेखक, धर्मानन्द कोसम्बी; सुविचार प्रकाशन मंडल, पूणें।

१६. **जातक माला (अंग्रेजी)**—संस्कृत से जे० एस० स्पेअर द्वारा अनूदित।

१७. **भरहुत शिलालेख (अंग्रेजी)**—बरुआ एण्ड सिंह, कलकत्ता यूनिवर्सिटी प्रेस।

१८. **ए गाइड टु सांची (अंग्रेजी)**—जान मार्शल, गवर्नमेंट प्रिंटिंग इण्डिया।

१६. **ए गाइड टु टैक्सिला (अंग्रेजी)**—जान मार्शल, गवर्नमेंट प्रिंटिंग इण्डिया।

२०. **बुद्धिस्ट बर्थ स्टोरीज (अंग्रेजी)**—रीज़ डेविड्स, ब्राडवे ट्रान्सलेशन सीरीज़।

२१. **प्रि-बुद्धिस्ट इण्डिया (अंग्रेजी)**—रति लाल मेहता, बाम्बे एक्ज़ा-मिनर प्रेस।

२२. **भारतीय इतिहास की रूपरेखा (२ खण्ड)**—जयचन्द्र विद्यालङ्कार, हिन्दुस्तानी एकेडमी, प्रयाग।

२३. **भारतभूमि और उसके निवासी**—जयचन्द्र विद्यालंकार, रत्नाश्रम, आगरा।

२४. **जातक टेल्ज़ (अंग्रेजी)**—एच० टी० फ़्रैंसिस, ई० जे० थामस, कैम्ब्रेज यूनिवर्सिटी प्रेस।

२५. **माडर्न रिव्यू (अंग्रेजी)**—अक्तूबर, नवम्बर (१६१०)।

२६. **भारतीय मूर्तिकला**—रायकृष्ण दास, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।

२७. **भारतीय चित्रकला**—रायकृष्ण दास, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।

२८. **इण्डियाज पास्ट (अंग्रेजी)**—डी० मैकडानल।

२६. **डिक्शनरी ऑफ पालि प्रोपर नेम्ज़ (अंग्रेजी)**—मलल सेकर।

३०. **बुद्धिस्ट आर्ट**—ए० फुशेर, लंदन १६१७.

३१. **अन्य कई ग्रन्थ जिनका यथास्थान उल्लेख हो गया है।**